भारतीय ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला : अपभ्रंश ग्रन्थांक—४

मुनि-कनकामर-विरइयउ

करकंड चरिउ

आलोचनात्मक रीतिसे सम्पादित मूल, हिन्दी और अँगरेजी प्रस्तावना
व अनुवाद, परिशिष्ट, टिप्पण, शब्दकोश, आदि सहित
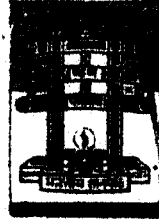
सम्पादक
डॉ० हीरालाल जैन, एम्० ए०, डी० लिट्०
प्राध्यापक व विभागाध्यक्ष
संस्कृत, पालो व प्राकृत, इन्स्टीट्यूट आफ़ लेंग्वेजेज़ एण्ड रिसर्च
जबलपुर विश्वविद्यालय [म० प्र०]
भूतपूर्व डायरेक्टर : प्राकृत, जैनधर्म और अहिंसा शोधसंस्थान
वैशाली (बिहार)

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

वीर निर्वाण सं० २४९०
वि० सं० २०२१, सन् १९६४

द्वितीय संस्करण
मूल्य दस रुपये

स्व० पुण्यश्लोका माता मूर्तिदेवीकी पवित्र स्मृतिमें तत्सुपुत्र साहू शान्तिप्रसादजी-द्वारा
संस्थापित

भारतीय ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमालाके अन्तर्गत प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी, कन्नड, तमिल आदि प्राचीन भाषाओंमें उपलब्ध आगमिक, दार्शनिक, पौराणिक, साहित्यिक, ऐतिहासिक आदि विविध-विषयक जैन-साहित्यका अनुसन्धानपूर्ण सम्पादन तथा उसका मूल और यथासम्भव अनुवाद आदिके साथ प्रकाशन हो रहा है। जैन भण्डारोंकी सूचियाँ, शिलालेख-संग्रह, विशिष्ट विद्वानोंके अध्ययन-ग्रन्थ और लोकहितकारी जैन-साहित्य ग्रन्थ भी इसी ग्रन्थमालामें प्रकाशित हो रहे हैं।

•

ग्रन्थमाला सम्पादक

डॉ० हीरालाल जैन, एम० ए०, डी० लिट्०
डॉ० आ० ने० उपाध्ये, एम० ए०, डी० लिट्०

•

प्रकाशक
भारतीय ज्ञानपीठ
प्रधान कार्यालय : ९ अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता–२७
प्रकाशन कार्यालय : दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी–५
विक्रय केन्द्र : ३६२०।२१ नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली–६

मुद्रक : सन्मति मुद्रणालय, दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी–५

•

स्थापना : फाल्गुन कृष्ण ९, वीर नि० २४७० • विक्रम सं० २००० • १८ फरवरी सन् १९४४

स्व० मूर्तिदेवी, मातेश्वरी सेठ शान्तिप्रसाद जैन

JÑĀNAPĪTHA MŪRTIDEVĪ JAIN GRANTHMĀLĀ : APABHRAM'SA Grantha No. 4

KARAKAṆḌA-CARIU

of

MUNI KANAKĀMARA

An Apabhraṃśa Work on the Life of Karakaṇḍu Recognised as a Saint or Pratyekabuddha by the Jainas as well as Buddhists

Critically Edited

with

Hindi and English Introductions and Translations, Appendices, Notes, Glossary etc.
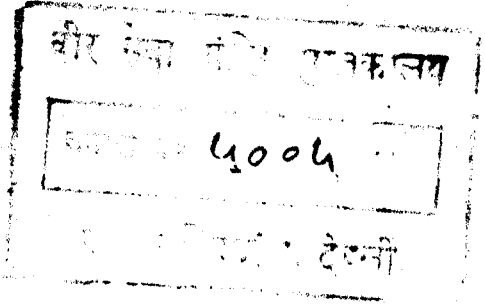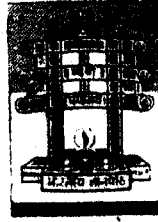
EDITOR

Dr. **HIRALAL JAIN,** M. A., D. Litt.

Professor and Head of Department of Sanskrit, Pali and Prakrit,
Institute of Languages and Research, Uuiversity of Jabalpur [M. P.]
Formerly Director, Research Institute of Prakrit, Jainology and Ahimsa,
Muzaffarpur [Bihar]

BHĀRATĪYA JÑĀNAPĪTHA PUBLICATION

VIRA SAMVAT 2490
V. S. 2021, 1964 A. D.

Second Edition
Rs. 10/-

BHĀRATĪYA JÑĀNAPĪṬHA MŪRTIDEVĪ

JAINA GRANTHAMĀLĀ

FOUNDED BY

SĀHU SHĀNTIPRASĀD JAIN

IN MEMORY OF HIS LATE BENEVOLENT MOTHER

SHRĪ MŪRTIDEVĪ

IN THIS GRANTHAMĀLĀ CRITICALLY EDITED JAINA ĀGAMIC, PHILOSOPHICAL, PURĀNIC, LITERARY, HISTORICAL AND OTHER ORIGINAL TEXTS AVAILABLE IN PRĀKRIT, SANSKRIT, APABHRAṂŚA, HINDI, KANNADA, TAMIL ETC., ARE BEING PUBLISHED IN THEIR RESPECTIVE LANGUAGES WITH THEIR TRANSLATIONS IN MODERN LANGUAGES AND CATALOGUES OF JAINA BHANDARAS, INSCRIPTIONS, STUDIES OF COMPETENT SCHOLARS & POPULAR JAINA LITERATURE ARE ALSO BEING PUBLISHED.

●

●

Bharatiya Jnanapitha
Head office : 9 Alipore Park Place, Calcutta-27.
Publication office : Duragakund Road, Varanasi-5.
Sales office : 3620/21 Netaji Subhash Marg, Delhi-6.

●

Founded on Phalguna Krishna 9, Vira Sam. 2470, Vikrama Sam. 2000.18th Febr.1944

CONTENTS

1 *General Editorial (English and Hindi)* .... vii-viii

2 **प्रस्तावना** ९-६३

१ ग्रन्थका रचना-स्थल ९
२ ग्रन्थकारके समसामयिक नरेश व रचना-काल १०
३ ग्रन्थकारका चन्द्रर्षि गोत्र १२
४ ग्रन्थकारकी गुरु-परम्परा १३
५ ग्रन्थका विषय १३
६ करकंडु कथाकी प्राचीन परम्परा १६
७ प्रस्तुत कथानककी पूर्व कथाओंसे तुलना १९
८ कथानकके विविध तत्त्वोंकी खोज २०
९ अवान्तर कथाएँ २२
१० कथाके नायक २८
११ करकंडचरिउका उत्तरकालीन साहित्यपर प्रभाव २९
१२ तेरापुर और वहाँके लयन (गुफ़ाएँ) ३०
१३ पहली गुफ़ा किसने बनवायी ३१
१४ करकंडचरिउकी भाषा ३२
१५ करकंडचरिउके छन्द ३४

3 *Introduction*

1 Critical Apparatus 37
2 Summary of the Work 39
3 The Intervening Stories and their Sources 45
4 Popularity of the Hero 46
5 Authorship, Time and Place of Composition of the work 49
6 Terapur and its Cave-temples 56
7 Who Excavated the First Cave ? 60
8 Metres 63

4 *Apabhraṃs'a text of Karakaṇḍacariu in 10 Chapters with headlines to each Kaḍavaka in English, Variant Readings in the Footnotes, and Hindi Translation on the Opposite Page* 2-163

5 *English Translation* 165

6 *Appendices* 227

A The Story (in Pāli) of Karaṇḍū Rājā with English Translation 227

B The Story (in Prākrit) of Karakaṇḍū Rāyā with English Translation 230

7 *Notes : Critical and Explanatory* 239

8 *Glossary* 247

9 *Index of Personal Names with Notes* 286

10 *Index of Geographical Names with Notes* 290

GENERAL EDITORIAL

The Karakaṃḍacariu of Kanakāmara was first edited by Dr. Hiralal Jain and published as No. 4 of the Ambādāsa Chaware Digambara Jaina Granthamālā, or Karanja Jaina Series, in the year 1934. This Apabhraṃśa work was received very well not only by Oriental scholars interested in the Middle Indo-Aryan, but also in some of our Universities where it found a place as a text-book for graduate and post-graduate courses of study. The first edition was exhausted some years back, and the book has been in consant demand. I suggested a reprint of it to the authorities of the Bhāratīya Jñānapīṭha, Varanasi, which has come to be a premier Institution for the publication of works pertaining to the neglected branches of Indological study. Thanks to Dr. Hiralal Jain, in whom we have a doyen of Apabhraṃśa studies, that not only he readily agreed to the proposal of reprint, but also spared his valuable time to retouch the text and critical apparatus in their obscure contexts, to revise the Introductions and to add a full Hindi Translation. Thus, the present edition of the Karakaṃḍacariu has come to represent an exhaustive study of this Apabhraṃśa text from the historical and literary points of view. I have no doubt that the present edition has become more comprehensive and scholarly in its contents and would satisfy more fully the needs of the University students. It may be noted that for the speedy publication of this work the twelve plates pertaining to Terāpura cave, included in the first edition, could not be reproduced here.

We are grateful to the authorities of the Bhāratīya Jñānapīṭha, especially to its enlightended President, Smt. Ramadevi Jain, and to its benign Patron, Shriman Sahu Shanti Prasadaji, for patronising the publication of such works. Our thanks are due to Shri Laxmi Chandaji Jain who is enthusiastically implementing the schemes of publication undertaken by the Jñānapīṭha.

Kolhapur
9-6-64

A. N. UPADHYE

प्रधान सम्पादकीय

मुनि कनकामर कृत करकण्डचरिउका सर्वप्रथम सम्पादन डॉ० हीरालाल जैन द्वारा होकर सन् १९३४ में अम्बादास चवरे दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला (कारंजा जैन सीरीज) में उसका प्रकाशन हुआ था। इस अपभ्रंश रचनाका प्राकृत भाषाओंमें रुचि रखनेवाले प्राच्य विद्या-विशारदों-द्वारा अच्छा स्वागत हुआ और अनेक विश्वविद्यालयोंने उपाधि व स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमोंमें उसे स्थान दिया। ग्रन्थका प्रथम संस्करण कुछ वर्ष पूर्व समाप्त हो गया था, किन्तु ग्रन्थकी निरन्तर माँग बनी हुई थी। अतएव मैंने भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, के अधिकारियोंको इसे पुनः प्रकाशित करानेका सुझाव दिया, क्योंकि यह ज्ञानपीठ भारतीय विद्याओंकी उपेक्षित शाखाओंके ग्रन्थोंको प्रकाशित करनेके लिए एक प्रधान संस्था बन गयी है।

डॉ० हीरालाल जैन अपभ्रंश भाषा और साहित्य सम्बन्धी अध्ययनके हमारे एक पथ-निर्माता हैं। उन्हें धन्यवाद है कि उन्होंने न केवल इस ग्रन्थके पुनः प्रकाशनके प्रस्तावको तुरन्त स्वीकार कर लिया, किन्तु उन्होंने अवकाश निकालकर ग्रन्थके मूल पाठमें अनेक स्थलोंपर उचित संशोधन किये, ह्रस्व और दीर्घ 'ए' तथा उसकी मात्रा एवं अनुनासिक और अनुस्वारके पृथक् संकेतोंका समावेश किया, हिन्दी प्रस्तावनाका उचित विस्तार व अँगरेजी भूमिकामें तदनुसार सुधार-बधार किये और सम्पूर्ण हिन्दी अनुवाद भी जोड़ दिया। इस प्रकार करकण्डचरिउके इस संस्करणमें इस अपभ्रंश रचनाका ऐतिहासिक व साहित्यिक दृष्टिसे सर्वांगपूर्ण अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस संस्करणमें अपने विषयका अधिक व्यापक और विद्वत्तापूर्ण विवेचन हुआ है जिससे विश्वविद्यालयीन विद्यार्थियोंकी आवश्यकताओंकी अधिक उत्तम रीतिसे पूर्ति हो सकेगी।

यहाँ यह भी प्रकट कर देना उचित है कि तेरापुरकी गुफाओं सम्बन्धी जो बारह चित्र प्रथम संस्करणमें प्रकाशित किये गये थे वे, प्रकाशनमें विलम्ब बचानेकी दृष्टिसे छोड़ दिये गये हैं।

हम भारतीय ज्ञानपीठके अधिकारियों, और विशेषतः इस संस्थाकी विदुषी अध्यक्षा श्रीमती रमादेवी जैन, एवं उसके सुयोग्य संरक्षक साहू शान्तिप्रसादजीके कृतज्ञ हैं कि वे ऐसे ग्रन्थोंके प्रकाशनको आश्रय देते हैं। ज्ञानपीठ-द्वारा स्वीकृत प्रकाशन-योजनाको उत्साहपूर्वक क्रियान्वित करनेके लिए संस्थाके मन्त्री श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन हमारे धन्यवादके पात्र हैं।

कोल्हापुर,
९-६-१९६४

आ० ने० उपाध्ये

प्रस्तावना

'करकंडचरिउ'के दर्शन मुझे प्रथम बार सन् १९२४ में कारंजाके सेनगण भण्डारमें हुए थे। तदनुसार ग्रंथका कुछ परिचय सन् १९२६ में मध्यप्रदेश शासन-द्वारा प्रकाशित संस्कृत-प्राकृत हस्तलिखित ग्रंथोंकी सूचीमें दिया गया था। खोज करनेपर इसी ग्रंथकी पाँच और भी प्रतियाँ मुझे देखनेको मिलीं। इन सब प्रतियोंका सूक्ष्म अवलोकन कर प्रस्तुत संस्करण तैयार किया है। (इन प्रतियोंका परिचय अंग्रेजी भूमिकामें देखिये।)

स्वयं ग्रंथमें उसके रचयिता व काल आदि सम्बंधी ऐतिहासिक संकेत केवल निम्नप्रकार पाये जाते हैं। ग्रंथकी प्रत्येक संधिके अन्तमें ग्रंथकारका नाम कनकामर अंकित कर दिया गया है, व प्रारंभ और अन्तमें उनके गुरुका नाम पंडित या बुध मंगलदेव बतलाया है। अन्तिम प्रशस्तिमें कहा गया है कि ग्रन्थकार ब्राह्मण वंशके चन्द्र ऋषि गोत्रमें उत्पन्न हुए थे, और वैराग्य लेकर वे दिगम्बर मुनि हो गये। तबसे उनका नाम कनकामर मुनि प्रसिद्ध हुआ। वे भ्रमण करते हुए 'आसाइय' नगरीमें पहुँचे और वहीं रहकर उन्होंने प्रस्तुत ग्रन्थकी रचना की। इस रचनाको उन्होंने जिन सज्जनके अनुरागसे प्रकाशित किया वे एक बड़े योग्य व्यवहार-कुशल, धर्मात्मा पुरुष थे। वे विजयपालनरेशके स्नेहभाजन तथा उनके मुखदर्पणवत् थे, उन्होंने भूवाल नरेशका मन मोह लिया था, तथा वे कर्ण नरेन्द्रके चित्तका मनोरंजन किया करते थे। उनके तीन पुत्र थे, आहुल, रल्हो और राहुल। ये तीनों मुनि कनकामरके चरणोंमें अनुरक्त थे। अपने भक्त श्रावकका इतना परिचय देनेपर भी, खेद है, कर्ताने उनका नाम नहीं बतलाया और न अपने ग्रंथके निर्माणका समय ही अंकित किया। अतः ग्रंथकारके सम्बन्धमें विशेष जानकारी उक्त संकेतोंके आधारसे बाह्य प्रमाणों-द्वारा संकलित करनेकी आवश्यकता पड़ी।

ग्रंथका रचना-स्थल

जिस 'आसाइय' नगरीमें रहकर कविने ग्रन्थ-रचना की उसका यह भी निश्चय नहीं होता कि वह कहाँ थी, तथा जिन राजाओंका उन्होंने उल्लेख किया है उनका भी कुछ निश्चित इतिहास ज्ञात नहीं है। कारंजाकी प्रतिमें 'आसाइय' नगरीपर 'आसापुरी' ऐसा टिप्पण है। इससे जान पड़ता है कि उस नगरीको आसापुरी भी कहते थे। खोज करनेपर इस नामके अनेक स्थानोंका पता लगा। एक तो 'आसाई' नामका इतिहासप्रसिद्ध वह स्थान है जहाँ सन् १८०३ में मराठों और अंग्रेजोंका युद्ध हुआ था। यह आंध्रप्रदेशके औरंगाबाद जिलेके अन्तर्गत है। यह अब एक छोटा-सा ग्राम है। इसका पूर्व इतिहास कुछ विदित नहीं है। दूसरा खानदेशमें आसीरगढ़ नामका किला है जिसका यह नाम वहाँ स्थापित आसादेवीपर-से पड़ा। कहा जाता है कि इस किलेको मौखरी वंश (लगभग सन् ६००) के एक नरेशने अपनी पुत्रप्राप्तिकी आशा पूर्ण होनेके उपलक्ष्यमें बनवाया था। किलेके पासका एक छोटा-सा ग्राम अब भी 'आसी' कहलाता है। एक तीसरा आसी नामका स्थान राजपुतानेके बून्दी राज्यमें है। यह भी एक किला है। पंजाबके कांगड़ा जिलेके अन्तर्गत कीरग्रामसे बारह मील दूरीपर एक पहाड़ी है जिसकी चोटीपर आसापुरी देवीकी स्थापना है और जिसके कारण वह स्थान आसापुरी कहलाता है। इस मन्दिरको एक राजा चन्द्रभानुके पुत्र विजयरामने बनवाया था। पाठक नामपर-से विजयरामको इस ग्रंथके विजयपाल ठहरानेका इरादा न करें, क्योंकि ये विजयराम सत्रहवीं शताब्दिमें हुए हैं और प्रस्तुत ग्रंथ जैसा ऊपर बतला आये हैं, इससे पूर्व ही बन चुका था। इत्यादि। किन्तु इस नाम मात्रकी समानताओंसे हमें ग्रंथकी रचनाके स्थानका निर्णय करनेमें विशेष सहायता नहीं मिलती, जबतक किसी स्थानके साथ उपर्युक्त राजाओंका भी कुछ इतिहास न पाया जावे। जिन दो स्थानोंमें-से किसी एकके कनकामरके रचनास्थल होनेकी अधिक सम्भावना है वे निम्नप्रकार हैं :

१. आसइखेड़ाके विषयमें जैन सिद्धांत भास्कर, भाग १३, २, पृष्ठ १३५पर लिखा है, "आसइखेड़ा नामक ग्राम इटावासे नौ मील दूर है। निस्सन्देह यह जैनियोंका प्राचीन स्थान है। इटावाके जैनी अब भी वहाँ जाकर अपने लड़कोंका मुण्डन कराते हैं। आसइ गाँव एक ऊँचे खेड़ेपर बसा हुआ है, जिसकी पश्चिमी ओर विशाल खंडहर पड़े हुए हैं। जमुनाके किनारेसे सटा हुआ खंडहर संभवतः किसी प्राचीन जैन मंदिर-का अवशेष है। उसपर बहुत-सी दिगम्बर जैन प्रतिमाएँ बिखरी हुई मिलती हैं। इनमें-से १२वीं शताब्दिकी दो मूर्तियोंको जसवंतनगरके मन्दिरमें लाकर रखा गया था। एक चौबीसीपट था, जिसमें प्रत्येक तीर्थंकरका नाम भी अंकित था। यह आसइ ग्राम अपने दुर्गके लिए प्रसिद्ध था। कहते हैं कि आसइके दुर्गको चन्द्रपालने बनवाया था। मुनि कनकामरने एक आसाइय नगरीमें आकर अपना करकंडचरिउ रचा था जहाँकि नरेश विजयपाल, भूपाल और कर्ण थे। हो सकता है कि यह आसाइय नगरी वर्तमान आसइखेड़ा ही हो।" किन्तु इससे आगे कहा गया है कि "तारीख-ई-यामिनीसे जाहिर है कि मुहम्मद तुगलकने हिज्री ४०९ (सन् १०१७ ई०)में कन्नौजसे मथुरा तक आक्रमण किया था। इटावाके पास मुंजके किलेमें हिंदुओंने उसका जबरदस्त विरोध किया था। प्रायः सभी हिन्दू उस संघर्षमें खेत रहे थे। वहाँसे सुलताननें आसईके दुर्गपर आक्रमण किया। उस समय आसईका शासक चंडाल भोर था। ···· मुसलमान लेखकोंने लिखा है कि सुलतान-के आक्रमणकी खबर पाकर चंडाल भोर घबरा गया और अपना दुर्ग छोड़ सुरक्षित स्थानको भाग गया। सुलताननें उसके पाँचों किलोंका गिरवाकर मिट्टीमें मिला दिया।" इससे न तो इस आसईखेड़ाका सन् १०१७ ईस्वीके पश्चात् ऐसा अस्तित्व पाया जाता जिससे वह कनकामर-द्वारा 'नगरी' कहा जा सके, और न वहाँ किसी ऐसे राजाओंका अस्तित्व सिद्ध होता है जिनका करकंडचरिउमें उल्लेख किया गया है।

२. भोपाल स्टेट गजैटियर (१९०८)में लिखा है कि भोपालके समीप आशापुरी नामक ग्राम २३" ५२" उत्तर व ७७" ४०" पूर्व ध्रुवांशपर स्थित है। वहाँ आशापुरी देवीकी कुछ असाधारण प्रकारकी मूर्ति विद्यमान है। सम्भवतः इसीपर-से ग्रामका उक्त नाम पड़ा। यहाँ एक जैन मंदिरके भी भग्नावशेष मिलते हैं, उनमें एक सोलह फुट ऊँची शान्तिनाथ तीर्थंकरकी प्रतिमा भी है।

मेरा अनुमान है कि वर्तमान मध्यप्रदेशकी राजधानी भोपालके समीपकी यही वह प्राचीन नगरी है जिसका उल्लेख मुनि कनकामरने 'आसाइयणयरि'के रूपमें किया है तथा जिसपर 'आशापुरी' ऐसा प्राचीन टिप्पण पाया जाता है। यह बात उल्लिखित राजाओंके विवेचनसे भी पुष्ट होती है।

ग्रंथकारके समसामयिक नरेश व रचना-काल

'करकंडचरिउ' की अन्तिम प्रशस्तिमें तीन राजाओंका उल्लेख पाया जाता है — विजयपाल, भूपाल और कर्ण। इस उल्लेखसे ऐसा भी ज्ञात होता है कि ग्रंथकारके उत्साहवर्धक सज्जनके जीवनकालमें ही वे तीनों राजा हो चुके थे और उनके साथ इनका सम्बन्ध भी खासा रह चुका था। अतः उक्त नामोंके ऐसे तीन राजा ढूँढ़ना चाहिए जिनका एक ही कालमें या एक ही जीवनमें एक पुरुषसे सम्बन्ध होना संभव हो सके। तीन ऐसे शिलालेखोंका पता चला है जिनमें उक्त राजाओंका उल्लेख है। ये तीनों लेख बुन्देलखंड प्रान्तके भीतर या आसपास पाये गये हैं। इनमें-का एक लेख अपभ्रंश भाषामें है और नीचे उसका संस्कृत अनुवाद भी दिया गया है। उसमें प्रसंगोपयोगी यह बात दी हुई है कि विश्वामित्र गोत्रके क्षत्रिय वंशमें विजयपाल नामके एक राजा हुए जिनके पुत्र भुवनपाल थे। उन्होंने कलचुरी, गुर्जर और दक्षिणको जीत डाला था। यह लेख दमोह जिलेकी हटा तहसीलमें मिला था और अब नागपुरके 'अजायबघर' में सुरक्षित है। दूसरा लेख बाँदा जिलेके अन्तर्गत चन्देलोंकी पुरानी राजधानी कालिंजरमें मिला है। उसमें विजयपालके पुत्र भूमिपालका तथा दक्षिण दिशा और कर्ण राजाको जीतनेका उल्लेख है। तीसरा लेख जबलपुर जिलेके अन्तर्गत तीवरमें मिला है। उसमें भूमिपालके उत्पन्न होनेका उल्लेख स्पष्ट है तथा किसी सम्बन्धमें त्रिपुरी और सिंहपुरीका भी उल्लेख है। इन लेखोंमें-के दो अन्तिम लेख बहुत ही टूटे-फूटे हैं, इससे उनके पूर्वापर सम्बन्धका कुछ ज्ञान नहीं होता,

तथा प्रथम लेख पूरा मिलनेपर भी अभीतक स्पष्टतः नहीं पढ़ा जा सका है। जो कुछ पढ़ा गया है उसमें अपभ्रंश और संस्कृतकी बातोंमें कुछ परस्पर विरोध-सा पाया जाता है। तथापि उक्त नामोंके सम्बन्धमें कोई मतभेद नहीं हैं। लेखोंमें कोई सन्-सम्वत् भी नहीं पाया गया, किन्तु लिखावटपर-से वे ११वीं या १२वीं शताब्दिके अनुमान किये जाते हैं। सम्भवतः उक्त लेखोंके विजयपाल और उनके पुत्र भुवनपाल या भूमिपाल, तथा हमारे ग्रन्थके विजयपाल (अपभ्रंश विजवाल) और भूपाल एक ही हैं। रही कर्ण (अपभ्रंश कण्ण) नरेंद्रकी बात, सो ये कर्ण वे ही हो सकते हैं जिनका उल्लेख ऊपरके दूसरे शिलालेखमें आया है। यदि ज्ञात इतिहासमें इन राजाओंको समाविष्ट करनेका प्रयत्न किया जाय तो बुन्देलखंडके चंदेल वंशमें हो सकता है। चंदेल (चन्द्रात्रेय) वंशका संक्षिप्त इतिहास यह है कि नवमी शतीके प्रारंभमें बुन्देलखंड प्रदेशमें इस वंशके राजा नन्नूक प्रकाशमें आये। खर्जूरवाहक (आधुनिक खजुराहो, छतरपुर जिलेमें) उनकी राजधानी थी और वे संभवतः उस समयके प्रतिहार सम्राट् नागभट (द्वि) के अधीन थे। नन्नूकके पुत्र वाक्पतिने विन्ध्याचलके अंचलमें अपने राज्यका विस्तार किया। वाक्पतिका पुत्र जयशक्ति 'जेज्जाक' नामसे भी प्रसिद्ध हुआ, और उसीके नामसे यह प्रदेश 'जेज्जाकभुक्ति' भी कहलाने लगा। जयशक्तिके उत्तराधिकारी उनके लघु भ्राता विजयशक्ति (विज्जक) ने, खजुराहोके एक शिलालेखानुसार, दक्षिण भारतमें दूर तक अपना राज्यविस्तार किया। उसके उत्तराधिकारी पुत्र राहिलके नामसे महोबाके समीप राहिल्य-सागर बनवाया गया। राहलके उत्तराधिकारी पुत्र हर्षने, खजुराहोके लेखानुसार सन् ९१४ के लगभग क्षितिपालदेव (प्रतिहार नरेश महीपाल प्रथम) को कन्नौजका सिंहासन (राष्ट्रकूट इन्द्र तृ. से) पुनः प्राप्त करनेमें सहायता पहुँचायी, तथा चौहान राजकुमारी कंचुकासे विवाह किया। इस प्रकार चंदेल वंशकी प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गयी। उसके पुत्र यशोवर्मन् (लक्षवर्मन्) ने प्रतिहार नरेश देवपालकी अधीनता अस्वीकार कर दी और कालंजरको जीतकर अपना राज्य यमुनाके तट तक फैला दिया। उसने कलचुरि युवराजदेव (प्र.) और परमार सीयक (द्वि.) को पराजित कर चेदि और मालवा तक अपना प्रभुत्व जमा लिया। उसने पूर्वमें पाल नरेश गोपाल (द्वि.) और काम्बोजोंको जीतकर गौड़ और मिथिला तक अपना साम्राज्य फैलाया। प्रतिहार नरेश देवपालसे विष्णुकी वह मूर्ति प्राप्त की जो उसके पिता हेरम्बपालने कीर (कांगड़ा) के शाही नरेशसे पायी थी, और उसे खजुराहोमें चतुर्भुज मन्दिर बनवाकर उसमें स्थापित की। यशोवर्मनके पुत्र धंग और उनके उत्तराधिकारियोंने अपनेको कालंजराधीश्वर कहा है। इस समय चंदेल राज्यकी सीमा कालंजरसे भास्वत (भिलसा) तक तथा कालिंदी (यमुना) व गोप (ग्वालियर) से चेदि मंडल (जबलपुर) तक फैल गयी थी। धंगने अंग (भागलपुर) व राधा (पश्चिम बंगाल) तथा आंध्र और कुंतल तक विजय यात्रा की। उसने संभवतः अमीर सुबुक्तिगीनके विरुद्ध लंघानके युद्धमें अन्य पन्द्रह हिंदू राजाओंके साथ भाग लिया। उसने महाराजाधिराजकी उपाधि धारण की। उसने गौतम अक्षपादके वंशज प्रभास नैयायिकको अपना प्रधान मंत्री नियुक्त किया। धंगने सन् ९५४ से १००२ तक राज्य किया।

धङ्गका पुत्र हुआ गण्ड और गण्डका विद्याधर जिसके समयमें महमूद गजनवीने दो बार सन् १०१९ और १०२२ में कालंजरपर आक्रमण किया, किंतु उसे वह लूट न सका। विद्याधरने उसे प्रचुर धन देकर प्रसन्न कर लौटा दिया। विद्याधरने कलचुरि नरेश कोकल्ल (द्वि.) और परमार भोजके विरुद्ध विजय प्राप्त की। विद्याधरके पुत्र विजयपालने कलचुरि गांगेयदेवपर विजय पायी। विजयपालका पुत्र देवेंद्रवर्मा सन् १०५० ई० में सिंहासनपर था, अतः इससे पूर्व विजयपालका राज्य समाप्त हो चुका था। देवेंद्रवर्माके लघुभ्राता कीर्तिवर्माको पराजित कर सन् १०५१ के कुछ पश्चात् कलचुरि कर्ण (राज्यारोहण सन् १०३४ और १०४२ के बीच) ने बुन्देलखंडको अपने अधीन कर लिया था। किंतु पश्चात् कीर्तिवर्माने कर्णदेवको परास्त किया। ऐसा उसी विजयकी स्मृतिमें लिखे गये प्रबोधचन्द्रोदय नामक संस्कृत नाटक तथा उस कालके कुछ शिलालेखोंसे ज्ञात होता है। संभव है ये कीर्तिवर्मा तथा उपर्युल्लिखित भुवनपाल, भूमिपाल व भूपाल एक ही हों। उस अवस्थामें जिस कर्णकी पराजयका उल्लेख दूसरे शिलालेखमें पाया जाता है वह कलचुरि

कर्णदेव ही ठहरेगा, और चूंकि विजयपाल, कीर्तिवर्मा (भुवनपाल) और कर्ण, इन तीनों राजाओंका अस्तित्व सन् १०४० और १०५१के बीच व आसपास पाया जाता है, अतएव यही काल अर्थात् ग्यारहवीं शतीका मध्यभाग करकंडचरिउकी रचनाका अनुमान किया जा सकता है। ग्रंथकी उत्थानिकामें सिद्धसेन, समन्तभद्र, अकलंक, जयदेव, स्वयंभू और पुष्पदंतका उल्लेख किया गया है। पुष्पदंतने अपना अपभ्रंश महापुराण सन् ९६५ ईस्वीमें समाप्त किया था। अतएव यह करकंडचरिउकी रचनाकी पूर्वावधि सिद्ध है। उसकी प्राचीन हस्तलिखित प्रतियोंमें प्राचीनतम कालनिर्देश सन् १५०२ का है। इन सीमाओंसे भी पूर्वोक्त रचनाकालका समर्थन होता है।

ग्रंथकारका चन्द्रर्षि गोत्र

मुनि कनकामरने अपनेको चन्द्र ऋषि गोत्रीय कहा है। पट्टावलियोंके अनुसार सुहस्तिके शिष्य सुस्थित और सुप्रतिबुद्ध-द्वारा स्थापित कोटिक गणकी वैरिशाखाका एक कुल चन्द्र नामक हुआ। "श्रीवज्रशाखायुरिवज्रसेनानागेन्द्रचन्द्रादिकुलप्रसूतिः" (पट्टावली-समुच्चय, पृ० २६)। चन्द्रकुलके भी अनेक अन्वय और गच्छ हुए। उदाहरणार्थ, उत्तराध्ययनकी शिष्यहिता नामक वृत्तिके कर्ता शान्तिसूरि चन्द्रकुलके काठकरान्वयसे उत्पन्न थारापद्र गच्छके थे। उत्तराध्ययनकी सुखबोधा टीकाके कर्ता देवेन्द्र गणी भी चन्द्रकुलके थे। किंतु ये सब श्वेताम्बर परम्पराके भेदप्रभेद हैं जिनकी मान्यता दिगम्बर परम्परामें नहीं पायी जाती। और कनकामर उनके स्पष्ट कथनानुसार ही दिगम्बर मुनि थे। अनुमानतः कनकामरका चन्द्रर्षि गोत्र वही देशीगणकी 'चन्द्रकराचार्याम्नाय' है जिसका उल्लेख बहुरिबंद (तहसील सीहोरा, जिला जबलपुर, मध्यप्रदेश) के शान्तिनाथ तीर्थंकरके पादपीठपर उत्कीर्ण लेखमें आया है। उस मूर्तिके प्रतिष्ठाचार्य श्रीमत् सुभद्र इसी आम्नायके कहे गये हैं। इस लेखमें गयाकर्णदेवका उल्लेख है जो निश्चयतः कलचुरि नरेश कर्णके पिताका ही नाम है। (कार्पस इंस्क्रि० इण्डी० भाग ४, १९५५, पृ० ३१०-११) इस सम्बन्धमें यह भी ध्यान देने योग्य है कि स्वयं चन्देलनरेशोंने अपनेको चन्द्रात्रेय ऋषिवंशीय कहा है। उदाहरणार्थ यशोवर्मन्के खजुराहो शिलालेखमें कहा गया है,

तस्माद् विश्वसृजः पुराणपुरुषादाम्नायधाम्नः कवे-
र्येऽभूवन्मुनयः पवित्रचरिताः पूर्वे मरीच्यादयः।
तत्रात्रिः सुषुवे निरन्तरतपस्तीव्रप्रभावं सुतं
चन्द्रात्रेयमकृत्रिमोज्वलतरज्ञानप्रदीपं मुनिम् ॥
अस्ति स्वस्तिविधायिनः स जगतां निश्शेषविद्याविद-
स्तस्यात्मोपनताखिलश्रुतिनिधेर्वंशः प्रशंसास्पदम्।

यही बात यशोवर्मन्के पुत्र धङ्गके खजुराहो शिलालेखमें भी कही गयी है। उस लेखमें एक और बात ध्यान देने योग्य है। आदिके तृतीय श्लोकमें ही शिवके उस परिहासकी मंगल-कामना की गयी है जिसमें शिव-पार्वती संवाद-द्वारा शिव और दिगम्बर क्षपणकमें एकत्वका संकेत किया गया है। श्लोक है,

कस्त्वं द्वारि दिगम्बरः क्षपणकः कस्मादकस्मादहो
बाले शूलधरो पिनाकधृग्विधि बहिस्त्वदाढी ननु।
मां जानीहि महेश्वरं स्फुटमिदं वस्त्रेऽप्यभावादिति
प्रेयस्या परिहासतो विहसितं शंभोः शुभायास्तु वः।

इस परिहासोक्तिके द्वारा समस्त चन्देलवंशी नरेशों और विशेषतः धङ्गके उस उदार धार्मिक दृष्टिकोणको स्पष्ट किया गया प्रतीत होता है जिसके कारण ही खजुराहोके जैन, शैव और वैष्णव मंदिरोंका प्रायः एक-सा वैभवपूर्ण निर्माण कराया जा सका। इसी सम्बन्धमें खजुराहोके पार्श्वनाथ मंदिरके द्वारका वह लेख भी उल्लेखनीय है जिसमें धङ्गराज-द्वारा सम्मानित भव्य पाहिल द्वारा मंदिरको दानकी गयी सात वाटिकाओंका

निर्देश है—पाहिलवाटिका, चन्द्रवाटिका, लघुचन्द्रवाटिका, शंकरवाटिका, पंचाइतलवाटिका, आम्रवाटिका, और धंगवाटिका। (जै० शि० ले० संग्रह, भाग २, लेख नं० १४७, पृ० १९०)। इन वाटिकाओंमें दाताने अपने नामके अतिरिक्त अपने धर्मरक्षक नरेश, उनके विशेष इष्टदेव शिव तथा उनके चन्द्रात्रेय वंश एवं चन्द्रकराचार्याम्नायकी स्मृति चिरस्थायी बनानेका प्रयत्न किया प्रतीत होता है। आश्चर्य नहीं, जो यह चन्द्रकराचार्याम्नाय चन्देलवंशी राजकुलमें-से ही हुए किसी जैन मुनिने स्थापित की हो। स्वयं कनकामर भी इस राजवंशके रहे हों, तो आश्चर्य नहीं। चंदेलोंके क्षत्रियमा ने जाने एवं कनकामर-द्वारा अपनेको ब्राह्मण कहे जानेसे उक्त बातमें कोई विरोध उत्पन्न नहीं होता। चन्देल अपनेको अत्रि व चन्द्रात्रेयकी सन्तान तो मानते ही हैं। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, चन्देलवंशी नरेश जेज्जाकके नामसे ही बुन्देलखंड जेजकभुक्ति कहलाया और यहाँके जुझौतिया ब्राह्मण आज तक भी प्रसिद्ध हैं। केवल राजवंशी होनेसे चन्देल राजपूत जातियोंमें गिने जाने लगे हैं।

ग्रंथकारकी गुरु-परम्परा

ग्रंथके प्रारंभ (१, २, १) में कविने सरस्वतीके अतिरिक्त पंडित मंगलदेवके चरणोंका स्मरण किया है। तथा अन्तिम प्रशस्ति (१०, २८, ३) में अपनेको बुध मंगलदेवका शिष्य कहा है। इससे उनके गुरुका नाम मंगलदेव स्पष्ट है। इन मंगलदेवका तथा उनके गण-गच्छ आदिका अन्य कोई परिचय ग्रंथमें नहीं पाया जाता। किंतु रत्नाकर या धर्मरत्नाकर नामका एक संस्कृत ग्रंथ मिलता है जिसमें उसके कर्ताका नाम पंडित मंगल दिया गया है। इस ग्रंथकी एक प्रति बलात्कार जैन भण्डार, कारंजामें (केटेलाग आफ संस्कृत एण्ड प्राकृत मैनुस्क्रिप्टस इन सी. पी. एण्ड बरार, क्रमांक ७८२९) तथा दूसरी प्रति शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दिर पाटोदी, जयपुरमें है (राजस्थानके जैन शास्त्र भण्डारोंकी ग्रंथ सूची क्र० ७७८)। इस जयपुरकी प्रतिमें ग्रंथका अंतिम पुष्पिका-वाक्य है, **"सं० १६८० वर्षे काष्ठासंघे नन्दतटग्रामे भट्टारक श्रीभूषणशिष्य पंडित मंगलकृत शास्त्ररत्नाकर नाम शास्त्र सम्पूर्णं।"** इसपर-से ऐसा प्रतीत होता है जैसे सं० १६८० ग्रंथकी रचनाका काल हो। किंतु यथार्थतः यह कालनिर्देश उक्त प्रतिके लेखनका ही हो सकता है, क्योंकि कारंजा शास्त्रभण्डारकी प्रतिमें उसका लेखनकाल १६६७ अंकित है। काष्ठासंघ और नन्दितट ग्रामका प्राचीनतम उल्लेख देवसेनकृत दर्शनसार (गा० ३८) में प्राप्त होता है, जहाँ विक्रमराजकी मृत्युसे अर्थात् विक्रम संवत्के ७५३ वर्षमें नन्दितट ग्राममें काष्ठासंघकी उत्पत्ति कही गयी है। यदि कनकामरके कालके समीप इस संघके श्रीभूषण और उनके शिष्य मंगलदेवका अस्तित्व सिद्ध हो तो वे ही प्रस्तुत ग्रंथकर्ताके गुरु माने जा सकते हैं। किन्तु वर्तमानमें उक्त धर्मरत्नाकरकी पुष्पिकाके अतिरिक्त अन्य कोई साधक-बाधक प्रमाण उपलब्ध नहीं है। हाँ, कुछ संशय उत्पन्न करनेवाली यह बात अवश्य है कि कविने उक्त गण-गच्छका उल्लेख न करके अपनेको चन्द्रर्षि गोत्रीय कहा है।

ग्रंथका विषय

इस ग्रंथमें करकंडु (अपभ्रंश-करकंड) महाराजका चरित्र दश संधियोंमें वर्णन किया गया है। संक्षेपमें यह कथा इस प्रकार है :

अंगदेशकी चम्पापुरीमें धाडीवाहन राजा राज्य करते थे। एकबार वे कुसुमपुरको गये और वहाँ पद्मावती नामकी एक युवतीको देखकर उसपर मोहित हो गये। युवतीका संरक्षक एक माली था जिससे बातचीत करने आदिसे पता लगा कि वह युवती यथार्थमें कौशाम्बीके राजा वसुपालकी पुत्री थी। जन्म-समयके अपशकुनके कारण पिताने उसे जमना नदीमें बहा दिया था। राजपुत्री जानकर धाडीवाहनने उसका पाणिग्रहण कर लिया और उसे चम्पापुरी ले आये। कुछ काल पश्चात् वह गर्भवती हुई और उसे यह दोहला उत्पन्न हुआ कि मन्द-मन्द बरसातमें, मैं नररूप धारण करके, अपने पतिके साथ, एक हाथीपर सवार होकर, नगर-

का परिभ्रमण करूँ। ऐसा ही प्रबन्ध किया गया। किन्तु दुष्ट हाथी राजा-रानीको लेकर जंगलकी ओर भाग निकला। रानीने समझा-बुझाकर राजाको एक वृक्षकी डाली पकड़कर अपने प्राण बचानेपर राजी कर लिया और आप उस हाथीपर सवार रहकर जंगलमें पहुँचीं। वह हाथी एक जलाशयमें घुसा। उसी समय रानीने कूदकर वनमें प्रवेश किया। उनके प्रवेशसे वह सूखा हुआ वन हरा-भरा हो गया। इस खबरको सुनकर वनमाली वहाँ आया और रानीको बहिन मानकर अपने घर लिवा ले गया। कुछ दिनोंके बाद ही मालिनको पद्मावतीके रूपपर ईर्ष्या उत्पन्न हो गयी और किसी बहानेसे उसने उसे अपने घरसे निकाल दिया। निराश होकर रानी श्मशान भूमिमें आयी और वहीं उसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ। (१)

रानीके उस पुत्रको एक मातंग [चाण्डाल] उठाकर ले चला। रानीके विरोध करनेपर उसने कहा कि वह यथार्थमें एक विद्याधर था। एक मुनिकी शापसे मातंग हो गया। उस शापका प्रतीकार मुनिने इस प्रकारसे किया था कि जब करकंडुका दन्तिपुरके श्मशानमें जन्म हो तब उसे बालकको ले जाकर उसका लालन-पालन करना चाहिए। बड़ा होनेपर जब उसे उस नगरका राज्य मिल जावेगा तब वह मातंग पुनः विद्याधर हो जावेगा। उसके इस प्रकार कहनेपर तथा बालकका यथोचित रूपसे लालन-पालन करनेकी प्रतिज्ञा करनेपर रानीने अपना पुत्र उसे सौंप दिया। उस मातंगने बालकको अच्छी तरह रक्खा और स्वयं खूब पढ़ाया-लिखाया। उसके हाथमें कण्डू (सूखी खुजली) होनेसे उसका नाम करकंडु पड़ गया। जब वह युवावस्थाको प्राप्त हुआ तब एक दिन दन्तीपुरके राजाका परलोकवास हो गया। उसके कोई पुत्र नहीं था इससे राजमंत्रियोंने यह व्यवस्था की कि एक हाथीको एक भरा घड़ा दिया जावे, और उससे वह जिस व्यक्तिका अभिषेक कर दे वही राजा बना लिया जाय। इस विधानमें करकंडुका भाग्य चमक उठा। किन्तु उसे मातंग-पुत्र जानकर मंत्री और नगर-निवासी अपना राजा स्वीकार करनेमें हिचकिचाये। इसी समय उस मातंगको अपनी विद्याधर-ऋद्धि प्राप्त हो गयी और उसने सबका समाधान करके करकंडुको राजा बनवा दिया। (२)

कुछ समय पश्चात् ही करकंडुका विवाह गिरिनगरकी राजकुमारी मदनावलीसे हो गया। एक बार उसके दरबारमें चम्पाके राजाका दूत आया जिसने उससे चम्पा नरेशका आधिपत्य स्वीकार करनेकी प्रेरणा की। इससे करकंडुको भारी क्रोध उत्पन्न हुआ। उसने तत्काल ही चम्पापर चढ़ाई कर दी। घोर युद्ध हुआ, अन्तमें पद्मावतीने रणभूमिमें उपस्थित होकर पिता-पुत्रका सम्मेलन करा दिया। धाडीवाहन पुत्ररत्नको पाकर बहुत हर्षित हुआ। उसने चम्पाका राजपाट भी करकण्डुको सौंप, वैराग्य धारण कर लिया। (३)

अपने विस्तीर्ण राज्यको पूरा जमाकर करकंडुने एक बार मन्त्रीसे पूछा, 'हे मंत्री ! क्या कोई ऐसा राजा है जो अभी भी मुझे मस्तक न नमाता हो' ? मन्त्रीने उत्तर दिया, महाराज ! और तो सब राजे आपकी अधीनता स्वीकार करते हैं, परंतु द्रविड देशके चोल, चेर और पाण्डय नरेश आपको नहीं मानते। राजाने उनके पास दूत भेजा जिसको उन्होंने यह कहकर विमुख कर दिया कि हम जिन भगवान्को छोड़ और किसीको भी सिर नहीं झुका सकते। यह उत्तर पाकर करकंडुने यह प्रण किया कि यदि मैं इन राजाओंके मस्तकपर अपना पैर न रखूँ तो सब राजपाटका त्याग कर दूँ। उसने तुरंत ही उनपर चढ़ाई कर दी। मार्गमें वह तेरापुर नगरमें पहुँचा। वहाँके राजा 'शिव' ने आकर उससे भेंट की और बताया कि वहाँसे पास ही एक पहाड़ीके चढ़ावपर एक गुफा है, तथा उसी पहाड़ीके ऊपर एक बड़ी भारी वामी है जिसकी पूजा प्रतिदिन एक हाथी किया करता है। यह सुनकर करकंडु शिवराजाके साथ उस पहाड़ीपर गया। उसने गुफामें श्री पार्श्वनाथ भगवान्का दर्शन किया और ऊपर चढ़कर उस वामीको भी देखा। उनके समक्ष ही हाथीने आकर और पासके ही एक तालाबसे कमल तोड़कर उस वामीकी पूजा की। करकंडुने यह जानकर कि अवश्य वहाँ कोई देवमूर्ति होगी, उस वामीको खुदवाया। उनका अनुमान यथार्थ निकला। वहाँ पार्श्वनाथ भगवान्की मूर्ति निकली, जिसे वे बड़ी भक्तिसे उसी गुफामें ले आये। इस बार करकंडुने पुरानी प्रतिमाका अच्छी

तरह अवलोकन किया। सिंहासनपर उन्हें एक गाँठ-सी दिखी जो शोभाको बिगाड़ रही थी। एक पुराने शिल्पकारसे पूछनेपर उसने कहा कि जब वह गुफा बनायी गयी थी तब वहाँ एक जलवाहिनी निकल पड़ी थी। उसे रोकनेके लिए ही वह गाँठ दी गयी है। यह सुनकर करकंडुको उस जलवाहिनीके दर्शन करनेका कौतुक उत्पन्न हुआ और उस शिल्पकारके बहुत रोकनेपर भी उन्होंने उस गाँठको तुड़वा डाला। गाँठके टूटते ही वहां एक भयंकर जलप्रवाह निकल पड़ा जिसे रोकना असम्भव हो गया। सारी गुफा जलसे भर गयी। यह देखकर करकंडुको अपने कियेपर पश्चात्ताप होने लगा। निदान एक विद्याधरने आकर उसका सम्बोधन किया, उस प्रवाहको रोकनेका वचन दिया तथा उस गुफाके बननेका इतिहास भी कह सुनाया। (४)

विद्याधरने कहा कि एक समय दक्षिण विजयार्धके रथनूपुर नगरमें नील और महानील नामके दो विद्याधर भाई राज्य करते थे। किन्तु शत्रुसे परास्त होकर वे वहांसे भाग निकले और तेरापुरमें आकर रहे। धीरे-धीरे उन्होंने वहाँ राज्य स्थापित कर लिया। एक मुनिके उपदेशसे उन्होंने जैनधर्म ग्रहण कर लिया और वह गुफा-मंदिर बनवाया। इसी समय दूसरे दो विद्याधर भ्राता लंकाकी तरफ यात्राको जा रहे थे। मलयदेशके पूदी पर्वतपर उन्होंने एक रावणके वंशज-द्वारा बनवाये हुए जिनमंदिरमें एक सुन्दर जिनमूर्ति देखी। उन्होंने विचार किया कि ऐसी मूर्ति हम अपने यहां बनवावेंगे, इस हेतु वे उस मूर्तिको उठा कर ले चले। तेरापुर पहुंचनेपर वे उस मूर्तिको पहाड़ीपर रखकर जिनमंदिरकी वन्दनाको गये। लौटकर आनेपर जब वे उस मूर्तिको उठाने लगे तब वह नहीं उठी। निदान एक मुनिके उपदेशसे उन्होंने उसे वहीं छोड़ा और वैराग्य धारण कर लिया। इनमें-से एक भाई तो शुद्ध तपस्या करके स्वर्गको गया और दूसरा मायाचारीके कारण मरकर हाथी हुआ। स्वर्गवासी भाई अवधिज्ञानसे अपने भाईकी दुर्गतिको जान कर वहां आया और उसे जातिस्मरण कराया जिसके कारण वह उस वामीकी मूर्तिको पूजने लगा। ये समाचार सुनकर विद्याधर-ने करकंडुको एक और गुफा बनवानेकी सलाह दी। करकंडुने वहां दो गुफायें और बनवायीं। इसके पश्चात् एक बड़े दुःखकी घटना हुई। एक विद्याधर, हाथीका रूप धरकर, आया और करकंडुको भुलाकर मदनावली-को हर ले गया। करकंडु शोकमें बहुत ही विह्वल हुए, किन्तु एक पूर्व जन्मके संयोगी विद्याधरके समझाने, तथा पुनः संयोगका आश्वासन देने व नरवाहन दत्तका आख्यान सुनानेपर समाधान हुए और आगे बढ़े। (५-६)

करकंडु सिंहल द्वीप पहुंचे और वहांकी राजपुत्री रतिवेगाका पाणिग्रहण किया। उसके साथ जब वे जलमार्गसे लौट रहे थे तब एक भीम-काय मच्छने उनकी नौकापर धावा किया। उसे मारनेके लिए वह शस्त्र लेकर और मल्ल-गांठ बांधकर समुद्रमें कूद पड़ा। मच्छको तो उसने मार डाला, पर वह लौटकर नावपर न आ सका। उसे एक विद्याधरपुत्री हर ले गयी। रतिवेगाके शोकका पारावार न रहा। मंत्री झटपट बेड़ेको किनारेपर लाया। रतिवेगाने पूजापाठ प्रारम्भ किया जिससे पद्मावती देवीने प्रकट होकर उसे आश्वासन दिया। (७)

देवीने अरिदमनका आख्यान सुनाया। रतिवेगाके दिन वहींपर धर्म-कर्ममें बीतने लगे। उधर करकंडु-को वह विद्याधरी अपने घर ले गयी और अपने पिताकी आज्ञा लेकर उसने उन्हे अपना पति बना लिया। वहांकी ऋद्धिका उपभोग करके अपनी नवल वधूसहित करकंडु पुनः रतिवेगासे आ मिले। अब उन्होंने चोल, चेर और पाण्ड्य नरेशोंकी सम्मिलित सेनाका मुकाबला किया और उन्हें हराकर अपना प्रण पूरा किया। अपना पैर उनके मस्तकपर रखते समय राजाको उनके मुकुटोंपर जिन प्रतिमाके दर्शन हुए। यह देखकर राजाको भारी पश्चात्ताप हुआ। उन्होंने उन्हें पुनः राज्य देना चाहा, पर वे स्वाभिमानी द्रविडाधिपति यह कहकर तपस्याको चले गये कि अब हमारे पुत्र-पौत्रादि ही आपकी सेवा करेंगे। वहांसे लौटते हुए करकंडु पुनः तेरापुर आये। यहां उसी कुटिल विद्याधरने पश्चात्तापपूर्वक मदनावलीको लाकर सौंप दी। वे फिर चम्पा-नगरीको लौट आये और वहां राज्य-सुख भोगने लगे। (८)

एक दिन वनमालीने आकर खबर दी कि नगरके उपवनमें शीलगुप्त मुनिराजका शुभागमन हुआ

है। राजाने नगरमें भेरी पिटवायी और भक्तिभावसहित, पुरजनोंके साथ, दर्शनको प्रस्थान किया। मार्गमें उन्होंने एक पुत्रशोकसे व्याकुल, हाहाकारमें मग्न अबलाको देखा जिससे उनके चित्तमें संसारकी अनित्यता, जीवनकी असारता आदि भावनाएँ उठने लगीं। मुनिके पास पहुँचकर उन्होंने धर्मोपदेश श्रवण किया जिससे उनके चित्तमें वैराग्य उत्पन्न होने लगा। (९) करकंडुने फिर मुनिराजसे तीन प्रश्न किये, उनके सुंदर शरीर होनेपर भी उनके हाथमें कण्डू क्यों हुई, उनके माता पितामें अतिस्नेह होनेपर भी उनका वियोग क्यों हुआ, तथा उनकी प्रिया मदनावलीको उस खेचरने क्यों हरा? मुनिराजने इन प्रश्नोंके उत्तर इस प्रकार दिये : पूर्वजन्ममें करकंडु एक सेठके यहां धनदत्त नामक ग्वाल था। एक दिन यह ग्वाल भैंसे चराने गया था। उसे एक सरोवरमें बड़ा सुंदर कमल दिखा, जिसे उसने तोड़ लिया। तब एक देवने आकर उससे कहा कि तूने यह बड़े साहसका काम कर डाला। अब तेरी खैर इसमें है कि तू इसे जो त्रिभुवनमें बड़ा हो उसे चढ़ा देना, नहीं तो मैं तुझे मार डालूंगा। ग्वालने विचारा कि मेरा स्वामी ही सब संसारमें बड़ा है, उसकी अच्छे-अच्छे मनुष्य सेवा करते हैं। इससे उसे ही यह पुष्प चढ़ाना चाहिए। यह विचारकर वह सेठके सम्मुख उपस्थित हुआ और अपना मन्तव्य प्रकट किया। सेठने कहा निश्चयतः मुझसे बड़ा राजा है, इसलिए तूँ यह फूल राजाको चढ़ा। जब राजाके समीप वह उपस्थित हुआ तब राजाने मुनिराजको अपनेसे बड़ा बताकर उसे उनके पास भेजा और मुनिराजने जिनेन्द्र भगवान्‌के। अन्ततः उसने उस फूलसे भगवान्‌की पूजा की जिसके फलस्वरूप उसे करकंडुका उत्तम स्वरूप और अतुल वैभव प्राप्त हुआ, और क्योंकि उसने कीचड़से लिपटे हुए हाथसे वह कमल चढ़ाया, इससे उसके हाथमें कण्डू हुई।

दूसरे प्रश्नके उत्तरमें मुनिराजने कहा कि पूर्व जन्ममें पद्मावती श्रावस्ती नगरके एक सेठकी स्त्री थी। उसने एक ब्राह्मण युवकके साथ दुराचार किया जिससे उसके पतिने विरक्त होकर तपस्या की और वह मरकर चम्पाका धाडीवाहन राजा हुआ। वह ब्राह्मण मरकर हाथी हुआ। और सेठानी मरकर पुनः स्त्री हुई, उसने पतिवियोगका दुःख भोगा, किन्तु अपनी एक पुत्रीके प्रयत्नसे अन्तमें धर्मध्यानसे मरकर वह कौशाम्बीके वसुपाल राजाकी पुत्री हुई, अशुभ जन्मके कारण जमनामें बहायी गयी, पूर्वकर्मानुबंधसे धाडीवाहन-द्वारा ब्याही गयी, उस हाथी-द्वारा हरण की गयी और अन्ततः करकंडुकी जननी हुई।

तीसरे प्रश्नका उत्तर मुनिराजने इस प्रकार दिया कि पूर्व जन्ममें करकंडुके पास एक सुआ था जिसे वे एक पिंजड़ेमें बड़े प्यारसे रखते थे। एक दिन उस सुआपर एक सर्पने धावा किया जिससे करकंडुने उसकी रक्षा की और उसे नवकार मंत्र दिया। उस सर्पको भी मरते समय नवकार मंत्रका सुयोग मिल गया जिसके प्रभावसे वह एक विद्याधर हुआ और पूर्व वैरानुबन्धके कारण उसने मदनावलीका हरण किया।

यह वृत्तान्त सुनकर करकंडुका वैराग्य और भी बढ़ गया और वे अपने पुत्र वसुपालको राज्य देकर मुनि हो गये। उनकी माता पद्मावती भी अर्जिका हो गयीं और उनकी रानियोंने भी उन्हींका अनुकरण किया। करकंडुने घोर तपस्या करके केवलज्ञान और मोक्ष प्राप्त किया। (१०)

करकंडु कथाकी प्राचीन परम्परा

बौद्धसाहित्यके कुम्भकार जातक (क्र० ४०८) में करंडु राजाकी कथा इस प्रकार है। जब बनारसमें ब्रह्मदत्तका राज्य था तब एक बार बोधिसत्वने वहीं कुम्भारके घरमें जन्म लिया। उसी समय कलिंग राष्ट्रके दन्तिपुर नगरके राजा करण्डु बड़े परिवारसहित उद्यानको गये। वहां मधुर फलोंसे भरे हुए आम्र वृक्षको देखकर उन्होंने हाथीपर बैठे-बैठे ही एक आम्रगुच्छको तोड़ा और उद्यानकी एक शिलापर बैठकर कुछ फल अपने विशेष परिचारकोंको दिये और कुछ स्वयं खाये। इसके पश्चात् अमात्यों और गृहस्थोंने उस वृक्षके समस्त कच्चे पक्के फल तोड़कर खा लिये। सायंकाल लौटते

समय राजाने उस आम्रवृक्षको सर्वथा शोभाहीन देखा, तथा दूसरे एक फलहीन वृक्षको जैसाका तैसा हराभरा देखा। राजाने विचार किया गृहस्थ धर्म उस फलित वृक्षके समान है, जिसकी दुर्गति होती है, किन्तु प्रव्रज्या उस फलहीन वृक्षके समान है, जिसे कहींसे किसी अनिष्टका भय नहीं। मैं भी इसीके सदृश बनूँ। ऐसा विचारकर उन्होंने अपना राज-पाट व गृहमार्ग त्याग दिया और श्रमण वेष धारण कर व प्रत्येक बुद्ध पद प्राप्त कर उत्तर हिमवन्तकी नन्दमूल गुफाको चले गये। जातकमें करण्डूके पाठान्तर करण्डको, करकण्ड व करकण्डको (करकंडको) भी पाये जाते हैं। (देखिये परिशिष्ट १)

जातकमें कलिंगके करण्डूरायके अतिरिक्त गंधारके नग्गजी, विदेहके निमिराज और पाञ्चालके दुम्मुखके भी कथानक हैं, और अन्तमें यह गाथा कही गयी है,

"करण्डु नाम कलिंगानं गंधारानं च नग्गजी।
निमिराजा विदेहानां पंचालानं च दुम्मुखो॥
एते रट्ठानि हित्वान पब्बजिंसु अकिंचना॥"

उक्त जातकका प्रस्तुत ग्रंथकी कथासे इतना ही साम्य है कि कलिंग देशके राजा करकण्डू व करण्डू नाम प्रायः समान हैं और राज्यसे विरक्त होकर प्रव्रज्या धारण करना भी दोनोंमें मेल खाता है। किन्तु कथाकी अन्य बातोंमें व प्रव्रज्याके निमित्तमें कोई साम्य नहीं। जातककी कथा अति संक्षिप्त है।

जैनपरम्परामें बौद्ध जातककी पूर्वोक्त गाथाका प्राचीनतम रूपान्तर उत्तराध्ययन सूत्रके संजइज्जं नामक अठारहवें अध्ययनमें इस प्रकार पाया जाता है,

"करकंडू कलिंगेसु पंचालेसु य दुम्मुहो।
नमी राया विदेहेसु गंधारेसु य नग्गई॥
एए नरिंदवसभा निक्खंता जिणसासणे।
पुत्ते रज्जे ठवेऊणं सामण्णे पज्जुवट्ठिया॥ ४६-४७॥"

अर्थात् कलिंग देशमें करकंडु राजा हुआ, पंचाल देशमें दुर्मुख, बिदेहमें नमि और गंधारमें नग्गई। ये श्रेष्ठ नरेन्द्र अपने-अपने पुत्रोंको राजसिंहासनपर स्थापित करके जैन धर्मानुसार निष्क्रमण कर श्रमण हुए।

करकंडुकी कथा उत्तराध्ययनके टीकाकार देवेन्द्र गणीने अपनी सुखबोधा टीकामें इस प्रकार कही है। चम्पा नगरीमें दधिवाहन राजा हुए। चेटक राजाकी पुत्री पद्मावती उनकी रानी थी। उसे दोहला हुआ कि मैं राजाके वेषमें हाथीपर बैठकर बाग-बगीचोंमें विहार करूँ और स्वयं राजा मेरे ऊपर छत्र धारण करे। राजाने ऐसा ही किया। वर्षाकालका प्रारम्भ था। शीतल सौंधी मिट्टीकी गंध पाकर हाथीको वनका स्मरण हो आया और वह भाग निकला। परिचारक उसका पीछा न कर सके। अटवीमें प्रविष्ट होनेपर आगे एक वटवृक्षको देख राजाने रानीसे कहा कि जब हाथी वटके नीचेसे निकले तब वृक्षकी शाखा पकड़कर रह जाना। कुशल राजाने वैसा ही किया; किन्तु बेचारी रानीसे वह न बन सका। राजा उदासमन किंकर्तव्यविमूढ हुआ चम्पा नगरीमें लौट आया। उधर निर्जन वनमें आगे बढ़कर हाथी एक तालाबमें प्रविष्ट हो क्रीड़ा करने लगा। तब रानी धीरेसे उतरकर तालाबसे निकल आयी। चारों ओर वन, और उसे दिशाओंका भी ज्ञान नहीं। वह रोने लगी और फिर अपनेको सम्हालकर धर्मचिन्तन करने लगी। वह एक दिशामें चल पड़ी। दूर जाकर उसे एक तपस्वी दिखाई दिया। वह चेटक राजाका कोई निजी पुरुष था। उसने रानीको धैर्य बँधाया, वनफलोंका आहार कराया और दन्तपुरके समीप तक पहुँचा दिया। नगरमें जाकर उसने साध्वियोंके आश्रममें प्रव्रज्या ग्रहण कर ली, उसने उन्हें अपने गर्भकी बात न बतलायी। गुप्त रूपसे उसने प्रसव किया और शिशुको कम्बलमें लपेटकर नामकी मुद्रा लगाकर श्मशानमें डाल दिया। श्मशानके रक्षकने उसे पाकर अपनी भार्याको दे दिया और पुत्रका नाम अपकीर्ण (प्रक्षिप्त) रखा। उसकी माताने उस चाण्डालीसे मैत्री कर ली। जिन आर्यिकाओंको गर्भकी बात ज्ञात थी उनके पूछनेपर उसने कह दिया प्रसव मृतक हुआ

था। इससे फेंक दिया। उधर बालक बड़ा हुआ। वह खेलमें अन्य बालकोंसे कहता मैं तुम्हारा राजा हूँ; मुझे कर दो। उसे सूखी खुजली हो गयी। वह बालसखाओंसे कहता मुझे खुजलाओ। इससे उसका नाम करकंडु पड़ गया। उसे अपनी उस आर्यिका मातासे स्नेह था। वह भी मोदक व अन्य जो भी पदार्थ भिक्षामें मिल जांय लाकर उसे खिलाती थी।

बालक और बढ़ा। वह श्मशान रखाने लगा। एक बार वहाँ दो मुनि आये। वहाँ झाड़ीमें एक बांसके दंडको देखकर दंडलक्षणके ज्ञायक मुनिने कहा कि जब यह बांस चार अंगुल और बढ़ जाय तब जो कोई इसे ले लेगा वह राजा होगा। यह बात उस मातंग बालकने सुन ली और एक द्विजने भी। द्विजने चार अंगुल भूमिके नीचे खोदकर उस बांसको काट लिया। किन्तु उस बालकने उससे वह छीन लिया। द्विजने न्यायालयमें बात उठायी। बालकने वहाँ कहा–बांस मेरे श्मशानका है, इसलिए मेरा है। न्यायाधीशके पूछनेपर उसने यह भी कहा कि मैं इस बांसके प्रभावसे राजा बनूँगा। न्यायाधीशने हँसकर निर्णय दिया कि अच्छा जब तुम राजा बन जाओ तब इस ब्राह्मणको एक गांव दे देना। बालकने स्वीकार किया। द्विजने अन्य द्विजोंकी सहायतासे उसे मारकर बांस छीननेका विचार किया। यह बात सुनकर मातंग अपनी स्त्री और उस बालकको लेकर कंचनपुर[1] भाग गया। वहाँका राजा बिना पुत्रके मर गया। अश्व छोड़ा गया जो नगरके बाहर सोते हुए करकंडुके पास आकर उसकी प्रदक्षिणा करके वहीं खड़ा हो गया। नागरिकोंने हर्ष मनाया और आनन्दके वादित्र बजाये। करकंडु जम्भाई लेता हुआ उठा, और विश्वस्त होकर अश्वपर आरूढ़ हो नगरमें प्रविष्ट हुआ। किन्तु उसे मातंग कहकर द्विजोंने नगर-प्रवेश नहीं करने दिया। तब करकंडुने वह दंडरत्न हाथमें लिया। वह जलने लगा जिससे वे भयभीत हो गये। तब करकंडुने वाटधानक मातंगोंको द्विज बना दिया। लोगोंने कहा—'दधिवाहनके पुत्र करकंडुने वाटधानक निवासी चांडालोंको ब्राह्मण बना दिया। उन्होंने उसका गृहनाम अवकीर्णक छोड़कर चेटकों-द्वारा दिया नाम करकंडु प्रतिष्ठित किया।'

अब उसके पास वह ब्राह्मण आया और उसने मांग की मुझे एक ग्राम दो। करकंडुने कहा जो तुझे अच्छा लगे ले ले। उसने कहा मेरा घर चम्पामें है, अतः उसी प्रदेशमें दीजिए। तब करकंडुने दधिवाहनके नाम एक लेख दिया कि इस ब्राह्मणको एक ग्राम दे दीजिए। उसके बदलेमें मैं आप जो ग्राम या नगर चाहें दूँगा। इसपर दधिवाहन रुष्ट हुआ – यह दुष्ट मातंग अपनेको नहीं जानता। दूतने लौटकर यह बात कही। करकंडुको रोष आया। उसने जाकर चम्पाको घेर लिया। युद्ध होने लगा। उसकी साध्वी माताने यह बात सुनी। गणिनीसे पूछकर वह चम्पा आयी और सब वृत्तान्त सुनाकर पिता-पुत्रका मेल कराया। दधिवाहन दोनों राज्य उसे देकर प्रव्रजित हो गये।

करकंडु श्रेष्ठ शासक हुआ। वह बड़ा गोकुलप्रिय था और उसके अनेक गोकुल थे। एक गोवत्स उसे बड़ा प्रिय लगा। आदेश दिया इसकी मांको दुहा न जाय तथा दूसरी गायोंका भी दूध इसे पिलाया जाय। गोपोंने वैसा ही किया। वह बड़ा प्रचण्ड सांड हुआ। राजाने देखा फिर कुछ काल पश्चात् राजाने आकर देखा कि वह महाकाय वृषभ अतिजीर्ण हो गया है जिसे पड़ुए धक्के लगाते हैं। यह देख राजाको विषाद हुआ। वह चिन्तन करने लगा संसारमें सब अनित्य और अस्थिर है। इष्टजनसंगम भी चिरस्थायी नहीं। यह चिन्तन करता हुआ करकंडु प्रत्येक बुद्ध हो गया। उसने पंचमुष्टि केशलोंच किया और देवता द्वारा दिये गये वेषसे लोकमें विहार करने लगा। कहावत चल पड़ी —

श्रेष्ठ, सुजात, सुन्दर सींगोंवाले वृषभको गोकुलमें देख समृद्धि और हानिका विचार कर कलिंगके राजाने धर्मके मर्मको जान लिया।

---

१ यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि बौद्ध व जैन प्राचीन साहित्यमें कलिंगकी राजधानी कहीं दन्तपुर और कहीं कंचनपुर कही गयी है। (Dr. A. C. Mittal : Early History of Orissa P, 25 etc.)

यहां करकंडुकी कथाने बौद्ध जातककी अपेक्षा बहुत विस्तार लिया है। जातकमें तो कलिंगके राजा करकंडुकी हाथीपर बैठकर उद्यान-यात्रा, फलित आम्रवृक्षके दर्शन और फलोंका उपभोग, अन्य पुरुषों द्वारा वृक्षके समस्त फलोंका तोड़ डालना और उस निमित्तसे करकंडुकी संसारसे विरक्ति मात्रका वर्णन है। किन्तु उत्तराध्ययन टीकामें करकंडुके माता-पिता, माताका दोहला, हाथी द्वारा उसका अपहरण। दन्तपुरकी साध्वियों द्वारा आश्रय, श्मशानमें करकंडुका जन्म, वहांके चाण्डाल द्वारा उसका पालन-पोषण, बांसके दंड-सम्बन्धी मुनि द्वारा भविष्यवाणी, द्विजसे तत्संबंधी विवाद, भयसे कंचनपुर पलायन, वहांके राजाका पुत्रहीन मरण व घोड़ेके दिव्य निमित्त द्वारा उसका राज्यारोहण तथा वाटधानक चाण्डालोंको द्विज बनाना, ये सब बातें जातक कथासे नयी हैं। विशेष ध्यान देने योग्य वह निमित्त है जिसे पाकर करकंडु संसारसे विरक्त हुए। जातकमें आम्रवृक्षको इसका निमित्त बतलाया गया है, किन्तु यहाँ वृषभको। इस सम्बन्धमें पूर्वोक्त चारों प्रत्येक बुद्धोंके वैराग्य उत्पादक निमित्तोंकी ओर ध्यान देना आवश्यक है। कुम्भकार जातकमें करकंडुका आम्रवृक्ष, नग्गजिका कंकण, निमिका चील तथा दुर्मुखका वृषभ वैराग्य-निमित्त बतलाया गया है। किन्तु उत्तराध्यन टीकामें निमित्तोंका हेरफेर पाया जाता है। यहां उक्त चारों राजाओंके वैराग्यनिमित्त क्रमशः वृषभ, आम्रवृक्ष, कंकण और इन्द्रध्वज बतलाये गये हैं। इनमें-से तीन निमित्त तो समान हैं किन्तु जातकका चील और उत्तराध्ययन टीकाका इन्द्रध्वज परस्पर सर्वथा भिन्न हैं। निमित्तोंके स्वरूप-वर्णनमें भी बहुत कुछ भिन्नता है। आम्रवृक्षका निमित्त तो प्रायः समान है, किन्तु जातकका कंकण जहाँ पीसनेवालीके हाथमें है, वहां उत्तराध्ययन टीकाका राजाका उपचार करनेवाली रानियोंके हाथमें। जातकमें वृषभ कामुकताके कारण अन्य ईर्ष्यालु वृषभ द्वारा मारा गया, किन्तु उ० टीकामें वह वृद्धत्वके कारण जीर्ण हुआ दिखलाया गया है। इन हेरफेरोंसे जान पड़ता है कि उ० टीकाकी कथाएँ सीधी जातकपर आधारित नहीं हैं। ये कथाएँ सम्भवतः लोकप्रचलित थीं, और धार्मिक उपदेशोंमें उनका दृष्टान्त रूपसे उपयोग किया जाता था। अतएव देश-कालानुसार उनमें घटनाओंका व्यत्यय तथा कथाविस्तार होना स्वाभाविक था।

अब हम प्रस्तुत ग्रन्थके मूल कथानकको देखें।

प्रस्तुत कथानककी पूर्वकथाओंसे तुलना

इस कथानकमें करकंडुकी पूर्वोक्त दोनों कथाओंसे बहुत वैशिष्ट्य और विस्तार पाया जाता है। करकंडुके माता-पिताके नाम यद्यपि वे ही हैं जो उ० टीकामें, किन्तु माताके अन्य परिचयमें बड़ा भेद है। वहाँ पद्मावती चेटकराजाकी पुत्री है, जिससे दधिवाहनका सामान्य रीतिसे विवाह हुआ है; किन्तु यहाँ वह कौशाम्बी नरेशकी पुत्री है जो अपशकुनके कारण जमुनामें बहा दी गयी थी, उसे पाटलीपुत्रके मालीने पाकर पाला-पोषा था, और राजाने अकस्मात् उसके रूपपर मोहित होकर उसे विवाहा था। उसका दोहला यद्यपि दोनों स्थानोंमें समान है, तथापि राजाके वटवृक्षकी डाल पकड़कर उतर जानेकी बात यहाँ रानीने ही सुझायी थी और उसमें स्वयं उतरनेकी कोई योजना नहीं थी। सरोवरमें उतरकर पहले उसके वनमें मालीसे भेंट होने और उसके घर जाकर रहने तथा मालिनके ईर्ष्यावश उसे घरसे निकाल देनेकी बात भी यहाँ नयी है। साध्वी आश्रममें जानेसे पूर्व ही श्मशानमें उसके पुत्रका जन्म हो जाता है, और मातंग उसे पालनेके लिए अपने घर रख लेता है, एवं यथासमय नाना विद्यायें पढ़ाता है। मातंग सामान्य चाण्डाल नहीं है, वह एक विद्याधर है जो उसकी अविनयके कारण मुनिके शापसे मातंग हुआ है और करकंडुकी राज्यप्राप्तिपर उसके शापका अन्त होनेकी अवधि बाँध दी गयी है। मुनि द्वारा लक्षण कहे गये बाँस-दंड यहाँ तीन हैं जिनके ध्वज, अंकुश और छत्रदंड बननेवाले हैं। जिस द्विजने उन्हें लेनेका प्रयत्न किया उसे यहाँ न्यायालयमें जाने व एक ग्राम पानेके निर्णयकी आवश्यकता नहीं पड़ी। उसने सीधे करकंडुसे ही राजा होनेपर उसे मंत्री बनानेका वचन ले लिया था। इस कारण उस मातंग कुटुम्बको अपने प्राण बचाने कंचनपुर नहीं भागना पड़ा। वहीं दन्तीपुरके पुत्रहीन राजाकी मृत्युके पश्चात् घोड़ा नहीं, किन्तु हाथीके दिव्य साधन द्वारा उसे

राज्यकी प्राप्ति हुई। इसीसे द्विजको चम्पाके राज्यमें ग्राम दिलानेके लिए उसे चम्पानरेशको पत्र नहीं लिखना पड़ा। चम्पानरेशने ही दूत द्वारा उसे अधीनता स्वीकार करनेका सन्देश भेजा जिससे कुपित होकर उसने चम्पापर चढ़ाई की। पद्मावतीने आकर युद्ध रोका और पिता-पुत्रका मेल कराया तथा पिता पुत्रको राज्य देकर प्रव्रजित हुआ; यह दोनों कथाओंमें समान है। यह सब वर्णन पूर्व कथानकोंकी अपेक्षा विशेष विस्तार व काव्यकी रीतिसे प्रस्तुत ग्रंथकी प्रथम तीन संधियोंमें ही समाप्त हो गया है। आगे करकंडुकी दक्षिण भारतकी विजय-यात्राका समस्त वृत्तान्त पूर्व कथाकारको सर्वथा अज्ञात है।

कथानकके विविध तत्त्वोंकी खोज

प्रस्तुत रचनामें जो अनेक विशिष्ट वृत्तान्तोंका समावेश किया गया है उनमें कुछ पूर्ववर्ती साहित्यपर आधारित प्रतीत होते हैं। उदाहरणार्थ, यहाँ जो पद्मावतीके यमुनामें प्रवाहित किये जाने और कुसुमपुरके माली द्वारा पाये जानेका वृत्तान्त (१,६,७–१,७,१० तथा १०,१२,६–१०,१३,१२ में) पाया जाता है। वह घटना जिनसेनकृत हरिवंशपुराण (३३, १३-२४) से तुलनीय है जहाँ कहा गया है कि जब जरासन्धने कंससे उसकी जातिके सम्बन्धमें प्रश्न किया तब वह बोला कि मेरी माता मंजोदरी कौशाम्बीमें मदिरा बनानेका काम करती है। राजाने उसे बुलवाया। उसने बतलाया कि "हे प्रभो, मैंने यमुनाके प्रवाहमें इसे इस मंजूषाके साथ पाया था। शिशुको देखकर मुझे दया आ गयी, अतः सहस्रों उपालम्भोंका पात्र बनकर भी मैंने इसका पालन किया। इसकी माता तो यह कांस्य-मंजूषिका है। राजाने उस मंजूषाको लेकर देखा तो उसमें नाम-मुद्रिका थी जिसमें लिखा था कि यह उग्रसेन और पद्मावती-का पुत्र गर्भावस्थासे ही अति उग्र था, अतः अब यह अपने ही कर्मों द्वारा रक्षित होकर जीवित रहे, यही अच्छा है (अर्थात् माता-पिताने त्यागकर उसे यमुनामें प्रवाहित कर दिया)। यह वाचकर राजा जरा-संधने जान लिया कि वह उसका भानजा है, अतः उसने अपनी पुत्री जीवद्यशासे उसका विवाह कर दिया!" यह घटना दोनों स्थलोंपर एक-सी है। भेद केवल यह है कि हरिवंशमें वह कंस विषयक है, तो करकंडचरिउमें पद्मावती विषयक। एवं वहाँ मंजूषिका मथुरासे बहकर कौशाम्बीमें मद्यकारिणी द्वारा पकड़ी गयी, तो यहां वह कौशाम्बीसे प्रवाहित होकर कुसुमपुरमें माली द्वारा प्राप्त की गयी। हरिवंशकी वह घटना वसुदेव हिंडी (पृ० ११९) में भी वर्णित है। जन्मतः अशुभ या निन्द्य शिशुका जलप्रवाह करा देनेकी परम्परा बड़ी प्राचीन है। महाभारत १,१०४,८ आदिमें वर्णित है कि यदुवंशी शूरकी पुत्री पृथाने कन्यावस्थामें ही सूर्यका आह्वान किया जिससे उसे गर्भ हो गया। प्रसव होनेपर उसने पुत्रको जलमें छोड़ दिया। उसे राधाके पति रथकारने ग्रहणकर पुत्र रूपसे पाला पोषा। वही महाप्रतापी कर्ण हुआ।

करकंडचरिउ (१,९,११ आदि) में जो रानी पद्मावतीके दोहलेका वर्णन है उसका पूर्वरूप हमें णायाधम्मकहाओ (१,१३ आदि) में दिखाई देता है जहाँ महाराज श्रेणिककी देवी धारिणीके गर्भके तीसरे मासमें उसे वही दोहला हुआ जिससे वह क्षीण होने लगी। परिचारिकाओंने राजाको खबर दी। वे आये और दोहला पूरा करनेका उन्होंने आश्वासन दिया। राजाने वह कार्य अपने ज्येष्ठ पुत्र अभयकुमारको सौंपा और वह अपने पूर्व मित्र सौधर्मस्वर्गके एक देवकी सहायतासे अकालवृष्टि कराकर रानीकी इच्छापूर्ति करानेमें सफल हुआ। रानीने राजासहित सजधजसे हाथीपर बैठकर मन्द-मन्द जलवृष्टिके बीच राजगृह नगरका परिभ्रमण किया। यह वर्णन खूब विस्तारसे काव्यकी रीति अनुसार किया गया है।

करकंडचरिउ (२,२,१ से २,५,७ तक) में गुणनिकेत विद्याधरकी कथा है कि जब वह विजयार्द्धसे विमान द्वारा दक्षिणकी ओर जा रहा था, तब अकस्मात् एक स्थानपर विमान रुक गया। नीचे सुव्रत मुनि ध्यानलीन थे। उन्हींको दोषी समझकर उसने उनका उपसर्ग किया। रुष्ट होकर मुनिने शाप दी कि तेरी विद्याएँ नष्ट हो जायें। तब मुनिके प्रभावको जानकर विद्याधरने उनके चरणोंमें गिरकर क्षमा-याचना की। मुनिने शान्त होकर कहा कि श्मशानमें करकंडुका जन्म होनेपर तू ही उसका पालन करेगा और जब उसे

राज्यकी प्राप्ति होगी तभी तेरी विद्यायें तुझे पुनः प्राप्त हो जायेंगी। इस घटनाकी तुलना सोमदेवकृत यशस्तिलक चम्पू (५ वां आश्वास) के उस कथानकसे की जा सकती है जहाँ कहा गया है कि जब मन्मथमथन नामक मुनि विजयार्द्ध पर्वतपर ध्यानमग्न थे, तब कन्दलविलास विद्याधर आकाश मार्गसे निकला। मुनिके ऊपर आकर उसका विमान रुक गया। कुपित होकर विद्याधरने मुनिका उपसर्ग किया। उसी समय विद्याधरोंके राजा रत्नशिखण्डीने वहाँ आकर उसे शाप दिया कि तू इस पापसे उज्जैनीमें चण्डकर्मा नामक चाण्डाल होगा। विद्याधरकी क्षमा-याचना करनेपर रत्नशिखण्डीने शापकी यह मर्यादा बांध दी कि जब तुझे आचार्य सुदत्तके दर्शन होंगे तब तेरी इस शापसे मुक्ति हो जायगी। इन दोनों आख्यानोंमें घटना समान है। केवल यशस्तिलक चम्पूमें मुनिको क्रोध और शापके अपराधसे बचाकर वे कार्य विद्याधर नरेश द्वारा कराये गये हैं।

करकंडचरिउमें (५,१-२में) नील महानील विद्याधरोंका शत्रुओं द्वारा विजयार्धपर्वतके रथनूपुर चक्रवाल नगरसे निकाल भगाने और उनके तेरापुरमें आकर राज्य स्थापित करनेका उल्लेख है। यह हमें रविषेणकृत पद्मपुराण (५,८५ आदि) व पउमचरिउ (५,७५ आदि) का स्मरण कराता है जहाँ शत्रुओं द्वारा अपनी राजधानी चक्रवालसे निर्वासित होकर मेघवाहन विद्याधर दक्षिणमें राक्षस द्वीपको आया और वहाँ लंकापुरीमें अपनी राजधानी बनायी।

करकंडचरिउ (३, १० से ३, २२) में दंतीपुरके राजा करकंडु और चम्पाके राजा धाड़ीवाहनके बीच युद्धका वर्णन है। युद्धके बीच करकंडुकी माता पद्मावतीने आकर उनकी पहिचान करायी कि वे दोनों पुत्र और पिता हैं। इससे युद्धका दृश्य वात्सल्य-स्नेहमें परिवर्तित हो गया और सजधजसे करकंडुका प्रवेश चम्पापुरीमें कराया गया। इसकी तुलना पद्मपुराण (पर्व १०२-१०३) तथा पउमचरिउ (पर्व ९९-१००) में वर्णित लवणांकुश द्वारा अयोध्यापर आक्रमण और रामचन्द्रकी सेनासे भयंकर युद्धसे की जा सकती है। जब उनकी पिता-पुत्र रूपसे पहिचान करायी गयी तब युद्ध बन्द हुआ और कुमारोंका अयोध्यामें शोभायात्राके साथ प्रवेश कराया गया। राम और उनके पुत्रोंके बीच युद्धकी घटना वाल्मीकि रामायणमें नहीं पायी जाती। तथापि उसका कुछ रूपान्तर भवभूति कृत उत्तररामचरित नाटक (अंक ४,५,६,) में प्राप्त होता है। रामके दोनों पुत्र लव और कुश वाल्मीकि मुनिके आश्रममें विद्याभ्यास कर रहे थे। तभी रामके अश्वमेध यज्ञके घोड़ेकी रक्षा करते हुए लक्ष्मणके पुत्र चन्द्रकेतु ससैन्य आश्रमके समीप निकले। अश्व देखनेके कौतुकवश आश्रमके बटु उस यज्ञाश्वके पास आये और लवने अश्वको पकड़ आश्रममें ले जानेका प्रयत्न किया। सेना कुपित हुई। चन्द्रकेतु और लवके बीच युद्ध प्रारम्भ हो गया। लवने रामचन्द्रके बल और प्रतापकी हंसी उड़ायी, जिससे चन्द्रकेतुका क्षोभ बढ़ा। अन्तमें समाचार पाकर पुष्पक विमान द्वारा स्वयं रामने वहाँ आकर युद्धको रुकवाया।

रामायणका प्रभाव यथार्थतः गुणाढ्यकृत बृहत्कथा और उसके अनुवर्ती कथा साहित्यपर स्पष्ट दिखाई देता है। रामके चरित्रमें केन्द्रीय घटना यही है कि रामकी पत्नीका रावण अपहरण करता है और उसकी खोजमें लगकर प्रवासी राम और उनके सहायक लोमहर्षक साहस और पराक्रमके कार्य करते हैं और अपनी पत्नीको पुनः प्राप्त कर रामका राज्याभिषेक होता है। यही मुख्य घटना नरवाहनदत्तके कथानककी है। हाँ, बहुविवाहके प्रसंग उसमें नवीन जोड़ गये हैं। यही घटनाचक्र हमें जैन साहित्यके अन्तर्गत वसुदेवके चरित्रमें मिलता है।

वसुदेव हिंडी तथा जिनसेन कृत संस्कृत हरिवंशपुराण (सर्ग १८-३२) में वसुदेवका चरित्र निम्न प्रकार वर्णित है। यदुवंशी नरेश अन्धकवृष्णिके समुद्रविजय आदि दश पुत्रोंमें सबसे छोटे वसुदेव अतिरूपवान् और साहसी थे। उन्होंने घरसे निकलकर समस्त देश एवं विजयार्ध पर्वतकी दोनों श्रेणियोंका परिभ्रमण किया एवं अपनी विद्वत्ता, कला व पुरुषार्थके बलसे अनेक विद्याधर व भूगोचरी कन्याओंसे विवाह किया। उन्होंने चम्पापुरीके चारुदत्त सेठकी पुत्री गन्धर्वसेनासे संगीत विद्या-द्वारा विवाह किया। एक विद्याधरीकी

सहायतासे उन्होंने विद्याधर नरेश सिंहदंष्ट्रकी नीलयशा नामक कन्यासे विवाह किया। एक बार नीलकण्ठ नामक विद्याधरने नीलयशाका अपहरण किया। वेगवती और मदनवेगा विद्याधरियोंसे उनका विवाह हुआ। शूर्पणखी विद्याधरीने मदनवेगाका रूप धारण कर उनसे छल किया। प्रभावती विद्याधरीने उनकी सहायता की और उन्होंने उसका भी परिणय किया। अरिष्टपुरमें आकर स्वयंवरमें रोहिणीसे विवाह किया और अपने ज्येष्ठ भ्राता समुद्रविजयसे मिले। फिर उन्होंने अपनी समस्त विवाहिताओंको पुनः अपने पास बुला लिया, इस प्रकार राम, नरवाहनदत्त व वसुदेवकी कथाओंमें मूलतः एक ही प्रकारका घटनाचक्र दृष्टिगोचर होता है। यही नहीं, किन्तु करकंडु व अन्य कथानक भी उसी मूलस्रोतसे प्रभावित दिखाई देते हैं।

अवान्तर कथाएँ

करकंडचरिउकी मूल कथा ऊपर कही जा चुकी है। इस कथाके अन्तर्गत नौ और छोटी बड़ी कथाएँ हैं जो करकंडुको नीति सिखाने तथा मूल कथाकी किसी बातको समझानेके लिए कही गयी हैं। प्रथम चार दूसरी सन्धिमें आयी हैं और वे उस मातंग-विद्याधर द्वारा करकंडुकी शिक्षाके लिये कही गयी हैं। प्रथम कथा (२, १०-१२) में मंत्र-शक्तिका प्रभाव बताया गया है। एक राजाकी पुत्रीको एक राक्षस हर ले गया था। बहुत समय तक उसे बचानेका कोई उपाय नहीं निकला। निदान कन्नौजके एक ब्राह्मण और एक वैश्य, दो पथिकोंने मंत्र शक्तिसे उस राक्षसको वशमें किया, राजपुत्रीकी रक्षा की और राजासे भारी सम्मान पाया। दूसरी कथा (२, १३) में अज्ञानसे विपत्तिका उदाहरण है। दो मित्र धन कमाने घरसे बाहर गये थे। मार्गमें एक राक्षसने उन्हें धर पकड़ा। उनकी बहुत दुर्गति हुई होती, किन्तु उसी मार्गसे एक ज्ञानी पुरुष आ निकला जिसने दया करके उन्हें उस राक्षसके हाथसे बचाया। तीसरी कथा (२, १४-१५) में नीच संगतिका कुपरिणाम समझाया गया है। एक होशियार सेठ था। राजाने उससे कहा कि यदि तुम एक गाथा ऐसी पढ़ दो जिसमें ओंठ न मिलें तो मैं तुम्हें एक जागीर दे डालूं। सेठने एक ऐसी गाथा पढ़ दी। राजाको बड़े संतापके साथ अपना वचन पूरा करना पड़ा। उस सेठकी एक चेटीसे प्रीति हो गयी। चेटीने एक बार राजाके मोरका मांस खानेकी लालसा प्रकट की। सेठने राजाका मोर पकड़कर तो छिपा दिया और किसी दूसरे प्राणीका मांस लाकर उस चेटीको खिला दिया। फिर राजाके प्यारे मोरकी तलाश हुई। उसपर पारितोषक बोला गया। तब उस चेटीने सेठका सब हाल राजाको कह सुनाया। राजाने तत्क्षण सेठको फाँसीका आदेश सुना दिया। किन्तु उस होशियार सेठने राजाका मोर ला उपस्थित किया और इस प्रकार उस नीच चेटी और क्षुद्र राजासे अपना पिंड छुड़ाया। चौथी कथा (२, १५-१८) में, इसके विपरीत, उच्च संगतिका सुफल बताया गया है। एक बार एक राजा आखेटके लिए वनमें गया था। भटकते-भटकते उसे खूब भूख-प्यास लग आयी, पर पासमें कुछ न था। निदान उसकी भेंट एक बनियेसे हो गयी, जिसने उसे तीन फल खिलाये और पानी पिलाया। राजधानीको लौटकर राजाने उस बनियेका बड़ा सम्मान किया, उसे अपना मंत्री बना लिया। बनियेकी प्रीति एक वेश्यासे थी। एक बार उसने राजकुमारको कहीं छिपा दिया, और उसके आभूषण ले जाकर उस वेश्याको दे दिये, और कहा कि इन्हें मैं राजकुमारको मारकर लाया हूँ। वेश्याने अपने प्रेमीके हितकी अभिलाषासे कहा, यह बात मुझसे कही सो कही, और किसीसे नहीं कहना। निदान राजकुमारकी खोजबीन हुई और किसीने राजाको यह खबर दे दी कि मंत्रीने उसके प्राण हरण किये हैं। इस-पर राजाने उस मंत्रीको बुलाकर कहा – मैं प्रसन्न हुआ। आज तुम्हारे खिलाये हुए उन तीन फलोंमें-से एकका ऋण चुक गया। अब दो फलोंका ऋण और बाकी रहा। राजाके ये वचन सुनकर मंत्रीने राजकुमारको ला उपस्थित किया और वे पुनः बड़े प्रेमसे रहने लगे।

इन कथाओंकी स्फूर्ति कविको कथासरित्सागरके दशवें लम्बकसे मिलना संभव है। ये कथाएँ वहाँ जैसीकी तैसी तो नहीं पायी जातीं, किन्तु वहाँ नरवाहनदत्तके मंत्री गोमुखने जो विद्वानों व मूर्खों तथा स्त्रियों-के छल-कपट आदिकी कथाएँ सुनायी हैं उनमें इन कथाओंके बहुत-से तत्त्व विद्यमान हैं।

पाँचवीं कथा कुछ बड़ी है। वह पूरी छठवीं सन्धिमें समाप्त हुई है। इसे तेरापुरमें एक विद्याधरने मदनावलीके हरणसे विह्वल करकंडुको यह समझानेके लिए सुनायी थी कि पति-पत्नीके निराशाजनक वियोगके पश्चात् भी उनका पुनः संयोग हो जाता है। नरवाहनदत्त वत्सदेशमें कौशाम्बी नगरीके राजा वत्सराज और रानी सुवीणाका पुत्र था। वह अतिशय गुणवान और रूपमें कामदेवको भी जीतनेवाला था। उसे सुयोग्य जान पिताने उसे राजा बनाकर स्वयं ऋषिवृत्ति धारण की और सिद्धि प्राप्त की। एक बार नरवाहनदत्तकी रानी मदनमंजूषाको हंसरथ नामक विद्याधर हर ले गया। शोकसे विह्वल होकर राजाने आत्मघात करनेकी ठान ली और वह पास ही के वनमें गया। वहाँ उसकी भेंट एक विद्याधरीसे हुई जिसका प्रेमी विद्याधर एक ऋषिकन्याके शापसे सुआ बन गया था। उस ऋषिकन्याने दयालु होकर यह भी बतला दिया था कि जब नरवाहनदत्तका विवाह रतिविभ्रमा नामकी विद्याधरपुत्रीसे हो जायगा तब वह पुनः विद्याधर रूप पा जावेगा। यह सुनकर नरवाहन बड़े बिस्मयमें पड़ गये। इतनेमें ही वहाँ एक और लीलावती नामक विद्याधरी आयी जो रतिविभ्रमाका चित्रपट लिये थी। उसने कहा कि रतिविभ्रमाने अपने पिता द्वारा हरकर लायी हुई एक स्त्रीसे नरवाहनदत्तका नाम सुना है तभीसे वह उनके लिए छटपटा रही है। फिर वह विद्याधरी नरवाहनको विजयार्ध पर्वतपर ले गयी। वहाँ नरवाहनने अपनी हरी गयी पत्नीको भी पा लिया और रतिविभ्रमा तथा उसकी अनेक सखी सहेलियोंके तथा अन्य पाँच सौ विद्याधर कुमारियोंके साथ विवाह कर लिया। फिर धीरे-धीरे वे समस्त विद्याधरोंके अधिपति बन गये।

नरवाहनदत्तकी कथा संस्कृत साहित्यमें प्रसिद्ध है। सोमदेवकृत कथासरित्सागर, क्षेमेन्द्रकृत बृहत्कथामंजरी और बुद्धस्वामीकृत बृहत्कथा श्लोकसंग्रहमें यही कथा बड़े विस्तारसे पायी जाती है। इसी कथाको सबसे पहले गुणाढ्य कविने पैशाची भाषामें अपनी बृहत्कथामें रचा था। यह पैशाची भाषाकी बृहत्कथा अब नहीं मिलती। सम्भव है हमारे कविके समय तक वह बृहत्कथा लुप्त न हुई हो और उसीके आधारपर उन्होंने अपनी कथा लिखी हो, क्योंकि उपर्युक्त प्राप्य ग्रंथोंकी कथासे करकंडचरिउमें लिखी गयी कथामें कुछ भेद पड़ता है। इस कथामें मदोन्मत्त मदनामर विद्याधरके, एक ऋषिकन्याके शापसे, सुआ बन जानेकी जो वार्ता कही गयी है उससे हमें बाण कविकृत कादम्बरीमें महाश्वेताकी कथाका स्मरण आये बिना नहीं रहता। बाणने भी अपनी कथा बृहत्कथाके आधरपर ही लिखी थी।

कथासरित्सागरके अनुसार नरवाहनदत्तकी कथा संक्षेपतः इस प्रकार है। कौशाम्बीमें क्रमशः जनमेजयका पुत्र शतानीक, सहस्रानीक और उदयन राजा हुए। उदयनका विवाह उज्जयिनीके राजा चण्डमहासेनकी पुत्री वासवदत्तासे हुआ और उन्हींसे कामदेवके अवतार नरवाहनदत्तका जन्म हुआ। यथासमय उसे युवराजपद प्राप्त हुआ और उसका विवाह कलिंगसेनाकी पुत्री मदनमञ्चुकासे हो गया। एक बार मानसवेग विद्याधर मदनमञ्चुकाका अपहरण कर ले गया जिससे वह बहुत दुखी हुआ। मानसवेगकी बहिन वेगवतीने मदनमञ्चुकाका रूप धारण करके छलसे नरवाहनदत्तसे विवाह कर लिया और वह उसे अपने पिताके घर आषाढपुर ले गयी। अनेक घटनाएँ घटीं और उसका विवाह अनेक विद्याधर कुमारियोंसे हुआ। श्रावस्तीमें पहुँचनेपर उसका विवाह वहाँके राजा प्रसेनजित्की पुत्री भगीरथयशासे भी हुआ। प्रभावती विद्याधरीकी मायाके प्रभावसे उसकी भेंट अपनी पत्नी मदनमञ्चुकासे भी हो गयी जिसके साथ वह उसकी सहेलीके रूपमें रहने लगा। किन्तु वह उसे छुड़ा न सका और मानसवेगको इसका पता चलनेपर यद्यपि सभामें वह निर्दोष पाया गया, तथापि उसे अपने प्राण बचानेके लिए गुप्तरूपसे भागना पड़ा। क्रमशः अनेक और विद्याधर नरेश उसके पक्षपाती हो गये जिनकी सहायतासे उसने मानसवेगका बधकर मदनमञ्चुकाको छुड़ाया एवं उत्तर-दक्षिण दोनों विद्याधर श्रेणियोंके राजाओंको पराजित किया। तत्पश्चात् सब विद्याधरोंने मिलकर ऋषभ पर्वतपर उसका मदनमञ्चुका रानीसहित महाभिषेक किया।

उक्त दोनों कथानकोंके मिलानसे स्पष्ट हो जाता है कि उनका मूल ढांचा एक ही है। नरवाहनदत्त कौशाम्बीका राजा था। उसकी रानी मदनमञ्जूषा या मदनमञ्चुकाका एक विद्याधरने अपहरण किया।

वेगवती विद्याधरी आकर नरवाहनदत्तसे मिली और वह उसे विद्याधरलोकमें ले गयी जहाँ और अनेक विद्याधर कुमारियोंसे उसका विवाह हुआ। उसकी अपहृत पत्नी भी उसे मिल गयी और सब विद्याधरोंने मिलकर उसका राज्याभिषेक किया। स्वभावतः यह कथानक कथासरित्सागरका प्रधान विषय होनेसे वहाँ वह खूब विस्तारसे व अवान्तर कथाओंसे परिपूर्ण वर्णित पाया जाता है। किन्तु करकंडचरिउमें अपहृत पत्नीकी पुनः प्राप्तिके एक दृष्टान्त रूपसे आनेके कारण अतिसंक्षिप्त है। तथापि एक बात ध्यान देने योग्य है कि नायक नायिका तथा वेगवती कनकवती जैसी दो चार विद्याधरियोंके नाम छोड़कर शेष सब नामोंमें अन्तर है। स्वयं नायकके माता-पिता जहाँ कथासरित्सागरमें उदयन और वासवदत्ता कहे गये हैं जो नरवाहनदत्तके महाभिषेक तक जीवित पाये जाते हैं, तब यहाँ उनके नाम हैं वत्सराज और सुवीणा जो आदिमें ही गृह त्याग सिद्धिको प्राप्त हो जाते हैं। क० स० सा० में नरवाहनदत्तका विवाह श्रावस्तीके राजा प्रसेनजित्की पुत्रीसे भी हुआ कहा गया है, किन्तु यहाँ उसका कोई उल्लेख नहीं। इन नामभेदोंके अनेक कारण हो सकते हैं। कथाओंकी परम्पराओंमें भेद होना संभव है, या स्मृतिके सहारे लिखे जानेसे अप्रधान पात्रोंके नाम विस्मृत हो सकते हैं जिनकी पूर्ति कल्पनासे कर दी गयी। यह संभावना इस कारण और भी प्रबल है कि करकंडुके रचयिता जैन मुनि विहार करते हुए आशापुरीमें आये थे, जहाँ उन्हें बृहत्कथाकी परम्परावाली उक्त तीन रचनाओंमें से कोई भी ग्रंथ रूपमें सुलभ न हुई हो। किन्तु यह भी असम्भव नहीं है कि कविने जानबूझकर ही नामोंमें परिवर्तन किया हो, क्योंकि कथासरित्सागर आदि ग्रंथोंमें नरवाहनदत्त सम्बन्धी समस्त वातावरण भगवान् महावीरके व उनसे उत्तरवर्ती कालका है। उदाहरणार्थ, कथासरित्सागरमें जो नरवाहनदत्तके प्रपितामह शतानीक कहे गये हैं उनका विवाह महापुराण (७५ वाँ पर्व) के अनुसार महावीरके नाना चेटककी एक पुत्री मृगावतीके साथ हुआ था। नरवाहनदत्तकी माता वासवदत्ताके पिता चण्डप्रद्योतकी मृत्युके पश्चात् जिस रात्रि उनके पुत्र पालकका राज्याभिषेक हुआ था उसी रात्रि भगवान् महावीरका पावामें निर्वाण हुआ था। कोसलके जिन प्रसेनजित् राजाकी पुत्री भगीरथयशासे नरवाहनदत्तका विवाह हुआ था, वे उन मगधराज श्रेणिकके समसामयिक व सम्बन्धी थे जिन्हें महाराज चेटककी चेलना नामक कन्या विवाही थी। यदि इनमें-से किसी राजा व तत्सम्बन्धी स्त्री-पुरुषोंका उल्लेख किया जाता तो करकंडचरिउके कथानकमें काल-वैषम्य प्रत्यक्ष दिखाई देने लगता, क्योंकि करकंडुको भगवान् महावीरके नहीं, किन्तु भगवान् पार्श्वनाथके तीर्थमें हुए माना गया है।

नरवाहनदत्तकी कथाके अन्तर्गत उसे उपवनमें मिली विद्याधर कन्याने अपना परिचय इस प्रकार दिया – विद्याधर पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें सिंधुशृंगपर जयन्ती नामक पुरीके अधिपति मेरे पिता धूमकेतु और माता सुनन्दा रहते हैं। एक बार मैं अपनी सखियोंके साथ वनक्रीडा कर रही थी कि मदनामर नामक विद्याधर वहाँ पहुँचा जिसे देख मैं उसपर मोहित हो गयी। मेरी सखीके पूछनेपर उसके मित्रने बतलाया कि वह उसी विजयार्धकी उत्पलखेडी पुरीके विद्याधर पद्मदेवका पुत्र मदनवेग है और वह अपने मित्र, उत्तर विजयार्धके विद्याधर मनोवेगके पुत्र पवनवेगसे मिलने जा रहा है। उसने मेरा कुल भी पूछ लिया, और फिर वे दोनों वहाँसे चले गये। किन्तु मदनामर पुनः वापिस आया। उसने अपने कंठसे मोतियोंकी माला निकालकर मेरे गलेमें पहना दी। इतनेमें ही मेरी सहचरी केतुमती मुझे बुलाकर घर ले गयी। विह्वल होकर मैं पुनः वहाँ आयी, किन्तु वहाँ मदनामर दिखायी नहीं दिया। फिर किसी एक विद्याधरीने मुझे यह समाचार दिया कि उसके विरहमें बेभूल होकर मदनामरने एक ऋषि-कन्याका स्पर्श कर लिया जिसकी शापसे वह सुआ हो गया। उसके मित्रकी प्रार्थनापर उस ऋषि-कन्याने शापकी यह मर्यादा बाँध दी कि जिस दिन नरवाहनदत्तका रति-विभ्रमासे परिणय हो जाय, उसी समय वह पुनः सुन्दर मनुष्य हो जायगा। यह जानकर हे सुन्दर, मैंने वनवास ग्रहण किया है। (६, १०–११)

सुआकी एक और कथा क. च. ८, ३ आदिमें अरिदमनके कथानकमें आयी है। अवन्ती देशकी उज्जयिनी नगरीके समीप वनमें एक विद्याधरने शुकका रूप धारण किया था। उसने एक ग्वालसे कहा कि

तू मुझे राजाके पास ले चल और पाँच सौ सुवर्ण मुद्रा लेकर उसके हाथ सौंप दे। ग्वालने वैसा ही किया। मार्गमें तोतेने अपनी बुद्धिका चमत्कार भी दिखलाया। उनके राजद्वारपर पहुँचनेपर द्वारपालने राजा अरिदमनको खबर दी। उनकी अनुमतिसे सम्मुख पहुँचकर शुकने अपना पैर उठाकर राजाको आशीर्वाद दिया कि हे राजन् जबतक गंगाका प्रवाह है तबतक चिरजीवी होओ। राजाने प्रसन्न होकर सुएसे उसका वृत्तान्त पूछा। तब उसने अपना यह 'कपट कथानक' रचकर सुनाया कि हम पाँच सौ सुए एक सेंवलके वृक्षमें रहते थे। एक भीलने आकर सब धोंसलोंपर अपना जाल बिछा दिया। मैंने सुओंको कहा कि मृतक समान हो जाओ। भीलने मरा समझकर सबको नीचे डाल दिया। हम सब दशों दिशाओंमें उड़ गये। मैं एक तपस्वियों-के आश्रममें जा पहुँचा जहाँ मैंने सब शास्त्रोंका ज्ञान प्राप्त कर लिया। उसने राजाको मंत्रीके यहाँ उत्पन्न हुए एक तेजस्वी अश्वकी भी सूचना दी। राजाने उसे मंगाकर तोतेसहित उसपर सवारी की। अश्व आकाशमें उड़-कर उन्हें समुद्र पार छोहार द्वीपमें ले गया जहाँ राजाका विवाह कुमारी रत्नलेखासे हुआ। नौका बनाकर लौटते समय उनकी नौका छिन्न-भिन्न हो गयी और समुद्रकी लहरों द्वारा रत्नलेखा खंभायत पट्टन और राजा कोकन पहुँचा। सुआ और घोड़ा भी बिछुड़ गये। किन्तु अन्ततः उन सबका पुनः मिलन हो गया।

सुएके उक्त दोनों कथानकोंकी तुलना बृहत्कथाकी परम्पराके बृहत्कथामंजरी व कथासरित्सागरके शक्तियशा नामक लम्बककी सुमना राजाकी कथासे करने योग्य है। सुमना कांचनपुरीका राजा था। एक समयउसकी सभामें निषाधपतिकी कन्या मुक्तालता अपने भ्राता वीरप्रभके साथ पिंजड़ेमें एक तोतेको लेकर आयी। तोतेने राजाकी स्तुतिमें एक श्लोक कहा व शास्त्रचर्चा करनेकी अनुमति माँगी। राजा आश्चर्य-चकित हुआ। पूछनेपर तोतेने बतलाया कि हिमालयके समीप एक विशाल वृक्षके कोटरमें मेरा जन्म हुआ था। जन्म होते ही मेरी माताका देहान्त हो गया। पिताने बड़े कष्टसे मेरा पालन किया। एक बार एक वृद्ध भीलने वृक्षपर चढ़कर तोतोंको मार-मारकर नीचे गिरा दिया। मैं पिताके पंखोंमें छिपा था इससे नहीं मर पाया। नीचे गिरनेपर मैं आसपासके सूखे पत्तोंमें छिप गया। भील सब पक्षियोंको एकत्र कर उन्हें ले गया। रात्रि-भर वहीं रहकर मैं प्रातः तृषातुर होकर समीपके सरोवरको गया। वहाँ मरीचि मुनिने मुझे देख कृपापूर्वक जल पिलाया और अपने साथ आश्रमको ले गये। वहाँ मुझे देख महर्षि पुलस्त्य मुस्कुराये। पूछनेपर उन्होंने मेरा पूर्ववृत्तान्त इस प्रकार सुनाया – रत्नाकर नगरमें ज्योतिप्रभ राजा और हर्षवती रानीको महादेवजीकी कृपासे एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम रानीके स्वप्नमें चन्द्र देखनेके कारण सोमप्रभ रखा गया। युवावस्थामें सर्व विद्याओं व कलाओंमें प्रवीण देखकर राजाने उसे युवराज बनाया और प्रभाकर मंत्रीके पुत्र प्रियंकरको उसका मंत्री। उसी समय मातलि एक घोड़ा लेकर आकाशसे उतरा और सोमप्रभसे बोला कि आप पूर्व जन्ममें इन्द्रके मित्र विद्याधर थे, इसीलिए उन्होंने अपने उच्चैःश्रवाके पुत्र अश्वश्रवा नामक इस घोड़ेको भेंटस्वरूप भेजा है। इसपर आरूढ़ होते हुए आपको कोई शत्रु जीत नहीं सकेगा। पितासे आज्ञा लेकर सोमप्रभ उस घोड़ेपर आरूढ़ हो दिग्विजयको निकल पड़ा और उसने चारों दिशाओंके राजाओंको जीत लिया। लौटते समय हिमालयके समीप एक मणिमय किन्नर दिखाई दिया जिसे पकड़नेके लिए उसने घोड़ा दौड़ाया। किन्नर तो एक कन्दरामें छिप गया और सोमप्रभ वनमें बहुत दूर चला गया। वहाँ एक बड़ा सरोवर देख उसने कुछ विश्राम करना व रात्रि व्यतीत करना चाहा। अकस्मात् उसे मधुर गीतोंकी ध्वनि सुनाई पड़ी, जिसका पता लगानेपर महादेवके मन्दिरमें एक रूपवती कन्यासे भेंट हुई। उसने बतलाया कि वह हिमालयपर कांचननाभ नगरके विद्याधर नरेश पद्मकूट और रानी हेमप्रभाकी मनोरथप्रभा नामक पुत्री है। एक बार जब वह उस सरोवरपर क्रीड़ा कर रही थी तब उसे एक मुनि-युवक दिखाई दिया जिसपर वह मोहित हो गयी। उसकी सखीने युवकके मित्रसे पता लगाया कि वह वहींके एक तपोवनमें रहनेवाले मुनि दीधितिका लक्ष्मीसे उत्पन्न मानस-पुत्र रश्मिवान है। उसने मेरी सखीसे मेरा भी परिचय ले लिया। उसी समय भोजनके लिए पिताने मुझे बुला लिया। मेरे भोजनोपरान्त ही उस मुनि-पुत्रके मित्रने आकर खबर दी कि रश्मिवान उसके वियोगमें बहुत विकल है। मैं तुरन्त अपनी सखीके साथ उससे मिलने गयी, किन्तु तब-

तक उसका प्राणान्त ही हो गया। मैं उसकी चितापर अपनेको भस्म करनेकी तैयारी करने लगी, किन्तु उसी समय एक तेजस्वी पुरुष आकाशमार्गसे आकर रश्मिवानके मृत शरीरको उठा ले गया। मुझे आकाशवाणी सुनाई दी कि तुम अपने शरीरकी रक्षा करो, पुनः उस मुनि-कुमारसे तुम्हारी भेंट होगी। बस, तभीसे मैं यहाँ महादेवकी आराधनामें लगी रहती हूँ। विद्याधरोंके स्वामी राजा सिंहविक्रमकी रूपवती कन्या मकरंदिका मेरी प्राणप्रिय सखी है और उसने प्रतिज्ञा की है कि जबतक मेरा विवाह न होगा तबतक वह भी अपना विवाह नहीं करेगी। उसीकी खबर लेने मेरी वह साथकी सखी गयी है। उसने यह कहा ही था कि वह सखी भी लौट आयी। प्रातः देवजय नामक विद्याधरके साथ वे सभी राजा सिंहविक्रमके यहाँ गये। वहाँ मकरन्दिका सोमप्रभको देखकर उसपर आसक्त हो गयी। किन्तु सोमप्रभने अपने शिविरको लौटनेकी इच्छा प्रकट की। वहाँ अपने पिताका सन्देश पाकर उसे राजधानी लौटना पड़ा। इधर मकरन्दिका उसके वियोगमें बहुत विह्वल हो उठी। बहुत समझानेपर भी न माननेके कारण उसके पिताने उसे यह शाप दे दिया कि तू कुछ काल तक निषादकन्या होकर रहेगी। उसका पिता मरकर ऋषि हुआ और फिर किसी पापसे तोता हो गया और माता शूकरी। यही वह तोता था जो पहले पुलस्त्य मुनिके आश्रममें और फिर अपना पूर्वजन्मका स्मरणकर सुमना राजाकी सभामें पहुँचा था। अन्ततः पापोंसे छूटकर राजा सुमना पुनः रश्मिवान बन गया और मनोरथप्रभासे उसका विवाह हो गया। निषादकन्या पुनः मकरन्दिका हो गयी और उसका विवाह सोमप्रभसे हुआ। तोता भी अपना शरीर त्यागकर पूर्वतपस्यानुसार उच्चपदको प्राप्त हुआ। गोमुख मंत्रीने यह कथानक अपने स्वामी नरवाहनदत्तको उसकी शक्तियशा सम्बन्धी आकुलताको दूर करनेके लिए सुनाया था।

यही कथानक बाणकृत कादम्बरीमें महाश्वेताकी कथाके रूपमें पाया जाता है। दोनोंमें भेद यह है कि बाणका वर्णन काव्यगुणोंसे परिपुष्ट है और वहाँ नामोंमें बहुत हेर-फेर पाया जाता है। यहाँकी मनोरथ-प्रभा और मकरन्दिका वहाँ महाश्वेता और कादम्बरीके रूपमें दिखाई देती हैं और उनके पति रश्मिवान् और सोमप्रभ, पुण्डरीक और चन्द्रापीडके रूपमें। राजाओं व सखी-सखाओं व नगरोंके नाम भी सब भिन्न हैं। विशेष भेद यह है कि जहाँ कथासरित्सागरमें मुनिकुमार रश्मिवान राजा सुमनाके रूपमें एवं मकरन्दिकाके पिता सिंहविक्रम तोतेके रूपमें उत्पन्न हुए हैं, वहाँ कादम्बरीमें मुनिकुमार पुण्डरीक तोताके रूपमें एवं स्वयं चन्द्रापीड (सोमप्रभ) राजा शूद्रकके रूपमें। कथासरित्सागरका घटनास्थल है हिमालय, किन्तु कादम्बरीका विन्ध्याचल।

करकंडचरिउका कथानक भी नामों व घटनाओंकी दृष्टिसे उक्त दोनों कथाओंसे बहुत कुछ स्वतन्त्र है, फिर भी सुआके दोनों कथानकोंका मूलाधार कादम्बरीका कथानक ही प्रतीत होता है, क्योंकि नायक-द्वारा नायिकासे प्रथम मिलनके समय माला पहनाना तथा उस नायकका ही नायिकाके ही शापसे तोता बन जाना कादम्बरी और करकंडचरिउमें समान हैं, जब कि कथासरित्सागरमें उनका अभाव है। घोड़ेका प्रसंग तीनों ग्रन्थोंमें भिन्न-भिन्न रीतिसे आया है। कथासरित्सागरका घोड़ा उच्चैःश्रवाका पुत्र है और स्वयं इन्द्रने उसे राजाको भेंटस्वरूप भेजा था। कादम्बरीका घोड़ा इन्द्रायुध उच्चैःश्रवाके लक्षणोंसे युक्त था, किन्तु उसे राजाको भेंटस्वरूप भेजा था फारसके नरेशने। किन्तु करकंडचरिउका घोड़ा मंत्रीकी घोड़ी और पहाड़ी घोड़ेसे उत्पन्न हुआ था, उसे तोतेने देखा था और तोतेने ही उसकी सूचना राजा अरिदमनको दी थी।

नरवाहनदत्तकी कथाके अन्तर्गत ही हमारी छठवीं अवान्तर कथा है (६, ४-७) जिसके द्वारा अपने पिताकी मृत्युके शोकसे व्याकुल नरवाहनदत्तका एक मुनिराजने सम्बोधन किया है। माधव और मधुसूदन भाई-भाई थे, पर उनमें बड़ा वैर था। दिनोंके फेरसे माधव यहाँतक दरिद्री हो गया कि उसे भोजन-वस्त्रका भी कष्ट होने लगा। माधवकी स्त्रीने उसे मधुसूदनका आश्रय लेनेकी सम्मति दी। पहले तो माधवने अपने स्वाभिमानका विचार करके अमान्य कर दिया, किन्तु पीछे स्त्रीके समझानेपर और अपनी दुर्दशासे विह्वल होकर वह मान गया। मधुसूदनने उनका बड़ा आदर-सत्कार किया और उन्हें प्रेमसे रक्खा, किन्तु

माधवके हृदयकी ईर्ष्याग्नि शान्त न हुई। एक दिन वह घरसे निकल भागा और प्रयागमें जाकर उसने यह निदान बांधकर, अनशन द्वारा, अपना प्राणान्त कर डाला कि मरकर मैं मधुसूदनके यहाँ पुत्र होऊँ और फिर उसका प्रेम बढ़ाकर मर जाऊँ जिससे उसे घोर क्लेश हो। हुआ भी ऐसा ही। मधुसूदन पुत्रशोकमें मरनेको तत्पर हो गया, तब उसे एक विद्याधरने माधवके पूर्वभवका हाल सुनाकर उसके चित्तको शान्त किया। इस प्रकार ये पिता-पुत्रादि सम्बन्ध सब निदानके कारण हैं इनमें हर्ष या शोक नहीं मानना चाहिए।

सातवीं अवान्तर कथा (७, १-४) शुभ-शकुनकी है जिसे विद्याधरने करकंडुको सुनायी थी। एक दरिद्री ब्राह्मणको मार्गमें एक मुनिके दर्शन हुए जिससे वह खुशीके मारे नाचने लगा। एक क्षत्रिय कुमार घोड़ेपर सवार वहाँसे निकला और उस ब्राह्मणको नाचते देख उसने हाल पूछा। ब्राह्मणने कहा मुझे वनमें मुनि-दर्शनका शुभ शकुन हुआ है जिसके फलस्वरूप मुझे राज्य मिलेगा। क्षत्रिय कुमारने ब्राह्मणसे कह सुनकर उस शकुनका फल आप ले लिया और बदलेमें अपना घोड़ा और आभूषण दे डाले। ब्राह्मण चला गया और क्षत्रिय कुमारने वनमें प्रवेश किया। वहाँ सुदर्शना देवी, स्त्रीका रूप धरके, साथ हो गयी। उन्होंने एक अन्धकूप देखा जिसमें एक साँप और मेंढक लड़ रहे थे। युवकने अपनी देहसे एक मांसका टुकड़ा काटकर उनके बीच डाल दिया। उसके साहससे प्रसन्न होकर वे दोनों भी मनुष्यका रूप धारण कर उसके साथ हो गये। एक राजाने उन्हें देखा और वह उस स्त्रीके रूपपर मोहित हो गया। उसने युवकको एक कुएँमें ढकेल दिया, और उस स्त्रीसे प्रेम करना चाहा। इतनेमें ही उसे एक सर्पने डस लिया और वह मर गया। स्त्रीने उस युवकको कुएँसे निकाला और पश्चात् उसका मृत राजाके स्थानपर राज्याभिषेक हो गया। सुदर्शना देवी शकुनका यह फल देकर चली गयी।

आठवीं अवान्तर कथा अरिदमनकी है, जिसे पद्मावती देवीने करकंडुके समुद्रमें विद्याधरी द्वारा हरण किये जानेके शोकसे व्याकुल रतिवेगाको सुनाया था (८,१-१६)। अरिदमन उज्जैनका राजा था। एक विद्याधरने सुआका रूप धरकर अपनेको एक ग्वाल द्वारा उस राजाके हाथ बिकवा दिया। सुआने राजाको बताया कि उसके मंत्रीके पास एक बड़ा सुंदर और प्रतापी घोड़ा है। राजाने मंत्रीसे इसे प्राप्त किया और सुआसहित उसपर सवार हुआ। एक चाबुक मारी कि घोड़ा उड़कर समुद्रपार एक द्वीपपर जा पहुँचा। वहाँ राजाने बहुत-सी कन्याओंको जलक्रीडा करते हुए देखा और उनमें प्रधान रत्नलेखासे उसने विवाह कर लिया। एक दिन रत्नलेखाने कहा कि मैं आपका पितृगृह देखना चाहती हूँ। तब राजाने एक नौका निर्माण करायी और राजा-रानी, सुआ और घोड़ासहित, उसपर बैठकर चल दिये। विपरीत वायुके कारण नाव एक उजाड़ द्वीपपर जा पहुँची। वहाँ उन्हें रात-बसेरा करना पड़ा। रात्रिको ही नावको कोई चुरा ले गया। तब सुआकी सलाहसे राजाने लकड़ी काट और उन्हें बांधकर एक डोंगी बनायी और वे चारों उसपर बैठकर चले। समुद्रको लहरोंसे डोंगीके बन्धन टूट गये और वे चारों बिछुड़ गये। सुआ उड़ गया, घोड़ा कहीं गया, राजा कोकन पहुँचे और रानी खंबायत बन्दरपर पहुँची। वहाँ उसे एक कुट्टिनीके यहाँ आश्रय मिला। उसने यह प्रण किया कि जो कोई मुझे सार-पांसे खेलनेमें हरा देगा उससे ही मैं प्रेम करूँगी। किन्तु उससे कोई भी पुरुष नहीं जीत पाया। एक दिन वह सुआ उड़कर उसके घर आ गया और उनकी पहिचान हो गयी। उसकी द्यूतक्रीडाकी कीर्ति चारों ओर फैल गयी। कोकनमें अरिदमनने भी समाचार सुने। वे आये। खेल हुआ और उन्होंने रत्नलेखाको हरा दिया। रत्नलेखा बहुत व्याकुल हुई, किन्तु इसी क्षण उनकी परस्पर पहचान हो गयी और वे मिलकर बहुत सुखी हुए। एक दिन एक ठक्क वहाँ घोड़े बेचने लाया। उनमें अरिदमनने अपना घोड़ा पहचान कर खरीद लिया। इस प्रकार वे सब बिछुड़े प्रेमी एक बार फिर मिलकर अपने घर आनन्दसे आ गये।

पूर्वोक्त सुआकी कथामें प्रसंगवश वर्णित एक घटना उल्लेखनीय है। जब ग्वाल उसे लेकर उज्जैनीमें आया तब नगरके मार्गमें एक वेश्या एक सेठको पकड़े-पकड़े फिरती थी और कहती थी कि मैंने तुम्हारे जेठे

लड़केको स्वप्नमें अपनी लड़कीके साथ देखा है, इसलिए तुम मुझे धन दो। सेठ बेचारा बड़ी विपत्तिमें पड़ा था। सब लोग तमाशा देख रहे थे, पर किसीको कुछ बुद्धि काम नहीं करती थी कि क्या किया जावे। निदान सुआने इस झगड़ेका निपटारा किया। उसने सेठसे धन मंगाया। और एक दर्पणमें उसकी छाया डालकर कुट्टिनीसे कहा, ले बहिन, तेरा धन लेले। कुट्टिनीने कहा, रे नगोड़े सुए! कहीं दर्पणका प्रतिबिम्ब भी लिया जा सकता है? सुएने तुरन्त उत्तर दिया, कहीं स्वप्नको बात प्रत्यक्ष हुई है? इस प्रकार सेठको उस झंझटसे छुड़ाकर यह सुआ राजसभामें पहुँचा। इससे आगेका वृत्तान्त ऊपर कहा जा चुका है।

अन्तिम अवान्तर कथा मुनिराजने करकंडुकी माता पद्मावतीको यह बतलानेके लिए सुनायी है कि भवान्तरमें स्त्रीलिंगका परिवर्तन भी हो सकता है (१०,१८-२२)। उज्जैनके राजाकी सुमित्रा नामकी पुत्री थी। उसने उपवासके फलसे मरकर एक ब्राह्मणके घरमें लड़केका जन्म पाया, किन्तु पिताकी मृत्यु उसके गर्भकालमें ही हो गयी। विधवा स्त्रियोंके छोटे लड़के बहुधा बड़े नटखटी हो जाते हैं। ऐसा यह भी हुआ। एक बार अपनी मातासे लड़कर वह घरसे भाग गया और वनमें एक पुरानी मढियामें रात-बसेरा किया। वहाँ रात्रिको विद्याधरियाँ आयीं, जिनमें-से एकका चीर उसने उड़ा दिया। उसे लेकर वह घर आया। माताने उसे एक सेठको बेंच दिया और सेठने उसे राजाको भेंट किया। राजाको उसके जोड़ मिलानेकी अभिलाषा हुई और अन्तमें उसी ब्राह्मण पुत्रको यह काम सौंपा गया। इस बार वह एक डंडा लेकर वनमें गया और एक राक्षसीको वशमें कर लाया। उससे उसके जोड़का कपड़ा लेकर उसने राजाको दिया। राजाकी उसपर प्रसन्नता बढ़ गयी। यह बात मंत्रीको सहन न हुई। उसने रानीको उभाड़ा और उस ब्राह्मणके प्राण लेनेकी दृष्टिसे कहीं शेरनीका दूध, और कहीं बोलता हुआ पानी लानेके लिए उसे भिजवाया। पर राक्षसीकी सहायतासे ब्राह्मणने सब कुछ ला दिखाया। निदान राजाको मंत्रीका कपटजाल ज्ञात हो गया। उसने उसे मंत्री-पदसे निकाल दिया और उस ब्राह्मणको मंत्री बनाया। अन्तमें उस ब्राह्मणने वैराग्य धारण कर लिया, और अगले भवमें वह अर्जुन हुआ। इस प्रकार उपवासके प्रभावसे सुमित्रा अर्जुन हो गयी।

इस कथाको कविने कोई परियोंकी कहानियोंमें-से लिया है। यही कथा और परिवर्धित रूपमें भावचन्द्र सूरिके शान्तिनाथ चरितमें भी पायी जाती है।

ये नौ अवान्तर कथाएँ करकंडचरिउके लगभग चौथाई भागमें आयी हैं।

कथाके नायक

इस ग्रंथमें यह बतलाया गया है कि पंच-कल्याण-विधानके प्रभावसे किस प्रकार एक ग्वाला अगले भवमें राज्य-सुखको पाकर मोक्षगामी हुआ। इस ग्रंथके कथानायकका स्थान अद्वितीय है। वे दिगम्बर सम्प्रदायमें ही नहीं, श्वेताम्बर सम्प्रदायमें भी माने गये हैं। यही नहीं, किन्तु बौद्धोंने भी उन्हें अपना एक महात्मा माना है। बौद्धोंके जातक साहित्यमें वे करण्डू या करकंडूके नामसे प्रसिद्ध हैं। उन्हें वे प्रत्येकबुद्ध मानते हैं। प्रत्येकबुद्ध उन्हें कहते हैं जो स्वयं केवलज्ञान प्राप्त कर लें, किन्तु बिना धर्मोपदेश किये ही शरीरान्त कर, मोक्ष चले जावें। इस प्रकारके चार प्रत्येकबुद्ध बौद्धोंने माने हैं, करकंडू, नग्गई, नमि और दुर्मुख, और इन चारोंकी कथाएँ पाली साहित्यमें पायी जाती हैं। किन्तु बौद्धोंकी करकंडू-कथा और वर्तमान कथामें उनके जन्मस्थान व माता-पिताके नाम तथा स्वयंबुद्धत्वके अतिरिक्त और कोई साम्य नहीं है। श्वेताम्बर सम्प्रदायमें भी वे चारों प्रत्येकबुद्ध माने गये हैं और उनकी कथाओंपर बहुत-सा साहित्य निर्माण हुआ है। उनका सबसे पुराना उल्लेख उत्तराध्ययन सूत्रमें है, और, कथाएँ उसकी टीकाओंमें पायी जाती हैं। इन कथाओंसे वर्तमान ग्रंथकी मूल कथाका बहुत कुछ साम्य है, केवल उन कथाओंमें करकंडूकी दक्षिण विजययात्राका हाल नहीं पाया जाता। छोटी मोटी बातोंमें कई जगह भेद भी है, जो पूर्वोक्त कथाओंके वर्णन व तुलनासे स्पष्ट है।

दिगम्बर साहित्यमें उपर्युक्त चारों प्रत्येकबुद्धोंका उल्लेख तो मुझे अभीतक देखनेको नहीं मिला और न ऐसा ही कहीं पढ़ा जहाँ करकंडुको ही स्पष्टतः प्रत्येकबुद्ध कहा हो। पर प्रत्येकबुद्धोंकी महिमाके कुछ उल्लेख अवश्य देखनेमें आये हैं। उदाहरणार्थ, जयसेनकृत प्रतिष्ठापाठमें उन महात्माओंको अर्घ चढ़ाया गया है जो अन्योपदेशके बिना ही संयमकी उच्चकोटिको पहुँच जाते हैं, और प्रत्येकबुद्ध-ऋद्धिको प्राप्त कर लेते हैं। उनका थोड़ा-सा स्मरण करनेसे भी पापोंका नाश होता है' (प्र० पा० ६७२)। एक संस्कृत सुकुमाल चरितमें कहा गया है कि अंगपूर्वप्रकीर्णकोंकी रचना गणधर, श्रुतकेवली व प्रत्येकबुद्ध योगीन्द्रोंने की थी। कनकामरने भी करकंडुको कहीं प्रत्येकबुद्धकी संज्ञा नहीं दी। यह कथा दिगम्बर साहित्यमें मुझे श्रीचंद्रकृत कथाकोष, रामचन्द्रमुमुक्षुकृत पुण्याश्रवकथाकोष और नेमिदत्तकृत आराधना-कथाकोषमें भी देखनेको मिली हैं। वहाँ भी मेरी दृष्टिमें प्रत्येकबुद्धका उल्लेख नहीं आया। इस विषयका संस्कृतमें एक पूरा ग्रंथ मेरे देखनेमें आया है। वह है करकंडू चरित्र जिसे शुभचन्द्रने सकलकीर्तिकी सहायतासे संवत् १६११ में रचा था। यह ग्रंथ संस्कृत पद्यमें है और पन्द्रह सर्गोंमें समाप्त हुआ है। कर्ताने उसे ऐसे वचनोंसे प्रारम्भ और समाप्त किया है जिनसे जान पड़ता है कि वे एक स्वतंत्र ग्रंथ रचनेका दावा करते हैं। पर मैंने इस ग्रंथका कनकामरके ग्रंथसे मिलान किया तो विदित हुआ कि वह इसका अनुवाद मात्र है। मूल कथा तो पूरी वैसीकी वैसी है ही, अवान्तर कथाएँ भी वहाँ ज्योंकी त्यों विद्यमान हैं। कर्ताने सिद्धसेन समन्तभद्रादिका स्मरण तो अवश्य किया, पर जिसके काव्यको सामने रखकर वे कीर्तिके ग्राहक बने उसका कहीं कुछ उल्लेख करनेमें न जाने क्यों लजा गये ? इस ग्रंथमें भी प्रत्येकबुद्धका उल्लेख देखनेमें नहीं आया। रैधू, जिनेन्द्रभूषण भट्टारक और श्रीदत्त पंडितकृत करकंडूचरितोंका भी उल्लेख भंडारोंकी सूचियोंमें पाया जाता है।

इस बातकी खोज करनेकी आवश्यकता है कि दिगम्बर जैनियोंने उपर्युक्त चार प्रत्येकबुद्ध माने हैं या नहीं, तथा बौद्धों और श्वेताम्बरों, दोनोंने उन्हें ठीक उसी प्रकार कब और क्यों मान लिये।

करकंडुको इस अपूर्व मानतापर-से मुझे उनके समयके सम्बन्धमें कुछ अनुमान होता है। बौद्ध उन्हें महात्मा बुद्धसे पूर्व हुए स्वीकार करते हैं, और जैन उन्हें भगवान् पार्श्वनाथके तीर्थमें अर्थात् महावीर स्वामीसे पूर्व हुए मानते हैं। जिस महात्माके सम्बन्धमें दो तीन भिन्न-भिन्न धार्मिक सम्प्रदायोंमें समान आस्था हो उसे यह समझना आवश्यक है कि वह उन साम्प्रदायिक भेदोंके उत्पन्न होनेसे पूर्व ही हुए होंगे। अतः करकंडु महाराजको हम यदि पार्श्वनाथके तीर्थमें अर्थात् लगभग ईस्वी पूर्व ८०० से ५०० के बीच हुए मान लें तो अयुक्तिसंगत न होगा।

करकंडचरिउका उत्तरकालीन साहित्यपर प्रभाव

करकंडचरिउमें जो उसके नायक करकंडकी सिंहलद्वीपकी यात्रा, राजकुमारी रतिवेगासे विवाह, समुद्रमें करकंडुका वियोग, रतिवेगाको पद्मावती देवी द्वारा अरिदमनका दृष्टान्त सुनाकर पुनः मिलनका आश्वासन आदि घटना-चक्र पाया जाता है उसका पश्चात्कालीन साहित्यपर गम्भीर प्रभाव पड़ा प्रतीत होता है। उदाहरणार्थ, यहाँ जो करकंडुके सिंहलद्वीप जाकर वहाँकी राजकुमारी रतिवेगाका परिणय कर लौटनेकी घटना वर्णित है उसकी छाया जिनहर्षगणिकृत रयणसेहरी कहा (रत्नशेखरीय कथा—लगभग वि. सं. १४४५में रचित) में पायी जाती है जहाँ रत्नपुरके राजा रत्नशेखरके सिंघलकी राजकुमारी रत्नावलीपर मोहित होकर उसके विवाह करनेकी कथा वर्णित है। तत्पश्चात् हिजरी सन् ९४७ (ई. १५४०) के लगभग मलिक मुहम्मद जायसी द्वारा रचित हिन्दी काव्य *पद्मावतपर करकंडचरिउ एवं रयणसेहरी इन दोनों कथाओंका प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। सिंहलद्वीपकी राजकुमारी पद्मावतीके सौन्दर्यका वर्णन हीरामन तोतेके मुखसे सुनकर चित्तौड़का राजा रतनसैन उसपर मोहित हो गया और वह योगीका वेष बनाकर सिंहल पहुँचा, वहाँ महादेवके मन्दिरमें उसकी पद्मावतीसे भेंट हुई, दोनोंका विवाह हुआ, समुद्रमार्गसे लौटते हुए नौका विच्छिन्न हो गयी, दोनोंका वियोग हुआ और फिर उनका

मधुर मिलन हो गया। पद्मावतका यह कथानक करकंडचरिउमें वर्णित अरिदमन नरेशके आख्यानसे बहुत समता रखता है, एवं सिंहलद्वीपमें योगीके वेष व राजकुमारीसे मिलनका वृत्तान्त रत्नशेखरी कथासे मेल खाता है। करकंडचरिउमें जो अपभ्रंश काव्यकी घत्ता-कडवक छंदात्मक टकसाली रचना पायी जाती है उसी शैलीसे पद्मावतकी दोहा-चौपाई रूप हिन्दी रचनाका आविष्कार हुआ स्पष्ट दिखाई देता है। यह शैली हिन्दी काव्यमें बहुत लोकप्रिय हुई और तुलसीदास कृत रामायण द्वारा उसे बड़ा गौरव प्राप्त हुआ।

(देखिये – ही. ला. जैन : दी सोर्सेज़ आफ पद्मावत – मध्यभारती – २ जबलपुर वि. वि. १९६३)

तेरापुर और वहांके लयन [गुफाएँ]

ग्रंथकी चौथी और पांचवीं सन्धियोंमें करकंडु महाराजके तेरापुर पहुँचने, वहाँकी पहाड़ीमें एक गुफा और उसमें विराजमान पार्श्वनाथ भगवान्का दर्शन करने, गुफामें एक जलवाहिनी प्रकट कराने, तथा वहाँ तीन और गुफाओंके बनवानेका विशद वर्णन है। यदि कनकामरका वर्णन सच है तो ये गुफाएँ आज भी किसी न किसी रूपमें वर्तमान होना चाहिये ? पर उनका पता लगानेसे पूर्व तेरापुर कहाँ था इसका निश्चय होना चाहिए। करकंडु अंगदेशकी चम्पापुरीसे चोल, चेर आदि दक्षिणके राज्योंकी तरफ जा रहे थे तभी उन्हें तेरापुर मिला था। अतः दक्षिणापथमें ही उसे होना चाहिये। खोज करनेसे हैदराबाद राज्यके उस्मानाबाद जिलेमें एक 'तेर' नामक स्थान मिला है। यह उस्मानाबाद शहर जिसका अभी कुछ ही पूर्व धाराशिव नाम था, से बारह मील उत्तर पूर्वकी ओर है। वहाँ अब चौदह वाडियाँ (छोटे छोटे ग्राम) बसे हुए हैं। इसी 'तेर'को डॉक्टर फ्लीटने इतिहासप्रसिद्ध, प्राचीन तगरपुर ठहराया है। मेरा अनुमान है कि यही कनकामर कविका तेरापुर है। कविके दिये हुए वर्णन और इस स्थानकी परिस्थितिके सूक्ष्म मिलानसे इस अनुमानमें कोई सन्देह नहीं रहता। कनकामरके अनुसार करकंडु तेरापुरसे दक्षिणकी ओर जाकर ठहरे थे। वहाँसे कुछ दूर पश्चिमकी ओर एक पहाड़ीके चढ़ावपर उन्हें वह गुफा मिली। वहीं एक तालाबके होनेका भी उल्लेख है। आज भी ये सब बातें उसी प्रकार विद्यमान हैं। तेरके पास पहाड़ी भी है। उसकी बाजूमें गुफाएँ भी हैं। एक तालाब भी मौजूद है। इस तालाबमें कमल भी होते थे जो कुछ वर्षोंसे नष्ट हो गये हैं। अब वहाँकी गुफाओंका वर्णन देखिए। करकंडूने जिस गुफाके दर्शन किये उसे कविने 'सहसखंभलयन' कहा है। कवितामें सहस्रका अर्थ साधारणतः अनेक, बहुत-से जिनकी संख्या बिना सावधानीसे गिने न जानी जा सके, लेना चाहिए। वर्तमान प्रधान गुफा बड़ी विशाल है। इसका बरामदा अठहत्तर फुट लम्बा और साढ़े दस फुट चौड़ा है जिसमें पुराने सात-आठ खंभे रहे होंगे। एक बाजूमें कुंडवाला कमरा है जिसमें दो खंभे हैं। पाँच दरवाजे भीतर शालामें जानेके लिए हैं। यह शाला पचीस फुट लम्बी और लगभग उतनी ही चौड़ी चौकोर आकारकी है। यहाँ बत्तीस खंभे दोहरे चौकोर आकारमें हैं, बारह भीतरी चौकोरमें और बीस बाहरी। इस बृहत् शालाकी प्रत्येक बाजूमें आठ-आठ कमरे हैं जो प्रत्येक नव फुट चौकोर हैं। फिर गर्भ-गृह कोई बीस फुट लम्बा और पन्द्रह फुट चौड़ा है। यहाँ पाँच फुटकी पार्श्वनाथ भगवान्की काले पाषाणकी पद्मासन मूर्ति विराजमान है। इस गुफाको यदि कवि सहसखंभ कहे तो कोई बड़े आश्चर्यकी बात नहीं है।

कविने गुफाके भीतर एक जलवाहिनी प्रकट होनेका वर्णन किया है। जब करकंडुने गुफाकी मूर्तिके दर्शन किये तो सिंहासनपर उन्हें एक गांठ दिखी। उस गांठको उन्होंने तुड़वायी और वहाँसे एक भारी जलका प्रवाह निकल पड़ा। गुफाके भीतर अब भी जलकुंड है। जिस कमरेमें जलकुंड है वह सत्रह फुट लम्बा और बारह फुट चौड़ा है। इसी कमरेमें एक सप्तफणी नागसहित पार्श्वनाथ भगवान्की प्रतिमा है। दो पाषाण और भी हैं जिनपर भी जिनप्रतिमाएँ खुदी हैं। कमरेके भूतलमें दो छिद्र भी हैं जिनका सम्बन्ध कुंडसे है। जान पड़ता है, करकंडूके समयमें यही गर्भगृह था। वर्तमान गर्भगृहमें जो मूर्ति है सम्भवतः वही करकंडुको पहाड़ीके ऊपर वामीमें गड़ी हुई मिली थी। बड़ी शालाकी बाजूके कमरेमें भी जमीनमें एक छिद्र है जो सदैव पानीसे भरा रहता है। इससे कनकामर द्वारा वर्णित जलवाहिनीके प्रकट होनेकी बात भी सत्य प्रतीत होती है।

कविने कहा है कि जलवाहिनी प्रकट करानेसे पूर्व करकंडुने एक लयन चिनवायी और फिर विद्याधरके कहनेसे दो और लयन बनवायी। मैंने लयन चिनवानेका तात्पर्य मूलके प्रसंगानुसार 'पुरानी लयनकी मरम्मत करवाई' ऐसा लिया है। किन्तु यह भी संभव है कि जलवाहिनीसे समस्त गुफाके नष्ट हो जानेके भयसे करकंडुने पहले भी एक नयी ही गुफा निर्माण करायी हो और दो फिर पश्चात्। इस प्रकार पुरानी गुफा सहित चार गुफाएँ हुईं। ये ही चार गुफाएँ पहाड़ीके इस भागमें आजतक विद्यमान हैं। यदि करकंडु द्वारा बनवाई दो ही नयी गुफाएँ मानी जावें तो तीसरी गुफा किसीने और पीछे बनवायी होगी। इन सब गुफाओंमें जहाँ प्रतिमाएँ हैं वहाँ अधिकतः पार्श्वनाथ भगवान्की ही हैं, महावीर भगवान्की तो एक भी प्रतिमा नहीं है। इससे भी इस संस्थानके पार्श्वनाथ भगवान्के तीर्थमें निर्माण किये जानेकी बात पुष्ट होती है।

इस प्रकार सिद्ध होता है कि कनकामर द्वारा उल्लिखित तेरापुर यही 'तेर' है तथा करकंडुकी निर्माण करायी हुई गुफाएँ वर्तमान गुफाएँ ही हैं। इनके समीप जो धाराशिव नामका नगर बसा है, संभवतः उसका नाम इसी जलधाराके कारण पड़ा। करकंडुने तेरापुरके राजाका नाम शिव सुना था। शुभचन्द्रने तेरापुरके दो भिल्लों 'धारा' और 'शिव' नामधारियोंका उल्लेख किया है। यह भी सम्भव है कि वहाँ कोई शिवका मंदिर बननेसे वह नाम पड़ा। मूल गुफाके सामने जो आजकल शिवका मंदिर है वह बहुत प्राचीन नहीं है।

पहली गुफा किसने बनवायी ?

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि जिस प्राचीन गुफाको करकंडुने तेरापुरमें बनी पायी वह किसने बनवायी होगी। यह प्रश्न करकंडुको भी उपस्थित हुआ था और उन्हें एक विद्याधरने इसका उत्तर दिया था। सौभाग्यसे कनकामरने उसका वर्णन अपने ग्रंथमें किया है। विद्याधरने करकंडुसे कहा था कि दक्षिण विजयार्ध-में नील और महानील नामके दो विद्याधर भ्राता राज्य करते थे। शत्रुओंसे पराजित होकर वे वहांसे भागे और तेरापुर आये। यहां उन्होंने धीरे-धीरे एक राज्य स्थापित कर लिया। एक मुनिने उन्हें जैन धर्मका उपदेश दिया और उन्होंने फिर वह गुफा-मंदिर बनवाया। है तो यह पौराणिक कथा, किन्तु खोज करनेसे इसमें कुछ ऐतिहासिक तथ्य प्रतीत होता है। आठवीं शताब्दि और उसके पश्चात्के कई शिलालेखोंमें एक शिलाहार नामके राजवंशका उल्लेख मिलता है। इनकी तीन शाखाओंने क्रमशः उत्तर कोकण, दक्षिण कोकण तथा कोल्हापुरके आसपास राज्य किया। तीनों शाखाओंके राजाओंने अपने शिलालेखोंमें अपनेको 'जीमूत वाहन विद्याधरके वंशज' तथा 'तगरपुरके अधीश्वर' कहा है। इससे विदित होता है कि उनके पूर्वजोंने कभी तगरपुरमें राज्य किया होगा। तगरपुर वही 'तेर' व कनकामरका तेरापुर सिद्ध हो चुका है। अतएव शिलाहार वंशके सम्बन्धकी उक्त दो बातोंपर-से ऐसा प्रतीत होता है कि यह वंश सम्भवतः कनकामर द्वारा कथित नील महानीलसे ही चला। कथासरित्सागरमें वर्णन है कि जीमूतवाहन विद्याधरोंका राजा था। उसने एक बार अपने दान और त्यागकी बड़ी प्रशंसा की इसीसे वह पदभ्रष्ट हो गया। वहींपर दक्षिण विजयार्ध या वेद्यर्धका भी वर्णन है, और बताया गया है कि हिमाचल पर्वतकी दो श्रेणियां हैं, कैलाशसे उत्तरकी श्रेणी उत्तर वेद्यर्ध और दक्षिणकी दक्षिण वेद्यर्ध कहलाती है। कथासरित्सागरसे यह भी पता चलता है कि एक बार वत्सदेशके नरवाहनदत्त और विजयार्धके विद्याधरोंके बीच बड़ा घोर युद्ध हुआ था जिसके अन्तमें विद्याधर हार गये और नरवाहनदत्तके अधीन हो गये। सम्भवतः यही शत्रुबल था जिससे पराजित होकर नील और महानील विद्याधर दक्षिणको गये। पद्मगुप्तकृत नवसाहसांकचरित नामक संस्कृतकाव्यमें नर्मदाके दक्षिणमें एक विद्याधर राजकुलका उल्लेख है। इन विद्याधरोंने मालवाके सिन्धुराजकी सहायता की थी। इस प्रकार कनकामरकी कही हुई बातोंकी अन्य ग्रंथों तथा शिलालेखोंसे भी पुष्टि होती है। इससे अनुमान होता है कि संभवतः नील महानीलके वंशज हो शिलाहार वंशके नामसे प्रसिद्ध हुए, और या तो स्वयं नील महानीलने ही या उनके किसी वंशजने तेरापुरकी प्राचीन गुफा बनवायी। इतिहासमें पता नहीं चलता कि इस वंशका राज्य तेरापुरमें कब रहा। वह बहुत प्राचीन कालमें रहा होगा। इससे भी उन गुफाओंके पार्श्वनाथके तीर्थमें

बननेकी बात अयुक्ति-संगत सिद्ध नहीं होती।

जिस पार्श्वनाथकी मूर्तिको करकंडुने पहाड़ीके ऊपर वामीमें-से निकालकर गुफामें स्थापित की उसके संबंधमें कहा गया है कि दो अन्य विद्याधर उसे मलयदेशमें पूदी पर्वतपर रावणके एक वंशजद्वारा बनवाये हुए जिन मंदिरसे लाये थे। यह पूदी पर्वत संभवतः वर्तमान मालाबारके अन्तर्गत पोदियल नामकी पहाड़ी ही होगी।

करकंडचरिउकी भाषा

करकंडचरिउकी भाषा वही अपभ्रंश है जिसका इतिहास व स्वरूप अन्यत्र विस्तारसे प्रकट किया जा चुका है[1]। संक्षेपतः भाषाके सम्बन्धमें अपभ्रंश शब्दका सर्वप्राचीन उल्लेख महर्षि पतञ्जलि कृत महाभाष्य (ई० पू० द्वितीय शती) में पाया जाता है जहाँ उन्होंने कहा है कि एक-एक संस्कृत शब्दके बहुत-से अपभ्रंश होते हैं, जैसे एक संस्कृत शब्द गौके गावी, गोणी, गोता, गोपोतलिका आदि अपभ्रंश। यहाँ स्पष्टतः अपभ्रंशसे किसी भाषा-विशेषका तात्पर्य नहीं है, किन्तु संस्कृतके सभी विकृत या देश-प्रचलित रूपान्तरोंको अपभ्रंश कहा गया है। भरतने अपने नाट्यशास्त्र (ई० ३०० के लगभग) संस्कृत और देशीके अतिरिक्त 'विभ्रष्ट' भाषाका उल्लेख किया है जो आभीरोंकी बोली थी और जिसमें उकारकी बहुलता पायी जाती थी। भामह (६ ठी शती) ने गद्य व पद्य काव्यकी भाषाकी दृष्टिसे संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश इन तीन भेदोंमें विभक्त किया है। दण्डीने अपने काव्यादर्श (ई० ६०० के लगभग) में तथा भामहके तीन भेदोंमें मिश्र और मिलाकर चार भेद कहे हैं। तथा पतञ्जलि और भरतके मतोंका समन्वय करते हुए कहा है कि आभीर आदि जनोंकी बोलीमें जो काव्यरचना की जाती है उसे अपभ्रंश कहते हैं, किन्तु शास्त्र (व्याकरण शास्त्र) में तो संस्कृतके अतिरिक्त जो शब्द-रूपान्तर पाये जाते वे सब अपभ्रंश माने गये हैं। स्पष्ट है कि दण्डीके कालमें अपभ्रंश काव्य-रचना प्रचलित हो चुकी थी। इस काव्यरचनाने इतनी प्रतिष्ठा भी प्राप्त कर ली थी कि वल्लभीके नरेश धरसेन द्वि० (ई० ६००के लगभग) के सम्बन्धमें उनके एक ताम्रपत्रमें गर्वके साथ कहा गया है कि वे संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश इन तीनों भाषाओंकी प्रबन्ध-रचनामें निपुण थे।

छठी शतीमें अपभ्रंशकी इस प्रतिष्ठाके प्रकाशमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं जो गुप्त सम्राट् चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य (ई० ४०० के लगभग) के समकालीन महाकवि कालिदासने अपने विक्रमोर्वशीय नाटकके चतुर्थ अंकमें अपभ्रंशका भी प्रयोग किया हो। जैसा प्रो० वेलणकरने उक्त नाटककी प्रस्तावनामें सिद्ध किया है, नाटकके वे अंश प्रक्षिप्त माननेका कोई कारण नहीं है। शक ७०० (ई० ७७८) में रचित अपनी कुवलयमालामें अपभ्रंशका उल्लेख व यत्र-तत्र प्रयोग तो किया ही है, साथ ही उन्होंने यह भी स्पष्ट उल्लेख किया है कि उनसे पूर्व रचित कथामें कौतूहल नामक कविने भी किंचित् अपभ्रंशका प्रयोग किया था। यह कथा निस्सन्देह कोऊहल कृत लीलावती ही है जो अब प्रकाशित हो चुकी है (भा० वि० भवन, बम्बई १९४९) और जिसकी भाषाके सम्बन्धमें उसके विद्वान् सम्पादक डॉ० आ० ने० उपाध्येने कहा है, "Scrutinised from this point of view, we find in the dialect of Lilavati good many traits which are not usual in Prakrit or Maharashtri, but are quite normal in Apabhramśa as described by Hemacandra and as current in literature. (Intro. P. 84). अर्थात् इस दृष्टिसे छानबीन करनेपर हमें लीलावतीकी भाषामें ऐसे बहुत-से लक्षण मिलते हैं जो प्राकृत या महाराष्ट्रीमें साधारणतः नहीं पाये जाते, किन्तु उस अपभ्रंशमें वे सुप्रचलित हैं जिसका वर्णन हेमचन्द्रने किया है व जो साहित्यमें पायी जाती है। आठवीं शतीसे तो अपभ्रंश काव्यकी प्रौढ और सुविशाल

---

१. देखिए मेरी प्रस्तावना णायकुमारचरिउ, सावयधम्मदोहा व पाहुडदोहाकी, तथा नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भा० ५० अंक १–४, परमात्मप्रकाशकी प्रस्तावना डॉ० ए० एन० उपाध्ये कृत एवं जी० व्ही तगारे कृत हिस्टोरिकल ग्रामर आफ अपभ्रंश।

अनेक रचनाएँ प्राप्त होती हैं जिनके प्रधान महाकवि हैं स्वयंभू और उनके पुत्र त्रिभुवन, पुष्पदन्त, कनकामर, धनपाल आदि जिनकी रचनायें सुसम्पादित होकर प्रकाशित भी हो चुकी हैं।[1]

उक्त प्रकाशित सामग्रीके सद्भावमें यहाँ न तो अपभ्रंश साहित्यके इतिहासका और न उस भाषाके स्वरूपका विस्तारसे वर्णन करना आवश्यक है। केवल करकंडचरिउके एक कडवक मात्रके भाषात्मक विश्लेषण द्वारा यहाँ प्रयुक्त अपभ्रंशका संस्कृत-प्राकृतके साथ साम्य और वैशिष्ट्यका स्पष्टीकरण पर्याप्त होगा। इस कार्यके लिए ग्रंथका प्रथम कडवक ही ले लीजिए। पूरे कडवकमें हमें लगभग एक सौ भिन्न शब्द दिखाई देते हैं। इनमें मार, पुरि, वास, तिमिरहर, परम, विलय, चरण, करण, देव, सेव, पार, सार, बीज, रण, हरण, हंस, वारि, केवल, वास, वासव, सरोरुह, कमल, बंधु, बंधुर, गुण, रस, बहुल, सिन्धु, भव, भय, महा और फल, ये बत्तीस शब्द शुद्ध तत्सम हैं। जिन शब्दोंमें केवल 'न' के स्थानमें रूढ़ि अनुसार 'ण' उच्चारणसे भेद पड़ गया है वे हैं – विणास, लीण, विहीण, जिणवर, दमण, जण, णिवह, णिवास, णिरंजण, भंजण, मंडण, भुवण और णर ये तेरह शब्द। जहाँ केवल, या णत्वके अतिरिक्त, श या ष के स्थानपर दंत्य स हो जानेसे भेद पड़ गया है वे शब्द हैं – विणास, सिव, सरण और णिवास ये चार। जहाँ णत्व व सत्व रहित या सहित मध्य व्यंजनका लोप होकर य अथवा व श्रुति हुई है, या नहीं हुई वे शब्द हैं – पाव (पाय), दिणयर (दिनकर), पय (पद), अणुवम (अनुपम), कलिय (कलित), आविय (आपित), भुवंगम (भुजंगम), गइ (गति), रहिय (रहित), सुयण (सुजन), राय (राज), हंसोवम (हंसोपम), -यण (-जन), हुआसण (हुताशन), वारिय (वारित), संपय (सम्पदा), सय (शत), सेविय (सेवित), णिय (निज), समिच्छिअ (समिच्छित-इष्ट), ये बीस। जहाँ केवल, अथवा उपर्युक्त एक व अधिक विकारोंके अतिरिक्त संयुक्त व्यंजनका समीकरण व किसी एकका लोप हुआ है, एवं कहीं स्वरका ह्रस्व-दीर्घत्व आदि भेद पड़ गया है वे शब्द हैं – सरमि (स्मरामि), देविंद (देवेन्द्र), फणिंद (फणीन्द्र), णरिंद (नरेन्द्र), कम्म (कर्म), मंत (मंत्र), गह (ग्रह), कयंत (कृतान्त), कय (कृत), पसंस (प्रशंस), सासय (शाश्वत) और हियय (हृदय), ये बारह। जहाँ ख, घ आदि महाप्राणोंके स्थानमें ह का आदेश हुआ है वे शब्द हैं – सुह (सुख), महोवहि (महोदधि), पह (पथ), दुह (दुख), बुह (बुध), कोह (क्रोध) और होइ (भवति) ये सात। जहां स्वरभक्तिके द्वारा संयुक्त वर्णका सरलीकरण किया गया है वे शब्द हैं – सिरि (श्री), भविय (भव्य), और सुमरंत (स्मरन्) ये तीन। वर्ण–परिवर्तन णाण (ज्ञान) संजम (संयम) तथा घर (गृह) इन तीन शब्दोंमें दिखाई देता है। इस प्रकार ये ६२ शब्द तद्भव हैं। देशी केवल एक डरिय (पतित) कहा जा सकता है, क्योंकि वह किसी संस्कृत शब्दसे उत्पन्न नहीं प्रतीत होता। सामान्यतः इस कडवकको प्रमाण मानकर कहा जा सकता है कि करकंडचरिउमें लगभग तेतीस प्रतिशत शब्द तत्सम व उससे द्विगुणित तद्भव शब्द हैं, एवं देशी शब्द प्रायः एक प्रतिशत। इस प्रकरणमें यदि प्राकृतसे अपभ्रंशका कोई वैशिष्ट्य है तो यह कि यहां मध्य व्यंजन लोप एवं य और व श्रुतिका बहुलतासे प्रयोग पाया जाता है, जब कि शौरसेनीमें त के स्थानपर द एवं थ के स्थानपर कहीं-कहीं ध भी पाया जाता है, तथा सेतुबंध व गाथासप्तशतीमें प्रयुक्त महाराष्ट्रीमें मध्यव्यंजन लोप तो बहुलतासे अपभ्रंशके समान ही पाया जाता है किन्तु वहां य व श्रुतिका प्रयोग नहीं किया गया।

व्याकरणकी दृष्टिसे अपभ्रंशकी अपनी बहुत विशेषतायें है जो उसे संस्कृत और प्राकृत दोनोंसे पृथक् निर्दिष्ट करती हैं। उदाहरणार्थ, उपर्युक्त कडवकमें प्रयुक्त दो वाक्योंको ले लीजिए। प्रथम वाक्य है – 'सरमि चरणु सिरिजिणवरहो' दूसरा वाक्य है – 'तव चरण णमंतहो मणे सुमरंतहो होइ समिच्छिउ फलु णरहो'।

---

१. प्रकाशित व अप्रकाशित अपभ्रंश साहित्यके लिए देखिए हरिवंशकोछड़कृत अपभ्रंश साहित्य (दिल्ली, वि० सं० २०१३)

इनका संस्कृत रूपान्तर होगा 'स्मरामि चरणं श्रीजिनवरस्य' और 'तव चरणे नमतः मनसि स्मरतः भवति समिष्टं फलं नरस्य।'

इन वाक्योंपर-से ही हमें अपभ्रंशकी कारक-रचना तथा क्रियारूपोंकी कुछ झलक मिल जाती है। 'समिच्छिउ फलु' कर्ता कारक एक वचन है, और चरणु तथा चरण कर्मकारक एक वचन और बहुवचन। अतः कर्ता और कर्मकारक एकवचनकी विभक्ति 'उ' अपभ्रंशकी विशेषता है, जिसके कारण ही भरतमुनिने उसे उकारबहुल भाषा कहा है। इस विभक्तिका विकास संस्कृत स् = विसर्गसे हुआ है जो सघोष वर्णोंसे पूर्व संधिके नियमानुसार 'ओ' हो जाता है। प्राकृतमें यही 'ओ' कर्ता एकवचनकी विभक्ति बन गया। यही 'ओ' लघुप्रयत्नके द्वारा अपभ्रंशमें 'उ' हुआ है। दूसरी कारक विभक्ति ध्यान देने योग्य है षष्ठीका 'हो' जो उक्त वाक्योंके जिणवरहो, णमंतहो, सुमरंतहो व णरहो में दिखाई दे रही है। इसका विकास संस्कृतकी 'स्य' और उसके प्राकृत रूप 'स्स' विभक्तिसे हुआ है। 'मणे' में सप्तमीकी 'ए' विभक्ति है जो संस्कृत-प्राकृतके समान है। इसके स्थानपर 'म्मि' भी आती है जो प्राकृतमें भी पायी जाती है और संस्कृतकी 'स्मिन्' से विकसित हुई है। अन्य कारक विभक्तियाँ गौण हैं।

क्रिया रूप उक्त दो वाक्योंमें 'सरमि' और 'होइ' ये दो ही आये हैं। उत्तम पुरुष एकवचन वर्तमान कालिक 'मि' प्रत्यय संस्कृत व प्राकृतके समान है, और अन्य पुरुषका 'इ' संस्कृतके 'ति' में त् का लोप होकर बचा हुआ स्वर है।

इस प्रकार ग्रंथके अन्य खण्डोंका भी विश्लेषण करके देखनेपर हमें अपभ्रंशका वही स्वरूप प्राप्त होता है जो मैं णायकुमार चरिउकी भूमिकामें विस्तारसे दिखला चुका हूँ।

इस ग्रंथमें एवं अपभ्रंश रचनाओंमें अन्यत्र सर्वत्र एक यह बात ध्यान देने योग्य है कि जहाँ संस्कृतमें ए और ओ स्वर दीर्घ अर्थात् द्विमात्रिक ही हैं, वहाँ अपभ्रंशमें, विशेषतः प्रत्ययोंमें, वे ह्रस्व अर्थात् एक मात्रिक भी पाये जाते हैं जिन्हें प्रकट करनेके लिए उनकी मात्राओं एवं ए को इस संस्करणमें उलटे टाइपमें मुद्रित कराया गया है। यही एक मात्रिक ए और ओ कहीं-कहीं इ और उ का रूप धारण किये हुए हैं।

करकंडचरिउके छन्द

णायकुमारचरिउकी प्रस्तावनामें मैंने उसके छन्दोंका विस्तारसे परिचय करा दिया है, तथा मयणपराजयचरिउकी भूमिकामें उसके छन्दोंके अतिरिक्त वैदिक व संस्कृत छंदोंके विकासका भी कुछ निर्देश किया है। इनमें अपभ्रंश काव्योंमें बहुलतासे प्रयुक्त प्रायः सभी छन्दोंका विवरण आ गया है। करकंड-चरिउमें प्रयुक्त अधिकांश छन्द भी उन्हीमें-से हैं अतः उनका यहाँ संक्षिप्त उल्लेख ही पर्याप्त होगा।

करकंडचरिउकी दश संधियोंमें क्रमशः १७ २१, २२, १७, १९, १६, १६, २०, २४ और २९ कुल २०१ कडवक हैं। इनमें निम्नलिखितको छोड़कर सबमें पज्झटिका छंद प्रयुक्त हुआ है जिसके प्रत्येक चरणमें सोलह मात्राएँ होती हैं, अन्तमें जगण अर्थात् लघु, गुरु और लघु मात्रायें आती हैं, एवं प्रत्येक दो चरणोंमें परस्पर यमक (तुक मिलान) होता है। अन्य जो छन्द प्रयुक्त हुए हैं वे निम्नप्रकार हैं—

२ अलिल्लह—यह छन्द पज्झटिकाका ही एक रूप है जिसमें मात्राओंकी संख्या व तुक उसी प्रकार रहती है। विशेषता केवल यह है कि अन्तमें गुरु लघु मात्रायें न होकर दोनों ही लघु होती हैं। ऐसे एक-एक दो-दो यमक अनेक कडवकोंके बीच पाये जाते है जैसे–१, १, ६; १, २, २-३; २, १०, १-२; २, १०, ६; २, १४, ४; २, १५, ४; २, १९, ७; ३, ३, ६; ३, १९,४; ६, १५, १; १०, २९.

३ पादाकुलक—यह भी पज्झटिकाका एक प्रकार है जिसमें १६ मात्रायें और यमक तो उसी प्रकार होता है, किन्तु उसकी अन्तिम मात्राओंके लघु-गुरु होनेका कोई नियम नहीं अतएव जिनमें पज्झटिका व अलिल्लहके पूर्वोक्त नियम घटित नहीं होते। इसका प्रयोग निम्न पद्योंमें

पाया जाता है – १, ५; २, ७, १-३; २, १६, ५; ३, ४, २-३; ३, २०; ३, २१, १; ३, २१, ३-८; ३, २२, १-३; ४, १४, १; ४, १५, ८; ५, ९, १-७; ५, १०; ५ १३; ६, ५, ६; ७, ५, १; ७, १४; ८, १९, १; ९, ५; १०, १; १०, ६; १०, ९; १०, १५, १-३.

इसमें बहुधा चरणकी अन्तिम मात्रा यद्यपि लघु दिखाई देती है, तथापि छन्दकी दृष्टिसे उसे गुरु ही मानना पड़ता है। अलिल्लह और पादाकुलकका यह भेद इतना सूक्ष्म है कि कहीं-कहीं एक ही यमकका प्रथम चरण अलिल्लह और द्वितीय पादाकुलक पाया जाता है; जैसे—९, ५, ४।

४ समानिका – यह वर्णात्मक चरणोंवाला यमक सहित वर्णवृत्त है जिसकी गण-व्यवस्था है – र ज ग ल है। इसका प्रयोग १-७; १-८; १-१२; १-१३; १-१७ (आधा) ३-१७; ५-१; ७-१०; ८ ५; और १०-१७ कुल १० कडवकोंमें पाया जाता है।

५ तूणक – इस छन्दका प्रत्येक चरण समानिकाका द्विगुणित होता है, किन्तु अन्तमें गुरु-लघु न होकर मात्र एक गुरु वर्ण ही होता हैं जिससे प्रत्येक चरणमें वर्णोंकी संख्या सोलह न होकर पन्द्रह ही रह जाती है। इसका प्रयोग १-१७के अन्तिम पाँच यमकोंमें किया गया है।

६ स्रग्विणी – यह भी वर्णवृत्त है जिसके प्रत्येक चरणमें बारह वर्ण चार रगणके रूपमें रखे जाते हैं। इसका प्रयोग ३-१४ और ८-२ इन दो कडवकोंमें हुआ है।

७ दीपक – इसके प्रत्येक चरणमें दश मात्रायें होती हैं और अन्तमें लघु मात्रा आती है। प्रयोग ३-१५; ३-१८; ५-११; ९-७ और ९-२० इन पाँच कडवकोंमें देखिये।

८ सोमराजी – इस वर्णवृत्तके प्रत्येक चरणमें छह वर्ण य य गणानुसार पाये जाते हैं। इसका प्रयोग ४-१६ व ८-४ इन दो कडवकोंमें पाया जाता है। इस छन्दका दूसरा नाम संखनारी भी है।

९ भ्रमरपदा या भ्रमरपद्दा – यह एक षट्पदी गेय छन्द है जिसके प्रत्येक चरणमें चौबीस मात्राएँ होती हैं तथा १० और १८ मात्राओंपर यति। इसका प्रयोग ७-११ में करुण रसात्मक विलापके लिए बहुत उपयुक्त रूपसे किया गया है। इस छन्दका नाम मुझे नयनन्दि कृत सुदंसणचरिउमें मिला जहाँ उसका प्रयोग ८, २६ तथा ११, ६ में पाया जाता है।

१० चित्रपदा – इस वर्णवृत्तके प्रत्येक चरणमें आठ वर्ण दो भगण और दो गुरुके रूपमें पाये जाते हैं। इसका प्रयोग ८-३में देखिये।

११ प्रमाणिका – इस वर्णवृत्तके प्रत्येक चरणमें आठ वर्ण ज र गण और दो गुरुके क्रमसे आते हैं। प्रयोग ९-३में देखिये।

१२ चन्द्रलेखा – यह विषमपदात्मक छन्द है जिसका प्रथम चरण सोलह मात्रिक पद्धडिया होता है और उसका यमक पद्धडियाके आधे अर्थात् आठ मात्राओंके द्वितीय चरणके साथ बैठाया जाता हैं। इसका प्रयोग १०-२६ कडवकमें देखिये। इसका नाम भी मुझे नयनन्दिकृत सुदंसण चरित्रमें मिला जहाँ इसका प्रयोग २-९ और १०-७में आया है।

१३ घत्ता – यह छंद विविध प्रकारका होता है, और उसका प्रयोग प्रत्येक कडवकके अन्तमें किया जाता है। एक संधिमें वह प्रायः एक रूप ही रहता है और इसीलिये वह ध्रुवक कहलाता है। प्रस्तुत ग्रंथकी प्रत्येक संधिके प्रारम्भमें एक-एक ध्रुवक पाया जाता है। प्रथम संधिका ध्रुवक व घत्ता षट्पदी है जिसके प्रत्येक चरणमें ३१ मात्रायें हैं तथा १० और १८पर यति है।

शेष समस्त संधियोंका ध्रुवक चतुष्पदी है और चरणके बीच पन्द्रह मात्राओंके पश्चात् यति पायी जाती है। परन्तु कहीं-कहीं घत्ता ऐसे भी आये हैं जिनमें प्रथम यति तो १५ मात्राओंपर ही है, किन्तु दूसरे चरण-भागमें १२,१३ या १४ मात्रायें ही हैं; १५ या १६ नहीं। उदाहरणार्थ, देखिये, ९-४; ९-६; ९-७; ९-१०; १०-७ आदि कडवकोंके घत्ते।

INTRODUCTION

CRITICAL APPARATUS

In preparing the present edition of Karakaṇḍacariu the editor has fully collated four MSS. (DJNS) and has consulted one recent MS (J2). They are as follows :

MS. D. This ms. is deposited in Bābā Dulichand's Bhanḍār in the Terāpanthi Digambara Jaina temple of Jaipur. It was collated on the spot. Leaves 61; size 10½" × 4¾" ; lines per page 12; letters per line about 37; margin right and left 1¼", top and bottom ¾". Leaves No. 12 and 60 as well as 62 on which the colophon was obviously continued are missing. The incomplete colophon is as follow :

॥ छ ॥ समाप्तमिदं करकण्डचरित्रं ॥ छ ॥ छ ॥

संवत् १५९७ वर्षे शाके १४६१ प्रवर्तमाने दक्षिणायने श्रीसूर्ये फाल्गुणमासे कृष्णपक्षे द्वादश्यां तिथौ रविवारे मूलनक्षत्रे श्रीमूलसंघे नंद्याम्नाये बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे श्रीकुंदकुंदाचार्यान्वये भट्टारक श्रीपद्मनन्दि-देवास्तत्पट्टे भ० श्री शुभचन्द्रदेवास्तत्पट्टे भ० श्री जिनचन्द्रदेवास्तत्पट्टे भ० श्री प्रभाचन्द्रदेवास्तच्छिष्यमंडलाचार्य श्री धर्मचन्द्रदेवास्तदाम्नाये खंडेलवालान्वये गोधागोत्रे साहानांदा तद्भार्या नयणश्री तत्पुत्र साह मेहा तद्भार्ये द्वे प्रथमा मेहादे द्वितीया सुहागदे तत्पुत्रौ द्वौ प्रथम साहकरमा....(Incomplete)

From this we learn that the ms. was completely copied on Sunday the 12th of the dark fortnignt of the month Phālguna in samvat 1597 equivalent to A.D. 1540, for a layman of the Khandelwal caste and Godhā gotra whose spiritual genealogy was as follows :

Kundakundācārya
⋮
Padmanandi
|
Śubhacandra
|
Jinacandra
|
Prabhācandra
|
Dharmacandra (A.D. 1540)

MS. J. This ms. belongs to the Pātodi Digambara Jaina temple of Jaipur. Leaves 68; size 10" × 4½" ; lines per page 11; letters per line about 36; margin right and left 1", top and the bottom ½". Leaf No. 19 which contained Kaḍavakas 18, 19, 20 and a part of 21 of Sandhi 3 is missing. It bears the following colophon :

॥ छ ॥ संवत् १५५८ वर्षे कार्तिक वदि तीज ३ बुधवासरे आर्द्रनक्षत्रे श्री मूलसंघे बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे श्रीकुंदकुन्दाचार्यान्वये भट्टारकश्रीपद्मनन्दिदेवाः तत्पट्टे भट्टारकश्रीजिनचन्द्रदेवाः तत्पट्टे भट्टारक-

श्रीदेवेन्द्रकीर्तिदेवाः तत्पट्टे भट्टारकश्रीविद्यानन्दिदेवाः तत्पट्टे भट्टारकश्रीसिंघकीर्तिदेवाः तत् शिष्य ब्रह्मचारि..... स्वहस्तेन लिखितं कर्मक्षयार्थम् । शुभं भवतु ॥ छ ॥ श्री ॥ ज्ञानवान् ज्ञानदानेन etc.

From this colophon we learn that the ms. was copied on Wednesday the 3rd of the dark fortnight of the month of Kārttika in Samvat 1558 equivalent to 1502 A. D., by a pupil of Bhaṭṭāraka Simhakirti for whom the following genealogy is given :

Kundakundācārya
⋮
Padmanandi
|
Jinacandra
|
Devendrakirti
|
Vidyānandi
|
Simhakirti (A. D. 1551)

MS. N. This is a ms. acquired by the editor during one of his tours in search of mss. Leaves 87; size 10″ × 4¼″; lines per page 9; letters per line about 32; margin right and left 1¼″, top and bottom ¾″. The first and the last leaves are missing as also leaves Nos. 15, 73 and 75. Leaves Nos. 25, 26 and 60 are written in a different hand on different paper. These seem to have been substituted later in place of the leaves worn out or lost. It is an important ms. as it has supplied many variant readings and a few additional lines which have been given in the present edition in foot-notes. No colophon is available as the ms. goes only upto almost the end of Kaḍavaka 28 of the 10th Sandhi. But in appearance it seems to be of the same age as mss. D. and J.

MS. S. This ms. belongs to the Senagaṇa Bhanḍār of Kāranjā. It was the earliest to be discovered by the editor and forms the basis of the present edition. Leaves 103; size 11″ × 5″ ; lines per page 8; letters per line about 35; margin right and left 1¼″, top and bottom 1″. It is written in a bold and beautiful hand and is well preserved. It bears Sanskrit and Vernacular glosses on the margin. Unfortunately, it gives no information about its date or place of copying. But it appears to me to be some what later in age than the mss. D and J. It ends as follow :

समाप्तमिदं करकंडचरित्रं ॥ छ ॥ छ ॥ श्री ॥ श्री ॥

MS. J2. This ms. belongs to Ailak Pannālal Saraswati Bhavana of Bombay. Leaves 51; size 12½″ × 7¾″; lines per page 13, letters per line about 40; margin right and left 2″ top and bottom 1″. It bears the following colophon :

समाप्तमिदं करकंडुचरित्रं । श्लोक संख्या १७०० ॥ हस्ताक्षराणि अजमेरागोत्रोत्पन्न फूलचन्द्रेण जयनगरमध्ये लिखितमिदमस्ति । संवत् १७७८ मिति कातिक कृष्णाऽष्टमी चन्द्रवासरे लिखितम् ॥ शुभं भूयात् । कल्याणमस्तु ।

From this we learn that the copy was completed by Phoolchand Ajmera on Monday the 8th of the dark fortnight of Kartika in Samvat 1978 equivalent to 1921 A. D. at Jaipur. Thus, it is only thirteen years old. On examination I found out that it was copied from ms. J with which it agrees throughout and omits the portion contained in the missing leaf of the former. The copy is a very poor performance being full of mistakes and omissions. It is a telling example of how old literature can not now be well preserved by means of copies made by persons who have absolutely no knowledge of the language. I did not think it worth while to take down variants from such a second hand, recent and ill-executed ms. though I went through it and tried to check the readings of ms J. from it.

SUMMARY OF KARAKAṆḌACARIU

I. The poet begins the work by proclaiming victory to Jina and expressing his own humility and memory of the writers of yore like Siddhasena, Samantabhadra, Akalaṅka, Jayadeva, Svayambhu and Pushpadanta. Then the story begins. In the Jambudvīpa and Bharata-kshetra there was the beautiful country of Anga in which was situated the prosperious city of Campā. Its powerful and righteous king Dhādivāhana once went to Kusumapura and saw there a beautiful girl brought up by a gardner who told him that he recovered her from a box found floating in the Ganges by his wife. The king examined the box closely and learnt from the inscription on the seal that she was the daughter of Vasupāla king of Kausāmbi and that her name was Padmāvati. He then married her and returned with her to his capital. In due course she became pregnant and entertained a desire to dress herself like a man, and ride about the town on an elephant in drizzling rain in the company of her husband. It was summer but arrangements to satisfy her longing were made by the aid of the rain-deity (Meghakumāra). Unluckily, the elephant on which the royal couple was riding suddenly became restive and ran away towards the forest. The queen prevailed upon the king to save himself by catching hold of the branch of a tree and leave her to her own fate. The elephant, with the queen on its back, reached a deep lake where the queen jumped off and entered the forest which was dry and deserted. Suddenly, however, the forest became green and full of blossom. This extraordinary event was reported to the forest-guard in Dantipura, who instantly came there and met the queen resting under a tree. He addressed her as his sister and induced her to accompany him home. But there the gardener's wife Kusumadattā became jealous and apprehensive of her beauty and soon found out an excuse to drive her away. The queen bent her way to the cemetery where she gave birth to a son.

II. No sooner was the child born than a certain Mātanga appeared there and attempted to take the child away. Being challenged by the mother he told her that he was in reality a Vidyādhara of the Vijayārdha mountain. Once he was

out for a joy-ride in his aerial car with his wife, when his car suddenly stopped. While investigating the cause of the interruption, he saw below him a sage absorbed in meditation. Taking him to be the cause, he got very angry and drew out his sword to kill him. But the sage cursed him as a result of which he lost his Vidyā. Being softened by his importunities, however, the sage modified his curse by the rider that he would regain his Vidyā when Padmāvati's son, born in the cemetery and brought up by himself, will acquire the throne of Dantipura. This, he said, was the reason why he was taking the child away with him. The queen consented and the Mātanga brought the child home and handed it over to his wife saying that it was her child. Padmāvati, in her double bereavement, joined a nunnery and took vows from sage Samādhigupta. The child grew in the home of the Mātanga who, having observed dry scab on his hand, gave him the name of Karákaṇḍa. He instructed him in all arts and sciences and illustrated to him the benefits and evils of good and bad company by means of stories. One day the king of Dantipura died leaving no natural heir to the throne behind. The ministers of the state applied a divine method for selecting the king. They released an elephant with a jar full of water in its trunk and charged it to empty the jar over him who may be destined to be the king. The elephant passed through the town, came to the cemetery and emptied it over the head of Karakaṇḍa. When the citizens were bewailing their lot and the ministers were hesitating to acknowledge a Mātanga as their prince, the guardian of Karakaṇḍa, having regained his Vidyā, appeared on the scene in all his glory and assured them all about the high parentage of the lucky boy who was then hailed with joy by all.

III. Karakaṇḍa was then led into the capital on an elephant with all the paraphernalia of royalty and was installed king. One day, while passing through the town, he saw a man carrying female portrait in his hand. At its sight Karakaṇḍa became enamoured. He learnt from the man that the portrait was of the daughter of Ajavarmā, king of Girinagara, in the Soratha country, and that her name was Madanāvali. She had heard the glories of king Karakaṇḍa sung by the Khecaras and had become love-sick. Her father had sent him in search of the object of her love. On hearing this the king revealed his identity and despatched reliable persons to bring Madanāvali whom he subsequently married. During the marriage-celebrations his mother paid a visit to him.

Soon after the marriage, there arrived a messenger from the king of Campā who claimed homage from Karakaṇḍa. In wrath, the latter dismissed the ambassador and led an invasion against Campā. He crossed the Ganges and besieged the capital of his enemy. A fierce battle ensued during which victory swung now to one side and now to another, till the forces of Karakaṇḍa were completely routed. Karakaṇḍa then recalled the Vidyā which was imparted to him by his god-father, the Mātanga-Vidyādhara, and began to deal personally with his

powerful opponent. At a critical stage of the combat his mother Padmāvati suddenly appeared and turned the battle-field in to a scene of family affections. The father embraced the son and led him into his capital with rejoicings. He subsequently renounced the kingdom in favour of his son in order to lead an ascetic life and attain salvation.

IV. Having consolidated all his dominions Karakaṇḍa once asked his minister whether there was any person who did not acknowledge his suzerainty, and on being told that the Coda, Cera and Pandya kings of the South did not pay homage to him, he sent an ambassador to those kings. He was, however, dismissed with scant courtesy by them. In warth, Karakaṇḍa took a vow that either he would place his foot on their heads or renounce the world. He then marched out with a vast army and reached Terāpura. He halted in the vicinity of the town. The king of the place called Siva came to pay him a friendly visit. From him Karakaṇḍa learnt that on a hill to the west of that place there was a cave-temple of a thousand pillars and on the top of the hill there was a huge anthill which was regularly worshipped by an elephant. Being struck with curiosity, Karakaṇḍa accompanied by Siva, mounted the hill on the slopes of which he found the cave containing a Jina image. Climbing further to the top he saw the anthill and in his very presence an elephant came which fetched water and lotuses from the neighbouring lake and worshipped the anthill. ' Karakaṇḍa amused himself by the scenery of the beautiful lake and then caused the anthill to be excavated. Exactly as he had anticipated, an image of Pārśvanātha flashed forth from the deep. The king conveyed it to the cave where, on the lion-seat, he noticed a patch. On inquiry from an old artisan of the town he learnt that it was the mouth of a fountain of water. His curiousity was aroused. He caused the patch to be scraped off and, lo ! water gushed forth with great force, and filled the whole cave. The king became repentant fearing the destruction of the cave-temple. The guardian Vidyādhara of the cave, however, appeared and consoled the king,

V. On inquiry by the king as to who built the cave-temple, the Vidyādhara informed him as follows. In the city of Rathanepura situated in the Southern Vijayārdha there ruled two brothers Nila and Mahānila. Being pressed by enemies they fled and came to Terāpura where they gradually built a kingdom. They were converted to Jainism by a Muni and excavated the cave-temple dedicated to Pārśvanātha. At this time, another two Vidyādhara brothers from the Northern Vijayārdha made a religious trip to Lankā. On their way, they saw a beautiful Jina temple on the Pudi hill in the Malaya country and from there they picked up a fine Jina image. While returning home they temporarily deposited the image on the Terāpura hill and went for worship into the Jina temple. On their return they tried to lift up the image but it would not move. Seeing no other way, they buried the image in a box at the very spot. Later, they learnt from a sage that the place where they had left the image was destined to become a holy spot and that one of the brothers in his next birth will gain enlightenment there. At this

information the brothers renounced the world and became ascetics. Amitavega, the elder, by his holy practices, died and attained heaven ; while the younger, Suvega, spoiled his religious austerites by hypocracy as a result of which he was born an elephant in the next birth. Amitavega came to know of the misfortune of his younger brother, reminded him of his fate and preached religion to him. Thus the elephant became a worshipper of the holy spot where they had buried the image. Later, when he found that the image was removed from there he took sanyāsa and went to heaven after death. The Vidyādhara then advised Karakaṇḍa to construct one more cave on the upper side of the previous cave. Karakaṇḍa more than fulfilled this pious wish of the Vidyādhara by excavating two more caves.

While Karakaṇḍa was yet encamping there, a wild elephant came to drink water from the lake. Catching the smell of the army-elephants, it advanced towards the camp which was atonce thrown into a tumult. The king came out with his arms but the elephant suddenly vanished out of sight. Returning to his camp he found, to his utter amazement, Madanāvali missing. The search that followed proved futile. In his overwhelming sorrow, he was consoled by a Sura who told him the story of his former birth. He had a pet parrot which was once attacked in its cage by a snake. That snake was reborn as a Vidyādhara who had now assumed the form of an elephant and stolen his wife from him. He, however, assured the king that he would regain her when he returned from his victorious campaign. The Sura revealed his own identity as no other than the king's parrot in his former birth. The king doubted the possibility of his ever regaining Madanāvali and to remove his doubts the Vidyādhara cited the example of Naravāhanadatta whose story is told in the next chapter.

VI. This chapter is entirely taken up by the story of Naravāhanadatta told by the Vidyādhara to Karakaṇḍa.

VII. The Vidyādhara then advised Karakaṇḍa to march away immediately as he had observed a good omen. Accordingly, the king marched away and reached the Simhala island. He encamped in the vicinity of the capital and went into the neighbouring woods for sport. He saw a big bunyan tree of which he pierced all the leaves by means of his shots. This fact was reported to the king of the place who thereupon desired to see him. But Karakaṇḍa would not care to visit his palace unless the king came personally to invite him. So the king himself came out and conducted Karakaṇḍa to his palace where he met princess Rativegā who instantly fell in love with him. They were then married. Taking leave of his father-in-law Karakaṇḍa, with his new wife and large dowries, sailed off. During the voyage, they encountered a sea-monster which threatened their boat. The king drew forth his sword and jumped into the sea. He succeeded in killing the monster but was himself carried away by a Vidyādhari. His disappearance caused a great commotion in the boats. To the young bride it was a great

shock and she burst forth into heart-rending lamentations. The minister who was on board consoled all and brought them to the shore where they all encamped. Rativegā devoted herself to the worship of goddess Padmāvati who appeared in person and informed her of the fate of her lord who had been taken by the Vidyādhari to Tilakadvīpa and had been married by her. He had also shown great valour in killing the enemy of the Vidyādhari's father and in recognition of this achievement all the Vidyādharas had accepted him as their master. The goddess then assured Rativegā that her lord will return to her with a large fortune. On Rativega's expressing her doubts about the truth of the forecast, the goddess set forth to illustrate her prophecy.

VIII. Rativegā asked the goddess to tell her whether any person who had gone away like her husband had ever come back. On this the goddess narrated to her the story of king Aridamana, and saying that, like him, her husband will also soon return, she went away. Rativegā, thence forward, passed her time in the practice of religious vows and alms-giving, till, one day, Karakaṇḍa arrived there with his new wife. After passing a few days there in merry-making he resumed his course of conquest of the Draviḍa country. He defeated the Coda, Cera and Pandya kings in an open fight, took them prisoners, and, as promised, touched their crowns with his foot. But when he saw Jina-images on the tops of the crowns, he felt remorseful, released the prisoners and offered to reinstate them in their kingdoms. But the latter replied that their sons would, thence forward, serve him, and retired to forest for penance. Karakaṇḍa, then turned his way back and came to Terāpura where Madanāvali had been abducted. There, the Vidyādhara brought her back to him and recounted to him the events of his past lift-how he, as a serpent, had attacked his pet parrot, but was warded of by him, and how he, being subsequently crushed under the hoof of a horse, was imparted the Navakāramantra by a sage as a result of which he became a Vidyādhara and avenged himself by abducting his past enemy's wife. He then bowed down to the king and asked for pardon. The Vidyādhara then went his way and the king retnrned to Campā where he ruled happily for many days.

IX. One day, when the king was sitting in the assembly, the forest-guard came and reported the arrival of sage Sīlagupta. Hearing this, the king rose from his seat to honour the auspicious report, and then caused the happy news to be proclaimed in the capital by beat of drum. He then marched out in a procession for paying homage to the holy guest. On his way, he saw a woman piteously weeping and woefully beating her breasts. On inquiry, he learnt that the sorrow for her child which was snatched away by the hand of Death had brought about the wretched condition in the woman who was once so happy. This account aroused feelings of renunciation in the mind of the king who then began to brood over the frailty of the mortal world, the miseries of existence, the helplessness of man and such other problems of life. In this contemplative

and pious mood, he reached the sage whom he honoured and from whom he received a religious sermon.

X. At the end of the sermon, the king asked the sage the reason why his hand had dry scab when the rest of his body was so comely, why his mother was carried away by the elephant and thus separated from his father who loved her so deeply, and why his own wife Madanāvali was abducted by the Vidyādhara. In answer to the first question the sage said that in Terāpaṭṭana there once lived a pious merchant Dhanamitra. His cow-boy, while looking out for the buffaloes one night, saw an extraordinarily big and beautiful lotus in a lake. He plucked it, but while walking away with it, he was interrupted by a Sura who told him that since he had plucked a flower which was inaccessible even to gods, he should offer it at the feet of one who may be the highest and most worshipable being on earth, failing which he would be killed. Dhanadatta agreed to this and thought his master who was respected by all people to be worthy of the flower. But when he approached his master and told him about his intentions, the latter took him to the king thinking him to be more worthy. But when the king was approached, he thought sage Yaśodhara to be worthier. The latter himself, when approached, directed them to Lord Jina as the worthiest of all. Dhanadatta then worshipped the Jina with that flower as a result of which he was born the son of the king of Campā in Karakaṇḍa's person, and since he performed the worship without washing off the slime from his hands, he had inherited the dry scab.

As to his second question, the sage said that in the city of Srāvasti there once lived a merchant named Nāgadatta whose wife Nāgadattā became faithless to him and seduced a Brāhmana boy, who was brought up in the family, to make love with her. The merchant came to know of her faithlessness and retired to forest in sheer disgust. He practised penance, attained heaven and was reborn as the son of king Vasupāla of Campā and was named Dhāḍīvāhana. In the mean-while, the Brāhman boy, having lead the life of a debauch, died and was reborn as an elephant in the country of Kaliṅga. Nāgadattā, through her faithlessness, was reborn in Tāmralipti and in due course, became the wife of a merchant named Vasumitra. She got two daughters Dhanavati and Dhanaśri who were married to two merchants in Nālandā and Kauśāmbi respectively. Vasumitrā died and the widowed Nāgadattā went to live with her younger daughter who induced her to take the vow of not dining at night. Subsequently she went to her elder daughter who caused her to break the vow. In this way she took the vow thrice and thrice was it broken. However, she visited her younger daughter the fourth time, died there and was reborn as the daughter of king Vasupāla of Kauśāmbi, who, considering her birth to be inauspicious, put her in a box and threw her into the Jumna, whence it was carried into the Ganges and recovered by the gardener of Kusumapura. She grew up and became Padmāvati the mother of Karakaṇḍa.

In reply to the third question of the king, the sage repeated the story of the parrot and the snake which had already occurred twice before (V, 18; VIII, 20).

On hearing all this, Karakaṇḍa became disgusted with the world. At this stage, his mother Padmāvati also arrived there and the sage gave her a discourse on the religious efficacy of fasting during the course of which he narrated the story of Sumitrā who subsequently became Arjuna. Padmāvati took the vow and, in due course, attained heaven. Karakaṇḍa also relinquished the throne for his son Vasupāla and became an ascetic. His many wives followed suit and attained heaven. Karakaṇḍa toured through many countries, practised severe penances, acquired omniscience and shaking off the mortal coils attained ever-lasting bliss.

THE INTERVENING STORIES AND THEIR SOURCES

The bulk of the present work is considerably increased by no less than nine independent stories, short and long, introduced to illustrate some point in the main story. Four of these are recited by the god-father of Karakaṇḍa in order to explain to him the fruits of magic skill,[1] the penalty of ignorance,[2] the evil consequences of low company[3] and the advantage of noble company.[4] These stories are brief and occupy no more than four kaḍavakas each. They seem to have been taken from folk-lore. The story of the appearance of the elephant in Sandhi V, 14, and its onslaught on Karakaṇḍa's forces reminds us of the story of Priyaṃvada who, in the form of an elephant, rushed upon the army of Aja on the bank of the Narmadā in the Raghuvaṃśa of Kālidāsa, canto V. The story of Naravāhandatta, recited by a Vidyādhara in order to assure Karakaṇḍa how he might still hope to get back his lost wife, occupies the whole of the sixth Sandhi. Naravāhanadatta, as we know, is the hero of the Kathā-sarit-sāgara of Somadeva, the Brihat-kathā-manjarī of Kshemendra and the Brihat-kathā-śloka-saṃgraha of Buddhaswāmi. Our story is in substantial agreement with the account found in those works, though it varies in detail from them about as much as they differ among themselves. It appears, our author had used some version of the Brihat-kathā of Guṇāḍhya. The episode of Madanāmara of this story being turned into a parrot by the curse of a sage's daughter[5] reminds us of a similar incident occurring in the Kādambari of Bāṇa, which is itself based on the Brihat-kathā, where Mahāśvetā turned Vaiśampāyana into a parrot for a similar indiscretion due to the madness of love. Within the framework of the story of Naravāhanadatta, we have the interesting story of Mādhava and Madhusūdana[6] recited by a sage to the hero in order to illustrate the evil results of revengeful feelings. Current fiction seems to be the source of this story, as well as of the story of a good omen[7] which follows the story of Naravāhanadatta from the mouth of the same Vidyādhara. Another long story is that of Aridamana[8] which is told by goddess Padmāvati to Ratived in her

1. II, 10-11. 2. II, 13. 3. II, 14-15. 4. II, 15-18. 5. VI, 12. 6. VI, 4-7. 7. VII, 1-4. 8. VIII, 1-16.

separation from her husband. It occupies almost the whole of the eighth Sandhi. It is an interesting legend of a sea-voyage, fondering, separation, and ultimate reunion. The account of the parrot at the beginning of this story atonce reminds us of the parrot which was introduced to king Śūdraka in Bāṇa's Kādambari. The big Śālmali tree full of nests, the party of hunters and the parrot's reaching the residence of ascetics and acquiring knowledge of the Śāstras, strike one as similarly described in both. The story also occurs in the Kathā-sarit-Sāgara X, 3. and must have been present in Guṇāḍhya's Brihat-Kathā from where Bāṇa borrowed his theme. The method of escape of the parrot, however, is different in the present work. While the parrot in Kādambari was yet very young and escaped by the oversight of the fowlers, our parrot was more grown up and wise and showed a great skill in planning not only its own escape but of the whole pack. For this part of his story the author probably drew his inspiration from the story of the deer and the crow in the Hitopadeśa where the latter saved the former by a similar plan. The author also seems to have had in his mind the story of the pigeon-king Citragriva in the Pancatantra. The story of Sumitrā[1] told by the sage to the mother of Karakaṇḍa is a fanciful fairy tale very much similar to the story of Vatsarāja occurring in Bhāvacandra Suri'a Śāntināthа-carita which belongs to a much later date.[2] These nine stories together constitute about one-fourth of the whole book.

Karakaṇḍacariu, and particularly the part of the story dealing with Karakaṇḍa's visit to Siṃhala island, marriage of the Siṃhala princess, his return by the sea, sepration from his new wife and the story of Aridamana with the wise parrot, sea-voyage, fondering of the boat, the separation and reunion seem to have inspired works like the Rayaṇasehariīkahā in Prākrit by Jinaharṣagaṇi in the 14th century, and Padmāvata in Hindī by Malikmuhammad Jāyasī in the 16th century.

POPULARITY OF THE HERO

The hero of this work has the unique distinction of being reconized as a saint in the hierarchy of Buddhism as well as Jainism.[3] He is the first of the four Pratyekabuddhas, the other three being Durmukha, Nami and Naggai. To the Bauddhas, a Pratyekabuddha (Pali-Paccekabuddha) meant one enlightened by himself, who attains supreme insight, but dies without proclaiming the truth to the world. He has his hair and beard shaved, is dressed in yellow robes, is detached from all family and tribal connections and dwells in the Nandamūla cave on the

1. X, 18-22 2. Hindi translation, Calcutta, 1924. p. 227.

3. Dr. Jarl Charpentier, in his book Paccekabuddhageschichten, Upsala, 1908, has collected many references to Karakaṇḍa and other names associated with him. Besides the Karaṇḍu Jātaka (see Appendix A), he mentions the Dadhivāhana Jātaka (No. 186) which is only vaguely connected with Karakaṇḍa through the name of his father. In his attempt to find some Brahmanic parallel also, the author, following up the clue furnished by Devendra's story (see Appendix B), collects many epic and Pauranic mentions of the Caṇḍālas of Vātadhāna who became Brahmaṇas. But he has failed to find out any real recognition of Karakaṇḍa in the Brahmanic literature.

Himālayas.[1] The same four Pratyekabuddhas are recognized by the Śvetāmbara Jainas in their canonical books.[2] The Digambaras have also recognized them as worshipful beings who attained perfection in conduct without being instructed by anybody else.[3] But neither their number is specified nor their names given and we do not find much literature on them. At one place, however, they are attributed with the compilation of a part of the Jaina canon.[4]

Comparing our story with the Buddhist Jātaka, we find the hero in the latter work named Karaṇḍu and his parents and his capital are given the same names as in our work. The father is named Dahivāhana and the Sanskrit translators of our story have translated Dhāḍivāhana of our work by Dadhivāhana. The hero is said to have ultimately resigned the kingdom and become a saint. The comparison ends here, and there is nothing that is common in the details of the narrative of the two stories. The story given by Devendra in Prakrit agrees better with our story, and the first part of it up to the coronation of the hero on his paternal throne of Campā is more or less similarly described in both. The southern campaign of Karakaṇḍa is, however, entirely wanting in Devendra's account. Besides a few deferences in detail in the two narratives,[5] there is one remarkable improvement in Devendra's version. The manner of Dhāḍivāhana's escape from the runaway elephant, leaving his wife to her fate, strikes one as very unchivalrous in the present work, but Devendra's account is free from the fault. Had this version been known to our author he would certainly have adopted it.

If Karakaṇḍa is to be regarded as a historical person, and as we shall see, he ought to be so recognized, the only period to which he can be assigned is prior to the 5th century B. C. The Jainas say that he flourished between the period of lord Pārśvanātha and of Mahāvīra, and the Bauddhas put him prior to the advent of Buddha. In as much as he is recognized as a saint by the Bauddhas as well as the Śvetāmbara and Digambara Jainas, he has to be assigned to a period sufficiently removed from the origin of Buddhism as well as the sectarian split amongst the Jainas.

---

1. Majjhima Nikāya III, 86; Samyutta Nikāya I, 92; Jātaka 408, for which see Appendix A.
2. Uttarādhyayana Sūtra XVIII, 46-47.

   करकण्डू कलिंगेसु पंचालेसु य दुम्मुहो । नमी राया विदेहेसु गन्धारेसु य नग्गई ॥

   एए नरिन्दवसभा निक्खन्ता जिणसासणे । पुत्ते रज्जे ठवेऊणं सामण्णे पज्जुवट्ठिया ॥
3. In the Pratishṭhāpātha of Jayasena, for example, the Pratyekabuddhas are thus invoked :

   अन्योपदेशविरहेऽपि सुसंयमस्य चारित्रकोटिविषयःस्वयमुद्भवन्ति ।

   प्रत्येकबुद्धमतयः खलु ते प्रशस्यास्तेषां मनाक् स्मरणतो मम पापनाशः ॥६७२॥

   ओं ह्रीं प्रत्येकबुद्धत्व-ऋद्धिप्राप्तेभ्योऽर्घम् ।
4. In one manuscript of Sukumālacarita in Sanskrit, deposited in a Bhandār at Jaipur, I found the following verse :

   अंगपूर्वप्रकीर्णानि रचितानि गणाधिपैः प्रत्येकबुद्धयोगीन्द्रैः श्रुतकेवलिभिर्मुदा ॥२५॥
5. See introduction in Hindi, page 17 and 19.

The old literature which I have been able to find out on Karakaṇḍa is as follows :

BUDDHIST

1. The story of Karaṇḍu forming part of the Kumbhakāra Jātaka (Jātaka No. 408).[1]

ŚVETĀMBARA

2. Uttarādhyayana Sūtra XVIII, 46, mentions Karakaṇḍu as the king of Kalinga who, like Durmukha of Pancāla, Nami of Videha and Naggai of Gandhāra, renounced his kingdom in favour of his son and became a sage.[2]

3. Sāntisūri, in his commentary called Sishyahitā on the Uttarādhyayana Sūtra, gives the story of Karakaṇḍu, like Devendra. He is said to have died in Samvat 1096=1040 A. D.[3]

4. Devendra, in his commentary called Sukhabodhā on the Uttarādhyayana Sūtra, gives the story of Karakaṇḍu. This work, according to the praśasti, was completed at Anhila-pāṭana in Samvat 1129=1073 A. D.[4]

5. A pupil of Cāritravijaya wrote Pratyeka-buddha-caritra in Sanskrit verse. This work does not seem to be very old.[5]

6. Śubhaśīlagaṇi, in his Kathākosha, gives the story of Karakaṇḍa.[6]

7. Samayasundara Upādhyāya wrote Karakaṇḍu-chaupai in Hindi verse about the beginning of the 17th century.[7]

DIGAMBARA

8. Śrīcandra, in his Kathākosha written in Apabhraṃśa, has included the story of Karakaṇḍa. He wrote about two generation after the time of Mūlarāja of Anhilavāḍ of the 10th century and during the reign of Karṇa (Chalukya).[8] The story is in substantial agreement with our version.

9. Śubhacandra, helped by Sakalabhūshaṇa, wrote Karakaṇḍucaritra in Sanskrit verse in Samvat 1611=1555 A. D. This work is a translation of Kanakāmara's work which it follows quite closely, not omitting even the intervening stories. The author has, however, no where recognized the debt. I have used a manuscript of this work in writing the notes.[9]

10. Raidhu is said to have written Karakaṇḍucarita in Prakrit.[10]

---

1. Appendix A.
2. Dr. Charpentier's edition, Upsala, 1922.
3. Paṭṭāvali-samuccaya, Viramgaon, Gujrat, 1933, p. 54, 153.
4. Charpentier's Introduction to Uttarādhyayana, p. 56 ; Appendix B.
5. Printed, Jamnagar, 1920.
6. Translated by Tawney.
7. Misra-bandhu-vinoda part I, p. 378.
8. Allahabad University Journal Vol. I p. 170.
9. The MS. belongs to the Balātkāra gaṇa Bhanḍar, Kāranja.
10. दिगम्बर जैन ग्रन्थकर्ता और उनके ग्रन्थ by Nathuram Premi.

Probably this work was also written in Apabhraṃśa as most of the known works of Raidhu are in Apabhraṃśa. He flourished in the 15th century.[1]

11. Jinendrabhūshaṇa Bhaṭṭāraka is said to have written Karakaṇḍu-carita in Prakrit about 1676 A. D.[2]

12. Śridatta Pandit is attributed with the authorship of a Karkaṇḍu-carita.[3]

13. Rāmacandra Mumukshu wrote a collection of stories in Sanskrit called Punyāśrava-kathā-kosha in which he has included the story of Karakaṇḍu. One of the Mss. of this work is dated in Samvat 1558=1501 A. D.[3]

14. Nemidatta wrote Ārādhanā-kathā-kosha in Sanskrit verse in which he has included the Karakaṇḍa story.[4]

15. Karakaṇḍu-svāmi-ki-kathā in Hindi verse based on the Ārādhanā-kathā-kosha of Nemidatta.[5]

16. The present work of Kanakāmara.

AUTHORISHIP, TIME AND PLACE OF COMPOSITION OF THE WORK.

In the colophon at the end of each of the nine sandhis of the work we are told that the Karakaṇḍa-Mahārāja-carita was the composition of Muni Kaṇayāmara (Sk. Kanakāmara). The name also occurs in the ending verse of each Sandhi where, however, it also gives a sense suitable to the centext. From these mentions we know that the author's name was Kanakāmara and that he was a Muni i. e. an ascetic. A few more particulars about the author are obtained from the second introductory stanza of the work and the last two stanzas which form the author's praśasti. Here we are told that the author Kanakāmara was born in a Brahmaṇa family of the Candā-rishi-gotra. This gotra cannot, however, be identical with the *Candrakula* which is said to have been a division of the Vairi Śākhā sprung from the *Koṭika gaṇa*, and to whose different branches Śāntisūri the author of a commentary on Uttarādhyayana (11th century), and Devendra's teacher Amaradeva (12th century) belonged,[6] because these authors were Śvetāmbara, while Kanakāmara was avowedly a Digambara monk. It is in all probability identical with the Chandrakarāchāryāmnāya mentioned in the Bahuriband Jaina Temple inscription of the time of the Kalachuri king Gayā Karṇadeva[7], and no wonder if it is also associated with the Chandrātreya Rishi Vaṃśa of the Chandela princes themselves. In the introductory stanza as well as the

1. दशलाक्षणिक जयमाल, Intro., Bombay 1923.
2. दिगम्बर जै. ग्रं. क. और उनके ग्रंथ।
3. Hindi translation by Nathuram Premi, Bombay 1907.
4. Text and Hindi translation, Bombay 1915.
5. Devaband 1910.
6. Charpentier: Uttarādhyayana sūtra, introduction p. 54 & 57.
7. Corpus Inscriptionum Indicarum Vol. IV, 1955, p. 310.

Praśasti, the author mentions the name of his teacher as the learned Mangaladeva (Budha Mangaladeva or Pandit Mangaladeva) who may be identical with the author of Dharma-ratnākara a compilatory work on Jaina religion and philosophy.[1]

Our work does not mention the time of its composition, nor have I been able to discover any mention of the author in other works. Thus, we are thrown upon the internal evidence of the work to determine its date. Of the four old manuscripts used for preparing the text of the edition, the two from Jaipur are dated in Vikrama samvat 1558 and 1597 respectively. Therefore V. S. 1558 i. e. A. D. 1502 is the *terminus ad quem* for the date of the work. For fixing the upper limit we have the mention of Siddhasena, Samantabhadra, Akalamkadeva, Jayadeva, Svayambhu and Puṣpadanta at the beginning of the work.[2] The first of these is the celebrated author of the Nyāyāvatāra and other works. There has been a large amount of controversy about his date which fluctuates between the first century B.C. and the 7th century A.D.[3] Five works of Samantabhadra have so far come to light. His date has also been a subject of controversy and he has been assigned to various dates between the 2nd and the 7th cent. A. D. What we are absolutely certain of, is that he lived prior to 705 A. D. when the Harivamśa purāṇa of Jinasena which mentions him, was completed.[4] Akalankadeva is the author of many works. His date is also uncertain though some inscriptional and literary records connect him with the court of Sāhasatunga who is generally identified with the Rāshtrakuṭa king Krishna I, and therefore he is assigned to the middle of the 7th century A. D.[4] No work of Jayadeva has so far come to my knowledge but he is mentioned by a later day author Mallibhūshaṇa in his Nāgakumāracarita, as the first of those who wrote a life of Nāgakumāra.[5] Svayambhu is known to be the author of two large Apabhraṃśa works. He flourished between the 7th and the 10th century A. D.[6] Pushpadanta has now become well known by his three Apabhramśa works, namely, Mahāpurāṇa, Jasaharacariu and Nāyakumāracariu which have already been published. His Mahāpurāṇa is proved to have been completed in A. D. 965.

Thus, of the six authors mentioned by Kanakāmara the latest to have lived is Pushpadanta. In fact, the author seems to hava mentioned them in their

1. I saw a ms. of this work in the Balātkāra gaṇa temple at Kāranja. It consists of 151 leaves and was copied in samvat 1667. At the end of the work the author says—

   कृतं मयेदं सकलाविद्यास्त्रै रत्नाकराख्यं बुधमंगलेन ।

   नीत्वा रहस्यं च समस्तशास्त्रात् नंदत्वहो वै चिरकालमूर्ध्न्यां ॥?

   The time of the composition of the work is unknown. (See Catalogue of C.P. & BerarMss. and दिगम्बर जैन ग्रन्थकर्ता और उनके ग्रन्थ by Pt. Nathuram).
2. I, 2, 8-9.
3. Dr. P. L. Vaidya : Nyāyāvatāra, Bombay, 1928, Introduction.
4. Catalogue of C. P. & Berar Mss, introduction.
5. H. L. Jain : Nāyakumāracariu, introduction p. XXI.
6. H. L. Jain : Apabhraṃśa literature, Allahabad University Journal, I, p. 169; and Nagpur University Journal Vol. I, 1935.

chronological order. Therefore A. D. 965 proves to be the *terminus-a-quo* for the date of our author.

In the author's praśasti mentioned above, there is some information of historical value which may ultimately help to determine precisely the date of our author. Here the author says that he produced the work at Asaiya town, out of regard for the minister to whom king Vijavāla was attached, who was a veritable mirror to the face of king Vijavāla, who attracted the mind of king Bhūvāla and who amused the heart of king Kaṇṇa. Thus, the kings mentioned seem to be named Vijayapāla, Bhūpāla and Karṇa who lived within the life time of a single minister and who actually ruled at Asaiya or had it included in their kingdom.

After a long search, I feel inclined to identify these kings with those mentioned in a few obscure inscriptions which have not yet been assigned their proper place in the royal dynastic lists. The first of these inscriptions is the Damoh Stone Inscription which was discovered in the Hatta Tahsil of Damoh in C. P., and is now deposited in the Nagpur Museum.[1] It is written in Apabhraṃśa with a free translation in Sanskrit. It recites that one Vijayapāla Kshatriya was born in the Viśvāmitra Gotra. He conquered a hero named Kai. His son was Bhuvanapāla who defeated the Kalacuris, the Gujaras and the Deccan kings.[2] Rai Bahadur Hiralal thinks that this inscription probably belongs to the 12th century and that the persons named in the record were, perhaps, commanders of armies and possibly, related to the Guhila princes of Mevāḍ in which dynasty there was one Vijayasimha who married Syāmaladevi daughter of Udayāditya of Mālwā by whom he had a daughter Alhaṇadevi who married Gayākarṇa of Ḍāhala.[3] The second record is a fragmentary inscription found at Kalinjar which speaks of a king named Bhūmipāla the son of Vijayapāla, and goes on to say, after a lacuna, that the son had made himself the ornament of the southern direction and had vanquished the ocean-like Karṇa.[4] Bhūmipāla is found mentioned in a

1. Rai Bahadur Hiralal : Inscriptions in C. P. & Berar. Nagpur 1932 p. 55.
2. The following lines of the inscription are taken from the Nāgarī-Pracāriṇī-Patrikā Vol. VI, p. 5, compared with a hand rubbing copy of the inscription kindly furnished by R. B. Hiralal.

विसामित्त गोत्त उत्तमचरित्त विमल पवित्तो गाण।
अरघड घडणो संसजिय दूवड्डो भूवाण ॥
दूवड्डो घटि परिठिअउ खत्तिय विजयपालु।
जेणे काइउ रणि विजिणिउ तहु सुअ भुवणपालु ॥
कलचुरि गुज्जर ससहरह दक्खिण चइ सुख मंड।
चहुरा अहरण विजिणण हरिसराअ भुजदंड ॥

3. Inscriptions in C. P. & Berar, p. 55.
4. Nilakaṇṭha Inscription No. II, JASB Vol. XVII. I am obliged to Prof. V. V. Mirashi for kindly drawing my attention to this inscription as well as the one next mentioned. It contains the following lines :

अजनि विजयपालस्तत्सुतो भूमिपाल: शितत रकरवालध्वस्तराजन्यमाल: ।
......सूनुः कुम्भोद्भवाभो नमितावनीभृत्
यो दक्षिणाशाभरणीकृतात्मा कर्णार्णवं तूर्णमपाचकार ॥

third fragmentary inscription found at Tewar.[1] All the three inscriptions, on palaeographic grounds, are assigned to the 12th century A. D. My idea is that the Vijayapāla of the Damoh inscription is identical with the Vijayapāla of the Nilakantha inscription of Kalinjar and that the Bhuvanapāla of the first inscription is identical with the Bhūmipāla of the other two inscriptions, and further that the Vijayapāla and Bhuvanpāla or Bhūmipāla of these inscriptions are identical with kings Vijavāla and Bhūvāla mentioned by Kanakāmara.

It is not quite easy to fit in these kings in any of the known dynastic lists, but the locality of the inscriptions as well as their contents tempt one to look for their identification amongst the rulers of Bundelkhaṇḍa of the 11th or 12th century. In the Candela dynasty of Kalinjar we find mention of a king named Vijayapāla who succeeded Vidyādhara, a contemporary of king Bhojadeva of Malwa. One of the sons of this Vijayapāla proved very illustrious. He scored a victory over the mighty Karṇadeva Kalacuri and annexed his southern dominions.[2] This event was commemorated by the production of a drama Prabodhacandrodaya in Sanskrit. Can we not take this son of Vijayapāla as identical with our Bhuvanapāla, Bhūmipāla or Bhūvāla who in one inscription is said to have defeated the Kalacuris and in another king Karṇa ? The only difficulty is that in the Prabodhacandrodaya as well as in a few inscriptions, this king's name has been mentioned as Kīrtivarma. But this may have been his other name, probably assumed after his victory over Karṇa. Prior to this victory, Karṇa had raided the Candela kingdom. It was, probably, during this period of Karṇa's ascendancy that Kanakāmara wrote his Karakaṇḍacariu and mentioned his patron minister as the delighter of the heart of Kaṇṇa narinda.

If these identifications are accepted, there is no difficulty in fixing the time of the composition of the work. From several inscriptions it is known that Karṇa, Vijayapāla and Kīrtivarma alias Bhuvanapāla, Bhūmipāla or Bhūvāla ruled at least between 1040-1051 A. D. Our work, therefore, may have been composed about this time i. e. middle of the 11th century.

Āsāiya where the work was produced must have therefore existed some where in Bundelkhand. It could now easily be identified with village Āsāpurī in the vicinity of Bhopal in M. P. where an image of Āsāpurī Devī and a Jaina temple in ruins with a 16ft. image of Shantinātha still exist.[3]

A brief account of some of my inconclusive attempts at the identification of the kings mentioned by Kanakāmara and the place where he wrote, may, now,

1. Indian Antiquary Vol. XX, p. 85. The following broken lines have been read—

4 महासमुद्रात्सार्धं श्रियं समभवद् भुवि भूमिपालः

7 ....त्रिपुरीयचतु:पथे ।

8 ....निवासं श्री सिंहपुर्याम् ॥

2. नागरी प्रचारिणी पत्रिका Vol. XII p. 357 and 367.

3. Bhopal State Gazetteer (1908) p. 90

be given here for the benefit of those who might make a further attempt in the field. At the very outset of my inquiry I came across the following note in the Archaeological Survey Report for 1872-73 by Alexander Cunningham, p. 183, on Āsāpuri :

"Twelve miles to the south-west of Baijanāth (in the Punjab) there is a lofty hill crowned with a temple dedicated to Āsāpurī Devi. It was built, according to an inscription, by Vijayarāma the eldest son of Rājā Candrabhāna." So far it was very encouraging, for, Āsāpurī might be our Āsāiya and Vijayarāma may be the same as Vijayapāla. But the note went on to mention yet another two inscriptions of the same king dated in Samvat 1744 and 1721 which showed that this Vijayarāma could never be the same as our Vijayapāla, who, as we have seen, must have lived prior to Samvat 1558. In the same work, however, I found another reference which definitely connected the locality with Jainism. We are told that in the temple of Baijanāth there is placed, in one corner, a stone with a Jaina inscription. This I found published in Epigraphia Indica Vol. I page 118. The first part of it runs thus :

ओं० संवत् १२९६ वर्षे फाल्गुण वदि ५ रवौ कीरग्रामे ब्रह्मक्षत्रगोत्रोत्पन्न व्यय० मानूपुत्राभ्यां व्य० दोल्हण-आल्हणाभ्यां स्वकारित श्री महावीरदेवचैत्ये श्री महावीरजिनमूलबिंबं आत्मश्रेयोर्थं कारितं

This means that in Samvat 1296 = 1240 A. D. two merchants Dolhaṇa and Alhaṇa, sons of merchant Mānu of Brahma-kshatra Gotra built a temple at Kīragrāma and installed therein the image of Mahāvīra. Kīragrāma is in the Kangra district of the Punjab where the Baijanāth temple exists. The names of the two merchants mentioned here are similar to those of the three sons of the minister who patronised our poet. But such names are freequent amongst the Rājpūts. This was all, and nothing further could be discovered about the locality.

The names of the kings, and more particularly, those of the minister's sons, suggested to me Rājpūtānā as a possibly hopeful field. Looking into the 'Annals and Antiquities of Rājpūtānā' by James Tod[1] I found mention of Āsi a fortress which was assigned to Anurāj by his father Bisāldeo who reigned about A. D. 1064 as the ruler of Bundi State. It was, most probably, this very Āsi which was mentioned by Alberuni when he says "Marching from Kanoj towards the South-west, you come to Āsi eighteen parsakhas from Kanoj".[2] Āsi, I thought, may do for Āsāiya. The son of Anurāj was Ishatpāl which showed that the kings of this dynasty did bear names ending in Pāla, and in the Cauhānā genealogy we find two names Kan Rāe and Vijayarāj which resemble our Kanna and Vijavāla. The latter i. e. Vijayarāj is said to have been the adopted successor to Prithirāj[3] and they appear to have lived about 1100 or 1200 A. D. But,

1. Oxford 1920, p. 1461.
2. Each parsakha being equal to four miles or one kuroh (krosha). Alberuni's india vol. I Trubner's Cr. S. p. 202.
3. It is also said by James Tod that his name was on the pillar at Delhi. (?)

firstly, there is no direct connection between Kan Rāe and Vijayarāj as would be necessary, if they were to be accepted as those mentioned by our author. Secondly, they are separated from each other by nearly two generations. Thirdly, they were junior members of the family and are not shown to have reigned any where; and, lastly, the list is compiled from the accounts of bards without much corroborative evidence. Therefore, they are mere names to us and no emphasis could be laid upon their identity.

Passing on to other Rājpūt dynasties I found the mention of Vijayachandra in the Gaharwāl dynasty of Kannoj. Two copper plates of his dated A.D. 1168 and 1169 respectively, and two stone inscriptions both of A. D. 1169 have come to light.[1] Probably this same king is mentioned as Vijayapāla in Prithvirāja-raso.[2]

In the Solanki dynasty of Gujrāt there was one Karṇa who ruled from A. D. 1064 to 1094. He was the son of Bhīma. He had three ministers Munjal, Sautu, and Udaya, the last two of whom built Jaina temples. Udaya had five sons Āhaḍa, Chāhaḍa, Bāhaḍa, Ambaḍa and Solla. Karṇa's son was Siddharaj Jayasimha.[3]

Amongst the Rāṇās of Chittor is mentioned one Karansiṃha who was the son of Samarsi, whom he succeeded in A. D. 1193. His son was Mahup.[4]

In the same dynasty, a little earlier, we find mention of Vijayasiṃha the son and successor of Vairisiṃha. One of his inscriptions is dated in A. D. 1116.[5] His daughter Alhaṇadevi was married to Gayākarṇa of the Kalacuri dynasty of Cedi for whom we have epigraphical records of A. D. 1122 and 1151. Kings that succeeded Vijayasiṃha in order, were Arisiṃha, Chodasiṃha and Vikramasimha; but nothing, in particular, is known about them. The last was succeeded by Raṇasiṃha who is also called Karṇasiṃha, Karaṇasiṃha or Karṇa.[6]

These mentions, by themselves, do not justify any identification with any of the kings mentioned by Kanakāmara, because any identification must not only suit the time of our author, but must also explain the mention of the town and of the other two princes. A variant reading in place of 'पियभुवालहो' is found in Ms. J. which reads it as 'पिय भुवालहो'. If we accept this reading then भुवाल no longer remains a proper name and there remain only two names Vijavāla and Kaṇṇa to be identified and the town Āsāiya. It was on this basis that I once felt inclined to identify our Vijavāla with Vijayasiṃha of Udaipur and Kaṇṇa with his son-in-law Gayākarṇa who might have been staying with his father-in-law and felt friendly with the former's minister at the time when Kanakāmara wrote

1. Ep. Ind. IV. P. 118 ; Ind. Ant. XV. p. 7; Arch. Sur. XI P. 125, and J A O S VI P. 548.
2. भारतके प्राचीन राजवंश Vol III, P. 107.
3. Bom. Gaz. Vol. I. History of Gujrat.
4. Tod : Annals of Rājpūtānā p. 303-4.
5. Raj. Mus. Rc. 1915-16 p. 3.
6. Hist. of Rājpūtānā by G. H. Ojha, Ajmer, 1927, P. 444-445,

his work at Āsi which, though far away from Udaipur and even Chittor, is on the borders of the state.

This, however, did not seem very satisfactory as it had obvious weak points. So, in order to strengthen the identification further, or to discover a more satisfactory solution, I turned to the history of the Kalacuris of whom Gayākarṇadeva was already thought as probably identical with our Kaṇṇa. Their genealogy showed two other kings who could be thought of as equivalent to our Kaṇṇa. These were Karṇadeva son of Gāngeyadeva, who conquered many neighbouring kings and for whom we have an epigraphical record of 1042 A. D.[1] and his son Yaśahkarṇadeva of whom one copper plate is dated A. D 1122. His son was Gayākarṇadeva of whom we have already spoken. We also find in this genealogy one Vijayasiṃhadeva of whom two copper plates are dated A. D. 1180 and 1196.[2]

Besides these, we have an account of a Kalacuri prince called Vijjala or Vijjana who was at first the minister of war† under Tailap II of the Cālukya dynasty from whom he usurped the thrown of Kalyana and extended his dominions further. The earliest epigraphical record for him is of A. D. 1157 and the latest of A. D. 1165. One of the titles used by him was 'Kalinjarapuravarādhiśvara' or lord of the best city of Kalinjar. From the account given of him in Bāsava purāṇa, a Lingāyat work, and Vijjalarājacarita, a Jain work, he appears to have been a great patron of Jainism and to have been assassinated in A. D. 1167, as a result of a Lingāyat confederacy led by Bāsava.[3] Thus, in the Kalacuri dynasty there have been kings who could be thought of as identical with Vijavāla and Kaṇṇa of Kanakāmara.

The place where the work was composed at once reminds a student of modern history of the battlefield where Sir Arthur Wellesley defeated the Marāthās in 1803. It is Assaye now a small village in the Bhokardan Taluka of the Aurangabad district of the Hyderabad State. No previous history of the place is known, but it was certainly included in the kingdom of the Raṣṭrakūṭas. Could it, then, be that the Kaṇṇa narinda of Kanakāmara was the Raṣṭrakūṭa king Krishṇa III who has been mentioned by Pushpadanta as Kaṇha[4] ? If it be so, then Vijayapāla and Bhuvanapāla may have been his deputies ruling at Assaye. Krishṇa III is known to have conquered the Cera, Cola, Pandya and Simhala,[5] and Kanakāmara may have been led to attribute these conquests to his hero by this example of his time. In that case he would be a contemporary of Pushpadanta whom he has mentioned. This Assaye is not very far away

1. Ep. Ind. Vol. II p. 305.
2. J.B.A.S. VIII p. 481. J. A. XVII p. 338 ; †दण्डनायक
3. Early History of the Deccan, Sec. XII and XIII.
4. Nāyakumāracariu, Introduction.
5. The colophon of Yaśastilaka of Somadeva runs as follow :

form the Terapura caves which the author must have visited and which probably inspired him to write this work while returning from there and staying at Assaye.

Another possible conjecture identifies the Āsaiya with Āsiragarh in Khandesh which was named after Āsādevī enshrined there. A small village near the fortress is still called Āsi. In our text there is a marginal note Āsāpurī on the word Āsaiya. Before the building of the existing fortress, the place may have been called Āśāpuri. It is wellknown to have been a seat of government during the pre-Muhammadan period. There is also an Assaikheḍa village near Etawah in U. P. where old Jaina ruins are found and which has also been conjectured as the place where Kanakāmara wrote.[1]

The evidence about all these places and princes is, however, inconclusive for our purpose, and unless stronger evidence is brought to light the Asapuri near Bhopal in Madhya Pradesh and the Chandela and Kalachuri rulers of that locality as shown above should be treated as identical with the mentions of Kanakāmara.

TERĀPURA AND ITS CAVE-TEMPLES

Chapters IV and V of Karakaṇḍacariu are taken up by the description and previous history of Terāpura and a cave-temple in its vicinity. The Terāpura mentioned in the work is identifiable with Tera a village in the Osmanabad district of Mahārāshṭra, situated in 18-19 N and 76.9 E on the Tirna river, twelve miles north-east of Osmanabad. It was known to the ancients as Tagara which name had baffled the attempt of scholars at identification for more than a century. Sir R. G. Bhandarkar, writing about it in his Early History of the Deccan, said "Tagara is placed by the author of the Periplus at a distance of ten days journey to the east of Paithan. It is mentioned in a copper-plate grant of the first half of the seventh century and the princes of the Silāhāra dynasty call themselves sovereigns of Tagara, the best of towns, in all their grants. Some have identified it with Devagiri and others with Junnar, but in both cases its bearing from Paithan as given by the Greek geographers has not been taken into account. I have elsewhere discussed the question and have proposed Dharur in the Nizam's territory as the site of the ancient city."[2] It was only in 1901 that Dr. Fleet was finally able to show that the ancient and famous Tagara exists to this day known by the natural modern form of its former name as Tera in the Nizam's dominions.[3] The town is so ancient that it was possibly known in the Buddha's time. A teacher

---

'शकनृपकालातीतसंवत्सरशतेष्वष्टस्वेकाशीत्यधिकेषु गतेषु अंकतः ८८१ सिद्धार्थसंवत्सरान्तर्गतचैत्रमास-मदनत्रयोदश्यां पांड्य-सिंहल-चोल-चेरमप्रभृतीन्महीपतीन्प्रसाध्य मेलपाटीप्रवर्धमानराज्यप्रभावे श्री कृष्णराजदेवे सति......

1. जैन सिद्धान्त भास्कर, १३, २ पृ० १३५ ।

2. Early History of the Deccan, 1927, page 59.
3. The misspelt Thair, Ther, Tair, etc. of maps. Imp. Gaztr. Vol. II, 1908, page 82; J. R. A. S. 1901, page 537 ff.

of olden times named Tagara-sikhin is several times mentioned. Sikhin is otherwise known as a name and the distinctive epithet Tagara may possibly be local and mean 'of Tagara' the modern Tera [1]

According to Kanakāmara, Karakaṇḍa was encamping to the south of Terāpura. The king of the place known as Siva visited him and told him about the existence of a large cave containing a Jina image at the foot of a hill in deep forest. Karakaṇḍa visited the cave and worshipped the Jina. He renewed the temple (or built a fresh cave), installed in it another image of Pārśvanātha which he discovered on the top of the mountain, buried in an ant hill, and built two more caves on the upper side of the existing cave. He also discovered a fountain of water in the old cave. Now, I give below a summary of the description of the existing caves of Dhārāśiva as noticed by Burgess—[2]

Dhārāśiva is about twelve miles north of Tuljāpura and twenty-four west by south from Bārsi standing just above the brow of the Bālāghāt which forms the watershed between the Sīna on the west and the Ternā, a large feeder of the Manjirā, on the east. It is the chief town of a Tālukā or district of the same name, and, like Tuljāpura, is fully 2000 feet above the sea-level.

About two miles north-east from the town, in a ravine facing the west, is a group of caves known as the Dābar Lenā or Torlā Lenā. Four of them are in the north side of the ravine and three on the opposite side facing the north-east. The former are Jaina excavations, but some of the latter are probably Vaishnava. They are cut in a soft conglomerate rock, of very unequal texture, containing much haematite, and which is easily abraded. By the decay of the rock they are much dilapidated.

In front of the principal cave on the north side has been erected a Śaiva temple surrounded by a small court enclosed by a high wall with a Dharmaśālā on one side and a platform on the other. A few yards to its west, on a lower level, is the cave No. 1 which is only subsidiary to the principal cave No. 2. Its front verandah measures 26 feet by 7 feet with two pillars, each about 2 feet 10 inches square. It has three doors leading into as many separate apartments which were never finished and hence present an irregular size. The central room was intended for a shrine but the dividing walls have given way.

To the east of the principal cave is cave No. 3. It is better preserved, but has been long occupied and divided by stone and mud walls. The hall of it is about 59 ft. square and 11 ft. 3 inches high, the room being supported by twenty columns, leaving an open area of 35 ft. square in the centre. Two of the columns in each side are round, standing on thin square plinths, the other columns being square, and all have capitals and a neat collar of carving, a foot deep, round the

1. Rhys Davids: Buddhist India, page 31.
2. Arch. Survey of Western India, Vol. III.

head of the shaft. The shafts taper from about 2 ft. 10 inches to 2 ft. 7½ inches square. The six octagonal columns in the verandah have a beautiful frieze over them which has mostly fallen. At the east end is an apartment 19 ft. by 8½ ft. and another inside the verandah about 13 ft. square, with a large rough mass left in the middle about 5 ft. by 5½ ft. as if intended to be fastened into an image. The verandah measures 60 ft. by 8 ft. 8 inches and five doors enter from it into the hall. In each of the sidewalls are five cells and four in the back, besides the shrine 19 ft. by 8 ft. containing an image somewhat similar to the one in the principal cave. In the cell to the west of the shrine also there is a figure of a Jina seated on a high seat with figures behind, similar to those in the principal cave; only, instead of the snake hoods there is a plain *nimbus*.

Cave No. 4 is close to the east side of this and consists of a hall 28 ft. by 26 to 27 ft. with four round columns supporting the roof, surmounted by a sort of architrave 13¾ inches deep. But the shafts of the columns have all disappeared. It seems never to have had a verandah, properly so called, but only a projecting drip over the front wall which is pierced for one large central and two smaller side doors. There is one cell at each side of the hall, near the front, one of them unfinished, and there were two more in the back wall; but the partition between the east one and the shrine has been broken through. The shrine is about 9 ft. 6 inches by 12 ft. and contained a Jina similar to those in other caves, but very much disfigured by the crumbling away of the rock and the soot of ages, as it has long been used as a dwelling. The central door is surrounded by the plain fascias, a roll moulding and a border of leaves. Over the main door is a shallow arched recess.

The principal cave, i. e. cave No. 2, is the largest of the group. Unfortunately, the rock has split down from above and the whole front, with the exception of a small fragment, had fallen down. It has, however, been recently repaired. The verandah, 78 ft. by 10 ft. 4 inches, in all probability, had six or eight pillars with massive bracket capitals supporting its front. Five doors through the back wall lead into the great hall of the cave. The court in front of the verandah is now quite filled up, but its entrance is still visible, its pediment being carved with a sitting figure of a Jina with a nimbus behind the head and Nāga figures on either side and other indistinct figures.

In the west end of the verandah has been a door into a small adjoining excavation containing a cistern, and in front of it a boiler-shaped cistern has been built which can be filled by pouring the water into a channel that passes through the wall from the apartment where the cistern is. In the room of the cistern there are three loose blocks of very hard stone, sculptured with figures of nude Jinas. One of them is on a slab and represents Pārśvanātha with the snake behind him and its seven hoods spread out over his head. Another is a square block, apparently, part of a pillar, on each side of which a standing nude Jina is

represented with a triple *chhatri* or umbrellas, over their heads. A third is a slab with a Jina seated cross-legged under a *chhatri* and having a worshipper at each knee, and four small figures below, some apparently worshipping and others engaged, perhaps, discoursing music. The chamber, in which these figures are, measures about 17 ft. by 12 ft. with two square pillars in front and two openings in the floor into the cistern, which probably extends far back under the rock.

The great Sālā or hall of the cave is not quite square, being wider at the back than in front, the former width being 85 feet, the latter only 79 feet, while the depth is about 80 feet. In this area are thirtytwo pillars, arranged in two concentric squares; the inner-square has twelve pillars, and encloses an area 23 ft. 9 inch. square, and 10 ft. 2 inch. high; the outer, about 9¼ ft. from the walls, has twenty pillars and encloses an area about 55 ft. deep by 58 wide, leaving an aisle round the central square about 13 ft. wide in front and back, while along the sides it is 14 ft. wide. The roofs of the aisles on each side of this outer square vary in height, with a tendency to increase towards the back, the back aisle being 12 ft. 6 inch. high and the one in front of it 11 ft. 7 inch. at the back, and slightly less in front, while the aisles are about 10 ft. 4 inch. in height.

In each side wall are eight cells, each about 9 ft. square and in the back are six, three on each side of the shrine which occupies the centre. The cells are all plain, and exactly of the character of those usually found in Bauddha caves. In the floor of one cell, in the north-west corner, is a small hole which is constantly filled with water, and may possibly have some connection with the cistern; in one of the cells in the back is an image now worshipped as Hari Nārāyaṇa, but this has, probably, been imported into its present position; and in a recess in the next cell to the left of the shrine, is a black statue of a nude Jina, 6 ft. 1 inch high with a triple *chhatri* over his head. The recess and figure have all been carefully done up with plaster some ten or twelve years ago and without breaking this coating it was impossible to say whether the image had been carved *in situ* or not. There seems no reason, however, to doubt that it belonged originally to the cave.

The shrine is 19 ft. 3 inches wide by fully 15 ft. deep and 13 ft. high the threshold being raised by two steps considerably above the level of the floor of the cave. It is occupied by a large, black image, seated on a *simhāsana* or lion-throne 4 ft. high and 6 ft. 10 inch. wide with a passage or *pradakshinā* 5 ft. wide quite round it. This image has also been carefully repaired with plaster and represents Pārśvanātha, the 23rd Tīrthaṃkara, seated crosslegged in the ascetic attitude or *Dhyāna* Mudrā with his hands in his lap, the palms being turned up. The ends of the seat are represented as supported by lions, one of them, however, much damaged. In front are two deer, one on each side of an object now quite obliterated, but which, from other examples, I have no doubt, was a wheel much like those on the fronts of the thrones in the Bauddha caves

at Ajanta and Ellora and on the large Pārśvanātha image of the 13th century at the latter place. Behind the image are represented the ends of a pillow against which he rests; from behind it issue the heads of *śārdulas* (mythological animals allied to the lion, but usually with a head some what resembling a goat's), and behind them again two *chawri*-bearers with high, jewelled headdresses and necklaces over the heads of whom are fat Vidyādharas, flying in the air, each of which holds one end of a garland which is supposed to hang behind the head of the Jina. The great snake, with its seven hoods, shades his head, forming a sort of aureole round it, while on each snake-head is a small crown. These figures are all covered over with plaster and painted in a variety of colours. The image itself is perfectly black, and, in the darkness, looks grim enough. It measures 6 ft. from knee to knee, 4 ft. 2¼ inch. across the shoulders, 3 ft. 6 inch. from the palm of the hand to the chin, the face is 2 ft. 5½ inch. from ear to ear over the eyes, and 1 ft. 5 inch. in length upto the hair which is in curled folds with a top-knot, and the ears are 7 inches in length.

The description of the temple hall with its double row of pillars and twenty two cells, besides the central shrine and other chambers, affords enough justification for its being called a temple of a thousand pillars by our poet, while the description of the chief image agrees in substance with that which we find in our work of the image discovered by Karakaṇḍa and imported into the temple (IV, 9). The chamber connected with the cistern and having two holes in the floor is probably the old shrine where Karakaṇḍa discovered the fouutain of water. As said above, there is yet another cell where we have a hole in the floor constantly filled with water. On comparing the old and the new description of the cave closely, one can not help feeling that in Kanakāmara's narrative has been preserved, for about a thousand years, a substantially correct account of this monument of great antiquity and interest.

The name Dhārāśiva is probably derived from the fact that there was a spring of water (Dhārā) and that one ancient king of the place was named 'Siva'. In the Sanskrit version of the story by Subhachandra we are told that the persons who called upon Karakaṇḍa when the latter encamped near Terāpura, were two forest guards named Dhārā and Śiva.[1]

WHO EXCAVATED THE FIRST CAVE ?

We have seen above that according to Kanakāmara Karakaṇḍa built two new caves and either renewed the first cave or built yet another cave before causing the fountain to be opened. The question naturally arises 'Who excavated the first cave ?'. This question occurred to Karakaṇḍa himself as it does to us,

---

[1] धारा-शिवाभिधानौ द्वौ भिल्लौ कोतिशयौ युवः ।
एकदागमविपंजरजयानाद्वे द्वारि दूतः ॥ ७, २६ ॥

and he got some one to tell him the story of its origin.[1] A Vidyādhara told Karakaṇḍa that two Vidyādhara brothers Nīla and Mahānīla, originally ruling in Southern Vedyardha (Veyaddha or Vijayaddha) came and settled down at Terāpura, became converted to Jainism and excavated the cave.

While investigating whether any historical basis could be found for this origin of the cave, I came upon the following statement about the Silāhāra princes in the Early History of the Deccan by Sir R. G. Bhandarkara.[2]

"The Silāhāra princes trace their origin to Jimūtavāhana the son of Jimūtaketu who was the king of a certain class of demigods called Vidyādharas, and who saved the life of a serpent named Sankhacūda by offering himself as a victim to Garuḍa in his place. One of the titles borne by the princes of all the three families was Tagara-*puravarādhīsvara* or lords of Tagara, the best of cities, which fact has a historical significance. It shows that the Silāhāras belonged to a family that once possessed supreme sovereignty and reigned at Tagara. In one Silāhāra grant it is expressly stated that the race known by the name of Silāhāra was that of the kings who were masters of Tagara" (शिलाहाराख्यवंशोऽयंतगरेश्वरभूभृताम्). As mentioned in a former section, Tagara was a famous town in the early centuries of the Christian era, and retained its importance till a very late period, but, unfortunately, the town has not yet been identified, nor have we found any trace of the Silāhāra kingdom with Tagara as its capital. Perhaps it existed between the close of the Āndhrabhṛtya period and the foundation of the Cālukya power."

From this account, two facts emerge very prominently: firstly, that the Silāhāra princes, according to their own statement, were the descendants of a Vidyādhara, and secondly, that they once had their capital at Tagara which, as already shown, is the same as our Terapura. I, therefore, conclude that the first Jaina cave at Tera was excavated by one of the early Silāhāra princes who also installed the image of Pārśvanātha. Kanakāmara has also incidentally given to us the origin of the Silāhāras which substantially corroborates and amplifies the information gathered from inscriptions. He tells us that the Vidyādharas, Nīla and Mahānīla came from the Southern Vijayārdha. In Somadeva's Kathāsaritsāgara[3] we are told that on the Himācala mountain there were two Vedyardhas of Vidyādharas, the Northern and the Southern. On the upper side of Kailasa is the Northern Vedyardha and on the lower side is the southern Vedyardha.

From this we might conclude that the ancestors of the Silāhāra princes originally came from the Southern Himalayas. Kanakāmara tells us that they

---

1. Chapter V
2. Poona, 1927, p. 119.
3. Kathāsarit-sāgara XIV, 3, 65-66.

इह विद्याधराणां द्वौ वेदार्धौ स्तो हिमाचले ।
उत्तरो दक्षिणश्चैव नाना तच्छृंगभूमिगौ ।
परतः किल कैलासादुत्तरोऽर्वाक्तु दक्षिणः ।

had to leave their ancestral home and fly away from Rathnupura (Rahaṇeura) in Vedyardha on account of the pressure of the enemies. On this point also the Kathāsaritsāgara throws some light. In Lambaka XIV of that work we have an account of a protracted war between Naravāhanadatta and the Vidyādharas of the Southern Vedyardha in which the latter were completely vanquished and Naravāhanadatta was crowned king of the Vidyādharas. The coronation is described in Lambaka XV. We also find mention of Jīmūtavāhana (XVI, 3, 7) as the king of the Vidyādharas who lost his overlordship because he belauded his charity and sacrifice before Nārada.[1]

The existence of a ruling dynasty of Vidyādharas to the south of the Narmadā is also vouchsafed by Padmagupta in his Navasāhasānkacarita where his contemporary hero Sindhurāja is said to have been helped by a Vidyādhara chief Sankhacūḍa the son of Sikhaṇḍaketu, against the Asura king Vajrānkuśa of Ratnavati.[2]

I may appear to be making history out of fables and fairy tales, but the pieces of information culled here fit in so well with what we know from epigraphical records and literary traditions that the temptation to regard them as historical is irreristible. At any rate, the conclusion can safely be drawn that the ancestors of the Silāhāras, came from the border of the Himalayas, that they founded the city of great fame and antiquity, Tagara, and that they early became converts to Jainism and built the large cave-temple near their capital. Perhaps the name 'Silāhāra' also points to their mountain origin.

Burgess has assigned the caves roughly to the period between 500 and 650 A. D. But this is only a conjecture. As we have seen, all of them may not be of the same period. The Silāhāras are known to have been reigning near the coast in the Thana district from 810 to 1260 having their capital at Puri (Elephanta). They were the governors of Konkan under the Rashtrakūṭa kings. Their three branches ruled in the Deccan in different parts, but the period of their supremacy at Terapura or Tagara is quite unknown. As we have already seen, Karakaṇḍa seems to have lived some time between 800 B. C. and 500 B. C. No wonder if that was the period of the Silāhāra ascendancy at Terapura.

As to the image of Pāraśvanātha which Karakaṇḍa found buried in an anthill on the tcp of the hill, and which he then installed in the first cave, Kanakāmara tells us, as Karakaṇḍa was told by the Vidyādhara, that another two Vidyādharas who were brothers and friends of Nīla, while on a religious tour

1. 'जीमूतवाहनोऽप्येषः पृष्टो विद्याधरेश्वरः
चक्रवर्तिपदप्राप्तिकरणं नारदर्षिणा ॥ ७ ॥
आचख्यौ कल्पवृक्षस्य दानं निजतनोस्तथा
तेनाभ्रश्यत्पदात्स्वस्मात्सुकृतोदीरणेन सः ॥ ८ ॥

2. Indian Antiquary, Vol. LXII, 1933, pp. 101-107

from their home in the Northern Vedyardha to Lankā, picked it up from a hill called 'Siripudi' in Malaya country (Malabar), and deposited it on the present hill. It is also said that the Jaina temple, at Siripudi was built by Sūraprabha the king of Lankā who was a descendant of Rāvaṇa.

METRE

The prevailing metre of Karakaṇḍacariu of Kanakāmara is पज्झटिका intercepted by a few lines or single Kaḍavakas here and there in अलिल्लह or पादाकुलक, besides the Dhruvakas. The variations in complete stanzas are as follows—

Sandhi	Kaḍavaka	Name of metre	Nature of the metre.
I	7-8, 12-13	समानिका	A vritta metre with the scheme र ज ग ल in each foot.
	17	समानिका & तूणक	Half of the stanza is तूणक which is double of समानिका.
III	14	स्रग्विणी	Consisting of four र.
	15 & 18	दीपक	Has 10 mātrās ending in a short.
	17	समानिका	(See above).
IV	16	सोमराजी or संखणारी	Has two य.
V	1	समानिका	(See above)
	11	दीपक	(See above)
VII	10	समानिका	(See above)
	11	भ्रमरपदा	Has 24 mātrās in each foot with caesura after the 10th and 18th; two such feet rhyming with each other.
VIII	2	स्रग्विणी	(See above)
	3	चित्रपदा	With the scheme भ भ ग ग
	4	सोमराजी	(See above)
	5	समानिका	(See above)
IX	3	प्रमाणिका	With the scheme ज र ग ग
	7 & 20	दीपक	(See above)
X	17	समानिका	(See above)
	26	चन्द्रलेखा	Has the first foot of 16 mātrās rhyming with the second of 8 matras.

करकंडचरिउ

करकंडचरिउ

१

Victory to Jina.

मणमारविणासहो सिवपुरिवासहो पावतिमिरहरदिणयरहो ।
परमप्पयलीणहो विलयविहीणहो सरमि चरणु सिरि जिणवरहो ॥

जय अणुवमसिवसुहकरण देव   देविंदफणिंदणरिंदसेव ।
जय णाणमहोवहिकलियपार   पाराविय सिवपहे भवियसार ।
जय कम्मभुवंगमदमणमंत   मंताण बीज मणगह[1]कयंत ।   5
जय चउगइडरियजणेकसरण   रणरहियसुयणदुहणिवहहरण ।
जय संजमसरवररायहंस   हंसोवमबुहयणकयपसंस ।
जय कोहहुआसणपउरवारि   वारियतम केवलणाणधारि ।
जय सासयसंपयहिययवास   वासवसयसेविय सुहणिवास ।
जय भवियसरोरुहकमलबंधु   बंधुरगुण णियरसबहुल[2]सिंधु ॥   10

घत्ता—जय देव णिरंजण भवभयभंजण मंडण भुवणमहाघरहो ।
तव चरण णमंतहो मणे सुमरंतहो होइ समिच्छिउ फलु णरहो ॥१॥

२

The poet introduces himself to his readers.

मणि धरिवि सरासइ दिव्ववाय   तह पंडियमंगलएवपाय
जणसवणसुहावउ महुरु[1] ललिउ   कल्लाणयविहिर[2]यणेण कलिउ ।
पुणु कहमि पयडु गुणणियरभरिउ   करकंडणररिंदहो तणउ चरिउ ।
जइ दुज्जण वंकुड मणि णिरुत्तु   जइ जणवउ णीरसु मलिणचित्तु ।
वायरणु ण जाणमि जइ वि छंदु   सुअजलहि तरेव्वइँ[3] जइ वि मंदु ।   5
जइ कह व ण परसइ ललियवाणि   जइ बुहयणलोयहो तणिय काणि ।
जइ कवियणसेव हु मइँ ण कीय   जइ [4]जडयणसंगइँ मलिण कीय ।
तो सिद्धसेण सुसमंतभद्द   अकलंकदेव सुअजलसमुद्द ।
जयएव सयंभु विसालचित्तु   वाएसरिघरु[5] सिरिपुप्फयंतु ।

घत्ता—इय हियए सरंतहो विणउ करंतहो महु संजायउ जं जि फलु ।   10
तम्हा सुहभरियउ दुहपरिहरियउ पयडमि वंछिउ णत्थि छलु ॥२॥

---

१. १ J गय. २ D पिहुल.

२. १ D N महुर°. २ D N विहि अण्णेण. ३ D N तरेवउ. ४ J जडइण. ५ D N वाएसरि व्व.

करकंडचरिउ

हिन्दी अनुवाद

संधि—१

१—वन्दना

मैं उन श्री जिनेन्द्रदेवके चरणोंका स्मरण करता हूँ जिन्होंने कामदेवका विनाश कर दिया है, शिवपुरमें निवास लिया है; जो पापरूपी अन्धकारका हरण करनेके लिए सूर्य हैं; जो परमात्म पदमें लीन हैं और मृत्युसे रहित हैं।

अनुपम मोक्षके सुखको देनेवाले तथा देवों, नागों और मनुष्योंके इन्द्रों द्वारा सेवित, हे देव! आपकी जय हो। जय हो आपकी—जिन्होंने ज्ञानरूपी महोदधिका पार पा लिया है ५ और उत्तम भव्यजनोंको मोक्षके मार्गपर लगा दिया है। जो कर्मरूपी भुजंगोंको दमन करनेके लिए मंत्ररूप हैं, जो समस्त मंत्रोंके बीज हैं और मनरूपी ग्रहके काल (विनाशक) हैं। जो चारों गतियोंमें पड़े हुए प्राणियोंके लिए एक मात्र शरण हैं तथा कलहरहित सज्जनोंके दुःख-समूहका हरण करनेवाले हैं। जो संयमरूपी सरोवरके राजहंस हैं एवं हंसोंके समान उज्ज्वल बुद्धिमानों द्वारा प्रशंसित हैं। जो क्रोधरूपी अग्निके लिए प्रचुर जलरूप हैं और जो अज्ञानतमका निवारण १० करनेवाले और केवल-ज्ञानको धारण करनेवाले हैं। जिन्होंने मोक्षरूपी शाश्वत लक्ष्मीके हृदयमें अपना निवास बनाया है, जो सैकड़ों इन्द्रों द्वारा सेवित हैं और सुखके निवास हैं। जो भव्यरूपी कमलोंको प्रफुल्लित करनेके लिए सूर्यरूप हैं, उत्तमगुण सम्पन्न हैं तथा आत्मरसके अगाधसमुद्र हैं! हे निरंजन, भवभयभंजन, भुवनमहागृहमंडन देव! आपकी जय हो। जो कोई आपके चरणोंको नमस्कार करता है तथा मनमें आपका स्मरण करता है, उस मनुष्यको मनोवांछित १५ फलकी प्राप्ति होती है।

२—कविका विनय-प्रदर्शन

दिव्यवाणी सरस्वतीको मनमें धारण करके तथा पण्डित मंगलदेवके चरणोंका स्मरण करके मैं उस करकण्ड नरेन्द्रके चरित्रका वर्णन करता हूँ जो लोगोंके कानोंको सुहावना, मधुर और ललित लगनेवाला है, पञ्च कल्याणक विधिरूपी रत्नसे जटित है और जो गुणोंके समूहसे भरा हुआ एवं प्रसिद्ध है। यद्यपि दुर्जन अपने मनमें अत्यन्त वक्र होते हैं, और जनपद (साधारण लोग) नीरस और मलिन चित्त हैं। मैं स्वयं भी न व्याकरण जानता हूँ और न छन्दशास्त्र; ५ एवं शास्त्ररूपी समुद्रके पार पहुँचनेमें मन्द हूँ। मेरी वाणीमें लालित्यका प्रसार किसी प्रकार भी होता नहीं, और बुद्धिमान् लोगोंके सम्मुख मुझे लज्जा उत्पन्न होती है। मैंने कभी कविजनोंकी सेवा भी नहीं की; प्रत्युत जड़ लोगोंकी संगतिसे मेरी कीर्ति मलिन हुई है। तथापि शास्त्ररूपी जलके समुद्र सिद्धसेन, श्री समन्तभद्र, अकलंकदेव, जयदेव, विशालचित्त स्वयंभू एवं वागेश्वरीगृह श्री पुष्पदन्त, इनका हृदयमें स्मरण और विनय करनेसे मुझे जो कुछ फल प्राप्त हुआ है उसीके १० सहारे सुखसे भरे हुए और दुःखसे परिहृत अपने मनोवांछित चरित्रका वर्णन करता हूँ। इसमें किसी प्रकारका कोई छल नहीं है।

३

The story begins. Tne country of Anga.

दीवाण पहाणहिँ दीवदीवे जंबूदुमलंछिए जंबुदीवे
वेढियलवणण्णववलयमाणे जोयणसयसहसपरिप्पमाणे।
वित्थिण्णउ इह सिरि भरहछेत्तु गंगाणइसिंधु[१]हिँ विप्फुरंतु।
छक्खंडभूमिरयणहँ णिहाणु रयणायरो व्व सोहायमाणु।
एत्थत्थि रवण्णउ अंगदेसु महिमहिलइँ णं किउ दिव्ववेसु 5
जहिँ सरवरि उग्गय पंकयाइँ णं धरणिवयणि[२] णयणुल्लयाइँ।
जहिँ हालिणिरूवणिबद्धणेह संचल्लहिँ जक्ख ण दिव्वदेह।
जहिँ बालहिँ रक्खिय सालिखेत्त मोहेविणु गीयएँ हरिणखंत[३]।
जहिँ दक्खइँ भुंजिवि[४] दुहु मुयंति थलकमलहिँ पंथिय सुहु[५] सुयंति।
जहिँ सारणिसलिलि[६] सरोयपंति अइरेहइ मेइणि णं हसंति। 10

घत्ता—तहिँ देसि रवण्णइँ धणकणपुण्णइँ अत्थि णयरि सुमणोहरिय।
जणणयणपियारी महियलि सारी चंपा णामइँ गुणभरिय ॥३॥

४

The town of Campā.

जा वेढिय परिहाजलभरेण णं मेइणि रेहइ सायरेण।
उत्तुंगधवलकउसीसएहिँ णं सग्गु छिवइ [१]बाहूसएहिँ।
जिणमन्दिर रेहहिँ जाहिँ तुंग णं पुण्णपुंज णिम्मल अहंग।
कोसेयपडायउ घरि लुलंति णं सेयसप्प णहि सलवलंति।
जा पंचवण्णमणिकिरणदित्त कुसुमंजलि णं मयणेण वित्त। 5
चित्तलियहिँ जा सोहइ घरेहिँ णं अमरविमाणहिँ मणहरेहिँ।
णवकुंकुमछडयहिँ जा सहेइ समरंगणु मयणहो णं कहेइ।
रत्तुप्पलाइँ भूमिहिँ गयाइँ णं कहइ[२] धरंती फलसयाइँ।
जिणवासपुज्जमाहप्पएण ण वि कामुय जित्ता कामएण।

घत्ता—तहिँ अरिविद्दारणु मयतरुवारणु धाडीवाहणु पहु हुयउ। 10
जो कलगुणजुत्तउ गुरुयणभत्तउ विज्जासायरपारगउ ॥४॥

५

King Dhādivāhana.

जो धम्ममहारहधुरधरणु काणीणदीणदुत्थियसरणु।
जसु कित्तिएँ धवलिउ भुवणयलु जसु दाणइँ पीणिउ जणु सयलु।
गुणकित्तणु सुरयणु जसु करइ भयभीउ ण अरियणु[१] संचरइ।

---

३. १ JS सिंधुय. २ SJ °वयण°. ३ D ठंत. ४ DN जिम्मिवि. ५ DN सुहि. ६ JS सलिल°.
४. १ J बहुसीसएहिं; DN कउसीसएहिं. २ DJN कहव.
५. १ DN भयभीयउ अरियणु.

३—जम्बूद्वीप, भरतक्षेत्र और अंगदेशका वर्णन

द्वीपोंमें प्रधान, द्वीपोंके दीपक समान, जम्बूवृक्षसे लक्षित जम्बूद्वीप है, जो लवणसमुद्रसे वलयके समान वेष्टित तथा प्रमाणमें एक लाख योजन है। इस जम्बूद्वीपमें विशाल श्री भरतक्षेत्र है, जो गंगा और सिन्धु नदियोंसे विस्फुरायमान है। वह छह खण्ड भूमिरूपी रत्नोंका निधान होनेसे रत्नाकरके समान शोभायमान है। ऐसे इस भरत क्षेत्रमें रमणीक अंग देश है, जैसे मानो पृथ्वी-महिलाने दिव्य वेष ही धारण किया हो। जहाँके सरोवरोंमें कमल उग रहे हैं, मानो ५ धरणीके मुखपर सुन्दर नयन ही हों। जहाँ किसान स्त्रियोंके रूपमें स्नेहासक्त होकर दिव्य देहधारी यक्ष निश्चल हो गये हैं। जहाँ बालिकाएँ चरते हुए हरिणोंके झुण्डोंको अपने गीतसे मोहित करके धानके खेतोंकी रक्षा कर लेती हैं। जहाँ पथिक दाखका भोजनकर अपने यात्राके दुःखसे मुक्त होते और स्थल कमलोंपर सुखसे सो जाते हैं। जहाँकी नहरोंके पानीमें कमलोंकी पंक्ति अति शोभायमान होती है, जैसे मानो मेदिनी हँस उठी हो। ऐसे धन-धान्यसे पूर्ण उस १० रमणीक अंग देशमें बड़ी मनोहर, जननयन प्यारी, महीतलमें श्रेष्ठ और गुणोंसे भरी हुई चम्पा नामकी नगरी है।

४—चम्पा नगरीका वर्णन

वह चम्पा नगरी जल-भरी परिखासे घिरी होनेके कारण, सागरसे वेष्टित पृथ्वीके समान शोभायमान है। वह अपने ऊँचे प्रासाद-शिखरोंसे ऐसी प्रतीत होती है मानो अपनी सैकड़ों बाहुओं-द्वारा स्वर्गको छू रही हो। वहाँ विशाल जिनमंदिर ऐसे शोभायमान हैं, मानो निर्मल और अभंग पुण्यके पुंज ही हों। घर-घर रेशमकी पताकाएँ उड़ रही हैं, मानो आकाशमें श्वेत सर्प सलबला रहे हों। वह पचरंगे मणियोंकी किरणोंसे देदीप्यमान हो रही है, मानो मदनने अपनी ५ कुसुमांजलि ही चढ़ायी हो। वह चित्रमय घरोंसे ऐसी शोभायमान है, जैसे मानो वे देवोंके मनोहर विमान ही हों। नयी केशरकी छटाओंकी वहाँ ऐसी शोभा है कि मानो वह कह रही हो कि मदनका समरांगण यही तो है। वहाँ स्थान-स्थानपर रक्त-कमल बिखरे हुए हैं, मानो वह पुकार-पुकारकर कह रही है कि मैं ही सैकड़ों प्रकारके फलोंको धारण करती हूँ। वहाँ भगवान् वासु-पूज्यके माहात्म्यसे पुरुष कामी होकर कामदेव-द्वारा जीते नहीं जाते। १०

इस प्रकारकी उस चम्पा नगरीमें शत्रुओंका नाश करनेवाला मदरूपी वृक्षके लिए हाथीके समान धाडीवाहन प्रभु हुआ, जो समस्त कलाओं और गुणोंसे युक्त, गुरुजनोंका भक्त तथा विद्याओंके सागरका पारगामी था।

५—धाडीवाहन राजाका वर्णन

राजा धाडीवाहन धर्मरूपी महारथके धुरेको धारण करता था तथा अनाथों, दीनों और दुखियोंका सहारा था। उसकी कीर्तिसे भुवनतल धवल हो रहा था और दानसे सकल जन प्रसन्न थे। सुरजन भी उसके गुणोंकी कीर्त्ति गाते थे; किन्तु अरिजन भयभीत होकर संचार नहीं

जसु सरसइ सोहइ मुहकमले लच्छी विवसइ सिरिवच्छयले।
धणु देवएँ पसरइ जासु करु णउ पाणिवहेंवइं धरइ सरु। 5
जसु आणइँ हरिणइँ आहयाइँ[2] परिभमइँ ण महियलि खंजयाइँ[2]।
संपुण्णवयणु जो सज्जणाहँ भूभंगुरभीसणु दुज्जणाहँ।
जसु[3] धम्मराएँ रंजियउ मणु ण विलिसउ दुरियइँ एक्कु खणु।
घत्ता—मणु[4] जलहि व गहिरउ मेरु व धीरउ गयणु व पिहुलउ जसु तणउ।
जसु परियणु भत्तउ गुणअणुरत्तउ सो जायउ जगमंडणउ ॥५॥ 10

६

The king falls in love with a maiden of kausāmbī

एक्कहिँ दिण धाडीवाहणेण कुसुमउरहो गमु किउ ताउ तेण।
जा सुंदरि पालिय मालिएण तहिँ दिट्ठी तेण णराहिवेण।
सा पेक्खिवि मणहर कयमएण विणडिउ सुणरवइ कामएण।
विरहग्गितावसंतत्तएण को वि पुच्छिउ णरु तेँ राणएण।
भणु सहयर एह कसु तणिय बाल णं कामविडविपरिफलियडाल। 5
णरणाहहो तेण वि कहिय वत्त मालियहो धीय एह[1] लडहगत्त।
कोक्काइवि[2] मालिउ कुसुमदत्तु संसएण पपुच्छिउ णिविडगत्तु।
तुह तणिय बाल किँ होइ एह किं अण्णहो कासु वि कहि सणेह।
घत्ता—तँ कहिउ णरिंदहो महियलि चंदहो घरिणिएँ महो[3] कुसुमत्तइँ।
गंगाजलवाहे सुट्ठु अगाहे पाविय एह मंजूसइँ ॥६॥ 10

७

The king discovers that his lady-love was a princess.

तक्खणेण मालिएण धम्मभारु पालिएण।
लेवि पेइया[1] खणेण दाविया णिवस्स तेण।
माणवेहिँ कीयसेव छुड्डिया वि एत्थु देव।
जाणिया ण सामिसाल कासु धीय एह बाल।
सा वि जोइया णिवेण णाणसायरं गएण। 5
तम्मि दिट्ठु हेमकंतु अंगुलीउ णामवंतु।
ताव तेण सुंदराइँ वाइयाइँ अक्खराइँ।
एह बाल रायधूव कामगेहु जा वि हूव।
घत्ता—कउसंबियरायहो[2] पसरियछायहो वसुपालहो पउमावइ दुहिय।
इय[3] मण्णिवि राएँ कयअणुराएँ सा खणि परिणिय दुहमहिय ॥७॥ 10

८

He marries her. Her dream foretells the birth of son.

ताम राएँ मालियासु देवि दव्वु भव्वु तासु।
कायकंतिसंगएण तेण तीएँ संजुएण।
मंदिरं सुउच्छवेण पावियं कयत्थएण।

---

५. २ Js °यइं. ३ J धम्मराय°. ४ N मणि.

६. १ J ए. २ S कोक्काइउ. ३ SJ कुसुमदत्तए.

७. १ J एइया. २ J कउसंविए°. ३ S मुणेवि.

कर पाते थे। उसके मुखकमलमें सरस्वती शोभायमान थी और श्रीवक्षस्थलमें लक्ष्मी निवास करती थी। उसका हाथ धन देनेके लिए तो पसरता था, किन्तु उसका धनुष प्राणीका वध करनेके लिए सरसंधान नहीं करता था। उसकी मानो आज्ञा मात्रसे आहत व लँगड़े होकर हरिण महीतलपर (अन्नका नाश करते हुए) परिभ्रमण नहीं करते थे। सज्जनोंके लिए उसका मुख सौम्य और पुण्यवान् दिखायी देता था; किन्तु दुर्जनोंको चढ़ी हुई भौंहों युक्त भीषण। उसका मन धर्म-रागसे रंजित था और एक क्षणमात्र भी कभी पापसे लिप्त नहीं होता था। उसका मन जलधिके समान गंभीर, मेरुवत् धीर व गगनवत् विशाल था। उसके परिजन भक्त और गुणानुरक्त थे। इस प्रकार वह राजा जगत्का मण्डन ही हो गया था।

६—राजाका प्रेम-जागरण और विवाह

एक दिन राजा धाडीवाहनने कुसुमपुरको गमन किया। वहाँ उन्होंने एक सुन्दरीको देखा जिसका पालन-पोषण वहाँके एक मालीने किया था। उस मनोहर कन्याको देखकर राजा कामदेवके मदसे पीड़ित हो उठा। विरहरूपी अग्निके तापसे सन्तप्त होकर राजाने एक मनुष्यसे पूछा—हे मित्र! कहो तो यह किसकी बालिका है। दिखायी तो ऐसी देती है जैसे कामरूपी वृक्षकी एक फली हुई डाल ही हो। उस मनुष्यने राजाको बात बतायी कि वह सुन्दरगात्री मालीकी पुत्री है। राजाने तुरन्त कुसुमदत्त नामके मालीको बुलवाया और उस सुदृढ़ गात्रसे संशयपूर्वक पूछा कि यह सचमुचमें तुम्हारी ही बालिका है या किसी और की? तुम मुझे स्नेह-पूर्वक कहो। तब उस मालीने महीतलके चन्द्र नरेन्द्रको कहा कि मेरी कुसुमदत्ता नामकी गृहिणीने इसे गंगाकी खूब अगाध धारामें एक पिटारीके भीतर रखा पाया था।

७—मालीकी पुत्री राजकन्या सिद्ध हुई

मालीने उसी क्षण धर्म-भारका पालन करते हुए उस पेटीको लाकर तुरन्त राजाको दिखलाया और कहा—मानवों द्वारा सेवित, हे देव! वह इसी पिटारीमें रखी पायी गयी थी। हे स्वामिसार! हमें ज्ञात नहीं हो सका कि यह बालिका किसकी पुत्री है। तब ज्ञानके सागर तक पहुँचे हुए उस राजाने उस पिटारीको जोहा (ध्यानसे देखा)। उसमें देखा क्या कि स्वर्णमयी अँगुलीकी मोहर लगी है जिसपर नाम भी लिखा है। उसने उन अति सुन्दर अक्षरोंको बाँचा। लिखा था—"यह राजदुहिता है जो कामदेवके गृहके समान सुन्दरी हुई। यह कौशाम्बीके विस्तृत कीर्त्ति, सुप्रसिद्ध राजा वसुपालकी पद्मावती नामकी पुत्री है।" जब राजाने यह जान लिया कि वह राजपुत्री है, तब उसने अपने दुःखका मथन करनेवाली युवतीका अनुरागसे तुरन्त परिणय कर लिया।

८—रानीका स्वप्न

राजाने उस मालीको भव्य द्रव्य दिया। अपनी कायकान्तिके अतिरिक्त उस रमणीसे संयुक्त होकर अपनेको कृतार्थ मानते हुए राजाने बड़े उत्सवके साथ अपने मन्दिरमें प्रवेश

तम्मि ताइँ सुंदराइँ   तोसएण कीलिराइँ ।
भामिणीए[1] तासु ताए   जामिणीसु सुत्तियाए । 5
दिट्ठु कुंभि सुप्पयंडु   णिज्झरंतु उद्धसुंडु ।
उट्ठियाए पत्थिवासु   अक्खियं पि ताव तासु ।
पिक्खु[2] सामि हत्थि इट्ठु   जामिणीहिँ एंतु दिट्ठु ।
घत्ता—तं वयणु सुणेविणु सउणु मुणेविणु राएँ अक्खिउ ताहिँ[3] फलु ।
तुह होसइ णंदणु वंसहो मंडणु जणमणरंजणु हणियखलु ॥ ८ ॥ 10

९

She becomes pregnant.

पिएण समाणिय[1] अच्छइ जाम   दिणेहिँ पसत्थहिँ हूयउ ताम ।
वियंभिय अंगे अउव्विय छाय   कवोल समुज्जल पंडुर जाय ।
पओहरतेयविडंबियसारु   उरम्मि ण छज्जइ मोत्तियहारु
घुलंतइँ तेण थणाहँ मुहाइँ   सकज्जलवण्णइँ ताइँ कयाइँ ।
खलो वि रणेहिँ[2] विणामियसीसु   णिमच्छरु होइ गुणीण गुणीसु 5
वलित्तउ लज्जए[3] जुत्तु खणेण   पणट्ठउ बालहो णाइँ भएण
सुपोट्टभरेण हुआ गइ[4] मंद   समालसजिंभ पवड्ढिय तंद[5] ।
कुणंतउ अच्छइ मायहिँ तुंगे   सुचिण्हइँ[6] गब्भहो सारइँ अंगे ।
दिवायरचंदणिवारियधामु   सुछंदइँ गंथिउ मोत्तियदामु ।
घत्ता—सा पेक्खवि राणी जयहो पहाणी राएँ किउ ता सोहलउ । 10
तहिँ तेहइँ अवसरे पयडइँ वासरे हूयउँ[7] तहिँ मणि दोहलउ ॥ ९ ॥

१०

Her longing.

तेँ पीडिय माणिणि मयणलील   ण पयंपइ कीरइ का वि कील ।
किउँ पावउँ चिंतिउ णियमणम्मि   पडिखलइ महीयलि तक्खणम्मि ।
सा पेक्खवि पुच्छिय णरवरेण   विहाणिय किं तुहुँ कारणेण ।
किं दुक्खइँ सुंदरि तउ सरीरे   पडिवयणु ण जंपहि जेम धीरे[1] ।
ता दुक्खु वहंतीए णरवरासु   पडिवयणु दिण्णु तोसियसुरासु । 5
तुह कहियइं णरवइ किं भएण   पहु अंगु[2] खणद्धे सुक्कु[3] जेण ।
महो अत्थि णरेसर चिंत का वि   संवडइ ण मणुवहं जा कया वि ।
वरिसंतइँ जलहरे मंदमंदे   णररूउ करेविणु णियगइंदे ।
घत्ता—पइँ सहुँ चडेवि णरेसर पुणु[4] परमेसर पट्टणु भममि सगोउरउ ।
इउ हियवइँ वट्टइ जइ ण विघट्टइ तो णिच्छइँ एवहिँ मरउँ ॥१०॥ 10

---

८. १ J °इं. २ J पिक्ख. ३ ND ताहे.

९. १ S सुमणिय. २ JDNरलेहिं. ३ J लज्जइं. ४ J गयमंद. ५ J तुंद; Dदंद.
६ S सुरेहइं. ७ DN जायउ.

१०. १ N अधीरि. २ N अंग. ३ DN सुक्क. ४ DN पुर.

किया और वहाँ वे दोनों सुन्दर पति-पत्नी सन्तोषसे क्रीड़ा करने लगे। फिर एक दिन रात्रिमें सोते हुए उस भामिनीने स्वप्नमें एक सुप्रचण्ड हाथीको देखा जिसके मद झर रहा था और जो अपनी सूँड ऊपरको उठाये हुए था। निद्रासे उठकर रानीने राजासे कहा—"देखिए स्वामी, ५ रात्रिमें मैंने एक सुन्दर हाथीको आते देखा है।" रानीका वचन सुनकर राजाने शकुनका विचार किया और उसका फल बतलाया कि हे प्रिये! तेरे एक पुत्र उत्पन्न होगा, जो वंशका मंडन, जनमनरंजक, तथा खलोंका हनन करनेवाला होगा।

९—रानीकी गर्भावस्था

जब पद्मावती अपने प्रियतमके साथ इस प्रकार रह रही थी, तब आनन्दके दिवस व्यतीत होते-होते एक नयी बात हुई। उसके शरीरमें अपूर्व छाया उत्पन्न हुई। उसके उज्ज्वल कपोल पीले पड़ गये। उसके उरमें अब वह मोतियोंका हार शोभायमान नहीं होता था, क्योंकि पयोधरोंके तेजने उसका सौन्दर्य हरण कर लिया था। उस हारने भी डोल-डोल कर स्तनोंके मुखोंको काजलके समान काला कर डाला था। खलका भी जब लड़-लड़कर सिर झुका दिया ५ जाता है, तभी वह गुणीजनोंके प्रति मत्सरहीन होता है। रानीके उदरकी त्रिवली मानो बालकके भयसे लज्जायुक्त होकर नष्ट हो गयी। पेटके बड़े भारसे उसकी गति मन्द पड़ गयी तथा आलस, जम्हाई और तन्द्राकी वृद्धि हो गयी। इस प्रकार बालक गर्भके सारभूत लक्षणोंको प्रकट करता हुआ माताके विशाल अंगमें रहने लगा, तथा अपने तेजसे सूर्य और चन्द्रके तेजको भी फीका पाड़ने लगा (इस कडवककी रचना मौक्तिक दाम छन्दमें की गयी है)। उस जगप्रधान रानीको १० ऐसी गर्भकी दशामें देखकर राजाने सोहला (सौभाग्योत्सव) मनाया। उसी अवसरपर उस शुभ दिन उसके मनमें एक दोहला उत्पन्न हुआ।

१०—रानीका दोहला

उस दोहलेसे उस गजगामिनी मानिनीको बड़ी पीड़ा हुई। वह अब न कुछ बोलती थी और न कोई क्रीड़ा करती थी। बस, उसे एक यही धुन थी कि अपने मनकी चिन्तित बातें कैसे पाऊँ? वह क्षण-क्षण महीतलपर स्खलित होती थी। उसे ऐसी दशामें देखकर राजाने पूछा— "हे प्रिये, तू किस कारणसे ऐसी पीड़ित हुई है? हे सुन्दरी! तेरे शरीरमें कौनसे दुःख उत्पन्न हुए जिनके कारण तू धीरवती होकर भी अब मेरी बातका उत्तर भी नहीं देती?" तब रानीने ५ अपना दुख धारण किये हुए उस देवोंको भी सन्तोष करानेवाले अपने श्रेष्ठ पुरुषको उत्तर दिया—"हे नरपति! जिस कारणसे मेरा पुष्ट शरीर इतनी जल्दी ऐसा सूख गया है, उस कारणको कहनेसे क्या लाभ? हे नरेश्वर! मेरे मनमें एक ऐसी चिन्ता (इच्छा) उत्पन्न हुई है जो मनुष्योंको कदापि सम्प्राप्त नहीं हो सकती। मेघोंकी मन्द-मन्द वर्षा हो और मैं नररूप धारण करके अपने गजेन्द्रपर आपके सहित, हे राजन्, हे नरेश्वर, चढ़कर फिर गोपुरों सहित पट्टनका भ्रमण करूँ। १० हे परमेश्वर, यह (अभिलाषा) मेरे हृदयमें वर्तमान है। यदि यह घटित न हो सकी तो मैं निश्चयसे योंही मर जाऊँगी।"

११

Arrangements to satisfy her Longing.

किं चिंतिउ सुंदरि इउ हिएण विहसंतइँ बोल्लिउ राणएण ।
मइँ जाणिउ केण वि कारणेण उप्पण्णउ दुहु तुहुँ महो तणेण ।
पइँ केत्तिउ सुंदरि गणिउ एहु मा खवहि अलीढइँ णिययदेहु ।
ता माणिणि पभणइ गिंभयालि दावाणललग्गइँ अइवमालि ।
कहिँ अच्छइ जलहरु सामिसाल संभवइ ण एहउ गुणविसाल । 5
ता राएँ णियमणि कलिवि एउ संचिंतिउ मेहकुमारदेउ ।
सो आयउ तहो चिरणेहएण परिणिम्मियमेहसरूवएण ।
संछायउ णहयलु तेण जाव जलकणहिँ पवरिसिउ देउ ताव ।
घत्ता—पुणु राएँ[1] उत्ती महिल सुचित्ती[2] पेक्खहि जलहरु कसणतणु ।
लइ लेहि पसाहणु मयणहो साहणु संथवहि भडारिए णिययमणु ॥११॥ 10

१२

The restive elephant flies to Kalinjar with the royal couple.

जा णिवेण पोट्टिवंतु कुंजरो सुदित्तिवंतु ।
तूरयाइँ वाइऊण मंगलाइँ गाइऊण ।
मंडिऊण सज्जिऊण भामिणीहिँ अप्पिऊण ।
सा चडाविया णिवेण[1] खंधे तासु सुंदरेण ।
तम्मि भाइ सो णरिंदु तीए जुत्तु णं सुरिंदु । 5
चंदणेण मीसियाउ ता सुअंधु वाउ आउ ।
मेहजालु मंदु मंदु मोक्कलेइ तोयबिंदु ।
ताउ तेण संभरीउ चित्ति विज्झु विप्फुरीउ ।
घत्ता—सो कुंजरु दुट्ठउ चित्ति पहिट्ठउ भग्गउ जाइ कलिंजरहो ।
ता जणवउ धाविउ कह व ण पाविउ बाहुडि गउ सो णियपुरहो ॥१२॥ 10

१३

They escape but separately.

जाव कुंभि भग्गमाणु काणणं पवज्जमाणु ।
राणियाए बोहियाए ताव कंतु वुत्तु ताए ।
देव देव उत्तरेहु मज्झु लग्गि मा मरेहु ।
तुम्हि होंति होइ रज्जु तुम्हि होंति धम्मकज्जु ।
तुम्हि होंति सयल लोय तुम्हि होंति जीवभोय । 5
पट्टणासु राय जाहि लेउ हत्थि मज्झु बाहि ।
राणएण तं सुणेवि रुक्ख लग्गि उल्ललेवि ।
संसएण पट्टणम्मि राउ पत्तु तक्खणम्मि ।
एत्थु ताव कुंजरेण सा वि णीय दुद्धरेण ।
घत्ता—सो कुंजरु जंतउ सरवरु पत्तउ पइठउ तहिँ डोहंतु जलु । 10
सा णरवइभामिणि णं सुरकामिणि ता जलि पडिय करेवि छलु ॥१३॥

---

११. १ DN रायएं. २ DN सचित्ती.

१२. १ S णिएण; J णएण.

११—रानीके दोहलाकी पूर्ति

यह सुनकर राजा हँसते हुए बोला—"हे सुन्दरी ! यह तूने अपने हृदयमें क्या चिन्ता उत्पन्न की ? मैंने जाना कि तुझे किसी मेरे कारणसे दुःख उत्पन्न हुआ है। हे सुन्दरी ! तूने इसको कितनी बड़ी बात समझा ? व्यर्थ अपनी देहको मत खपा।" तब वह भामिनी कहने लगी कि इस ग्रीष्मकालमें जब, भयंकर दावानल लग रहे हैं तब, हे स्वामिसार ! जलधर कहाँसे आयेगा ? हे गुणविशाल ! यह होना सम्भव नहीं।" तब राजाने अपने मनमें इसको विचार कर ५ मेघकुमार देवका चिन्तवन किया। वह देव राजाके चिरकालीन स्नेहवश मेघका रूप निर्मित कर वहाँ आया। उसने समस्त नभस्तलको आच्छादित कर दिया और वहाँ जल-बिन्दुओंकी वर्षा होने लगी। तब सुचित्त हुई महिलासे राजाने कहा—"हे कृशतनु ! देखो इस जलधरको; मदन-क्रीड़ाके साधनरूप प्रसाधन लो; और, हे भट्टारिके, अपने मनको सँभालो।"

१२—हाथीका मदोन्मत्त होकर भाग उठना

तत्पश्चात् राजाने एक पुष्ट और दीप्तिवान् हाथी तैयार कराया, बाजे बजवाये, मंगल गीत कराया। वह हाथी मण्डित और सज्जित कराकर रानीको अर्पित किया गया। फिर उस सुन्दर राजाने रानीको उसके स्कन्धपर चढ़ाया। उसके साथ राजा ऐसा शोभायमान हुआ जैसे सुरेन्द्र। उसी समय चन्दन-मिश्रित सुगन्धित वायु चलने लगी और मेघजाल मन्द-मन्द जल-बिन्दु बरसाने लगा। तभी उस हाथीको स्मरण आ गया और उसके चित्तमें विन्ध्यपर्वत स्फुरायमान हो ५ उठा। तब चित्तमें प्रहर्षित होकर वह दुष्ट हाथी भागकर कालिंजरकी ओर चल पड़ा। लोग पीछे-पीछे दौड़े, किन्तु वे उसे किसी प्रकार भी नहीं पा सके। वह अपनी पुरीसे निकलकर बाहर चला गया।

१३—राजाकी मुक्ति किन्तु रानीका अपहरण

जब हाथी भागता हुआ वनकी ओर जाने लगा, तब रानी बहुत भयभीत हुई। वह अपने पतिसे बोली—"हे देव, आप उतर जाइए। मेरे लिए मत मरिए। आपके रहते राज्य है, आपके होते धर्मकार्य हैं, आपके होते सभी लोग हैं। आपके होते ही सब जीवोंका भोग-विलास है। हे राजन्, पट्टणको लौट जाइए—हाथी मुझे भले ही ले जाये।" रानीकी बात सुनकर राजा एक वृक्षकी डालसे लगकर कूद गया और शीघ्र ही दुःखी मनसे राजधानीको लौट आया। यहाँ ५ वह दुर्द्धर कुंजर रानीको लेकर भागता ही गया। जाते-जाते वह हाथी एक सरोवरमें प्रविष्ट हुआ। जहाँ कुछ गहरा पानी था वहाँ सुरकामिनीके समान वह रानी चतुराईसे जलमें कूद गयी।

१४

The miracle in the forest.

अइदुक्खु वहंती णियमणम्मि सरु मुएवि महासइ गय वणम्मि ।
ता दिट्ठउ उववणु ढंखरुक्खु मयरहियउ णीरसु [1]णाइँ मुक्खु ।
तहिँ रुक्खहो तले वीसमइ जाम णंदणवणु फुल्लिउ फलिउ ताम ।
ता दंतीपुरे केण वि विचित्त भडमालिहि अग्गइ कहिय वत्त ।
वणवाल णिसुणि महो तणिय वाय वणे दीसइ अज्जु अउव्व छाय । 5
पप्फुल्लिय चंपय बउल चूय लयमंडव सयल वि हरिय हूय ।
अण्णण्णहिँ समयहिँ फलहिँ जे वि फलभारइँ तरुवर णमिय ते वि ।
भमरावलि परिमलगंधलुद्ध णं वणसिरि गायइ सर विसुद्ध ।
किं वम्महु आयउ तहिँ वण्णमि तं सुंदरु भावइ महो मण्णमि ।
आयण्णिवि तं वणवालु तित्थु खणि गयउ वियंभिउ मयणु जित्थु । 10

घत्ता—ता पेक्खिवि सो णरु तं वणु सुंदरु हरिसइँ तरलिउ एक्कु[2] खणु ।
णउ अम्हहँ पुण्णइँ फलियउ धण्णइँ इउ हियइँ वियप्पिउ तेण पुणु ॥१४॥

१५

The forest-guard discovers her and takes her home.

वणवालु वणेण[1] य परिभमेइ वणरिद्धिहे कारणु सो णिएइ ।
ता परिमलमीसिउ पवणु आउ वणरिद्धि कहइ णं णियसहाउ ।
मग्गेण य आयउ पवणु जेण गउ रक्खवालु गंधेण तेण ।
तेँ तरुतले दिट्ठी दिव्व बाल णं वणसिरि सोहइ गुणवमाल ।
पुणु चिंतइ णउ सामण्ण एह रूवेण अउव्वी दिव्वदेह । 5
बुल्लाविय पुणु णिय सुअ भणेवि उट्ठाविय सा करयलु धरेवि ।
किं दुम्मण अच्छहि पुत्ति एहि लइ चलहि जाहि महो तणए गेहे ।
तहो वयणु सुणेविणु सवणरम्मु संचल्लिय कामिणि तासु हम्मु ।
वणवालहो घरि सा वसइ जाम कुसुमत्तएँ चिंतिउ हियइँ ताम ।

घत्ता—एह णारि विसिट्ठी तेँ तहिँ दिट्ठी किंणरि किं विज्जाहरिय । 10
णयणाण पियारी महिलहँ सारी चंपयगोरी गुणभरिय ॥१५॥

१६

Her beauty makes Kusumadatta jealous of her.

तणुरूवरिद्धि एह अइविहाइ णहरूवइँ रविससि सरिय णाइँ ।
सारउ सरीरु इच्छंतियाए इह सारिउ जंघउ कयलियाए ।
करिराएँ मण्णेवि करु ण चंगु णं सेविउ मेरुहि आहि तुंगु ।
सुरगिरिणा गणियउ कढिण एह अणुसरिय णियंबहो ललियदेह ।
पिहुलत्तणु मणहरु सोणियाहि घरु मण्णिवि मयणें विहिउ ताहि । 5
मयरहरइँ गहिरिम णाहियाहे णं धीय भणेविणु दिण्ण आहे ।
[1]तहि लिहियइं पीणुण्णयथणाइँ णं कुंभिहे कुंभइँ णवघणाइँ ।

१४. १. J णायमुक्खु. २. N एक्कखणु.

१५. १. S वणे य.

१६. १. J तह.

१४—रानीके पहुँचनेसे उपवनमें आश्चर्य

सरोवरसे निकलकर वह महासती अपने मनमें अति दुःख धारण करती हुई वनमें पहुँची। वहाँ उसने देखा कि वृक्ष सब सूखे पड़े हैं और पशु भी कोई नहीं है। अतएव वह उपवन उस मूर्खके समान था, जो अपना कोई मत नहीं रखता और नीरस हो। वहाँ वह एक वृक्षके नीचे विश्राम लेने लगी। उसी समय वह नन्दनवन फल-फूल उठा। तब किसीने जाकर दन्तीपुरमें भटमालीके आगे वह विचित्र बात कही—"हे वनपाल, मेरी बात सुनो। आज वनमें एक अपूर्व ५ शोभा दिखायी दे रही है। चम्पक, बकुल और आमके वृक्ष प्रफुल्लित हो उठे हैं। समस्त लता-मण्डप हरे हो गये हैं। जो अन्य-अन्य समयमें फलते हैं, वे तरुवर भी फलोंके भारसे झुक रहे हैं। सुगन्धकी लोभी भ्रमरावली ऐसी गुंजार कर रही है जैसे मानो वनश्री विशुद्ध स्वरसे गा रही हो। क्या मन्मथ उस वनमें आ गया है, जो वह मुझे इतना सुन्दर दिखायी दिया?" यह सुनकर वनपाल तुरन्त ही वहाँ गया, जहाँ उक्त प्रकार मदनका विलास दिखायी दे रहा था। उस वनको १० ऐसा सुन्दर देखकर माली एक क्षण-भरके लिए हर्षसे तरंगित हो उठा और अपने हृदयमें विकल्प किया कि हमारे किसी पवित्र पुण्यसे तो यह फला नहीं है।

१५—रानी मालीके घर जाती है

वनपाल वनमें भ्रमण करने और वनकी ऋद्धिके कारणकी खोज लगाने लगा। उसी समय सुगन्ध मिश्रित पवन आया, मानो वनकी ऋद्धि अपना स्वभाव कह रही हो। जिस मार्गसे वह पवन आया था, रक्षपाल उसी ओर गन्धका अनुसरण करता हुआ चल पड़ा। उसने वृक्षके नीचे बैठी हुई उस दिव्य बालिकाको देखा, मानो गुणोंसे भरपूर स्वयं वनश्री विराजमान हो। माली विचार करने लगा, यह कोई साधारण स्त्री तो है नहीं; यह तो रूपमें अपूर्व दिव्य देहधारी है। ५ फिर उसने अपनी पुत्री कहकर उसे बुलाया और हाथ धरकर उसको उठाया। वह बोला—"हे पुत्री, दुःखी मनसे यहां क्यों बैठी है? ले, मेरे साथ मेरे घरको चल।" उसके ऐसे कर्णमधुर वचन सुनकर वह कामिनी उसके घरको चल पड़ी। जब वह वनमालीके घरमें रहने लगी तब मालीकी स्त्री कुसुमदत्ताने अपने हृदयमें विचार किया—इस असाधारण स्त्रीको जो मेरे पतिने देखा है, सो यह कोई किन्नरी है या विद्याधरी, जो यह आँखोंको ऐसी प्यारी लगती है; तथा महिलाओंमें १० श्रेष्ठ, चम्पक-गोरी और गुणोंसे भरपूर दिखायी देती है।

१६—रानीका सौन्दर्य व मालिनकी रानीसे ईर्ष्या

इसके शरीरकी रूप-ऋद्धि अत्यधिक भाती है। नखोंके रूपमें मानो सूर्य और चन्द्र इसका अनुसरण करते हैं। इसके सुन्दर शरीरकी इच्छा करती हुई ही कदली इसकी जंघाओंका अनुकरण करने लगी है; और ऐरावत हाथीने उनके समक्ष अपनी सूंडको भला न जान, मानो मेरुके उच्च शिखरका सेवन किया है। सुरगिरिने अपनेसे भी कठिन मानकर इस ललितदेह रमणीके नितम्बका अनुसरण किया है। इसके श्रोणि भागकी मनोहर विशालताका, मानो मदनने वहाँ ही ५ अपना घर मानकर निर्माण किया है। नाभिकी गहराई तो इतनी है कि जैसे समुद्रने उसे ही अपनी कन्या (लक्ष्मी) मानकर, उपहारमें दी हो। उसके रेखांकित पीन और उन्नत स्तन तो ऐसे हैं, जैसे मानो नये घावोंसे युक्त हाथीके कुम्भ ही हों। करपल्लवोंकी शोभासे युक्त उसकी भुजा लताओंकी

किं वण्णमि सरलिम भुवलयाहिँ करपल्लवसोहासंजुआहिँ ।
दंतावलि सोहइ विप्फुरंति णं दाडिमवीयहँ अणुहरंति ।
णासहे उण्णइ असहंतएण रत्तत्तणु धरियउ अहरएण । 10
सियकसण नयण सोहंति तार णं केययदलि गय भमर तार ।
अइकुडिली भउहावलि विहाइ धणुलट्ठि व मयणेँ धरिय णाइँ ।
सोहामहग्घु भालयलु भाइ अद्धिंदु व लग्गउ सहइ णाइँ ।
अलिणीलकेस सिररुह घुलंति मुहइंदुभयइँ णं तम मिलंति ।
घत्ता—जइ आयहि रूवइँ मयणसरूवइँ महो पिउ होहइ विमणमणु । 15
ता कलहु करेविणु मइँ मेल्लेविणु णिच्छउ माणइ एह पुणु ॥१६॥

१७

The birth of the hero at the cemetery.

ताव ताए रोसियाइँ दोसु देवि घल्लियाइँ ।
सा घराउ मेल्लि राउ तक्खणेण चल्लियाउ ।
दुक्खएण जंतियाए भूयथाणु दिट्ठु ताए ।
सूलभिण्ण चोरजार तुंड[1] खंड धिट्ठ[2] घार ।
दारियाहँ जीवयाहँ लोहिएण थिप्पिरं आमिसाण गिद्धएहिँ भूयएहिँ णच्चिरं । 5
लोलजीह भल्लुएहिँ फाडियं मयोवरं मंसरत्तफेक्करंतरक्खसाण गोयरं ।
उड्डिराण रिंगिराण पक्खिलक्खसंकुलं चिक्खिजालजीववग्गडज्झमाणआउलं ।
वायएण सोसभूयकेसभारलोलिरं थामि थामि बद्धियाहिँ चिंधियाहिँ घोलिरं ।
देहिदेहगंधएण माणुसेहिँ जूरियं कहिँ मि थामे भग्गएहिँ[3] खप्परेहिँ पूरियं ।
घत्ता–देहहो अवसाणइँ भीममसाणइँ तहिँ तहे जायउ पुत्तु वरु । 10
कणयामरवण्णउ लक्खणपुण्णउ जणमणणयणाणंदयरु ॥ १७ ॥

इय करकंडमहारायचरिए मुणिकणयामरविरइए भव्वयणकण्णावयंसे पंचकल्लाणविहाण-
कप्पतरुफलसंपत्ते करकंडजम्मोप्पत्तिवण्णणो णाम पढमो परिच्छेउ समत्तो ।

॥ संधि ॥ १ ॥

17. १ JDN मुंड. २ DN 'धिट्ठघार'के स्थानमें 'धिट्ठयं'. ३ N भग्गताण.

सुडौलताका तो मैं क्या वर्णन करूँ ? दन्तावलि ऐसी चमकदार शोभा धारण कर रही है, मानो अनारके दानोंका ही अनुसरण कर रही हो। नासिकाकी उन्नतिको सहन न करके ही तो उसके अधरने वह (क्रोधकी) लालिमा धारण की है। उसके श्वेत और कृष्ण नयन तारे तो ऐसे सोहते हैं, जैसे मानो केतकीके पत्रपर दो बड़े-बड़े भौंरे आ बैठे हों। उसकी अति कुटिल भौंहोंकी आवलि ऐसी अच्छी भाती है, जैसे मानो मदनने अपनी धनुर्यष्टि धारण की हो। भालतल ऐसा महान् शोभा सम्पन्न भाता है, जैसे मानो अर्धचन्द्र ही वहाँ लगकर शोभा दे रहा हो। भौंरोंके समान काले केश सिरपर लहलहाते हुए ऐसे प्रतीत होते हैं, जैसे मानो उसके मुखचन्द्रके भयसे अन्धकार वहाँ मिलकर काँप रहा हो। यदि इसके मदन स्वरूप सौन्दर्यसे मेरा पति विचलित मन हो गया, तो वह निश्चय ही कलह करके मुझे निकाल देगा और इसीको मानने लगेगा। १० १५

१७—भीषण श्मशानमें पुत्र-जन्म

ऐसा विचार कर उस मालिनने कुछ दोष देकर उसे घरसे निकाल दिया। वह घरसे मोह छोड़ उसी क्षण वहाँसे चल पड़ी। गर्भके कारण दुःखसे चलते-चलते उसने श्मशान भूमिको देखा। वहाँ चोर और व्यभिचारी शूलोंसे भिदे हुए थे और उनके मृत शरीरको ढीठ चील-कौए अपनी चोंचोंसे खण्ड-खण्ड कर रहे थे। वहाँकी भूमि विदीर्ण हुए जीवोंके रुधिरसे भर रही थी। मांसके लोभी गीध व अन्य प्राणी वहाँ नाच रहे थे। लपलपाती जीभों वाले भालू मृतशरीरोंका पेट फाड़ रहे थे। मांसके लोभी राक्षस फे-फे करते हुए वहाँ फिर रहे थे। उड़ते और रेंगते लाखों पक्षियोंकी वहाँ भीड़ लगी थी। आगकी ज्वालामें जलते हुए जीवोंसे सारी भूमि व्याप्त थी। मृतशरीरोंके केश वायुके झोंकोंसे लहरा रहे थे और स्थान-स्थानपर बँधी झण्डियाँ फहरा रही थीं। जीवोंके मृतशरीरोंकी सड़ी गन्धसे मनुष्योंको वहाँ ज्वर आ जाता था। भग्न हुए खप्परोंके वहां कहीं-कहीं ढेर लगे थे। इस प्रकार देहके अवसानभूत उस भयंकर श्मशानमें पद्मावतीने एक पुत्र रत्नको जन्म दिया, जो कनक व अमर वर्ण, लक्षणोंसे पूर्ण और जन-मन-आनन्दकारी था। ५ १०

इति मुनि कनकामर विरचित भव्यजनकर्णावतंस पञ्चकल्याणविधान कल्पतरु फल संपन्न करकण्ड महाराज चरित्रमें करकण्डजन्मोत्पत्तिवर्णन नामक प्रथम परिच्छेद समाप्त।

संधि—२

१

A Mâtanga attempts to take the child away.

उप्पण्णए बालए विमलदिणे मंगलइँ अणेयइँ तहिँ हुयइँ ।
णं दिणयरु उइयउ णिम्मलइँ संजायइँ पयडइँ दिम्मुहइँ ॥ १ ॥
तेँ जायएँ तहे वीसरिउ दुक्खु णं अडविहे जायउ कप्परुक्खु ।
णं मेइणि भिंदिवि महिहरिंदु णं जायउ णियकुलणहि छणिंदु ।
सो णंदणु जायउ जाव लेइ मायंगु ताम अग्गइ णिएइ । 5
कसणच्छवि लोयण रत्त जासु सो आयउ तहिँ णंदणहो पासु ।
[1]उच्चायिउ तेँ सो णियकरेण णं हेमकलसु कुंजरवरेण ।
तहिँ करयलि थक्कउ सोह देइ णं फणिवइमत्थइँ मणि सहेइ ।
णियणिलउ लएविणु जाइ जाम पुक्कार पमेल्लिय ताए ताम ।
अरे भग्ग मलीमस केत्थु पत्तु किं लेवि जाहि महो तणउ पुत्तु । 10
ण वि एक्कहो दुक्खहो पारु जाम संपत्तउ गरुवउ दुक्खु ताम ।

घत्ता—मायंगहो रूवेँ खेयरइँ कर जोडिवि पउमावइ भणिय ।
मा रोवहि बहिणिए सुंदरिए आयण्णहि वत्त महो तणिय ॥१॥

२

The Mâtanga explains. His parentage.

एत्थत्थि भरहि पव्वयपहाणु विजयद्धु पसिद्धउ अप्पमाणु ।
पुव्वावरसायरलग्गमाणु णं तोलादंडु सुसोहमाणु ।
सुरकिंणरखेयरसुरहँ संगु तारेण विणिम्मिउ जो अहंगु ।
तहिँ दाहिणि सेढिहिँ णयरि अत्थि जहिँ जणहिँ जाहिँ णाणाहिँ पंथि ।
विज्जुप्पह णामेँ जा पसिद्ध वरगुणपरियाणिय जा समिद्ध । 5
जो विज्जाणियरहिँ हुउ समिद्धु तहिँ णरवइ विज्जुप्पहु पसिद्धु ।
तहो घरिणि सुविज्जलया पहूय णं गउरि महेसहो कामरूव ।
तहि जायउ णंदणु गुणणिकेउ हउँ धरणिहिँ पयडउ बालएउ ।
अणुराएँ रत्तिय सयलकाल महो घरिणि पहूई हेममाल ।

घत्ता—हउँ ताएँ समउ दक्खिणदिसिहेँ रम्ममाणु गयणयले गउ । 10
[1]अंधकलिंगहो अंतरिण[2] विंझसेलु अग्गइँ ठियउ ॥ २ ॥

---

१. १ DN उच्चायउ. २ DJS ता.

२. १ N में सुधार कर 'अंध' के स्थान पर 'अंग'. २ SD अंतरेण.

संधि—२

१—जन्म होते ही मातंगका आगमन

जिस शुभ दिन उस बालकका जन्म हुआ, उस दिन वहाँ अनेकों मंगल हुए; मानो सूर्य उदित हुआ हो और दिशाओंके मुख स्पष्ट रूपसे निर्मल हो गये हों। पुत्र-जन्मसे माताको अपने दुःखका विस्मरण हो गया, मानो उस वनमें कल्पवृक्ष उत्पन्न हुआ हो; अथवा पृथ्वीको भेद कर पर्वतराज सुमेरु निकल आया हो, या अपने कुलरूपी नभमें पूर्णचन्द्रमा उदित हुआ हो। जैसे ही वह अपने उत्पन्न हुए पुत्रको लेने लगी, तैसे ही उसने अपने आगे एक मातंगको खड़ा देखा। ५ उसका रंग काला और नेत्र लाल थे। वह उस नवजात शिशुके पास आया और उसने अपने हाथमें बालकको ऐसा उठा लिया, जैसे मानो किसी विशाल हाथीने स्वर्णकलशको उठा लिया हो। उसके हाथमें स्थित वह बालक ऐसी शोभा देता था, जैसे मानो काले नागके फणपर मणि चमक रहा हो। उसे लेकर जब वह अपने घर जाने लगा, तब उसकी माताने पुकार मचायी—अरे भगोड़े, पापी, तू कहाँसे आया? और मेरे पुत्रको तू क्यों लिये जा रहा है? एक दुःखका ही तो पार पाया १० नहीं कि यह दूसरा और बड़ा दुःख आ पड़ा। इसपर उस मातंग रूपधारी विद्याधरने हाथ जोड़कर पद्मावतीसे कहा—"हे सुन्दरी बहन, रो मत, मेरी बात सुन।"

२—मातंगका कुल-वर्णन

इसी भारत देशमें पर्वतोंमें प्रधान, प्रसिद्ध और अप्रमाण विजयार्द्ध पर्वत है। वह पर्वत पूर्व और पश्चिम सागरोंसे लगकर ऐसा शोभायमान हो रहा है, जैसे (पृथ्वीको तौलनेके लिए) तुलादण्ड ही हो। वहाँ सुरों, किन्नरों और खेचरोंका समागम हुआ करता है। उसे अभंगरूपसे तार (देवता) ने निर्माण किया है। उसकी दाहिनी श्रेणीपर एक नगरी है, जहाँ पथिक नाना प्रकारके यानोंसे गमन करते हैं। वह नगरी विद्युत्प्रभा नामसे प्रसिद्ध है, समृद्ध है और अपने उत्तम गुणों ५ के लिए विख्यात है। वहाँ विद्याओंके समूहोंसे समृद्ध हुआ विद्युत्प्रभ नामका प्रसिद्ध राजा था। उसकी गृहिणी विद्युल्लता नामकी हुई, जो महेशकी देवी गौरीके समान सुन्दरी थी। उसी से उत्पन्न मैं गुणनिकेत पुत्र हुआ और पृथ्वीपर बालदेव नामसे प्रसिद्ध हुआ। मेरी गृहिणी हुई हेममाला, जो सदैव मुझमें स्नेहसे अनुरक्त रहती थी। एक बार उसीके साथ मैं दक्षिण दिशामें रमण करता हुआ आकाशमार्गसे जा रहा था। आन्ध्र और कलिंगदेशोंके बीच विन्ध्यपर्वत मेरे १० आगे खड़ा था।

३

His insolence towards a sage.

चलंतु खलंतु सकिंकिणिरोलु परं[1]ज्जियतेयदिवायरबोलु ।
णहेण वि जंतउ तीऍ समाणु तहो णउ चल्लइ दिव्वविमाणु ।
थिरट्ठिउ पेक्खिवि तं अयमाणु[2] सरोसइँ कड्ढिउ तिक्खकिवाणु ।
पलोइवि दिम्मुहु[3] थाउ खणेण पणट्ठउ तोसु विसण्णु मणेण ।
अहोमुहु होएवि जोवउँ जाम मुणीसरु दिट्ठउ सुव्वउ ताम । 5
पवड्ढियकित्ति जणाण पसंसि णिवेसिय लोयण णासपएसि ।
पलंबियबाहु करि व्व पयंडु पयासिउ दुद्धरु इंदियदंडु ।
अकंपउ मेरु व सुद्धु[4] सुयाणु[5] णिरूवउ झायइ णिच्चलु झाणु ।
घत्ता—सो पेक्खिवि रुट्ठउ बहिणि हउँ जहिँ अच्छइ झाणपरिट्ठियउ ।
असिलय करयलि करिवि पुणु सो कोहेँ हणणहुँ उट्ठियउ ॥ ३ ॥ 10

४

The sage's curse.

महो जंतहो कीयउ कज्जणासु इउ भणिवि किउ उवसग्गु तासु ।
तेँ रूसिवि पुणु महो दिण्णु साउ णउ भग्ग लहेसहि विज्जयाउ ।
तेँ सावेँ विज्जउ गउ खणेण मइँ चिंतिउ बहिणिए णियमणेण ।
एहु[1] मुणिवरु णउ सामण्णु होइ तं होइ खणद्धेँ जं भणेइ ।
इय भणिवि चलणहिँ लग्गु तासु किं मुणिवर महो किउ विज्जणासु । 5
[2]हउँ किंकरु तुम्हहँ देवदेव जम्मे वि ण छंडउँ तुज्झ सेव ।
कोहाणलु सामहि सामिसाल मा पसरउ तणुवणे सयलकाल ।
तेँ वयणेँ उवसमु गउ मुणिंदु मंताण पहावेँ णं फणिंदु ।
घत्ता—सो मुणिवरु जाणिवि तुट्ठमणु[3] कमकमल णवेविणु पभणियउ ।
हे मुणिवर करुणइं कहहि महो कह होहहिँ[4] विज्जउ रमणियउ ॥ ४ ॥ 10

५

Modification of the curse.

तं सुणिवि मुणीसरु परमणाणि महो सम्मुहुँ बोल्लइ दिव्ववाणि ।
हे खेयर चंपणराहिवासु सिरिधाडीवाहणबंधुरासु ।
पोमावइ तहो भामिणि गएण [.] णेवेवी दुट्ठेँ [1]हरिवि तेण ।
[2]पावेवी सा पुणु मालिएण दंतीपुरे णेवी तुरियएण ।
तहो घरिणिए कलहु करेवि सा वि णीसारिय आवेसइ इहावि । 5
तहो णंदणु होसइ [3]परवतेउ · · · पालेसहि सो तुहुँ गुणणिकेउ ।
सो रज्जु लहेसइ पुरि विसालि तुहुँ विज्जउ [4]होसहिँ तम्मि कालि ।

३. १ D परिज्जिय. २ JS अपमाणु. ३ N दिम्मुहं. ४ सुट्ठु. ५ D सयाण; J सयाणु.
४. १ DJS ए. २ J किंकरु हउं. ३ D रुट्ठमणु. ४ J होसइं.
५. १ J करिवि. २ S में भूलसे इस कडवकका शेष अंश व अगलेकी ढाई पंक्तियाँ 'जं भणहि बहिणि तं करमि सव्वु.' तक छूट गयी हैं । ३ D पउरतेउ. ४ DN होहहिं.

३—विद्याधरकी जैनमुनिसे भेंट

मैं अपनी गृहिणीके साथ आकाशमें जा रहा था और मेरा दिव्य विमान चलता हुआ, मटकता हुआ, घंटियोंकी ध्वनि करता हुआ, अपने तेजसे सूर्यके प्रतापको भी पराजित कर रहा था। अकस्मात् उस दिव्य विमानका चलना बन्द हो गया। उसे निश्चल खड़ा देख मैंने रोषपूर्वक अपना तीक्ष्ण कृपाण खींच लिया। चारों दिशाओंमें देखता हुआ क्षणमात्र स्तब्ध रहा, मेरा सन्तोष नष्ट हो गया और क्षणमात्रमें मैं विषादयुक्त हो गया। अधोमुख होकर जब मैं नीचेकी ओर देखता हूँ, तो मुझे वहाँ सुव्रत मुनीश्वर दिखायी दिये। उनकी कीर्त्तिकी प्रशंसा लोगोंमें खूब बढ़ी हुई थी। उनके लोचन नासिका-प्रदेशपर निवेशित थे। उनके हाथीके समान प्रचण्ड बाहु नीचेको लटक रहे थे, मानो उन्होंने दुर्द्धर इन्द्रिय (निग्रहरूप) दण्डको प्रकट कर रखा हो। वे मेरुके समान अकंप, शुद्ध और ज्ञानी होते हुए, निश्चल अरूपी ध्यानमें निमग्न थे। उन्हें देखकर, हे बहिन, मुझे रोष आ गया और जहाँ वे मुनिराज ध्यान लगाये बैठे थे, वहाँ अपने हाथमें तलवार लेकर क्रोधपूर्वक हनन करनेके लिए उठ खड़ा हुआ।

४—मुनिका शाप

'मेरे जाते हुए इन्होंने मेरे कार्यका नाश किया'—ऐसा मनमें विचारकर मैंने उनका उपसर्ग किया। उन्होंने रुष्ट होकर मुझे शाप दे दिया—'रे भगोड़े, तुझे विद्याओंका लाभ नहीं होगा।' उस शापसे मेरी विद्याएँ एक क्षणमें चली गयीं। तब, हे बहिन, मैंने अपने मनमें विचारा—'ये मुनिवर कोई सामान्य नहीं हैं। ये जो कुछ कहते हैं, वैसा ही आधे क्षणमें हो जाता है।' ऐसा मनमें विचार कर मैं उनके चरणोंमें लग गया और बोला—'हे मुनिवर, आपने मेरी विद्याओंका नाश क्यों कर दिया ? हे देवोंके देव, मैं तो आपका किंकर हूँ। जन्म-भर भी मैं आप की सेवाको नहीं छोड़ूँगा। हे स्वामिसार, अपने क्रोधानलको शान्त कीजिए और उसे सदा काल मेरे तनरूपी तृणवनमें न फैलने दीजिए।' मेरे इस वचनसे मुनि उपशमको प्राप्त हो गये, जैसे मन्त्रोंके प्रभावसे फणीन्द्र ! जब मैंने जान लिया कि मुनिवर अपने मनमें तुष्ट हो गये, तब उनके चरणकमलोंको नमस्कार करके मैंने कहा—'हे मुनिवर, करुणापूर्वक मुझे कहिए कि मेरी रमणीक विद्याएँ मुझे कब पुनः प्राप्त होंगी ?'

५—शापका प्रायश्चित्त

मेरी बात सुनकर वे परमज्ञानी मुनीश्वर मेरे सम्मुख इस प्रकार दिव्यवाणी बोले-'हे खेचर, चम्पाके सुन्दर राजा श्रीधाडीवाहनकी भामिनी पद्मावतीको एक दुष्ट हाथी हरण करके ले जायेगा, वह एक मालीको मिल जायेगी और वह उसे तुरन्त दन्तीपुरमें ले जायेगा। मालीकी गृहिणी कलह करके उसे निकाल देगी और वह यहाँ (श्मशानमें) आवेगी। उसके एक प्रखर तेजस्वी पुत्र उत्पन्न होगा और तू गुणनिकेत उसका पालन करेगा। वह उस विशाल पुरीमें राज्य प्राप्त करेगा। उस समय तेरी विद्याएँ तुझे पुनः प्राप्त हो जावेंगी।' मुनिकी यही बात मानकर मैंने इस श्मशानका

इउ मण्णिवि सेविउ मइँ मसाणु हउँ पालिमि जा होहइ सयाणु।
घत्ता—इउ मण्णिवि मइँ[६] तउ सुउ गहिउ मा रोवहि हियवउ संथवहि।
जो अज्जिउ अण्णभवंतरइँ ते दियह महासइ अणुहवहि ॥ ५ ॥ 10

६

Padmāvatī allows him the guardianship of the child and herself takes vows.

जं विज्जाणाहें[५] भणिउ वाए तं चिंतिवि पोमावइए ताए।
तहो अप्पिउ णंदणु दुक्खियाए पालेसहि बुद्धिए णिउणियाए।
जं भणहि बहिणि तं करमि सव्वु पालेसमि पहु सव्वंगभव्वु।
सो खेयरु एहउ तहे भणेवि गउ णियघरु णंदणु तणउ लेवि।
तं अप्पिवि घरिणिहे वयणु वुत्तु लइ हेममालि पहु तुज्झ[१] पुत्तु। 5
सो लइयउ ताइँ तुरंतियाइँ परिपालिउ पुत्तु भणंतियाइँ।
ता दुक्खए मणि पोमावयाएँ समणियरहो णयरहो खणि गयाएँ।
समणिरया अज्जियकंतियाहे अच्छंतिएँ जम लइँ ताव ताहे।
घत्ता—तहिँ देक्खिवि मुणिवरु झीणतणु णामेण समाहिगुत्तु पवरु।
वउ लइयउ ताएँ तुरंतियएँ तहो पासि मुणिंदहो दुक्खहरु ॥ ६ ॥ 10

७

The child is named Karakaṇḍa. A miracle.

सा पुत्तहो णेहें दिणि जि दिणे गुडसक्करलड्डु व लेवि खणे।
संपाडइ तहो खेयरहो घरि परिपालइ णंदणु वइरिअरि।
तहो पउरकंडु देखेवि करि करकंडु णामु किउ पयडु धरि।
सो वड्ढइ दिणि दिणि कलणिहाणु णं रेहइ ससहरु फुरियभाणु।
तहिँ अवसरि आया सुअसमुद्द जसहद्द मुणीसर वीरभद्द। 5
अइझीणा दुद्धरतवभरेण संघेण समउ चउविहवरेण।
के वि झाणसमग्गल[१] णाणवंत के वि जल्लमलेण विलित्तगत्त।
ते भीममसाणएँ आय जाम तहिँ एक्के दिट्ठउ चोज्जु ताम।
घत्ता—णरहो [२]कवाले समुट्ठियउ णयणवयणे वंसहो विडउ।
इ[३]उ कारणु पभणहि मुणिपवर जं पुच्छिउ तं सयलु वि [४]घडउ ॥ ७ ॥ 10

८

Sage Jasahadda expiains the miracle. Karakaṇḍa acquires the lucky bamboos.

तं वयणु सुणिवि जसहद्दएण लहु मुणिहि पयासिउ तं पि तेण।
तिहिँ वंसहिँ एयहिँ अइपयंड होसहिँ धयअंकुसछत्तदंड।
जसु हत्थे चडेसहिँ वंसलेस पावेसइ मेइणि सो असेस।
मुणिणाहहो पासि परिट्ठिएण आयण्णिउ इउ सम्मइदिएण।

---

५ D पालेसमि; N पालेसु. ६ DJ सइं.

६. १ S मुज्झ.

७. १ SJ सममूल. २ SJ कवालु; DN कवाल. ३ J एउ. ४ S वडिउ.

सेवन किया है। सयाना होने तक मैं इसका पालन करूँगा। इसी विचारसे मैंने तेरे इस पुत्रको ग्रहण किया है। रोवो मत, अपने हृदयको सम्हालो जो कुछ अन्य भवान्तरमें अर्जित किया है, उसीके अनुसार दिन तुम्हें अनुभव करने पड़ रहे हैं।

६—मातंग बालकको अपने घर ले जाता है, और पद्मावती व्रत लेती है

इस प्रकार उस विद्याधरने अपनी वाणीसे जो कुछ कहा, उसका चिन्तन करके, पद्मावतीने दुःखी होकर भी, अपना पुत्र उसे यह कहते हुए अर्पित कर दिया कि तू निपुण बुद्धिसे इसका पालन करना। 'हे बहिन, जैसा तू कहती है, मैं सब वैसा ही करूँगा और उसका ऐसा पालन करूँगा कि वह सर्वांग भव्य बन जाये।' उसे इतना कहकर, विद्याधर उस छोटेसे बालकको ले, अपने घर चला गया और उसे अपनी गृहिणीको अर्पितकर वचन बोला—ले हेममाला, यह तेरा पुत्र है। उसने तुरन्त उस बालकको ले लिया और पुत्र कह-कहकर उसका पालन किया। इधर पद्मावती मनमें दुःखी होती हुई, उसी क्षण सन्निकट नगरमें चली गयी। वहाँ वह सामयिक धर्ममें निरत आर्यिका कान्तिके पास रहने लगी और उसीसे उसने यम (अणुव्रत) धारण कर लिये। वहीं उसने क्षीणशरीर समाधिगुप्त नामके प्रवर मुनिवरके दर्शन किये और उन्हीं मुनीन्द्रके पाससे उसने तुरन्त ही दुःखहारीव्रत (अर्जिका) व्रत ले लिया।

७—बालकका नामकरण, मुनि-आगमन व आश्चर्यदर्शन

पद्मावती पुत्रके स्नेहसे दिन-प्रतिदिन गुड़ व शक्करके लड्डू लेकर जल्दी-जल्दी उस खेचरके घर पहुँचा आती। वह खेचर भी उसके पुत्रका इस प्रकार पालन करने लगा कि वह अपने शत्रुओंको जीतनेवाला बने। बालकके हाथमें एक बड़ा खाजका दाग देखकर उसने उसका नाम करकण्ड रखकर प्रकट किया। वह दिनों-दिन बढ़ने और कलाओंका निधान बनने लगा, जैसे मानो चन्द्रमा अपनी स्फुरायमान होती हुई कलाओंसे शोभित होता है। उसी अवसरपर वहाँ शास्त्रोंके समुद्र, यशोभद्र और वीरभद्र मुनीश्वर आये। वे दुर्द्धर तपके भारसे अति क्षीण शरीर थे। उनके साथ उत्तम चतुर्विध संघ भी था। कितने ही साधु ध्यानमें संलग्न व ज्ञानवान् थे; एवं कितने ही जल्ल और मलसे विलिप्त गात्र थे। वे जब उस भीम श्मशानमें आये तब उनमें-से किसी एकने एक चीज (अचरज) देखा। एक नर-कपालके आँखों और मुखसे बाँसका विटप निकला था। इसे देखकर उस साधुने अपने आचार्यसे पूछा—हे मुनिराज, इसका कारण बतलाइए, जिससे मैंने जो पूछा, वह सब ही घटित हो जाये।

८—आश्चर्यका फल

यह वचन सुनकर उन यशोभद्र मुनिने लघुमुनिको वह बात इस प्रकार बतलायी—'इन तीन बाँसोंके ध्वजा, अंकुश और छत्रके प्रचण्ड दण्ड बननेवाले हैं। ये थोड़ेसे बाँस जिसके हाथ चढ़ जायेंगे, वह समस्त पृथ्वीको पावेगा।' यह बात मुनिनाथके पास बैठे हुए सम्मति नामक

पुणु हियवए मंतइ दिणवियाले मुणिवयणु ण चुक्कइ कहिँ मि काले। 5
ता एक्कहिँ दिणि ते वंस तेण खंडाविय तिण्णि वि तुरियएण।
किर जाइ लेवि सो णियघरासु करकंडु परायउ पासि तासु।
उद्दालिय भट्टहो पासि तेण तेँ भट्टेँ अप्पिवि भीयएण।
तहो पुरउ तेउ असहंतएण पुणु भट्टेँ भणिउ विसण्णएण।
तुहुँ जइयहुँ रज्जु लहेहि मित्त मइँ मंति करेसहि ललियगत्त। 10

घत्ता—करकंडइँ मण्णिउ तं सयलु जं भणियउ भट्टेँ मणहरइँ।
गउ वंस लएविणु णियघरहो पुणु अक्खिउ तायहो कलसरइँ॥ ८॥

९

Karakanda is taught various arts and sciences.

करकंडो उप्परि खेयरासु अइपउरु पवड्ढिउ णेहु तासु।
पाढाविउ सो णीतिए जुयाइँ वायरणतक्कणाडयसयाइँ।
[1]कविविरइयकव्वइँ बहुरसाइँ वच्छायणगणियइँ णवरसाइँ।
मंताइँ असेसइँ तंतयाइँ वसियरण सुसोहइँ जंतयाइँ।
असिचक्ककुंतछुरियउ वराउ धणुवेयसत्तिदिढतोमराउ। 5
मल्लाण जुज्झ तणुघट्टणाइँ उल्ललणइँ वलणइँ लोट्टणाइँ।
फलफुल्लपत्तछेयंतराइँ जाणाविउ सयलइँ सुहयराइँ।
पडु पडह मुरय वीणाइ वंसु विज्जाइँ असेसइँ कलिउ एसु।

घत्ता—जं किं पि पसिद्धउ भुवणयले खेयरइँ जणाविउ सो सुरइ।
लोहेण विडंविउ सयलु जणु भणु किं किर चोज्जइँ णउ करइ॥९॥ 10

१०

The story of learned company.

हियएण गरुउ उवयारु वहइ करकंडहो सो पुणु खयरु कहइ।
विज्जाहिवेण सहुँ संगु करहि घरे जाएवि सो णियमेण सरहि।
करकंडु भणइ किं ताय[1] तासु उवयारु अत्थि विज्जाहिवासु।
ता कहइ खयरु सुणि सरलचित्त कणउज्जणयरे दुइ अत्थि मित्त।
वणिविप्प कलिय विज्जाए संत गय चोडदेसे धणलोल संत। 5
धणु अज्जिवि पुणु ते घरहो चलिय अद्धवहिहे दियसासुरउ [2]वलिय।
तहिँ दिट्ठा ससुरइँ दियवरासु णिय तेण तुरिउ ते णियघरासु।
सम्माणिय ते वीसमहिँ जाव वज्जंतउ डिंडिमु आउ ताव।

घत्ता—आयण्णिवि डिंडिमु खरविरसु परिपुच्छिउ [3]सुसुरउ तेहिँ खणे।
केँ कज्जेँ वज्जइ माम इहु असुहावउ कण्णहँ पयडु जणे॥१०॥ 10

११

The story continues.

तेँ कहिउ एत्थु णरणाहधूव णिय मंडइँ रक्खसेँ कामरूव।
छंडावइ को वि ण सा वराय रक्खेण जित्त णरणियर राय।

---

८. १ N चिंतइ.
९. १ N के हासियेमें इससे पूर्व जोड़ा गया है— वसियरणु सुसोहइं जंतयाइं कण्णाडयाइभासासयाइं,
१०. १ S ताए. २ DN चलिय. ३ J सुसरउ.

द्विजने सुन ली। सन्ध्याके समय उसने अपने हृदयमें मन्त्रणा की कि मुनिका वचन किसी काल में भी चूकता नहीं। तब किसी एक दिन उसने जल्दीसे उन तीनों बाँसोंको कटवा लिया। ५ किन्तु ज्योंही उन्हें लेकर वह अपने घर जाने लगा, त्योंही करकण्ड उसके पास आ पहुँचा। करकंडने भट्टके पाससे उन बाँसोंको उड़ा लिया। भट्टने भयभीत होकर उन बाँसोंको उसे अर्पित करके, अपने सम्मुख उसका तेज सहन न कर, विषादयुक्त होकर पुनः कहा—'हे मित्र, जब तू राज्य प्राप्त कर ले, तब, हे ललितगात्र, मुझे मन्त्री बना लेना।' उस मनोहर भट्टने जो कुछ कहा, उस सबको करकंडने मान लिया और उन बाँसोंको लेकर वह अपने घर गया। फिर उसने १० मधुर स्वरमें अपने तातको सब वृत्तान्त सुना दिया।

९—मातंगने करकण्डको नाना विद्याएँ सिखलायीं

करकण्डके ऊपर उस खेचरका बहुत अधिक स्नेह बढ़ा। उसने उसे नीति-सहित व्याकरण, तर्क व सैकड़ों नाटक पढ़ाये। कवियों-द्वारा विरचित बहुरसात्मक काव्य, वात्स्यायन-द्वारा गिनाये गये नौ रस, समस्त मन्त्र और तन्त्र, वशीकरण और सुशोभनीय यन्त्र, असि, चक्र, कुन्त, छुरी, धनुर्वेद, शक्ति, दृढ़तोमर ये सब उत्तम कलाएँ; मल्लोंके युद्ध, तनुघट्टन, उल्ललण, वलण और लोटन; फल, फूल व पत्रोंका नाना प्रकारसे छेदन; ये सब सुखकारी कलाएँ सिखायीं। ५ पटुपटह, मुरज, वीणा आदि व बाँसुरी, ये सभी विद्याएँ भी उसे सिखलायीं। इस भुवनतलपर जो भी प्रसिद्धकला है, विद्याधरने उसे बड़ी लगनसे सिखलाया। सब जन लोभसे विडम्बित होकर कहो कैसे-कैसे आश्चर्य नहीं करता।

१०—विद्यावान्‌की संगतिका उपदेश

वह विद्याधर अपने हृदयमें करकण्डसे बड़े उपकारकी वांछा रखता था। वह करकण्डको उपदेश देने लगा—'तू विद्यावान्‌के साथ ही संग कर, उसके घर जाकर नियमसे उसका अनुसरण कर।' करकण्डने पूछा—'हे तात, विद्यावान्‌से क्या उपकार होता है?' तब वह खेचर बोला—हे सरलचित्त, सुन। कान्यकुब्ज नगरमें दो मित्र रहते थे, एक वणिक् और दूसरा विप्र। वे दोनों विद्यासे सम्पन्न थे। धन कमानेकी लालसासे वे चौड़ देशको गये। धन अर्जित कर जब वे घरको ५ लौटने लगे तो आधे मार्गमें वे द्विजकी ससुरालकी ओर मुड़ गये। वहाँ द्विजके श्वसुरने उन्हें देखा और वह उन्हें तुरन्त अपने घर ले गया। वहाँ सम्मानित होकर जब वे विश्राम कर रहे थे तब वहाँ बजता हुआ डिंडिम (डौंडी) आया। उस खर और विरस डिंडिमको सुनकर उन्होंने श्वसुरसे पूछा—हे मामा, यह कानोंको असुहावना डिंडिम जनतामें खुलकर किस कार्यसे बाज रहा है? १०

११—राक्षसका उपद्रव

श्वसुरने कहा—यहाँके राजाकी सुन्दर कन्याको एक राक्षस बलपूर्वक ले गया है। उस बेचारीको कोई नहीं छुड़ा पाता। उस राक्षसने लोगोंके समूहोंको व राजाओंको जीत डाला है।

णइपारि णयरि उव्वसि वसेइ तहो भीएँ को वि ण उल्लसेइ।
विज्जाहिउ णरु आयउ णिएइ ते कज्जे दिवि दिवि इहु भमेइ।
तं सुणिवि वयणु पहसियमुहेहिँ सहंतउ डिंडिमु धरिउ तेहिँ। 5
ता तक्खणे डिंडिमवाइएण णरणाहहो कहिउ पराइएण।
णर दोण्णि पराइय देव इत्थ णं धम्मपुंज णिम्मल पसत्थ।
ते भणहिँ देव मणे धरहिँ गव्वु जं भणइ राउ तं करहुँ सव्वु।
घत्ता—ता राएँ जाइवि बे वि जण सम्माणिवि णीया णियघरहो।
परिपेसिय तक्खणे तेण पुणु रक्खसहो पासि अइदुद्धरहो ॥११॥ 10

१२

The story of learned company concluded.

गय विण्णि वि ते रक्खसणिवासे परिभमइ ण कवणु वि जासु पासे।
तहिँ थोरपओहर दिट्ठ कण्ण लायण्णतरंगिणि कणयवण्ण।
पुणु दिट्ठउ रक्खसु कविलकेसु उच्चारइँ मंतहो गलियदेसु[1]।
असहंतउ पभणइ मंततेउ हउँ किंकरु तुम्हहँ पवणवेउ।
संसिद्धउ मण्णिवि तेहिँ रक्खु गय कण्ण लेवि जहिँ णिउ समक्खु। 5
रक्खससमेय कण्णाए जुत्तु आवंत दिट्ठ लोएहिँ वुत्तु।
जण भणहिँ अज्जु हुय एत्थु संति एवंविह आया जेत्थु मंति।
ते दिक्खिवि राणउ हिट्ठचित्तु अइपवरु[2] पइण्णउ ताहँ[3] वित्तु।
घत्ता—कण्ण भणेविणु णियबहिणि तेहिँ समप्पिय णरवरहो।
पुणु करिकरपीवरथोरभुयँ[4] गय लीलए ते णियपुरवरहो ॥१२॥ 10

१३

The story of foolish company.

किउ विज्जावंतहो संगु जेण सुहसंपइ लब्भइ णरहो तेण।
तेँ विज्जावंतहो तणउ संगु सयमेव करेव्वउ जह अहंगु।
विज्जाविहीणु मा करहि मित्तु विवरीउ करइ सो विहुरे चित्तु।
किं विज्जए हीणहो दिट्ठु दोसु सो खयरु कहइ तहो जणियतोसु।
वाणारसिणयरहो मित्त बे वि देसंतरु गय अण्णाण ते वि। 5
धणु अज्जिवि आवहिँ वलिवि जाव ता अंतरि रक्खसु दिट्ठु ताव।
सो पेक्खिवि ते भयभीय णट्ठ पाविट्ठ जेम तवचरणभट्ठ।
णउ मुणहिँ किं पि हियवए अयाण ते पाविय तेण पलायमाण।
घत्ता—ता णिसियरेँ सहुँ जुज्झेवि फुडु ते केण वि बद्धइँ पंथियइँ।
छंडाविय सहयर बे वि जण परउवयारेँ संठियइँ ॥ १३ ॥ 10

१४

The story of low company.

तह णिचए[1] सहुँ संसग्गु धीर इहु कह व ण किज्जइ लडहवीर।
णिचेण[2] समउ जेँ कियउ संगु उप्पज्जइ तहो खेवेण भंगु।

---

१२ १ D] °वेसु. २] पवरु. ३] ताहिं. ४] °भुव.
१४. १ S णीचएं. २ S णीचेण.

नदीके उस पार ऊजड़ नगरीमें वह राक्षस निवास करता है। उसके भयसे कोई श्वास भी नहीं ले पाता। कोई विद्यावान् पुरुष इस नगरमें आया दिख जाये इसी कार्यसे दिन-प्रतिदिन यह डौंड़ी घुमायी जाती है। श्वसुरका यह वचन सुनकर उन्होंने प्रसन्नमुख होकर उस बजते हुए डिंडिमको रोका। तब उसी क्षण डौंड़ी बजानेवालेने लौटकर राजासे कहा—"हे देव, यहाँ दो पुरुष आये हैं, मानो निर्मल और प्रशस्त धर्मपुंज ही हों। हे देव, वे कहते हैं और मनमें गर्व रखते हैं कि राजा जो कुछ कहे, हम सब कर सकते हैं।" तब राजा स्वयं आकर व उन दोनों पुरुषोंका सम्मान कर उन्हें अपने घर लिवा लाया और उसी क्षण उस अत्यन्त दुर्द्धर राक्षसके पास भेजा। ५

१२—राक्षसका पराजय और राज-कन्याका उद्धार

वे दोनों उस राक्षसके निवासको गये जिसके पास कोई परिभ्रमण नहीं करता था। वहाँ उन्होंने उस स्थूलपयोधरा, लावण्यतरंगिणी, कनकवर्ण कन्याको देखा। फिर उन्होंने उस कपिल-केश राक्षसको भी देखा। उनके मन्त्रोच्चारणसे राक्षसका द्वेष गलित हो गया। वह मन्त्रका तेज सहन न कर बोला—"मैं तो आपका पवनवेग नामका किंकर हूँ।" जब उन्होंने जाना कि वह राक्षस उन्हें भले प्रकार सिद्ध हो गया, तब वे उस कन्याको लेकर राजाके समक्ष लौटे। ५ राक्षस-सहित और कन्यासे युक्त आते हुए उनको लोगोंने देखा और घेर लिया। लोग कहने लगे—"यहाँ आज शान्ति हुई जब इस प्रकारके मन्त्रवेत्ता यहाँ आये।" उन्हें देखकर राजा अपने चित्तमें बहुत हर्षित हुआ और उसने उन्हें अति प्रचुर धन दिया। उन्होंने उस कन्याको अपनी बहिन कहकर राजाको समर्पित किया। फिर हस्तीकी सूंडके समान पुष्ट और विशाल भुजाओं-वाले वे दोनों मित्र आनन्दपूर्वक अपने नगरको चले गये। १०

१३—मूर्ख-संगतिका कुफल

जिसने विद्यावान्का संग किया उस मनुष्यको सुख-सम्पत्तिका लाभ होता है। इसलिए विद्यावान्का संग स्वयमेव ऐसा करना चाहिए कि कभी भंग न हो। विद्या-विहीनको कभी अपना मित्र मत बनाना। आपत्ति पड़नेपर वह अपना चित्त विपरीत कर लेता है। करकण्डने पूछा—"विद्यासे हीन मनुष्यका आपने कौन-सा दोष देखा?" इसके उत्तरमें वह खेचर उसे सन्तोष उत्पन्न करता हुआ बोला—"बनारस नगरके निवासी दो मित्र देशान्तरको गये। वे दोनों ५ ही अज्ञानी थे। धन उपार्जन कर जब वे लौट कर आ रहे थे, तब बीचमें ही उन्हें एक राक्षस दिखायी दिया। उसे देखकर वे भयभीत होकर ऐसे भागे, जैसे पापिष्ठ तपश्चरणसे भ्रष्ट होकर भाग उठते हैं। वे हृदयसे अज्ञानी कुछ नहीं जानते थे। पलायन करते हुए उन्हें उस राक्षसने पा लिया। तब किसी एक पथिकने उस निशाचरके साथ खुलकर युद्ध करके उन्हें बन्धनसे छुड़ाया। इस प्रकार वे दोनों सहचर परोपकारके द्वारा जीवित रहे। १०

१४—नीच-संगतिकी कहानी

"उसी प्रकार, हे धीर! हे लाडले वीर! नीचके साथ संसर्ग यहाँ कभी नहीं करना चाहिए! जिसने नीचके साथ संग किया उसका खेदके साथ भंग हो जाता है। सुन, मैं तुझे एक नीचकी

सुणु णीचकहाणी कहमि तुज्झु इह णीइ सुलक्खण[3] हियएँ बुज्झु ।
को वि अत्थि सुदंसणु णाम वणिउ सो णिवणरिंदें लहु जि भणिउ ।
जइ अहरअलग्गो पढहि गाह हउँ देमि धरित्ती तुह अवाह । 5
उट्ठउडअलग्गी गुणसणाह ता वणिणा तुरिएँ पढिय गाह ।

गाथा—अरितेयजलणजालासंजलिया धरणि काणणे सयले ।
असिजलधारातोएँ संसित्ता णिहणयं जाया ॥

तेँ राएँ तूसिवि वणिवरासु महि दिण्णी खेवेँ सुंदरासु ।
ता एक्कहिँ दिणि गुणसायरेण संपीणिय दुत्थिय वणिवरेण । 10

घत्ता—संसग्गु कियउ सहुँ चेडियइँ कुडिलेण य वणिणा जाम तहिँ ।
ता जायउ गब्भु खणेण तहे संजणिय मणोरह सयल जहिँ ॥ १४ ॥

१५

The story of low company concluded.

ता तुरिउ ताएँ सो वणिउ उत्तु महो एक्कु वयणु तुहुँ करि णिरुत्तु ।
[1]एह रायहो बरहिणिमंसुएण [2]महो दिज्जइ जीवमि णिच्छएण ।
ता गयउ तुरंतउ वणिपहाणु तहो बरहिणि सम्मुहुँ लद्धु ठाणु ।
सो बरहिणु लिहक्किवि जीउ अवरु घरे जाइवि तेँ [3]तहे दिण्णु पवरु । 5
वणिवरहो तुरिउ आसीस देवि तं खद्धु ताइँ मोरउ भणेवि ।
ता णयरिहिँ सिहि अलहंतएण देवाविउ डिंडिमु राणएण ।
सो सुणिवि ताएँ चेडिएँ णिवासु सिहिवइयरु अक्खिउ सयलु तासु ।
सो णरवइ रुट्ठउ वणिवरासु मारणहँ समप्पिउ तलवरासु ।

घत्ता—अणुहुंजिवि णि[4]चहो संगफलु भयभीएँ वणिणा तुरियएण ।
घरु जाइवि णिवणराहिवहो मोरुल्लउ अप्पिउ तक्खणेण ॥ १५ ॥ 10

१६

The story of noble company.

पुणु उच्चकहाणी णिसुणि पुत्त संपज्जइ संपइ जेँ विचित्त ।
परिकलिवि संगु णीचहो हिएण उच्चेण समउ किउ संगु तेण ।
वाणारसिणयरि मणोहिरामु [1]अरविंदु णराहिउ अत्थि णामु ।
संतोसु वहंतउ णियमणम्मि पारद्धिहे गउ एक्कहिँ दिणम्मि ।
जलरहियहिँ अडविहिँ सो पडिउ तहिँ तण्हएँ भुक्खएँ विण्णडिउ । 5
अमिएण विणिम्मिय सुहयराइँ तहो दिण्णइँ वणिणा फलइँ ताइँ ।
संतुट्ठउ तहो वणिवरहो राउ घरि जाइवि तहो दिण्णउ पसाउ ।
उवयारु महंतउ जाणएण वणि णिहियउ मंतिपयम्मि तेण ।

घत्ता—अणुराएँ विण्णि वि तहिँ वसहिँ दिणयरतेयकलायर ।
गुणगणरयणहँ सीलणिहि गहिरिमाइँ णं सायर ॥ १६ ॥ 10

---

१४. ३] सलक्खण. ४] तहो.

१५. १] अह. २] महु. ३] तहिं. ४ S णीचहो.

१६. १ S अरिविंद.

कहानी कहता हूँ। इस नीतिको, हे सुलक्षण, अपने हृदयसे बूझ ले। कोई एक सुदर्शन नामका वणिक् था। उसे एक नीच राजाने सहज ही कहा—'यदि तू अपने होठोंको बिना मिलाये एक गाथा पढ़ दे तो मैं तुझे अबाध (कर आदिकी बाधासे रहित) भूमि दूँगा।' तब उस वणिक्ने ५ तुरन्त ही ओष्ठ पुट लगाये बिना एक सगुण गाथा पढ़ी। गाथा—'अरिके तेजरूपी ज्वलनकी ज्वाला समस्त धरणी रूपी काननमें संज्वलित थी। किन्तु वह आपके खड्गकी धाररूपी जलधारा के जलसे सिंच कर नाशको प्राप्त हो गयी।' इसपर उस राजाने सन्तुष्ट होकर उस सुन्दर वणिक्वर को तुरन्त भूमि प्रदान कर दी। तत्पश्चात् एक दिन उस गुणसागर वणिक्वरने एक दुश्चरित्र स्त्रीसे प्रेम किया। जब उस कुटिल वणिक्ने चेटीके साथ संसर्ग किया, तब जहाँ उसके सकल १० मनोरथ उत्पन्न हुए थे, वहाँ उसके उसी समय गर्भ उत्पन्न हो गया।"

१५—चेटीका विश्वासघात

तब तुरन्त ही चेटीने उस वणिक्से कहा—"तू मेरी एक बात अवश्य कर। इस राजाके मयूरका मांस मुझे दे, तब मैं निश्चयसे जी सकूँगी।" इसपर वह वणिक्-प्रधान तुरन्त ही गया और उस मयूरको पकड़ने योग्य स्थानपर पहुँचा। उसने उस मयूरको छिपाकर एक दूसरे जीवका बहुत-सा मांस घर जाकर उस चेटीको दे दिया। उसने वणिक्वरको तुरन्त आशीष देकर उस मांसको मयूर कहकर खा लिया। इधर राजाने नगरीमें अपने मयूरको न पाकर डौंड़ी दिलवायी। उसे सुनकर उस चेटीने राजाको मयूरका समस्त वृत्तान्त कह सुनाया। वह राजा उस वणिक्वर ५ पर रुष्ट हो गया और मारनेके लिए उसे तलवारधारियोंको सौंप दिया। इसप्रकार नीचके संगका फल अनुभव करके, भयभीत हुए उस वणिक्ने तुरन्त घर जाकर उस नीच राजाको तत्क्षण ही मोर अर्पित कर दिया।

१६—उच्च पुरुषकी कहानी

हे पुत्र, अब एक उच्च पुरुषकी कहानी सुन, जिससे विचित्र सम्पत्ति प्राप्त होती है। नीचके संगको अपने हृदयसे विचार कर उस वणिक्वरने एक उच्च पुरुषके साथ संग किया। बनारस नगरमें एक अरबिन्द नामका मनोभिराम राजा था। वह एक दिन अपने मनमें सन्तोष धारण करता हुआ शिकारके लिए गया। वह एक जलरहित अटवीमें जा पड़ा। वहाँ भूख-प्याससे वह बहुत दुःखी हुआ। तब उस वणिक्ने उसे अमृतसे बने, सुखकारी, तीन फल दिये। राजा उस वणिक्वरपर सन्तुष्ट हो गया और घर जाकर उसने उसे प्रसाद दिया। उसके महान् उपकारको ५ जानकर राजाने वणिक्को मन्त्री पदपर बैठाया। वे दोनों अनुरागपूर्वक, तेजमें सूर्य और चन्द्रके समान, गुणगणरूपी रत्नों व शीलके निधान तथा गम्भीरिमामें सागरके समान, वहाँ रहने लगे।

१७

The story of noble company continues.

ता एक्कहिँ दिणि मंतीवरेण तहो रायहो णंदणु हरिवि तेण ।
आहरणइँ लेविणु दिहिकरासु गउ तुरिउ विलासिणिमंदिरासु ।
गयमोल्लइँ जणणयणहँ पियाइँ तहिँ वणिणा ताहे समप्पियाइँ ।
[1]सरयागमससहरआणणीहे[2] पुणु कहियउ तेण विलासिणीहे ।
मइँ मारिउ णंदणु णरवईहिँ इउ कहियउ सयलु वि थिररईहिँ[3] । 5
तं सुणिवि ताइँ पभणिउ सणेहु मा कासु वि पयडु करेहि[4] एहु ।
एत्तहिँ अलहंतेँ सुउ णिवेण देवाविउ डिंडिमु णयरे तेण ।
जो रायहो णंदणु कहइ को वि सहुँ दविणइँ मेइणि लहइ सो वि ।

घत्ता—ता केण वि धिट्ठेँ तुरियएण णरणाहहो अग्गइँ भणिउ ।
उवलक्खिउ तुह सुउ देव मइँ सो णवलइँ[5] मंतिएँ हणिउ ॥ १७ ॥ 10

१८

The story of noble company concluded.

तं वयणु सुणेविणु सरलबाहु संतुट्ठउ मंतिहे धरणिणाहु ।
तिहिँ फलहिँ मज्झे एक्कहो फलासु णिरहरियउ रिणु मइँ मइवरासु ।
अवराह दोण्णि अज्ज वि खमीसु खणि हुयउ पसण्णउ धरणिईसु ।
परियाणिवि मंतिइँ रायणेहु णिवणंदणु अप्पिउ दिव्वदेहु ।
अइ होहि णरेसर परममित्तु मइँ देव तुहारउ कलिउ चित्तु । 5
वणिवयणु सुणेविणु णरवरेण अइपउरु पसाउ पइण्णु तेण ।
गुरुआण संगु जो जणु वहेइ हियइच्छिय संपइ सो लहेइ ।
एह उवकहाणी कहिय तुज्झु गुणसारणि पुत्तय हियइँ बुज्झु ।

घत्ता—करकंडु जणाविउ खेयरइँ हियबुद्धिएँ सयलउ कलउ ।
इय णित्तिएँ जो णरु ववहरइ सो भुंजइ णिच्छउ भूवलउ ॥ १८ ॥ 10

१९

The king of Dantipur dies heirless. Selection of a successor by a divine method.

तं वयणु सुणेविणु खेयरासु करकंडु ण मेल्लइ पासु तासु ।
णियमंदिरु मेल्लिवि रम्ममाणु करकंडु ण मेल्लइ तं मसाणु ।
रइ करइ तेत्थु लीलाए जाम दंतीपुरि एक्कहिँ दिवसि ताम ।
वियरंतवइरिविद्दावणासु दुस्सील[1]रायभयदावणासु ।
जणु आण ण लंघइ तणिय जासु हुउ णयरि णरिंदहो णासु तासु । 5
हा हा रउ उट्ठिउ पुरवरम्मि अइदुक्खु पवड्ढिउ जणवयम्मि ।
जणु जंपइ को वि ण अत्थि कुमरु जो रज्जु करेसइ एत्थु पवरु ।

---

१७. १ D सुरयागम. २. S आणणाहें. ३. J थिरमईहिं. ४ D करेवि. ५ S J णवल्लइं.
१९. १ J दुण्णील; S दुण्णीइ.

१७—विलासिनीका सच्चा प्रेम

फिर किसी एक दिन वह मन्त्रिवर उस राजाके पुत्रका हरण करके और उसके आभरणों को लेकर तुरन्त सुखकारी विलासिनीके घर गया और उसे वणिक्ने वे अमूल्य व जन-नयन-प्रिय आभूषण समर्पित कर दिये। फिर उस शरद्के आगमकालवर्ती चन्द्रके समान मुखवाली विलासिनी को उसने कहा—"मैंने राजाके पुत्रको मारा है।" यह सारी बात उसने उस स्थिर प्रेमवाली स्त्री से कही। इसे सुनकर उसने स्नेहपूर्वक कहा—"यह बात किसीपर भी प्रकट मत कीजिए।" यहाँ ५ राजाने अपने पुत्रको न पाकर नगरमें डौंड़ी दिलवायी, "जो कोई राजाके पुत्रका वृत्तान्त कहेगा, वह धनके साथ भूमि भी पायेगा।" इसपर किसी एक ढीठने तुरन्त ही राजाके आगे कह दिया—"हे देव, मैंने तुम्हारे पुत्रको देखा है। उसे आपके नये मन्त्रीने मार डाला है।"

१८—राजाकी कृतज्ञता

यह बात सुनकर वह सरलबाहु राजा मन्त्रीपर सन्तुष्ट हुआ और बोला—"उन तीन फलों में-से एक फलका ऋण मैंने मतिवर मन्त्रीका चुका दिया। अन्य दो फलोंका ऋण अभी भी क्षमा कीजिए। इस प्रकार धरणीश उस क्षण प्रसन्न हुआ। मन्त्रीने जब राजाके स्नेहको जान लिया, तब उस दिव्यदेह राजकुमारको लाकर राजाको अर्पित कर दिया। वह बोला—"हे नरेश्वर, आप मेरे परम मित्र हैं। हे देव, मैंने तो आपके चित्तकी परीक्षा की थी।" वणिक्का यह वचन सुनकर ५ राजाने उसे अपना खूब प्रसाद दिया। इस प्रकार जो मनुष्य गौरवशाली पुरुषोंका संग करता है, वह मनचाही सम्पत्ति प्राप्त करता है। यह मैंने तुझे एक उच्च पुरुषकी कहानी कही। हे पुत्र, इस गुणोंकी सारभूत कहानीको अपने हृदयमें बूझ ले। करकंडको उस खेचरने हितबुद्धिसे समस्त कलाएँ सिखा दीं। इस नीतिसे जो मनुष्य व्यवहार करेगा वह निश्चय ही भूमण्डलका उपभोग कर सकता है। १०

१९—दन्तीपुरके राजाकी मृत्यु

खेचरके ऐसे वचन सुनकर करकंड कभी उसका पास नहीं छोड़ता। अपने घरको छोड़कर यदि वह क्रीड़ाके लिए बाहर जाता, तो वह श्मशानको न छोड़ता। इस प्रकार जब वह वहाँ क्रीड़ामें अनुरक्त था, तब दन्तीपुर नगरमें एक दिन उस राजाकी मृत्यु हो गयी जो अपने विरुद्ध चलनेवाले वैरियोंका विनाशक और दुःशील राजाओंको भयदायक था, तथा जिसकी आज्ञाका लोग कभी उल्लंघन नहीं करते थे। राजधानीमें हाहाकार मच गया। देश-भरमें अति दुःख बढ़ा। ५ लोग कहते—"कोई राजकुमार भी तो नहीं है जो यहाँ इतने बड़े राज्यको सँभाले।" तब मन्त्रीके

ता मंतिमणहो परिफुरिउ मंतु अवलोयउ गयवरु लडहदंतु ।
घत्ता—तं पुज्जिवि मयगलु मइवरइँ परिपुण्णउ कुंभु समप्पियउ ।
जो रज्जु करेसइ तहो उवरि ढालेसहि एउ वियप्पियउ ॥ १९ ॥ 10

२०

Karakaṇḍa's luck.

पढंत दिएसर साम सरेण मिलाविय देवणिकाय वरेण ।
ससंख सडिंडिम काहलतूरु पवज्जिउ मद्दलु[1] मेइणिपूरु ।
घराउ विणिग्गउ वारणु तुंगु विलासिणिगेहहो णाइँ भुयंगु ।
लुलावियसुंडु चलावियकण्णु विलोलसुलोयणु उज्जलवण्णु ।
स पुण्णउ कुंभु करेण करंतु छणिंदु व पव्वयसिंगु सरंतु 5
पुरम्मि घरेण घराइँ लहंतु समुण्णइ तो वि समग्ग वहंतु ।
भमेविणु पट्टणु चच्चरवंतु गओ गउ बाहिरि दूरें भमंतु ।
मसाणहो मज्झे अउव्वउ मारु गएण तुरंतएँ दिट्ठु कुमारु ।
सुसोहणु कुंभु सिरेण णएण सिरम्मि विरेइउ तासु गएण ।
घत्ता—सो देक्खिवि लोयहिँ सिरु[2] धुणिउ हा हा रउ गरुयउ घोसियउ । 10
किं कीयउ एएँ करिवरिण[3] मायंगहो कलसु णिवेसियउ ॥ २० ॥

२१

Karakaṇḍa is made king of Dantipur.

इउ मण्णिवि ते सामंत मंति णउ अग्गइ चल्लहिँ णउ णियंति ।
उद्दुंमण अच्छहिँ जा मणम्मि खेयरहो ताम तहिँ तक्खणम्मि ।
मुणिदिण्ण[1] सावेँ जउ णासियाउ विज्जाउ पराइउ तासु ताउ ।
ता हरिसुक्कंठएँ खयरेण लोयहँ परिअक्खिउ सुंदरेण ।
मायंगहो सुउ णउ होइ एहु णिवणंदणु एहउ दिव्वदेहु । 5
मा संकहु वक्खइ सरइ अग्गि करु लायहु तुम्हइँ करिकरग्गि ।
जा विज्ज लंखइँ[2] णर संगरम्मि करकंडहो सा[3] देविणु करम्मि ।
इउ करिवि खयरु विज्जावलेण णियभवणु गयउ पुणु णहयलेण ।
घत्ता—जयघोसु पवड्ढिउ गयणयले अमरेहिँ सुमंगलु पूरियउ ।
कणयामरवण्णहिँ माणवहिँ करकंडु रज्जे वइसारियउ ॥ २१ ॥ 10

इय करकंडमहारायचरिए मुणिकणयामरविरइए भव्वयणकण्णावयंसे पंचकल्लाणविहाणकप्पतरुफलसंपत्ते करकंडरज्जलंभो णाम बीउ परिच्छेउ समत्तो ।

॥ संधि ॥ २ ॥

२०. १ J मंदलु. २ S धुणेवि. ३ S करिवरेण.
२१. १ N मुणिदिण्णें. २ N लहय देवेण रम्मि. ३ S J सो.

मनमें एक मन्त्र (युक्ति) स्फुरायमान हुआ । उसने सुन्दर दाँतोंवाले एक श्रेष्ठ गजको देखा (चुना) बुद्धिमान् मन्त्रीने उस हाथीको पूजकर उसे जलसे परिपूर्ण घड़ा समर्पित किया और "जो कोई राज्य करनेवाला हो, उसके ऊपर इसे ढालेगा"—ऐसा विकल्प अपने मनमें किया ।

२०—हाथी-द्वारा दैवी विधिसे राजाका चुनाव

द्विजेश्वर स्वरसे सामवेद पढ़ने लगे । वरण (आह्वान)-द्वारा देवगणोंको एकत्र किया गया । शंख, डिंडिमके साथ काहल और तूर्य एवं मार्दल (नगाड़ा) बजने लगा, जिससे मेदिनी पूरित हो गयी । ऐसे अवसरपर वह विशाल हाथी घरसे निकला, जैसे प्रेमी अपनी विलासिनीके घरसे निकलता है । वह हाथी सूँड़ डुला रहा था और कान चला रहा था । उसकी सुन्दर आँखें चंचल थीं । वह स्वयं उज्ज्वल वर्ण था । जलसे भरे हुए घड़ेको वह अपनी सूँड़में ऐसे लिये हुए था, जैसे मानो पूर्णचन्द्र पर्वतके शिखरपर चल रहा हो । वह उस पुरमें एक घरसे दूसरे घरोंको पार करता हुआ समग्र उन्नतिको धारण किये हुए, चौराहों-सहित समस्त पट्टणका भ्रमण करके बाहर दूर तक भ्रमण करता चला गया । उसने श्मशानके बीच तुरन्त एक कुमारको देखा, जो अपूर्व कामदेव ही था । हाथीने उसके आगे अपने सिरको नवाकर, वह शोभनीक कुम्भ उसीके सिरपर खाली कर दिया । उसे देखकर लोग सिर धुनने लगे, महान् हाहाकारका रव घोषित हो उठा । अरे, इस करिवरने यह क्या किया जो मातंगके ऊपर कलश रख (ढाल) दिया ।

२१—करकंडकी राज्यप्राप्ति

इसी असमंजसमें पड़कर वे सामन्त और मन्त्री न आगेको चलते और न सामनेको देखते । वे जब अपने मनमें इस प्रकार उदास खड़े थे, तब उसी क्षण उस खेचरकी, जो मुनि-द्वारा दिये गये शापसे नष्ट हो गयी थीं, वे सब विद्याएँ लौट आयीं । तब उस सुन्दर विद्याधरने हर्षसे उत्कंठित होते हुए लोगोंको बतलाया—"अरे ! यह कोई मातंगका पुत्र नहीं है; यह दिव्यदेह राजकुमार है । तुम शंका मत करो । उसे अपने आगे चलने दो और तुम उसके हाथीकी सूँड़के अग्रभागपर अपना हाथ लगाओ ।" ऐसा कहकर, तथा जो विद्या संग्राममें लोगोंको स्खलित कर देती है, उसे करकण्डके हाथमें देकर, यह सब करके, वह खेचर विद्याके बलसे नभस्तल-द्वारा अपने भवनको गया । यहाँ गगनतलमें जयघोष बढ़ा, देवोंने सुमंगल पूरा किया तथा कनक वा अमरवर्णके मानवोंने करकण्डको राज्यपर बैठाया ।

इति मुनि कनकामर विरचित, भव्यजनकर्णावतंस, पंचकल्याणविधानरूप कल्पतरु फल सम्पन्न करकण्ड महाराज चरित्रमें, करकण्डको राज्य लाभ नामक दूसरा परिच्छेद समाप्त ।

संधि—३

१

Karakanda enters Dantipur with pomp and ceremony.

ध्रुवकं—पुणु मंतिहिँ भणियउ णवउ णिउ तुहुँ गयवरखंधि समारुहहि।
चलु चलु सुंदर लहु चलहि दंतीपुरि रज्जहो भरु वहहि॥

णिज्झरझरंतमयगिल्लगंडे करकंडु चडिउ ता करिपयंडे।
क वि लीला मणहर अइवहेइ णं सुरवइ अइरावइँ सहेइ।
संचल्लिउ सो सहुँ णरवरेहिँ विज्जिज्जमाणु चलचामरेहिँ। 5
लीलाविलाससुहसा[2]मिणीहिँ गाइज्जमाणु वरकामिणीहिँ।
कलयंठिरावकयहीलणेहिँ संथुव्वमाणु वंदीजणेहिँ।
गुणपउररायतग्गयमणेहिँ सेविज्जमाणु णायरजणेहिँ।
परलोयकज्जे उज्जुवगईहिँ सलहिज्जमाणु सज्जणमईहिँ।
अवरेहिँ वि लोयहिँ कलियमाणु गउ सुंदरु पुरवरे जणसमाणु। 10

घत्ता—सो पुरवरणारिहिँ गुणणिलउ पइसंतउ दिट्ठउ णयरे कह[3]।
णं दसरहणंदणु तेयणिहि उज्झहिँ सुरणारीहिँ जह[4]॥ १॥

२

The flutter amongst the damsels of the town at his entry.

तहिँ पुरवरि खुहियउ रमणियाउ झाणट्ठियमुणिमणदमणियाउ।
क वि रहसइँ तरलिय चलिय णारि विहडफ्फड संठिय का वि [1]वारि।
क वि धावइ णवणिवणेहलुद्ध परिहाणु ण गलियउ गणइ मुद्ध।
क वि कज्जलु बहल[2]उ अहरे देइ णयणुल्लएँ लक्खारसु करेइ।
णिग्गंथवित्ति क वि अणुसरेइ विवरीउ डिंभु क वि कडिहिँ लेइ। 5
क वि णेउरु करयलि करइ बाल सिरु छंडिवि कडियले धरइ माल।
णियणंदणु मण्णिवि क वि वराय मज्जारु ण मेल्लइ साणुराय।
क वि धावइ णवणिउ मणे धरंति विहलंघल मोहइ धर सरंति।

घत्ता—क वि माणमहल्ली मयणभर करकंडहो समुहिय चलिय।
थिरथोरपओहरि म[3]यणयण उत्तत्तकणयछवि उज्जलिय॥ २॥ 10

३

He enters the decorated palace and is crowned king.

णवरज्जलंभरंजियहिएण करकंडइँ पुरे पइसंतएण।
गयखंधे चडिण्णय जंतएण णिउ राउलु लीलएँ पत्तएण।

---

१. १ S भणिउ. २ D J N भामिणीहिं ३ S किह. ४ S जिह.

२. १ S चारि. २ D बहुलउ.

सन्धि—३

१—गजारूढ़ करकण्डका नगर-प्रवेश

फिर मन्त्रियोंने नये राजासे कहा—"आप इस गजवरके स्कन्धपर आरूढ़ हो जाइए। चलिए, चलिए, हे सुन्दर, शीघ्र चलिए; और दन्तीपुरमें राज्यके भारको वहन कीजिए।" तब करकण्ड, निर्झरके समान झरते हुए मदसे जिसके गण्डस्थल गीले हो रहे थे, ऐसे उस प्रचण्ड हाथीपर चढ़ा। इस समय वह ऐसी मनोहर शोभाको धारण कर रहा था जैसे मानो सुरपति ऐरावत हस्तीपर विराजमान हो। वह उन नरवरोंके साथ वहाँसे चला। उसके ऊपर ५ चँवर ढोले जा रहे थे; लीला, विलास व सुखकी स्वामिनी उत्तम कामिनियाँ उसके गीत गा रही थीं। कोकिलकी ध्वनिको लज्जित करनेवाले वन्दीजन उसकी स्तुति कर रहे थे। गुणोंके अत्यन्त अनुरागसे उसीमें अपना मन लगाकर नगरके लोग उसकी सेवा कर रहे थे। तथा परलोक कार्यमें सीधी गतिसे चलनेवाले सज्जनमति उसकी श्लाघा कर रहे थे। और भी अन्य लोगोंसे सम्मानित वह सुन्दर राजा सब जनोंके साथ पुरवरमें प्रविष्ट हुआ। नगरमें प्रवेश करते समय उस गुणोंके १० निलय राजाको पुरकी नारियोंने कैसा देखा जैसे कि तेजनिधि दशरथनन्दनको अयोध्यामें सुरनारियोंने देखा था।

२—करकण्डको देखनेके लिए नगरनारियोंकी विह्वलता

उस समय नगरकी उन रमणियोंमें क्षोभ उत्पन्न हो उठा, जो ध्यानस्थ मुनियोंके मनको भी दमन कर लेती थीं। कोई रमणी उत्कण्ठित होकर वेगसे चल पड़ी, कोई विह्वल होकर द्वारपर ही खड़ी रह गयी। कोई नये राजाके स्नेहसे लुब्ध होकर दौड़ पड़ी। उस मुग्धाको अपने गलित हुए परिधानकी भी सुध न रही। कोई अपने अधरमें खूब काजल देने लगी और नेत्रोंमें लाक्षारस करने लगी। कोई निर्ग्रन्थवृत्तिका अनुसरण कर रही थी, तो कोई अपने बालकको विपरीत ५ (उल्टा) कटिपर ले रही थी। कोई बाला नूपुरको करतलमें पहन रही थी और मालाको शिर छोड़ कर कटितलपर धारण कर रही थी। कोई बेचारी अनुरागमें इतनी डूब गयी कि वह मार्जार (बिलौटे) को अपना पुत्र समझकर उसे छोड़ती ही नहीं थी। कोई नये राजाको मनमें धारण कर दौड़ रही थी और विह्वल हुई भूमिपर चलती-चलती मूर्च्छित हो रही थी। कोई स्थिर-स्थूल पयोधरी, मृगनयनी, उत्तप्त कनक-छवि और उज्ज्वल महामानिनी मदनके वश होकर करकण्डके १० सम्मुख ही चल पड़ी।

३—करकण्डका राजकुल-प्रवेश

नये राज्यके लाभसे हृदयमें प्रसन्न होते हुए नगरमें प्रवेश करते, गजके स्कन्धपर चढ़ कर जाते हुए लीलासहित नये राजकुलमें पहुँचकर करकण्डने उस उत्तुंग राजनिकेतको देखा जो

तें दिट्ठउ रायणिकेउ तुंगु अइमणहरु णं हिमवंतसिंगु ।
मुत्ताहलमालातोरणेहिँ णं विहसइ सियदंतहिँ घणेहिँ ।
किंकिणिरणंतु धयवडवमालु णं णच्चइ पणयिणि विहियतालु । 5
चामीयरमणिरयणेहिँ घडिउ णं सग्गहो अमरविमाणु पडिउ ।
तहिँ पइसइ णवणिउ विमलबुद्धि पारंभिय गुरुयण मणविसुद्धि ।
करहेमकुंभु मंगलु करंति क वि माणिणि णिग्गय ता तुरंति ।
परिमंगलु किउ वरदीवएहिँ जय कारिउ पुणु णारीसएहिँ ।
सोवण्णकलसकयउच्छवम्मि पइसारिउ सो णिवमंदिरम्मि । 10

घत्ता—सो सयलगुणायरु सीलणिहि विणयभावसंजुत्तउ ।
सामंतमंतिजणपरियरिउ पुरि अच्छइ रज्जु करंतउ ॥ ३ ॥

४

Karakaṇḍa sees a portrait and feels attracted.

तहिँ तेण वि रज्जु करंतएण आणाविय वंस तुरंतएण ।
आएसवसेण व जे धरिय धयअंकुसछत्तहँ दंड किय ।
आसावसेण जो तहिँ जि ठिउ पुणु आणिवि दियवरु मंति किउ ।
ता एक्कहिँ दिणि करकंडएण वरलीलएँ णयरे भमंतएण ।
देसंतरु जो हिंडंतु पत्तु तहिँ दिट्ठउ सो णरु ललियगत्तु । 5
पुणु दिट्ठउ तहो करे पडु विचित्तु जो मोहइ लोयहँ तणउ चित्तु ।
सो भणियउ करकंडइँ णिवेण पडु अप्पहि देक्खहुँ सहुँ हिएण ।
ता तेण समप्पिउ पत्थिवासु जणु रत्तउ अणुराएण जासु ।
सो पंचवण्णु गुणगणसहंतु करकंडइँ जोयिउ पडु महंतु ।
तहिँ रूउ सलक्खणु तेण दिट्ठ णं मयणबाणु हियवएँ पइट्ठ । 10
मुहकमलु सउण्हउ दीहसासु जरु दाहु अरोचकु हुयउ तासु ।

घत्ता—करकंडइँ जोइउ पडु पवरु थिउ हियवएँ विंभिउ एक्कु खणु ।
जणे पुलयइँ कहियउ तहो विरहु तें मउलिउँ णवणिउ विमणमणु ॥ ४ ॥

५

He learns that the portrait was of the princess of Saurāṣṭra

णिवहियउ मुणिउ पडधरणरेण वरु होहइ कण्णहे एहु भरेण ।
इय मुणिवि तो वि पडिलविउ भाय पडु अप्पहि अम्हहँ जाहुँ राय ।
णउ छंडइ सो पडु उल्लसंतु पुणु भणइ णरेसरु णीससंतु ।
महो सहयर अक्खु पयत्तएण पडु लेवि भमहि कज्जेण केण ।
आयण्णिवि तें वयणाणुसारु तहो रायहो कहियउ पडवियारु । 5
एत्थत्थि देव सोरट्ठु देसु सुरलोउ विडंबिउ जें असेसु ।
तहिँ णयरु अत्थि गिरिणयरु णामु सुरखेयरणरणयणाहिरामु ।

३. १ D N पणएं. २ N गुरयण; D गुणरयणमणसुद्धि. ३ N सामंति.
४. १ J ठियउ. २ J कियउ. ३ S महंतु. ४ DJ जोयउ. ५ S हियएं. ६ Mss. मउलय.

हिमवन्तके शिखरके समान अति मनोहर था। वह प्रासाद मुक्ताफलोंकी मालाके तोरणोंसे मानो अपने सघन श्वेत दाँतोंसे हँस रहा था। किंकिणियोंकी ध्वनि-सहित अपनी ध्वजा और पताकाओंकी माला-सहित ऐसा प्रतीत होता था, मानो कोई प्रणयिनी ताल दे-देकर नाच रही हो। सुवर्ण और मणिरत्नोंसे जड़ा हुआ वह प्रासाद ऐसा दिखायी देता था, मानो स्वर्गसे देवोंका विमान आ पड़ा हो। उस विमल-बुद्धि नये राजाने अपने मनकी विशुद्धि-सहित गुरुजनोंको प्रारम्भ (आगे) करके वहाँ प्रवेश किया। उसी समय तुरन्त कोई एक मानिनी हाथमें सुवर्ण-कलश रूप मंगल करती हुई निकली। उत्तम दीपकोंसे राजाका सब प्रकार मंगल किया गया और फिर सैकड़ों नारियोंने उसका जयजयकार किया। इस प्रकार सुवर्ण-कलशोंसे सजाये हुए उस राजमन्दिरमें करकण्डका प्रवेश कराया गया। वह निकलगुण-शीलनिधि, विनयभाव-संयुक्त करकण्ड, सामन्त, मन्त्री व अन्य जनोंसे परिचारित राज्य करता हुआ उस पुरीमें रहने लगा। ५ १०

४—करकण्डका प्रेम-जागरण

वहाँ राज्य करते हुए करकण्डने शीघ्र ही वे बाँस मँगवाये जो आदेशके अनुसार रखे हुए थे। उनके ध्वज, अंकुश और छत्रके दण्ड बनवाये गये। जो द्विजवर आशाके वश वहीं रह रहा था, उसको बुलाकर मन्त्री बनाया गया। फिर एक दिन जब करकण्ड बड़ी लीलासे नगरमें भ्रमण कर रहा था, तब उसने एक ललितगात्र मनुष्यको देखा, जो देशान्तरमें भ्रमण करता हुआ वहाँ पहुँचा था। फिर उसके हाथमें उन्होंने एक विचित्र पट देखा, जो लोगोंके चित्तको मोहित कर रहा था। करकण्ड राजाने उससे कहा—"जरा पट तो दे, मैं उसे हृदयसे देख लूँ।" उसने राजाको वह पट समर्पित किया जिसके अनुरागसे लोग आसक्त हो रहे थे। करकण्डने उस पचरंगे, गुणगणोंसे शोभायमान महान् पटको देखा। ज्योंही उसने उसमें उस सलक्षण रूपको देखा, त्योंही मानो उसके हृदयमें मदनका बाण प्रविष्ट हो गया। उसका मुखकमल सूख गया। दीर्घ श्वासें निकलने लगीं, तथा उसे ज्वर एवं अरोचक दाह भी हो उठा। करकण्डने उस उत्तम चित्रपटको देखा और वह एक क्षण अपने हृदयमें विस्मित होकर रह गया। लोगोंके रोमांचने उसके विरहकी बात कही। उस रोमांचसे मुकुलित वह नया राजा उदास मन होकर रह गया। ५ १०

५—मदनावलीका जन्म-वृत्तान्त

पटधारी मनुष्यने राजाके हृदयको समझ लिया और जान लिया कि बहुत करके यही कन्याका वर होगा। ऐसा समझकर फिर भी उसने कहा—"हे भाई, हे राजन्, पट दीजिए, मैं जाऊँ।" किन्तु राजा अपने उल्लासमें उस पटको छोड़ता ही नहीं था। श्वासें भरता हुआ राजा बोला—"हे मेरे सहचर, ठीकसे कहो तो सही कि तुम इस पटको लेकर किस कार्यसे घूम रहे हो।" यह सुनकर उसके वचनानुसार राजासे उसने पटका वृत्तान्त कहा—"हे देव, यहाँ सोरठ नामका देश है जिसने अशेष रूपसे सुरलोकका अनुकरण किया है। वहाँ गिरिनगर नामका नगर है जो सुरों, खेचरों व नरोंका नयनाभिराम है। वहाँ अपने शत्रुओंके सिरोंका यमराज अजयवर्म नामका राजा ५

तहिँ राउ अत्थि अरिसिरकयंतु अजवम्मु णाउ[1] अजियंगिकंतु ।
घत्ता—तहे[2] रूवकरंडी कलसरिय जा णयणपियारी णरवरहँ ।
मयणावलि णामइँ तेयणिहि सा हूई धीय मणोहरहँ ॥ ५ ॥ 10

६

She herself had become enamoured of him.

मयणावलि सा एक्कहिँ दिणम्मि गय सहियहिँ सहुँ णंदणवणम्मि ।
तहिँ खेयर जणमणणयणइट्ठ दोल्लहरि[1] चडीणा ताइँ दिट्ठ ।
गायंता गेयइँ मणहराइँ कागलियइँ करकंडहो[2] किराइँ ।
गेयाइँ मणोज्जइँ सा सुणेवि धरणीयले णिवडिय तणु धुणेवि ।
विहलंघल गयकल झीणदेह कसणम्मि पक्खि णं चंदलेह । 5
वायाहयकेलि व कंपमाण णिय सहियहिँ घरु सोएँ समाण ।
समसीलहिँ जणमणदुहहरीहिँ परिपुच्छिय विणएँ सहयरीहिँ ।
विहलंघल किं हूई सहीए अम्हहँ कहि बहिणिए वच्छलीए ।
मोहेण वि सहियहिँ सरलियाए विरहाणलु अक्खिउ बालियाए ।
घत्ता—जो गीयउ गायउ खेयरहिँ मइँ सूवउ करकंडहो तणउ । 10
तो तेण वियंभिउ महो हियउ पुणु चउदिसु लायउ रणरणउ ॥ ६ ॥

७

Marriage—proposal.

मइँ तुज्झ सहिए पायडिय वित्ति जइ सक्कहि ता महो करि परित्ति ।
विरहग्गिजालपज्जलियमाण महो[1] णासहिँ जाव ण[2] सहिए पाण ।
ता दुक्खु वहंतिए णरवरासु संखेवेँ अक्खिय वत्त तासु ।
करकंडगेयआयण्णणेण मयणावलि पीडिय कामएण ।
आयण्णेवि बालहे तणिय वत्त राएण लिहाविय हरिणणेत्त । 5
जयभूसण कुलगयणम्मि चंद पडु अप्पिउ राएँ महो णरिंद ।
अरिंदूसहमोडणमडसहाउ हउँ तुज्झ णयरे पडु लेवि आउ ।
पडु पेक्खिवि गच्छइ मोहु जो वि वरु होइ णरेसर ताहे[3] सो वि ।
घत्ता—मइँ एहउ पिसुणिउ तुज्झ णिव एउ इच्छिउ तम्हा महो सरउ ।
सा कमलदलच्छी ससिवयण तउ करयलु करपल्लवे धरउ ॥ ७ ॥ 10

८

Madanāvali is brought and is married to Karakaṇḍa.

तहो सुणिवि वयणु पडधरणरासु पडिवण्णिउ राएँ सयलु तासु ।
तेँ सरिसा कुलणहससहरेण संपेसिय णियणर णिववरेण ।
विवहम्मि पसण्णए कयसहाय मयणावलि लेविणु ते वि आय ।
किय हट्टसोह घरि तोरणाइँ संबद्धइँ तहो करकंकणाइँ[1] ।

५. १ D णामु. २ J तहिं.

६. १ S डोल्लहरि. २ S में इसे काटकर हाँसियेमें 'तणाइं' किसी अन्यके हस्ताक्षरोंमें लिखा गया है।

७. १ J महु. २ J णु सहिय. ३ J ताहिं.

८. १ D करे.

अपनी अजितांगी नामक कान्ता-सहित रहता है। उसी मनोहर रानीकी मदनावली नामकी रूप-करण्डी कल-स्वरा, लोगोंकी नयन-पियारी, तेजनिधि, पुत्री हुई।

६—मदनावलीका मोह

एक दिन वह मदनावली सखियोंके साथ नन्दन वनको गयी। वहाँ उसने देखा कि लोगोंके मनों और नयनोंको इष्ट खेचर झूलोंमें चढ़कर मधुर ध्वनिसे करकंडकी कीर्त्तिके मनोहर गीत गा रहे हैं। उन मनोहर गीतोंको सुनकर मदनावली अपने शरीरको धुन कर धरणीतलपर गिर पड़ी। वह ऐसी विह्वल, कलहीन व क्षीण देह हो गयी जैसे कृष्ण पक्षमें चन्द्रलेखा। पवनसे आहत केलीके समान काँपती हुई उसे सखियाँ शोक-सहित घर ले आयीं। जनोंके मनके दुःखोंको हरण करनेवाली ५ उसकी क्षमशीला सहचारियोंने विनयसे पूछा—"हे सखी, तू विह्वल क्यों हो गयी? हे प्यारी बहन, हमें कह तो।" तब उस सरल बालिकाने मोहवश अपनी सखियोंसे अपने विरहानलकी बात कही—"जो उन खेचरोंने करकंड-सम्बन्धी गीत गाया, उसे मैंने सुना; उसीसे मेरा हृदय प्रफुल्लित हो उठा, और चारों दिशाओंमें उत्सुकता लगने लगी।

७—चित्रपट-द्वारा प्रेमीकी खोज

हे सखि, मैंने तुझे बात प्रकट कर दी। यदि तुझसे हो सके तो मेरा सन्तोष कर, जबतक कि, हे सखि, विरहाग्निकी ज्वालासे जलते हुए मेरे ये प्राण नष्ट न हो जायें।" तब उस सखीने दुःख धारण करते हुए राजासे वह बात संक्षेपमें कही कि करकण्डका गीत सुननेसे मदनावली कामसे पीड़ित हो उठी है। बालिका-सम्बन्धी इस बातको सुनकर राजाने उस हरिणनेत्रीका चित्रपट लिखवाया और हे जगभूषण! व कुलरूपी गगनके चन्द्र नरेन्द्र! उस राजाने वह पट मुझे अर्पित ५ किया। उसी पटको लेकर, दुस्सह शत्रुओंको मोड़नेमें समर्थ वीरोंके साथ, मैं तुम्हारे इस नगरमें आया हूँ। इस पटको देखकर जो कोई मोहको प्राप्त हो, हे नरेश्वर, वही उस कन्याका वर होगा। हे नृप, मैंने तुम्हें यह सब बतला दिया। अब आप भी मेरी इतनी बात मानिए कि वह कमलदलाक्षी शशिवदना आपके करतलको अपने करपल्लवमें ग्रहण करे।

८—करकण्डका मदनावलीसे विवाह

उस पटधारी मनुष्यका यह वचन सुनकर राजाने उसकी समस्त बात मान ली। फिर अपने कुलरूपी नभके चन्द्र राजा करकण्डने उस भटके सदृश ही अपने निजी मनुष्य प्रेषित किये। वे मनुष्य एक शुभ दिन सहायकों-सहित मदनावलीको लेकर लौट आये। हाटकी शोभा की गयी।

णाणाविह वज्जइँ वाइयाइँ गीयाइँ रसालइँ गाइयाइँ । 5
भावड्ढइँ णच्चइँ णच्चियाइँ गयतुरयहँ थट्टइँ खंचियाइँ ।
उग्घाडिउ मुहवडु विहिँ जणाहँ णं मोहपडलु तग्गयमणाहँ ।
[2]घयजलिअजलणभामरिउ सत्त देवाविय भट्टहिँ पढिवि मंत ।
करु बालहे[3] अप्पिउ णववरेण किय सवहणाइँ दाहिणकरेण ।
भउ तारामेलउ णिविडु तेम जम्मे वि ण विहडइ णेहु जेम । 10
पहिलारउ मिलियउ मणु पसत्थु किउ लोयचारु जणरंजणत्थु ।
सुविसुद्धदिणहिँ रंजियमणाहँ सामंतहिँ कियउ विवाहु ताहँ ।
घत्ता—णरणाहहो हुयउ[4] विवाहु तहिँ सुर खेयर देक्खिवि उल्लसिय ।
णियभोयहो उवरि विरत्तमणु तहो तणिय रिद्धि मणि अहिलसिय ॥ ८ ॥

९

Karakaṇḍa's mother appears at the marriage.
Ambassy from the king of Campā.

तहिँ अवसरि पोमावइ वि माय णियणंदणु देक्खहुँ तुरिय आय ।
सा दिट्ठी करकंडेँ णिवेण पुणु पणमिय भावे णवणवेण ।
णियपुत्तविवाहेँ हरिसियाएँ आसीस पदिण्णी तुरिउ ताएँ ।
चिरु जीवहि णंदण पुहइणाह कालिंदी सुरसरि जाव वाह ।
वइसारिय विणएँ सा णवेवि दिणु अज्जु सहलु एहउ भणेवि । 5
सम्माणिय वयणहिँ कोमलेहिँ परिहाविय वत्थहिँ उज्जलेहिँ ।
आसीस देवि सा गय तुरंति करकंडकित्ति णं विप्फुरंति ।
ता एत्तहिँ जणमणजणियराउ करकंडपुरउ पडिहारु आउ ।
घत्ता—करकमल णिवेसिवि सिरकमले पडिहारु पयंपइ [1]पुट्ठसरु ।
चंपाहिवरायहो दूउ णिव सो अच्छइ सिंहवारम्मि वरु ॥ ९ ॥ 10

१०

The king of Campa claims homage from Karakaṇḍa.

तं सुणिवि वयणु करकंडएण पडिहारु पउत्तउ तुरियएण ।
लइ जाहि तुरिउ सो सुहडु जेत्थु चंपाहिवदूवउ आणि एत्थु ।
तं रायहो वयणु सुणेवि तेण लहु आणिउ सो पडिहारएण ।
सो देक्खिवि दूवउ राणएण संमाणिउ दाणइँ आसणेण ।
संसिद्धी[1] मेइणि सयल जासु भणु कुसलु दूव चंपाहिवासु । 5
दूवेण भणिउ तहो कुसलु राय पइँ जेहा अच्छहिँ जसु सहाय[2] ।
अणवरउ णरिंदहिँ विहियसेव सो सुमरइ तुम्हहँ देवदेव ।
जह जलहँ ण भिण्णउ सीयलत्तु तह चंपणरिंदहो तुहुँ णिरुत्तु ।
घत्ता—लइ पालहि णिव करकंड तुहुँ चंपाहिवरायहो केर वर ।
होएविणु एक्कइँ वे वि जण अणुहुंजहु तुम्हइँ भोय धर ॥ १० ॥ 10

---

२ J घिय. ३ J बालहिं. ४ S J में 'हुहउ' पाठ था किन्तु उसके स्थानपर S और J में 'हुअउ' लिख दिया गया है।

९. १ J N तुट्ठसरु या रुट्ठसरु (?).

१०. १ N संदिट्ठी. २ J सहाइं.

घरपर तोरण लगाये गये। हाथोंमें कंकण बाँधे गये। नानाविध वादित्र बजवाये गये। रसाल गीत गाये गये। भावपूर्ण नृत्य नाचे गये। गजों और तुरङ्गोंके ठाठ खींचे गये। वधू-वर दोनोंका मुखपट उघाड़ा गया, जैसे मानो उनके मनका मोहपटल उघाड़ दिया गया हो। घृतसे प्रज्वलित अग्निकी भट्टोंने मन्त्र पढ़कर सात भाँवरें दिलवायीं। नये वरने अपना कर बालिकाको अर्पित किया व दाहिने हाथसे शपथ आदि विधियाँ कीं। तारा-मेल ऐसा सघन हुआ कि जिससे जन्म-भर स्नेह विघटित न हो। प्रशस्त मन तो पहले ही मिल चुका था; यह लोकाचार तो लोगोंके मनोरंजनार्थ किया गया। इस प्रकार एक शुद्ध दिन उन अनुरक्त-मन वधू-वरका विवाह सामन्तों-द्वारा करा दिया गया। राजाका जब वह विवाह हुआ तो उसे देखकर सुर और खेचर भी उल्लसित हो उठे। अपने भोगोंके ऊपर उनका मन विरक्त हो गया और मनमें करकण्डकी ऋद्धिकी अभिलाषा जाग उठी।

९—माताका आशीर्वाद

उस अवसरपर पद्मावती माता भी अपने पुत्रको देखनेके लिए तुरन्त आयी। करकण्ड राजाने उसके दर्शन किये और नये-नये भावसे उसे प्रणाम किया। अपने पुत्रके विवाहसे हर्षित होकर उसने तुरन्त आशीष दी—"हे नन्दन, पृथ्वीनाथ, चिरंजीवी हो, जबतक कि यमुना और गंगाकी धारा बह रही है।" करकण्डने नमनपूर्वक विनयसे यह कहते हुए उसे बैठाया कि मेरा आजका यह दिन सफल हुआ। कोमल वचनोंसे उसका सम्मान किया गया और उसे उज्ज्वल वस्त्र पहनाये गये। वह आशीष देकर तुरन्त वापिस चली गयी, मानो करकण्डकी कीर्त्ति विस्फुरायमान हो रही हो। इसी समय लोगोंके मनमें अनुराग उत्पन्न करता हुआ प्रतिहार करकण्डके सम्मुख आया। प्रतिहारने अपने करकमलोंको सिरपर रखकर स्पष्ट स्वरमें कहा—"हे राजन्, चम्पाके राजाका बड़ा दूत सिंह-द्वारपर खड़ा है।"

१०—चम्पाधीशका सन्देश

यह वचन सुनकर करकण्डने तुरन्त प्रतिहारसे कहा—"जल्दी जा, जहाँ वह सुभट है; और चम्पाके राजाके दूतको यहाँ ले आ।" राजाका वचन सुनकर वह प्रतिहार उसे शीघ्र ले आया। राजाने दूतको देखकर आसन व दानसे उसका सम्मान किया, और पूछा—"हे दूत, जिनकी समस्त मेदिनी संसिद्ध (वशीभूत) हो चुकी है, उन चंपाधीशकी कुशल कहो।" दूतने कहा—"हे राजन्, जिसके आप-जैसे सहायक बैठे हों उसकी कुशल ही है। हे देवदेव, निरन्तर अन्य नरेन्द्रोंसे सेवित होते हुए भी वे तुम्हारा स्मरण किया करते हैं। जिस प्रकार जलसे शीतलता भिन्न नहीं है, उसी प्रकार चम्पा-नरेशके लिए पूर्णरूपसे आप हैं। हे करकण्ड राजन्, तुम चम्पाके राजाकी उत्तम सेवाका पालन करो और आप दोनों जन एक होकर भोगों और धराका उपभोग करो।"

११

Karakanda proposes to decide the issue by an open battle.

विणु केरइँ लब्भइ णाहि मित्त   एह मेइणि भुंजहुँ हत्थमेत्त ।
ण वि पालहि जइ पुणु सेव तासु   तो ठाउ करहि अह कहिँ मि णासु ।
तं सुणिवि वयणु करकंडएण   तेँ हियवइँ कोहु धरंतएण ।
आयंबणयण भालयले णीय   णं चंददिवायर [1]संग्गि ठीय ।
जाजाहि दूव तउ सामि जेत्थु   तुहुँ खणु वि एक्कु मा वसहि एत्थु । 5
संखेवेँ कहि चंपाहिवासु   हउँ आयउ तुरिवउ [2]तुज्झ पासु ।
जइ संगरि अत्थि भडावलेउ   संगामु मज्झु ता तुरिउ देउ ।
इउ सुणिवि वयणु गउ दूउ तेत्थु   सिरिधाडीवाहणु वसइ जेत्थु ।
घत्ता—तेँ कहियउ दंतीपुरिणिवइँ सो पइँ देव ण[3] वि णवइ ।
संगामरंगि तुम्हेँहिँ सहुँ अइजुज्झइ धीरउ इउ लवइ ॥११॥ 10

१२

Karakanda's march. The Ganges. Siege of Campa.

तं [1]सुणिवि वयणु चंपाहिराउ   सण्णज्झइ ता किर बद्धराउ ।
तावेत्तहिँ दंतीपुरिणिवेण   कंपाविय मेइणि मंदरेण ।
णिण्णासियअरि[2]यणजीवएण   उड्डाविय दहदिसि रय रणेण
णहु छायउ खलियउ रवि रएण[3]   लहु दिण्णु पयाणउ कुद्धएण
गंगापएसु संपत्तएण   गंगाणइ दिट्ठी जंतएण । 5
सा सोहइ सियजल कुडिलवंति   णं सेयभुवंगहो महिल जंति ।
दूराउ वहंती अइविहाइ   हिमवंतगिरिंदहो कित्ति णाइँ ।
विहिँ कूलहिँ लोयहिँ ण्हंतएहिँ   आइचहो जलु परिदिंतएहिँ ।
दब्भंकियउड्ढहिँ करयलेहिँ   णइ भणइ णाइँ एयहिँ छलेहिँ ।
हउँ सुद्धिय णियमग्गेण जामि   मा रूसहि अम्महो उवरि सामि । 10
णइ पेक्खिवि णिउ [4]करकंडणामु   गउ जणणणयरु गुणगणियधामु ।
घत्ता—जेँ संगरि सुरवरखेयरहँ भउ जणियउ धणुहरमुअसरहिँ ।
तेँ वेढिउ पट्टणु चउदिसिहिँ गयतुरयणरिंदहिँ दुद्धरहिँ ॥१२॥

१३

The king of Campā receives information.

तं वेढिउ जा राएण तेण   ता आउलि पुरयणु हुउ खणेण ।
णरणाहहो कहिउ परेण केण   उवरुद्धउ परबलु सयलु जेण ।
हे णरवइ परबलवणहुआस   बंदीयणसज्जणपूरियास[1]
उद्दंडसुंड गय गुलुगुलंत   कुडिलाणण वरहय हिलिहिलंत ।
संचल्लिय रहवर [2]घरहरंत   फारक्कहिँ फुरियहिँ फरहरंत । 5
करवालकिरण रविकरहरंत   वंकुडिय कउत्तल थ[3]रहरंत ।

---

११. २ S सग्गे. २ J तुज्झु. ३ DN ण णवि.

१२. १ S सुणेवि. २ S N अरिणर. ३ S] वएण. ४ J करकंडु णामु.

१३. १ J °सु. २ S J थरहरंत. ३ S J थलहरंत; N थरहरंत.

११—करकण्डका रोष

"हे मित्र, बिना सेवाके यह मेदिनी एक हस्तमात्र भी भोगनेके लिए नहीं मिल सकती। यदि आप चम्पाधिपका सेवा-पालन नहीं करेंगे तो यहाँसे भागकर कहीं अन्यत्र अपना ठाँव कीजिए।" इस वचनको सुनकर करकण्डने अपने हृदयमें क्रोध धारणकर लाल आँखें कपालकी ओर खींच लीं, जैसे मानो चन्द्र और सूर्य स्वर्गमें स्थित हों। वह बोला—"हे दूत जा, चला जा यहाँसे जहाँ तेरा स्वामी है। तू अब एक क्षण भी यहाँ मत ठहर। संक्षेपसे चम्पाधिपको कहना कि मैं तुरन्त ही तुम्हारे पास आता हूँ। यदि समरमें शूर-वीरताका अभिमान हो तो जल्दी मुझसे संग्राम करे।" यह वचन सुनकर दूत वहाँ गया, जहाँ श्री धाडीवाहन राजा रहता था। उसने कहा—"हे देव, वह दन्तीपुरका राजा आपको नमन करनेके लिए तैयार नहीं है। समरांगणमें वह तुम्हारे साथ जूझेगा। वह धीर ऐसा कहता है।" ५

१२—दुर्धर सेना चलकर गंगातीर पहुँचती है।

यह वचन सुनकर, तब चम्पाधिराज लगनके साथ युद्धकी तैयारी करने लगा। उसी समय यहाँ दन्तीपुरके राजाने मन्दर-सहित मेदिनीको कम्पायमान कर दिया। जिसने अपने शत्रुजनोंको जीव-रहित करके नाश कर दिया था, उस करकण्डने रण-यात्राके द्वारा दसों दिशाओंमें धूल उड़ायी। आकाश आच्छादित हो गया और रवि अपनी चालसे स्खलित हो गया। क्रुद्ध होकर उसने जल्दी-जल्दी प्रयाण किया। चलते-चलते गंगा प्रदेशमें आकर उसने गंगा नदीको देखा। वह श्वेत जल-सहित अपनी कुटिल धारासे ऐसी शोभायमान थी जैसे मानो श्वेत भुजङ्गकी महिला जा रही हो। दूरसे ही बहती हुई वह ऐसी दिखायी दी, जैसे वह हिमवन्त गिरीन्द्रकी कीर्त्ति ही हो। दोनों कूलोंपर नहाते हुए व आदित्यको जल चढ़ाते हुए दर्भसे युक्त ऊँचे उठाये हुए करतलों-सहित लोगोंके द्वारा, मानो इन्हीं बहानोंसे, नदी कह रही थी कि 'मैं शुद्ध हूँ, और अपने मार्गसे जाती हूँ; हे स्वामी, हमारे ऊपर रुष्ट मत होइए।' नदीको देखकर करकण्ड राजा अपने पिताके नगर गुणगणोंके धाम चम्पापुरको गया। जिसने बड़े-बड़े देवों और खेचरोंको समरमें धनुषसे छोड़े हुए बाणों-द्वारा भय उत्पन्न किया था, उसने चम्पापट्टणको चारों दिशाओंमें दुर्द्धर गज, तुरङ्ग और नरेन्द्रोंकी सेनाओंसे घेर लिया। ५ १०

१३—आक्रमणकारी सैन्यका समाचार

जब उस राजाने नगरको घेर लिया, तब एक क्षणमें पुरजन आकुल हो उठे। किसी एकने, जिसने समस्त शत्रुकी सेनाको घेरा डालते देख लिया था, जाकर राजासे कहा—"हे नरपति, शत्रुके सैन्यवनके दावानल, बन्दीजनों और सज्जनोंके आशा-पूरक, उभर उद्दण्ड सूँड़ोंवाले गज गुड़गुड़ा रहे हैं। टेढ़ी घींच किये बड़े-बड़े घोड़े हिनहिना रहे हैं। बड़े-बड़े रथ घर्राते हुए व स्फुरायमान ध्वजाओंसे फहराते हुए चल रहे हैं। तलवारोंकी किरणें सूर्यकी रश्मियोंको भी जीत रही हैं। बाँकुड़े कुन्तल थर्रा रहे हैं। छुरियों-सहित भाले खूब चमचमा रहे हैं। योद्धा पवनके ५

छुरिएहिँ कोंत अइविप्फुरंत पवणा इव वेएँ संचरंत ।
सीहोव[४] मदुद्धरु अइपयंडु तुह[५] उवरि पराइउ वइरिदंडु ।
घत्ता—तं सुणिवि णरिंदहो मुहकमलु संजायउ रत्तुप्पलसरिसु ।
डसियाहरु भूभंगुरणयणु कोहाणलु वड्ढिउ गउ हरिसु ॥ १३ ॥ 10

१४

The Campā–king marches out with his forces.

ताव सो उट्ठिओ धाइया किंकरा संगरे जे वि देवाण भीयंकरा ।
वाउवेया हया सज्जिया कुंजरा चक्कचिक्कार संचल्लिया रहवरा ।
हक्क डक्कार हुंकार मेल्लंतया धाविया के वि कुंताइँ गेण्हंतया ।
के वि सम्माणु सामिस्स मण्णंतया पायपोमाण रायस्स जे भत्तया ।
चावहत्था पसत्था रणे दुद्धरा धाविया ते णरा चारुचित्ता बरा । 5
के वि कोवेण धावंति कप्पंतया के वि उग्गिण्णखग्गेहिँ दिप्पंतया ।
के वि रोमंचकंचेण संजुत्तया के वि सण्णाहसंबद्धसंगत्तया ।
के वि संगामभूमीरसे रत्तया सग्गिणीछंदमग्गेण संपत्तया ।
घत्ता—चंपाहिउ णिग्गउ पुरवरहो हरिकरिरहवरपरियरिउ ।
उद्दंडचंडपीवरकरहिँ भणु केहिँ ण [१]केहिँ ण अणुसरिउ ॥ १४ ॥ 10

१५

Fight begins.

ता हयइँ तूराइँ भुवणयलपूराइँ ।
वज्जंति वज्जाइँ सज्जंति सेण्णाइँ ।
आणाए घडियाइँ परबलइँ भिडियाइँ ।
कुंताइँ भज्जंति [१]कुंजरइँ गज्जंति ।
रहसेण वग्गंति करिदसणे लग्गंति । 5
गत्ताइँ तुट्टंति मुंडाइँ फुट्टंति ।
रुंडाइँ धावंति अरिथाणु पावंति ।
अंताइँ गुप्पंति रुहिरेण थिप्पंति ।
हड्डाइँ मोडंति गीवाइँ तोडंति ।
घत्ता—के[२] वि भग्गा कायर जे वि णर के[२] वि भिडिया के वि पुणु । 10
खग्गुग्गामिय के वि भड मंडेविणु थक्का के वि रणु ॥ १५ ॥

१६

Karakaṇḍa, requisitions the Vidyā.

ता रोसेँ चंपाहिउ[१] णरिंदु रह चडिवि पधायउ णं सुरिंदु ।
सो तुरिउ गयउ परबलणिवासु अब्भिडियउ[२] करकंडहो णिवासु ।

---

४ D सीहो इव. ५ DN तहो.

१४ १ SD. केहं.

१५ १ J में 'कुंजरइं गज्जंति' छूटा है. २ J कि वि.

१६ १ S चंपाहिव, २ N अब्भडियउ.

समान वेगसे सञ्चार कर रहे हैं। इस प्रकार वैरीका सिंहके समान दुर्द्धर, अति प्रचण्ड सैन्य आपके ऊपर चढ़ आया है। यह सुनकर राजाका मुखकमल रक्तोत्पलके सदृश लाल हो उठा। उन्होंने अपने होंठ चबाये; आँखोंपर भौंहें चढ़ गयीं, क्रोधानल भभक उठा और हर्ष चला गया।

१४—चम्पाकी सेना भी तैयार हुई

तब वह चम्पाका राजा उठ खड़ा हुआ। दौड़ने लगे वे किंकर जो समरमें देवोंको भी भयङ्कर थे। वायुवेग घोड़े और कुञ्जर सज गये। बड़े-बड़े रथ चक्कोंकी चीत्कार करते हुए चल पड़े। हाँकें, डँकारें और हूँकार छोड़ते हुए कितने ही योद्धा भाले ग्रहण करके दौड़ पड़े। कितने ही अपने स्वामीके सम्मानको मानते थे, और राजाके चरण-कमलोंके भक्त थे। वे प्रशस्त, रणमें दुर्द्धर नर प्रसन्नचित्त होकर हाथोंमें धनुष लिये दौड़े। कितने ही कोपसे काँपते हुए और कितने ही उघाड़े हुए खड्गोंसे दीप्तिमान् होते हुए दौड़े। कितने ही रोमाञ्चरूप कञ्चुकसे संयुक्त थे, और कितने ही अपने गात्रपर सन्नाह बाँधकर तैयार थे। कितने ही संग्राम-भूमिके रसमें रक्त होकर स्वर्ग पानेके इच्छित मार्गसे आ पहुँचे। (इस कडवक की रचना सर्गिणी छन्दमें हुई है)। चम्पाधिप उत्तम घोड़ों, हाथियों और रथोंसे युक्त होकर पुरवरसे निकल पड़ा। उद्दण्ड, चण्ड, स्थूल भुजशाली, कहो, किन-किनने उसका अनुसरण नहीं किया ?

१५—भीषण संग्राम

तब नगाड़ोंपर चोट पड़ी जिससे भुवन-तल पूरित हो गया। बाजे बज रहे हैं और सैन्य सज रहे हैं। आज्ञानुसार व्यूह-घटित होकर वे सेनाएँ शत्रु-बलसे भिड़ गयीं। भाले भग्न हो रहे हैं, कुञ्जर गरज रहे हैं, योद्धा वेगसे बढ़ रहे हैं, हाथीके दाँतोंसे लग रहे हैं। गात्र टूट रहे हैं, मूँड़ फूट रही हैं। रुण्ड दौड़ रहे हैं और शत्रु स्थानको पा रहे हैं। आँतें निकल रही हैं, रुधिर से सन रही हैं। हड्डियाँ मुड़ रही हैं, ग्रीवाएँ टूट रही हैं। जो कोई नर कायर थे, वे भाग उठे, कोई भिड़ गये। भट खड्ग तानकर और कोई रणमांड कर डट गये।

१६—करकण्ड और चम्पाधिपका युद्ध

तब रोषसे चम्पाधिप नरेन्द्र रथपर चढ़कर दौड़ा, जैसे सुरेन्द्र। वह तुरन्त परसैन्यके नृपके समीप गया और करकण्ड राजासे भिड़ गया। तब दोनों बलोंमें कलकल बढ़ गया। नभस्तल

ता कलयलु वड्डिउ बिहिँ बलाहँ बाणावलिछाइयणहयलाहँ ।
करकंडेँ कोहाणलजुएण अइरावइकरदीहरभुएण ।
ता तुरियइँ चंपणराहिवासु सहसत्ति पमेल्लिय सत्ति तासु । 5
रहु छिण्णिउ चिण्हद्धउ खणेण पुणु सारहि पाडिउ तुरिउ तेण ।
ता खेवेँ चंपणराहिवेण संपेसिय बाण तुरंतएण ।
सर पेसिय जा चंपाहिवेण करकंडहो बलु भग्गउ खणेण ।
घत्ता—करकंडएँ पेच्छिवि बलु चलिउ मणि रोसु महंतउ विप्फुरिउ ।
जा विज्ज पइण्णी खेयरइँ तहे पेसणु दिण्णउ तेँ तुरिउ ॥ १६ ॥ 10

१७

The havoc wrought by the Vidya until overpowered by Campā-king.

ताव तेण दुद्धरेण मुक्क विज्ज मच्छरेण ।
ता खणेण विज्ज धिट्ठ धाविया तुरंत दिट्ठ[1] ।
फे करंति हुं करंति वाउवेय संचरंति
रक्खसी व वावरंति भासुरा वि खे मिलंति ।
कुंभिकुंभ णिद्दलंति रहवरेण[2] रह दलंति । 5
संगरम्मि जे वि दिट्ठ दंसणेण ताहे णट्ठ ।
के वि मुच्छमोहियाइँ के वि जोह[3] जोहियाइँ ।
के वि घायखंडियाइँ के वि जीव छंडियाइँ ।
घत्ता—ता कुवियइँ चंपणरेसरइँ तुरिएण वि असिलय करे धरिय ।
जा विज्ज गिलंती णरसयइँ बलसत्ति खणद्धेँ तहे हरिय ॥ १७ ॥ 10

१८

Karakaṇḍa takes up his bow in wrath.

गय विज्ज तट्टीय करकंडेँ दिट्ठीय ।
रोसं वहंतेण करे धणुहु[1] किउ तेण ।
तहो चप्पे गुणु दिण्णु तं पेक्खि जणु खिण्णु ।
ता गयणे गुणसेव खोहं गया देव ।
टंकारसद्देण घोरेँ[2] रउद्देण । 5
धरणियलु तडयडिउ तस[3] कुम्मु कडयडिउ ।
भुवणयलु खलभलिउ गिरिपवरु टलटलिउ ।
मयरहरु झलझलिउ धरणिंदु सलवलिउ ।
खगणाहु परिसरिउ सुरराउ थरहरिउ ।
घत्ता—सो सद्दु सुणेविणु धणुगुणहो[4] रह भग्गा णट्ठा गयपवर । 10
मउगलियउ चंपणराहिवहो भयभीय ण चल्लहिँ कहिँ खयरं[5] ॥ १८ ॥

---

१७. १ N S दुट्ठ. २ J N S में यह चरण छूटा है, तथा D में वह हाँसियेमें जोड़ा गया है. ३ J जीय.

१८. १ J का पत्र १९ अप्राप्त होनेसे इस कडवकके 'हु किउ तेण' से लेकर कडवक १९, २० और २१ की प्रथम ८ पंक्तियाँ नहीं मिलीं. २ S J घोरेण. ३ N तसु. ४ D धणुहरहो. ५ S J 'कहिं खयर'के स्थानमें 'खेयर'.

बाणावलिसे आच्छादित हो गया। तब क्रोधानल युक्त होकर, ऐरावतकी सूँड़के समान दीर्घ भुजशाली करकण्डने तुरन्त चम्पा-नराधिपपर शक्तिके साथ अपनी शक्ति छोड़ी। उसने एक क्षणमें चिह्नध्वज-सहित रथको छिन्न कर डाला, और फिर तुरन्त ही सारथीको धराशायी किया। तब शीघ्र ही चम्पाधिपने जल्दी-जल्दी बाण प्रेषित किये। जब चम्पाधिपने बाण छोड़े, तब एक क्षणमें करकण्डका सैन्य भाग उठा। करकण्डने जब अपने बलको चलायमान देखा तब उसके मनमें महान् रोष बिस्फुरित हुआ, और जो विद्या उसे खेचरने दी थी उसे तुरन्त प्रेषण दिया। ५

१७—करकण्डकी खेचरी विद्याका प्रभाव

तब उस दुर्द्धर राजा करकण्डने मात्सर्यसे विद्या छोड़ी। वह ढीठ विद्या एक क्षणमें तुरन्त दौड़ती हुई दिखायी दी। वह विद्या फें करती, हूँ करती, वायुवेगसे सञ्चार करती एवं राक्षसीके समान व्यापार करती तथा चमकती हुई आकाशमें मिल जाती। हाथियोंके कुम्भस्थलोंका निर्दलन करती। एक रथसे दूसरे रथको टकराकर चूर्ण करती। संग्राममें जिनकी ओर उसने देखा वे उसके दर्शनमात्रसे नष्ट हुए। कोई मूर्च्छासे मोहित हो गये। कितने ही योधा जूझ गये। कोई घातसे खण्डित हो गये और कितने ही जीवनसे छूट गये। तब चम्पानरेशने कुपित होकर तुरन्त ही खड्गलता हाथमें धारण की और जो विद्या सैकड़ों नरोंको निगल रही थी, उसकी बल-शक्तिको क्षणार्द्धमें हर लिया। ५

१८—करकण्डकी भीषण धनुष-टंकार

करकण्डने देखा कि उसकी विद्या चली गयी। तब उसने रोष धारण करके, अपने हाथमें धनुष लिया और उसकी चापपर प्रत्यञ्चा चढ़ायी। इसे देख लोग खिन्न हो उठे। उसी समय गगनमें गुणसेवी देव क्षोभको प्राप्त हुए। धनुषके घोर व रुद्र टङ्कार शब्दसे धरणीतल तड़तड़ाया। उसके नीचेका कूर्म कड़कड़ाया, भुवनतल खलभलाया। प्रवर गिरि टलटलाया। सागर झलझलाया और धरणीन्द्र सलबलाया। खगनाथ खिसक गया और सुरराज थर्रा उठा। धनुषकी प्रत्यञ्चाके उस शब्दको सुनकर रथ (के घोड़े) भाग उठे, गजप्रवर नष्ट हुए, चम्प-नराधिपका मद गलित हुआ तथा भयभीत खेचर निश्चल हो गये। ५

१९

Karakanda's mother appears on the scene.

सुरलोयहँ छुडु हियवउ विभिण्णु छुडु परबलु भयभीयउ णिसण्णु ।
संवद्धउ छुडु वइसाहथाणु[1] छुडु भग्गउ चंपणरिंदमाणु ।
छुडु चाउ खणद्धें सज्जियाउ छुडु सेयजलें गुणु मज्जियाउ ।
करकंडें गुणे किउ बाणु पवरु चंपाहिवेण ता मुक्कु अवरु ।
हुउ बाणु णिरत्थउ सो हु जाव पोमावइ संगरे पत्त ताव । 5
सा दिट्ठिय तेण णरेसरेण पुणु [2]पणमिय दूरहो णयसिरेण ।
हे माए माए संगरे असज्झे किं आइय तुहुँ भडनियरमज्झे ।
सा भणइ पुत्त संवरहि चाउ एहु धाडीवाहणु तुज्झ ताउ ।
घत्ता—कहि माए महासइ गुणणिलउ किमु ताउ महारउ णिउ हवइ ।
ता ताइँ तुरंतइँ तहो कहिउ सुणि पुत्त महाबल धरणिवइ ॥ १९ ॥ 10

२०

Padmavatı recalls the incidents connected with his birth.

चंपाउरिरायहो घरे रमणी हउँ [1]होंती जणवयमणदमणी ।
संजायउ जइयहुँ गब्भे तुहुँ उप्पण्णउ तइयहुँ दुक्खु महुँ ।
हउँ हरिवि णीय ता करिवरा[2]इँ दंतोपुरि बाहिरि दुद्धराइँ ।
तहिँ जायउ भीममसाणि तुहुँ पइँ पेक्खिवि जायउ मज्झु सुहु ।
करकंडु णरेसरु एक्कु खणु तं सुणिवि वयणु थिउ विमणमणु । 5
णियपुत्तहो अक्खिवि चत्तभया पुणु तुरियउ कंतहो पासे गया ।
सा दिट्ठिय चंपणरेसरेण गंगाणइ णं रयणायरेण ।
जाणंतें एह पोमावइया तो वि तेण सहावें सा णमिया[3] ।
अह [4]गरुवउ जो वयभरु धरेइ तें राणउ कंतहे थुइ करेइ ।
घत्ता—परिपुच्छिय चंपणराहिवइँ कह छुट्टिय तुहुँ तहो गयवरहो । 10
ता कहियउ ताइँ तुरंतियएँ णिव गयएँ पमुक्की तडे सरहो ॥ २० ॥

२१

The battle field becomes a scene of family embraces.

तहो पासे मसाणएँ महो सुयउ कुलमंडणु णंदणु सो हुयउ ।
परिपालिउ केण वि खेयराइँ वउ लइयउ तहिँ मइँ[1] णिव भराइँ ।
दंतीपुरिराणउ ता मुयउ तहिँ णयरे णराहिउ सो कियउ ।
सो जाणहि एवहिँ तुह भिडिउ तुहुँ कोहपिसाएँ परिणडिउ ।
मा मुज्झहि छंडहि एहु गहु[2] णिव णंदणु तेरउ एहु पहु[3] । 5
तं वयणु सुणिवि चंपाहिवइ संतुट्ठउ तक्खणे सो हियइँ ।
हउँ धण्णउ जसु एहउ सुयउ जो संगरे धीरउ दिढभुयउ ।
परिछंडिवि [4]धणुहरु गलियसरु करकंडपासु[5] गउ णिवपवरु ।

---

१९ १ N वइराह ठाणु. २ N पणविय लहु पहु णियसरेण.

२० १ N हुंतिय. २ D J S °रइं. ३ N णविया. ४ D J S गरुयउ जो वयभारु धरइ.

२१ १ N सइं. २ N गाहु. ३ N जाहु. ४ N धणु गंभीरसरु. ५ N करकंड पयासिउ णिउ पवरु.

१९—समराङ्गणमें पद्मावती माता

तुरन्त ही सुर लोगोंका हृदय भिन्न हो गया और शत्रुबल भयभीत होकर सन्न रह गया। उसी क्षण करकण्डने वैशाख स्थान साधा (शरसन्धान मुद्रा धारण की) जिससे तुरन्त ही चम्पा नरेन्द्रका मान भङ्ग हो गया। उसी समय क्षणार्द्धमें चापको सजाया और पसीनेके जलसे प्रत्यञ्चा को माँजा। करकण्डने ज्योंही इधर प्रचण्ड बाणको प्रत्यञ्चापर किया, तभी उधर चम्पाधिपने दूसरा बाण छोड़ा। ज्योंही वह बाण निरर्थक हुआ, त्योंही समरमें पद्मावती आ पहुँची। करकण्ड ५ नरेश्वरने उसे देखा और दूरसे ही सिर नवाकर प्रणाम किया। वह बोला—"हे माता, माता, इस असाध्य संग्राममें, भटसमूहके मध्य, तू क्यों आई?" वह बोली—"हे पुत्र, चाप रोको; यह धाडीवाहन तुम्हारा पिता है। करकण्डने पूछा--"हे महासती माता, कहो तो, यह गुणनिलय नृप मेरा पिता कैसे होता है?" तब उसने तुरन्त उससे कहा—"हे महाबली धरणीपति पुत्र, सुनो"

२०—पद्मावतीने पिता-पुत्रकी पहचान करायी

मैं चम्पापुरीके राजाके घरमें उनकी रमणी थी। समस्त देशके लोगोंका मन मुझसे प्रसन्न था। ज्योंही तू गर्भमें आया, त्योंही मुझे एक दुःख उत्पन्न हुआ। मुझे एक बड़ा दुर्द्धर हाथी हरकर दन्तीपुरके बाहर ले गया। वहाँ भीम श्मशानमें तू उत्पन्न हुआ। तुझे देखकर मुझे सुख हुआ। करकण्ड नरेश्वर उस वचनको सुनकर एक क्षणके लिए मनमें विस्मित होकर रह गया। उधर पद्मावती अपने पुत्रसे उक्त प्रकार कहकर, भय छोड़, तुरन्त अपने कान्तके पास गयी। ५ उसे चम्पा नरेशने देखा, जैसे रत्नाकर गङ्गानदीको देखे। यह जानकर भी कि पद्मावती है, उसने उसे स्वभावतः नमन किया। वह जो गौरवशाली व्रतोंका भार धारण किये हुए थी, इससे राजाने अपनी कान्ताकी स्तुति की। फिर चम्पनराधिपने उससे पूछा कि तू उस गजवरसे छूटी कैसे? तब उसने तुरन्त कहा—"हे राजन्, गजसे मुझे सरोवरके तटपर मुक्ति मिली।"

२१—पिता-पुत्र सम्मेलन

"उसीके पास श्मशानमें मुझे प्रसूति हुई और वह कुलमण्डन नन्दन उत्पन्न हुआ। किसी एक खेचरने उसे पाला। मैंने वहीं हृदयके भारसे व्रत ले लिया। फिर दन्तीपुरके राजाकी मृत्यु हुई और मेरे उसी पुत्रको नगरका राजा बनाया गया। जान लीजिए, वही पुत्र इस प्रकार तुमसे आ भिड़ा है। तुम क्रोधरूपी पिशाचसे विडम्बित हुए हो। मूढ़ मत होइए। इस आग्रहको छोड़िए। हे नृप, यह तेरा ही प्रभावशाली पुत्र है।" उस वचनको सुन करचम्पाधिप तत्क्षण हृदयसे ५ सन्तुष्ट हुआ और बोला—"मैं धन्य हूँ जिसका ऐसा पुत्र हो, जो दृढ़ भुजाशाली और संग्राममें धीर हो। उस प्रवर राजाने अपने धनुषको छोड़ा, बाणको नीचे गिरा दिया और करकण्डके पास गया

घत्ता—पुणु जाइवि धाडीवाहणइँ आलिंगिउ णंदणु सो खणिण ।
जह संगरे जाइवि तेयणिहि पज्जुण्णु कुमरु[६] दामोयरिण ॥ २१ ॥ 10

२२

Karakanda is Crowned king of Campā and his father retires for penances.

करकंडइँ वुत्तउ णियजणणु पइँ सरिसउ जं मइँ कियउ रणु ।
मा गिण्हहि मेरउ देव छलु तं खमहि भडारा महो सयलु ।
तं सुणिवि वयणु चंपाहिवइँ उल्लसियउ तक्खणे सो हियइँ ।
गउ लेविणु णयरहो सहुँ णिवेहिँ पइसारिउ णाणाउच्छवेहिँ ।
सा णयरी करकंडें सहेइ अमराउरि लज्जा तहो वहेइ । 5
णर रयणइँ लेविणु साणुराय णिवमंदिरे वद्धावणहुँ आय ।
ता दुद्धररायहँ जो घरट्टु[१] करकंडहो बद्धउ रायपट्टु ।
पुणु अप्पुणु राएँ तक्खणेण तणु मंडिउ तवसिरिभूसणेण ।
कम्मट्ठगंठिणिट्ठवणसारु तउ चरिवि सुदुद्धरु काममारु ।
तणु छंडिवि खंडिवि हिययगंठि सो लग्गउ सिववहुतणएँ कंठि । 10

घत्ता—गउ धाडीवाहणु सिवणिलउ कणयामरवण्णउ गुणहँ घरु ।
करकंडु करंतउ रज्जु पुरि सो अच्छइ माणिणिहिययहरु ॥ २२ ॥

इय करकंडमहारायचरिए मुणिकणयामरविरइए भव्वयणकण्णावयंसे पंचकल्लाणविहाण-कप्पतरुफलसंपत्ते करकंडचंपापुरिपवेसो णाम तइउ परिच्छेउ समत्तो ।

॥ संधि ॥ ३ ॥

---

६ में 'कुमरु'के स्थानमें 'णाइ'

२२. १ N मरट्टु.

वहाँ जाकर धाडीवाहनने उसी क्षण अपने पुत्रका आलिङ्गन किया, जिस प्रकार कि संग्राममें जाकर दामोदरने तेजनिधि प्रद्युम्नकुमारका आलिंगन किया था।

२२—करकण्ड चम्पामें सिंहासनारूढ़

करकण्डने अपने पितासे कहा—"आपके साथ मैंने रण किया, इसे हे देव, मेरा (अपराध) मत ग्रहण कीजिए। उस मेरे समस्त अपराध को, हे भट्टारक, क्षमा कीजिए।" इस वचनको सुनकर वह चम्पाधिप तत्क्षण हृदयमें उल्लसित हो उठा। वह उसे लेकर अन्य राजाओं-सहित नगरको गया और नाना उत्सवोंसे उसका प्रवेश कराया। करकण्डके द्वारा वह नगरी ऐसी शोभायमान हुई कि अमरपुरी भी उससे लज्जित हो गयी। लोग रत्न लेकर अनुराग-सहित राज- ५ महलमें बधाईके लिए आये। फिर दुर्द्धर राजाओंको पीसनेके लिए घरट्टके समान राजपट्ट करकण्ड को बाँधा गया, और राजाने उसी क्षण अपने शरीरको तपश्रीरूपी भूषणसे मण्डित किया। राजा अष्टकर्म रूपी ग्रन्थिका नाश करनेमें समर्थ, काम-विनाशक सुदुर्द्धर तपश्चरण करके, शरीरको छोड़कर, हृदयकी गाँठको खण्डित कर, शिवरूपी वधूके कण्ठसे जा लगे। गुणोंके घर धाडीवाहन कनक व अमरवर्ण शिवनिलयको गये, और यहाँ नगरीमें मानिनियोंके हृदयहारी करकण्ड चम्पापुरी १० में राज्य करते हुए रहने लगे।

इति मुनि कनकामर विरचित भव्यजनकर्णावतंस पञ्चकल्याणविधान कल्पतरु फल सम्पन्न करकण्ड महाराज चरित्रमें करकण्डका चम्पापुरी-प्रवेश नामक तृतीय परिच्छेद समाप्त।

संधि–४

१

Karakanda's resolve to subdue the kings of the South.

ध्रुवकं—करकंडइँ साहिवि महि सयल परिपुच्छिउ मइवरु विमलमइ।
भणु सम्मइ मइवर को वि णरु जो अज्जु वि दुट्ठउ ण वि णवइ॥

सो मइवरु पभणइ देवदेव तुह महियलु सयलु वि करइ सेव।
परि[1] दिविडदेसे णिव अत्थि धिट्ठ ते णमहिँ ण कासु वि हियइँ दुट्ठ।
सिरि चोडि पंडि णामेण चेर णउ करहिँ तुहारी देव केर। 5
आयण्णिवि तं चंपाहिवेण संपेसिउ दूवउ तहो खणेण।
तेँ जाइवि ते चोडाइराय इउ भणिय णवहु करकंडपाय।
णिब्भत्थिउ दूवउ तेहिँ सो वि जिणु मेल्लिवि अण्णु ण णवहुँ को वि।
करकंडहो आइवि कहिउ तेण णउ करहिँ सेव तुह किं परेण।
तं सुणिवि वयणु करकंडु राउ जइ देमि ण तहो सिरि णिययपाउ। 10
तो महियलपुत्तइंदियसुहासु महो अत्थि णिवित्ति परिग्गहासु।
इह पइज[2] करवि करकंडएण लहु दिण्णु पयाणउ कुद्धएण।

घत्ता—चंपाहिउ चल्लिउ तहो उवरि गय चडिवि विणिग्गउ पुरवरहो।
चउरंगइँ सेण्णइँ संजुयउ सो लीला धरइ सुरेसरहो॥ १॥

२

His march and camp at Terapur.

तहो जंतहो महि हयखुरहिँ भिण्ण गयणंगणि गय रय धूमवण्ण।
पसरंतहिँ तेहिँ दिगाणणाहँ णं मुहवडु किउ दिसिवारणाहँ।
महि हल्लिय चल्लिय गिरिवरिंद कंपंत पणट्ठा खे सुरिंद।
दक्खिणवहे गउ तेरापुरम्मि तहो दक्खिणदिसिहिँ महावणम्मि।
आवासिउ तहिँ बलु चाउरंगु खणे सीहपुलिंदहँ हुयउ भंगु। 5
संताडिय दूसय पंचवण्ण णं अमरगेह भूमिहिँ पवण्ण।
गय करिवर लेविणु जलहो मेट्ठ रासहियहिँ धाविय खर पहिट्ठ।
लोलाविय [1]धय णिवणरवरेहिँ महि णवइ णं उब्भियकरेहिँ।

घत्ता—आवासिउ अच्छइ [2]जाव तहिँ करकंडणराहिउ [3]पउरबलु।
पडिहारु प[4]राइउ तहो पुरउ दूराउ णमंतउ हरियमलु॥ २॥ 10

---

१. १ N पर. २ S पयज.

२. १ D J N गय, २ J जाम, ३ N पवर°. ४ J परायउ.

सन्धि—४

१—करकण्डकी द्रविड़ देशको जीतनेकी प्रतिज्ञा

करकण्डने समस्त पृथ्वीको वशीभूत करके विमलमति मन्त्रिवरसे पूछा, "हे सन्मति मन्त्रि-वर, कहो, क्या कोई आज भी ऐसा दुष्ट मनुष्य है जो मुझे नमन न करता हो ?" तब उस मन्त्रि-वरने कहा—"हे देव देव, आपकी समस्त ही महीतल सेवा करता है। परन्तु द्रविड़ देशमें ऐसे ढीठ नृप हैं जो किसीको नमन नहीं करते। वे हृदयसे बड़े दुष्ट हैं। श्री चोड, पाण्ड्य और चेर नामके राजा, हे देव, आपकी सेवा नहीं करते।" यह सुनकर चम्पाधिपने उनके पास उसी क्षण ५ एक दूतको प्रेषित किया। उसने जाकर उन चोड आदि राजाओंसे कहा कि आप करकण्डके चरणोंको नमन कीजिए। किन्तु उन्होंने उस दूतको बहुत डाँटा-फटकारा और कहा—"जिनेन्द्रको छोड़कर हम अन्य किसीको नमन नहीं करते।" उस दूतने आकर करकण्डसे कहा—"वे आपकी सेवा नहीं करेंगे, बहुत कहनेसे क्या ?" इस वचनको सुनकर करकण्ड राजाने प्रतिज्ञा की कि 'यदि मैं उन राजाओंके सिरपर अपना पाँव न दूँ, तो महीतल, पुत्र, इन्द्रियसुखों एवं परिग्रहोंसे मेरी १० निवृत्ति है' (अर्थात् मैं इन सबका त्याग कर दूँगा)। यह प्रतिज्ञा करके करकण्डने क्रुद्ध होकर शीघ्र प्रयाण कर दिया। चम्पाधिप उस देशपर चढ़ाई करने चल पड़ा। वह एक हाथीपर चढ़कर राजधानीसे निकला। अपनी चतुरङ्गिणी सेनासे संयुक्त होकर वह सुरेश्वरकी शोभाको धारण करने लगा।

२—करकण्डका चतुरङ्गिणी सेनासहित प्रयाण

करकण्डकी यात्रासे पृथ्वी घोड़ोंके खुरोंसे भिद गयी और धूमवर्ण रज गगनाङ्गणमें उड़ने लगी। उस धूलिने दिशाओंमें प्रसारकर मानो दिग्गजोंके मुखोंपर पट डाल दिया। मही हिल पड़ी, बड़े-बड़े पर्वत चलायमान हो गये और सुरेन्द्र आकाशमें कम्पित हुए भागे। दक्षिणापथ पर चलते हुए करकण्ड तेरापुरमें पहुँचा। वहाँ नगरकी दक्षिण दिशामें महावनके बीच चतुरङ्गिणी सेना का डेरा डाला गया। क्षणमात्रमें वहाँके सिंहों और पुलिन्दोंकी भगदड़ मच गयी। पचरङ्गे तम्बू ५ ठोंक दिये गये, मानो देवोंके विमान भूमिपर उतर आये हों। महावत हाथियोंको लेकर जलाशयको गये, और गधे प्रहृष्ट होकर गधियोंकी ओर दौड़े। राजपुरुषोंने ध्वजाएँ फहरा दीं, मानो मही ऊँचे हाथ करके नाचने लगी हो। इस प्रकार जब करकण्ड नरेश अपनी विशाल सेनासहित वहाँ डेरा डाले बैठे थे, तब उनके सम्मुख प्रतीहार आया और दूरसे ही उसने विशुद्धभावसे नमन किया।

३

Śiva, the king of Terapur, visits Karakaṇḍa.

णिउ अत्थि देव तेरापुरम्मि सिउ णामें रूढउ भूवलम्मि ।
सो तुम्हहँ पेक्खहुँ एत्थु आउ किं आवइ किं सो वलिवि जाउ ।
करकंडें वयणु सुणेवि तासु पडिहारु भणिउ तेराहिवासु ।
[1]पइसारु खणद्धें तासु देहि तुहुँ अप्पुणु जाएवि लेवि एहि ।
पडिहारें सो णिउ आणिओ वि करकंडएँ पुणु सम्माणिओ वि । 5
पुणु तेण पपुच्छिउ करिवि वाल तुह कुसलु णरेसर सयलकाल ।
तें भणिउ णरेसर कुसलु मज्झु जं सिंचिउ करुणजलेण तुज्झु ।
तहो वयणें करकंडहो णिवासु तहो उवरि पवड्ढिउ णेहु तासु ।
अइपवरु पइण्णउ पुणु पसाउ किउ दाणइँ वयणइँ साणुराउ ।
घत्ता—पुणु पुच्छिउ सिउ करकंडएण महो भाइय अक्खु पयत्तएण 10
जं दिट्ठउ किं पि मणोहरउ अच्छरिउ वणम्मि भमंतएण ॥ ३ ॥

४

Karakaṇḍa, guided by Śiva, explores the locality.

तं वयणु सुणिवि तेराहिवेण करकंडहो अक्खिउ पुणु सिवेण[1] ।
[2]एत्थत्थि देव पच्छिमदिसाहिँ अइणियडउ पव्वउ रम्मु ताहिँ ।
तहिँ अत्थि लयणु णयणावहारि थम्हाण सहासहिँ जं पि धारि ।
तहो लयणहो उप्परि गिरिवरम्मि चूडामणि णं मउडहो सिरम्मि ।
गुरु वामिउ अच्छइ सोहमाणु केणावि ण कलियउ जासु माणु । 5
जलु पउमइँ लेविणु तहिँ पवण्णु तं पुज्जइ करिवरु सेयवण्णु ।
एम अच्छइ सो करि बहुअकाल एउ कहियउ मइँ तुहुँ सामिसाल ।
आयण्णिवि तं करकंडु राउ गउ पव्वयसम्मुहुँ सिवसहाउ ।
घत्ता—महिमहिलहे थणु व मणोहरउ कीलाघरु देवहँ जो भरेण ।
करकंडइँ सो गिरि दिट्ठु खणे कइलासु णाइँ भरहेसरेण ॥ ४ ॥ 10

५

Discovery of an old cave-temple.

करिकुंभ वियारिवि जहिँ भमंति मुत्ताहल चरणहिँ हरि मुअंति ।
रुंजंति सीह कत्थइँ सहंति जहिँ मयजलु मयगल णउ बहंति ।
सारंग णिरंतरु जहिँ चरंति साहामय कत्थइँ बुक्करंति ।
परिभमहिँ कहिँ मि दाढाकराल हरिसम्मुह दिंतहो ढुक्क कोल ।
थोवंतरि तहिँ सो चडइ जाम करकंडइँ दिट्ठउ लयणु ताम । 5
णं हरिणा अमरविमाणु दिट्ठु करकंडु णराहिउ तहिँ पइट्ठु ।
सो धण्णु सलक्खणु हरियदंभु जें लयणु कराविउ सहसखंभु ।
पुणु दिट्ठउ तें जिणु वीयराउ संथुणणहिँ लग्गउ साणुराउ ।
घत्ता—जय चउगइणासण मलहरण जय माणगिरिंदहो दलणपवि ।
महो देव णिरंजण तुहुँ सरणु अण्णाणतिमिरपरिहरणरवि ॥ ५ ॥ 10

---

३. १ D पयसारु.
४. १ S J वि तेण. २ S N अत्थत्थि.

३—तेरापुरके राजाकी भेंट

प्रतीहार बोला—"हे देव ! तेरापुरमें एक राजा है जो शिव नामसे भूमण्डलमें प्रसिद्ध है। वह आपके दर्शनके लिए यहाँ आया है; वह क्या आवे या लौटकर चला जाये ?" करकण्डने उसका वचन सुनकर प्रतिहारीसे कहा—"तेराधीशको क्षणार्द्धमें प्रवेश दे। तू स्वयं जाकर उन्हें लेकर आ।" प्रतीहार उस राजाको ले आया और करकण्डने उसका सम्मान किया। शिष्टाचार करनेके पश्चात् फिर उसने पूछा—"हे नरेश्वर, आपकी सदाकाल कुशल तो है ?" उसने उत्तर दिया—"हे नरेश्वर, मेरी कुशल ही है, जो मैं आपके करुणारूपी जलसे सींचा गया।" उसके वचनसे करकण्ड राजाका उसके ऊपर स्नेह बढ़ गया। उन्होंने उसपर अपनी खूब प्रसन्नता दिखायी और दानसे व वचनोंसे उसे सानुराग किया। फिर करकण्डने शिव राजासे पूछा—"हे मेरे भाई, प्रतीतिपूर्वक कहो तो, क्या तुमने वनमें भ्रमण करते हुए कोई मनोहर आश्चर्य देखा है ?" ५

४—तेराधीश-द्वारा पर्वतपर सहस्रस्तम्भ गुफा व पूज्य वामीका समाचार

उस वचनको सुनकर तेराधिप शिवने फिर करकण्डसे कहा—"हे देव, यहाँसे पश्चिम दिशामें अति निकट एक रम्य पर्वत है। वहाँ एक नयनाकर्षक लयण (गुफामन्दिर) है, जो सहस्रों स्तम्भोंके आधारसे बनी है। उस लयणके ऊपर पर्वतपर, सिरपर मुकुटके चूड़ामणिके समान एक बड़ी सुन्दर वामी है, जिसका प्रमाण किसीने भी नहीं जाना। वहाँ जल और कमल लेकर एक श्वेतवर्ण हाथी आकर उसकी पूजा करता है। इस प्रकार वह हाथी बहुत कालसे रह रहा है। हे स्वामिसार, मैंने तुम्हें यह बात कह दी।" इसे सुनकर करकण्ड राजा शिवके साथ उस पर्वतके सम्मुख गया। महीरूपी महिलाके स्तनके समान मनोहर जो देवोंका एक बड़ा क्रीड़ागृह था, उस पर्वतको करकण्डने उसी क्षण देखा, जैसे भरतेश्वरने कैलासके दर्शन किये थे। ५

५—भीषण वन तथा लयणका दर्शन

जहाँ हाथियोंके कुम्भस्थलोंको विदीर्ण कर सिंह घूमते हैं और अपने चरणोंमें-से मुक्ताफल बिखराते हैं। कहीं सिंह दहाड़ते हुए सोहते हैं, जिससे वहाँ हाथी मदजल नहीं झराते। जहाँ निरन्तर सारंग चरते हैं व कहीं बन्दर बुपू-बुपू कर रहे हैं। कहीं विकराल दाढ़ोंवाले कोल (वराह) केहरीके सम्मुख ढोक देते हुए परिभ्रमण कर रहे हैं। वहाँ थोड़े ऊपर चढ़नेपर करकण्डने उस लयणको देखा, जैसे देवेन्द्र देव विमान को देखे। करकण्ड नराधिपने वहाँ प्रवेश किया। धन्य है वह सुलक्षण, दम्भरहित भव्यपुरुष जिसने उस सहस्र स्तम्भ लयणको बनवाया। फिर उसने वीतराग जिनेन्द्रके दर्शन किये और भक्तिसहित स्तवन करने लगा—"जय, चतुर्गतिनाशक, मलहरण; जय मानगिरीन्द्रके विदारक वज्र; हे निरञ्जन, अज्ञानरूपी तिमिरके परिहारक रवि; हे देव, तू ही मेरे लिए शरण है।" ५

६

An elephant is found worshipping an ant-hill.

जिणेसरु वंदिवि पत्थिव बे वि गिरिंदहो उप्परि सिग्घ चडेवि ।
णिहालिय तेहिँ दिसाहँ मुहाइँ मणम्मि णिवाहहँ जाइँ सुहाइँ ।
णिहालिय अच्छहिँ जाव वणम्मि सुवारणु पत्तउ ताव खणम्मि ।
सरोवरे पोमइँ लेवि करिंदु समायउ पव्वउ णाइँ समुद्दु ।
झलाझल कण्णरएण सरंतु [1]कवोलचुएण मएण झरंतु । 5
सुपिंगललोयणु दंतहिँ संसु चडावियचावसमुण्णयवंसु ।
दुरेहकुलाइँ सुदूरे करंतु दिसामुह सुंडजलेण भरंतु ।
करेण सरोयसयाइँ हरंतु सुमोत्तियदाम सिरेण धरंतु ।
घत्ता—तेँ करिणा लेविणु पंकयइँ करु भरेवि जलेण तुरंतएण ।
परिदक्खिण देविणु सिंचियउ तेँ पूजिउ वामिउ भवियएण ॥ ६ ॥ 10

७

Karakaṇḍa sees the lake and examines the ant-hill.

गउ वामिउ पूजिवि करि सुराउ ता गयउ सरहो करकंडु राउ ।
आवंतहो तहो अइदिहि जणंतु खगरावइँ आवहु णं भणंतु ।
जलकुंभिकुंभकुंभइँ धरंतु तण्हाउरजीवहँ सुहु करंतु ।
उद्दंडणलिणिउण्णइ वहंतु उच्छल्लियमीणहिँ मणु कहंतु ।
डिंडीरपिंडरयणहिँ हसंतु अइणिम्मलपउरगुणेहिँ जंतु । 5
पच्छण्णउ वियसियपंकएहिँ णच्चंतउ विविहविहंगएहिँ ।
गायंतउ भमरावलिरवेण धावंतउ पवणाहयजलेण ।
णं सुयणु सुहावउ णयणइट्ठु जलभरिउ सरोवरु तेहिँ दिट्ठु ।
घत्ता—जलु लेविणु दोहिँ वि णिववरहिँ पय धोइवि मुहुँ पक्खालियउ ।
जं पुज्जउ करिणा पंकयहिँ तं वामिउ तेहिँ णिहालियउ ॥ ७ ॥ 10

८

The ant-hill is excavatid.

करकंडेँ चिंतिउ मणि मणोज्जु [1]एउ वामिउ णिच्छउ वंदणिज्जु ।
इह अच्छइ को वि महंतु देउ परिपूजिवि करि गउ तेँ सुवेउ ।
जँ वामिउ पुज्जइ करि पसण्णु तेँ धम्मेँ हुउ णं सेयवण्णु ।
मणि चिंतिवि इउ सो साणुराउ उववासइँ थिउ करकंडराउ ।
अण्णहिँ दिणि वामिउ तं पि तेण [2]खाणाविउ करकंडेँ खणेण । 5
तं समथलु तेहिँ खणेण कीउ णं पावपडलु णिण्णासु णीउ ।
थोवंतरु खणियउ[3] पुणु वि जाव मणिकिरणदित्ति णीसरिय ताव ।
घत्ता—ता मिलिय णहंगणे अइबहल चउदिसिहिँ भमेविणु णिम्मलिय ।
करकंडहो णावइ कित्ति बर अमराहिउ देखहुँ संचलिय ॥ ८ ॥

---

६. १ J में यह व आगे के ३ चरण छूटे हैं.

८. १ N में इससे पूर्व हाँसिये में जोड़ा गया है—'जं अच्छइ वामिए किं पि वत्थु तं पेक्खउं जइ ता महु पसत्थु. २ S खण्णाविउ. ३ S J खणियइं.

६—सरोवरमें हाथी कमल लेने आया

जिनेश्वरकी वन्दना करके और पर्वतके ऊपर शीघ्र चढ़कर उन दोनों राजाओंने चारों दिशाओंका अवलोकन किया जिससे उन राजाओंके मनमें सुख हुआ। जब वे वनमें देखते हुए खड़े थे, तब उसी क्षण वह सुन्दर हाथी वहाँ आया। सरोवरमें-से कमल लेनेके लिए आता हुआ वह करीन्द्र ऐसा प्रतीत होता था, जैसे मानो एक पर्वत समुद्रके पास आया हो। वह कानोंसे झलझल स्वर उत्पन्न कर रहा था और कपोलोंसे मद बहा रहा था। उसके लोचन खूब लाल वर्ण थे। ५ दाँतोंसे वह प्रशंसनीय था, तथा उसकी रीढ़ चढ़ाये हुए चापके समान उठी हुई थी। वह भौंरोंके पुञ्जोंको दूर हटाता जाता था और सूँडके जलसे दिशामुखोंको भर रहा था। वह सूँडसे सैकड़ों कमलोंको तोड़ रहा था और सिरपर मोतियोंकी माला धारण किये था (यहाँ मौक्तिक दाम छन्दका प्रयोग है)। उस हाथीने कमलोंको लेकर तथा अपनी सूँडको जलसे भरकर तुरन्त आकर वामीकी प्रदक्षिणा दी, जल सींचा और पूजा की। वह हाथी ऐसा भव्य था। १०

७—सरोवर-द्वारा राजाका स्वागत

भक्तिसहित वामीकी पूजा करके हाथी चला गया। तब करकण्ड राजा उस सरोवरके पास गया। उसे आते देख वह सरोवर मानो उसे विश्वास दिलानेके लिए पक्षियोंके कोलाहल द्वारा कह रहा था—'आइए।' वह जल हस्तियोंके कुम्भस्थलों-द्वारा कलश धारण किये था और तृष्णातुर जीवोंको सुख उत्पन्न करता था। वह उच्च-दण्ड कमलोंके द्वारा उन्नति वहन कर रहा था और उछलती मछलियों-द्वारा अपना उछलता मन प्रकट कर रहा था। फेन पिण्डरूपी दाँतोंको ५ प्रकट करता हुआ वह हँस रहा था, एवं अति निर्मल व प्रचुर गुणों-सहित चल रहा था। फूले हुए कमलों-द्वारा वह अपनी प्रसन्नता प्रकट कर रहा था और विविध विहंगोंके रूपमें नाच रहा था। भ्रमरावलीकी गुंजार-द्वारा वह गा रहा था और पवनसे प्रेरित जलके द्वारा दौड़ रहा था। इस प्रकार एक सुहावने व नयन-इष्ट सज्जनके समान उस जलसे भरे हुए सरोवरको उन्होंने देखा। जल लेकर दोनों राजाओंने अपने पैर धोये और मुखका प्रक्षालन किया। तत्पश्चात् उन्होंने उस १० वामीको देखा, जिसकी हाथीने कमलोंसे पूजा की थी।

८—वामीका खनन

करकण्डने मनमें विचारा—यह मनोज्ञ वामी निश्चय ही वन्दनीय है। यहाँ कोई महान् देव रहता है। इसीलिए वह हाथी इतने वेगसे आकर व पूजा करके गया है। चूँकि वह हाथी प्रसन्न होकर वामीकी पूजा करता है, इसी धर्मसे मानो वह श्वेत वर्ण हो गया है। इस प्रकार मनमें चिन्तन करके करकण्ड राजा उस दिन भक्तिसहित उपवास करके रहे। दूसरे दिन करकण्डने क्षणमात्रमें उस वामीको खनवाया। लोगोंने क्षणमात्रमें ही उसे समतल कर दिया, जैसे ५ मानो पापका पटल नाशको प्राप्त किया गया हो। जब थोड़ा और गहरा खोदा गया तब मणि-किरणोंकी दीप्ति निकल पड़ी। वह दीप्ति इतनी निर्मल और तेज थी कि चारों दिशाओंमें घूमकर आकाशमें जा मिली, मानो करकण्डकी उत्तम कीर्ति अमरेश्वरको देखने चली हो।

९

Discovery of a Jina image.

ते रहसेँ तरलिय खणहिँ जाव जिणबिंबु विणिग्गउ तेत्थु ताव ।
मणिरयणविणिम्मिउ फणकडप्पु छत्तायमाणु तहो सहइ सप्पु ।
दुंदुहि भामंडलु चमर वे वि सुहु जणहिँ सवणणयणाण ते वि ।
सिंहासणु वहुरयणहिँ जडीउ सुरराएँ णं अप्पणु[1] घडीउ ।
तं पयडउ किउ बाहिरे विहाइ महि भिंदिवि धम्महो पिंडु णाइँ । 5
ता अमरहिँ दुंदुहि णहे हईय घणकुसुमविट्ठि गयणहो पडीय ।
अइणिम्मल दिम्मुह सयल जाय संभूया परिमलसहिय वाय ।
गुणरयणणिहाणहो पत्थिवासु संपुण्ण मणोरह सयल तासु ।

घत्ता—अणुराएँ तहो कंटइयतणु पप्फुल्लिउ तोसेँ मुहकमलु ।
जलु लेवि सरोवरि जिणु ण्हविउ बहुकमलहिँ पुज्जिउ विगयमलु ॥९॥ 10

१०

Karakaṇḍa's hymn to the Jina.

वरभत्तिभारसण्णयसिरेण पारंभिय पुणु थुइ णिवववरेण ।
जय सुरतिरीडमणिलिहियपाय जय भुवणणयरपालणसुराय ।
जय कम्मविडविछिंदणकुठार जय चउगइसायरपरमतार ।
जय पावतिमिरफेडणदिणेस जय णिज्जियमयभडणिरवसेस ।
जय [1]रायभुवंगमदमणमंत जय मयण[2]इक्खुपीलणसुजंत । 5
जय केवलकिरणफुरंत संत जय रुंभियकम्मासववहंत ।
जय जय सिरिबहुकण्णावतंस जय भवियणमणसररायहंस ।
जय णिच्च णिरंजण कलविहीण जय सिवगइमहिलहे वयणे लीण ।

घत्ता—जय जय देव जिणिंद पहु पइँ झायइँ अणुदिणु णियमणिण[3] ।
तवँ दंसणे णयणइं अज्जु पुणु संजायइँ णिद्धइँ महो खणिण[4] । ॥ १० ॥ 10

११

The Jina image is carried into the cave.

[1]उच्चायिउ सो जिणु णिववरेण कइलासु णाइँ लंके[2]सरेण ।
विहिँ करहिँ धरिउ सिरउवरि भाइ गोवद्धणु हरिणा कलिउ णाइँ ।
तहिँ अवसरे देवहिँ कुसुमविट्ठि परिमेल्लिय तहो मणे भइय तुट्ठि ।
अमरेहिँ मि केहि मि धरिउ छत्तु घुसिणेण वि चच्चिउ किहिँ मि गत्तु ।
परिचालिय केहिँ मि चमर तार दुंदुहि अप्फालिय केहिँ फार । 5
के वि तंडउ णच्चहिँ साणुराय दूराउ णमहिँ के वि जिणहो पाय ।
जिह अमरहिँ ण्हाइवि मंदराउ घरु णियउ जिणेसरु मंदराउ ।
ए[3]याइँ विहि[4]हिँ तह गुणणिकेउ करकंडेँ णीयउ लयणु देउ ।

घत्ता—लियणे णिवेसिउ तेँ णिवेँण परिपुज्जिवि अच्चिवि चंदणिण[5] ।
अवलोइय पढमी पुणु पडिम अणुराउ वहंतेँ णियमणिण[6] ॥ ११ ॥ 10

९. १ JN अप्पुणु. २ SD किय.

१०. १ N काम. २ DN माण. ३ S मणेण. ४ N तउ. ५ N खणेण.

११. १ JDN उच्चायउ. २ N लंकेसुरेण. ३ S एयई. ४ DN णियेण. ५ S चंदणेण. ६ S मणेण.

९—वामीसे जिन-बिम्ब निकला

जब वे आवेगसे जल्दी-जल्दी खोदने लगे, तब वहाँ एक जिनबिम्ब निकला। मणिरत्न निर्मित फणावलीयुक्त सर्प उसपर छत्रके समान शोभायमान था। दुन्दुभि, भामण्डल और दो चमर ये भी श्रवण और नयनोंको सुख उत्पन्न कर रहे थे। सिंहासन बहुतसे रत्नोंसे जड़ा हुआ था, मानो सुरेन्द्रने उसे अपने हाथों गढ़ा हो। जब उस बिम्बको निकालकर बाहर किया, तब वह ऐसा भाया, जैसे मानो महीको भेदकर धर्मका पिण्ड ही निकल पड़ा हो। तब देवोंने आकाशमें दुन्दुभी बजायी और गगनसे घनी पुष्पवृष्टि हुई। समस्त दिशाओंके मुख अति निर्मल हो गये और सुगन्धयुक्त वायु चलने लगी। इस प्रकार उस गुणरत्नोंके निधान पार्थिवके सब मनोरथ पूरे हुए। अनुरागसे उसका शरीर रोमांचित और मुखकमल सन्तोषसे प्रफुल्लित हो गया। उसने सरोवरसे जल लेकर जिन भगवान्‌को स्नान कराया और मल-रहित हुए बिम्बकी बहुतसे कमलोंसे पूजा की। ५ १०

१०—जिनेन्द्रकी स्तुति

फिर उस नृपवरने उत्तम भक्तिके भारसे सिर झुकाकर स्तुति प्रारम्भ की—जय हो भगवन् आपकी, जिनके चरण देवोंके मुकुट-मणियोंसे घर्षित होते हैं और जो संसार-नगरके पालन करनेवाले उत्तम राजा हैं; जो कर्मरूपी वृक्षको काटनेवाले कुठार हैं और चतुर्गतिरूप सागरके परमतारक हैं। जय हो आपकी, जो पापान्धकारको नाश करनेवाले दिनेश हैं। हे भगवन्, आपने मदरूपी घटोंको पूर्णरूपसे जीत लिया है; आप रागरूपी भुजङ्गको दमन करनेके लिए मन्त्र तथा मदनरूपी इक्षुको पेरनेके लिए उत्तम यन्त्र हैं। आप केवलज्ञानकी किरणोंसे स्फुरायमान हैं तथा आपने कर्मके प्रवाहको अवरुद्ध कर डाला है। जय हो, भगवन् आपकी, जो जयश्री रूपी वधूके कर्णावतंस एवं भव्यजनोंके मनरूपी सरोवरके राजहंस हैं। जय हो, नित्य निरञ्जन, इन्द्रिय-विजयी, जय हो आपकी, जो शिवगतिरूपी महिलाके वदनमें लीन हैं। जय-जय, देव जिनेन्द्र प्रभु, आपका ध्यान अपने मनमें तो मैंने प्रतिदिन किया, किन्तु आज इस क्षण आपके दर्शनोंसे मेरे नेत्र भी सन्तुष्ट हो गये। ५ १०

११—करकण्ड जिनबिम्बको लयणमें ले आये

उस राजाने जिनबिम्बको उठाया, जैसे लंकेश्वरने कैलाशको उठाया था। दोनों हाथोंसे सिरके ऊपर रखा हुआ वह बिम्ब ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे मानो हरिने गोवर्द्धनको उठा लिया हो। उस अवसरपर देवोंने पुष्प-वृष्टि की, जिससे राजाके मनमें सन्तोष हुआ। किन्हीं देवोंने छत्र धारण किया और किन्हींने केशरसे गात्रका लेप किया। किन्हींने चमचमाते चमर चलाये और किन्हींने जोरसे दुन्दुभी बजायी। कोई अनुरागसे ताण्डव नृत्य करने लगे और कोई दूरसे ही जिनेन्द्रके चरणोंको नमन करने लगे। जिस प्रकार देव अभिषेक करके मन्दराग जिनेश्वरको मन्दर-पर्वतसे घर वापस लाये थे, उसी प्रकार करकण्ड राजा उन गुणनिकेत देवको लयणमें ले गये। राजाने जिन भगवान्‌को लयणमें प्रतिष्ठित कर दिया और फिर उनकी पूजा करके व चन्दनसे अर्चना करके अपने मनमें अनुराग धारण करते हुए पहली प्रतिमाका अवलोकन किया। ५

१२

Karakanda discovers a knot on the lion-seat of the first image and an sculptor explains to him its purpose.

ता तक्खणे तहो जिणे गइय दिट्ठि हरिवीढहो उप्परि दिट्ठि गंठि ।
णं फलिहसिलहे हरिमणि विहाइ उडुरायहो लग्गउ हरिणु णाइँ ।
सा पेक्खिवि मणे चिंतेइ राउ गंठीएँ हयउ जिणबिंबराउ ।
जो सयलकम्मफरिकरणकारि कोकाविउ सो तेँ सुत्तधारि ।
भो परममित्त अक्खहि पसत्थु तुहुँ जाणहि सयलु वि कम्मसत्थु । 5
परिपुच्छिउ बोल्लिवि अइपियाइँ जिणपडिमहे दीसइ गंठि काइँ ।
तं णिसुणिवि पभणइ पावहारि पडिमागयरूवअणेयकारि ।
जं पुच्छिउ देव मणोहिराउ तं अक्खमि तुम्हहँ दुहविराउ ।
घत्ता—जिणपडिम घडिय जइयहुँ णिवइ जलवाहिणि सिर तइयहो खणेण ।
मइँ णिसुअउ दिट्ठु परंपरएँ एह धरिय गंठि तेँ कारणेण ॥ १२ ॥ 10

१३

Karakanda desires to see the water-spring blocked by the knot.

ता भणइ णरेसरु परममित्त किम दीसइ जलवाहिणि विचित्त ।
तं सुणिवि भणइ भो ललियदेह णीसरइ कह व जइ देव एह ।
बहुरोय करइ जणवएँ पसत्थ जे सलिलु पियहिँ ते चिरु असत्थ ।
बहुदुक्खपरंपरभरिएँ आएँ इउ मण्णेवि किं पयडाइआएँ ।
ता राएँ भणियउ तं सुणेवि जलु धरमि मित्त लयणु वि चिणेवि । 5
कोऊहलु एउ दक्खालि तो वि पुणु सुत्तधारि पभणइ सुणेवि ।
जइ एह गंठि फेडेहुँ देव णीसरहुँ तुरिउ जलभरिए[1] केव ।
तं वयणु सुणंतेँ[2] णिववरेण दद्दुरउ कराविउ तक्खणेण ।
घत्ता—तं लयणु चिणिवि णिउणउ करिवि सणरालहिँ बहुविहपत्थरहिँ ।
सो राणउ सिलवइ दो वि जण जिणपडिमहे सम्मुहु संचरहिँ ॥ १३ ॥ 10

१४

The knot is scraped and water gushes forth.

जा राएँ[1] असुहाई गणिया सिलवइणा टंकिएँ सा हणिया ।
गुरुघायवडणेँ णिग्गय फुलिंग णं कोहवसइँ अहिजलणलिंग ।
तहे[2] गंठिहे वयणहो बहलफार ता णिग्गय तक्खणि सलिलधार ।
पढमउ भुंभुक्कइ णिग्गमेइ णं मेइणि भीएँ उव्वमेइ ।
णिग्गंती बाहिरि सा विहाइ महि भिंदिवि फणिवइघरिणि णाइँ । 5
परिसहइ सा वि भूमिहिँ मिलंति गंगाणइ णं खलखल खलंति
पसरंतिएँ ताएँ खणेण भव्वु तं भरियउ लयणु जलेण सव्वु ।
णं अमियकुंडु बहुरसजलेण णं धम्मसारु थिउ जलछलेण

१२. १ DN दीह. २ DN °गइ°.
१३. १ S G जलभरिय, DN जलभरिउ. २ प्रतिषु 'तुरंते'
१४. १ J असुहा. २ DN तहे वयणहो बहलइं देइ फार.

१२—सिंहासनपर गाँठ दिखायी दी

तब उस समय राजाकी दृष्टि जिनप्रतिमापर गयी और उन्हें सिंहासनके ऊपर एक गाँठ दिखायी दी, जैसे मानो स्फटिक शिलापर हरा मणि चमक रहा हो, अथवा जैसे चन्द्रमापर हरिण लगा हो। उस गाँठको देखकर राजाने सोचा कि इस गाँठसे जिनबिम्बकी शोभा नष्ट होती है। उन्होंने एक सूत्रधारको बुलवाया, जो सब प्रकारके निर्माण कार्यमें कुशल था। उन्होंने उससे अति प्रिय वचन बोलकर पूछा—"हे परममित्र! तुम समस्त उत्तम कर्मशास्त्र (वास्तुकला) को ५ भले प्रकार जानते हो, अतएव कहो तो कि जिनप्रतिमा (के सिंहासन) पर यह गाँठ क्यों दिखायी देती है?" यह सुनकर वह निष्पाप सूत्रधार, जिसने अनेक प्रतिमागत रूपोंका निर्माण किया था, बोला—"हे देव; आपने जो मनोहर बात पूछी, उसे मैं बताता हूँ, जिससे आपका दुःख दूर हो। हे नृपति, जब यह जिनप्रतिमा गढ़ी गयी थी, तभी यहाँ एक जलवाहिनी निकल पड़ी थी। उसी कारणसे (जलवाहिनीको रोकनेके लिए) यह गाँठ धर दी गयी है," ऐसा मैंने परम्परासे १० देखा-सुना है।

१३—राजाका जलवाहिनी-दर्शनके लिए कुतूहल

तब नरेश्वर बोला—"हे परममित्र, वह विचित्र जलवाहिनी मुझे कैसे दिखायी दे?" यह सुनकर सूत्रधार बोला—"हे ललित-देह देव, यदि किसी प्रकार वह जलवाहिनी निकल पड़ी, तो वह जनपदमें बहुतसे भीषण रोग उत्पन्न करेगी, जो उसका जल पीयेंगे वे चिरकालके लिए अस्वस्थ हो जावेंगे। यह समझकर यह जो बहुत दुःखोंकी परम्परासे भरी है उसे प्रकट करानेसे क्या लाभ?" यह सुनकर राजाने कहा—"हे मित्र, मैं जलको रुकवा दूँगा और लयणको भी चिनवा ५ दूँगा; किन्तु यह कौतूहल तो तू मुझे दिखला ही दे।" यह सुनकर सूत्रधार पुनः बोला—"हे देव, यदि मैं इस गाँठको फोड़ दूँ तो जल भर जानेपर मैं तुरन्त निकलूँगा कैसे?" इस वचनको सुनकर राजाने उसी क्षण एक दर्दुर (टीला) बनवाया। फिर उस लयणको टेढ़े-मेढ़े बहुत प्रकारके पत्थरों से निपुणतापूर्वक चिनवा कर वह राजा और शिलपति ये दोनों जन जिनप्रतिमाके सम्मुख गये।

१४—जलवाहिनी निकल पड़ी

जिस गाँठको राजाने अशोभनीय गिना था, उसे शिलपति (शिल्पी) ने टाँकीसे ठोका। भारी चोटें पड़नेसे चिनगारियाँ निकलने लगीं, मानो शेषनागके क्रोधवश जल उठनेके चिह्न हों। फिर उस गाँठके मुखसे शीघ्र ही एक बड़ी भारी जलकी धारा निकल पड़ी। पहले झुक-झुक करती हुई निकली, मानो मेदिनी भयसे वमन करने लगी हो। बाहर निकलती हुई वह जलधारा ऐसी प्रतीत हुई जैसे मानो पृथ्वीको भेद कर नागेन्द्रकी गृहिणी निकल पड़ी हो। भूमिमें मिलकर वह ५ ऐसी शोभायमान हुई, जैसे मानो गंगा नदी खल-खला रही हो। उसने प्रसार करते हुए एक क्षणमें उस समस्त लयणको जलसे भर दिया, जैसे मानो वह बहुत रसोंके जलसे भरा अमृतकुण्ड हो; अथवा जैसे जलके बहानेसे धर्मसार भरा हो; अथवा जैसे मानो उस गिरिने अपना मन प्रकट

घत्ता—अह पयडिउ गिरिणा णियमणु हउँ एत्थउ सज्जणु हियहरु ।
णं तुट्ठें तासु णराहिवहो संखेवें दिण्णउ अमियघरु[3] ॥ १४ ॥ 10

१५

Karakannḍ's repentance.

तं पेक्खिवि ते मणे भयभरीय तम्हाउ दुहेण विणीसरीय ।
दद्दुरहो उवरि सो गयउ राउ चिंताविवण्णु थिउ मंदराउ ।
णं कुलिसणिहाएँ महिहरिंदु णं भग्गए बले थिउ सुरवरिंदु ।
णं मयगलु केसरिणहविभिण्णु थिउ णरवइ तहिँ दुक्खेण खिण्णु ।
पुणु कंपइ डोलइ सलवलेइ अणवरउ दुहेण सुकर मलेइ । 5
सिरकमलु धुणइ दीहरु कणेइ घग्घरसरेण पुणु पुणु भणेइ ।
हा किं किउ मइँ दुट्ठें खलेण हा दुरिउ लहेसमि एह फलेण ।
हा कम्में केण गलत्थियउ करु वयणे णिवेसिवि णिउ थियउ ।
घत्ता—जो अमरणिकायहिँ वंदियउ पुज्जमहिम धम्महँ णिलउ ।
सो हा हा पावें देउ मइँ कहिँ आणिवि मुक्कउ जगतिलउ ॥ १५ ॥ 10

१६

A Sura appears and consoles the king.

णिवो सोयभिण्णो थिओ जा विसण्णो ।
सुरो को वि धण्णो णहाओ पवण्णो ।
गुणाणं णिवासो दुहाणं विणासो ।
विरायं हणंतो सरायं जणंतो ।
तिरीडेण जुत्तो जिणे दिण्णचित्तो । 5
महादित्तिवंतो णहेणं भमंतो ।
सुरूवं धरंतो गिरिंदं सरंतो ।
धराएविसारो भुजंगो कुमारो ।
णएणं णमंतो विसुद्धं चवंतो ।
सुसंपुण्णगत्तो तहिँ ताव पत्तो । 10
णिवेणावि दिट्ठो मणेणं पहिट्ठो
णिवाणंदयारी जणाणंदयारी ।
घत्ता—सो भणइ णराहिव दुहु मुअहि मा सोयहिँ छंडहि एहु गहु ।
जं चिंतिउ णियमणें किं पि मइँ पइँ कीयउ तं पुणु करिवि बहु ॥ १६ ॥

१७

The Sura congratulates the king for what he had done.

भो णरवइ हउँ चिरु वसउँ एत्थु जलवाहिणि एह धरणहिँ समत्थु ।
जइ रूसमि पाडमि गहगणो वि धरणीयले तोडमि फणिफणो वि ।
मुसुमूरमि भूधर विप्फुरंत पडिखलमि देव संगरे सरंत ।

---

३ J अमियतरु.
१५. १ DN णरवरिंदु.

किया हो कि मैं ऐसा हृदयहारी सज्जन हूँ; अथवा जैसे उसने सन्तुष्ट होकर राजाको संक्षेपमें अमृतका घर प्रदान किया हो। १०

१५—राजाका पश्चात्ताप

उसे देखकर वे राजा और सूत्रधार दोनों मनमें भयभीत हुए और दुःखपूर्वक वहाँसे निकले। राजा दर्दुरके ऊपर चढ़ गया और चिन्तासे फीका मुख और हतोत्साह हुआ ठहरा। जैसे वज्रके प्रहारसे महीधरेन्द्र, जैसे सैन्य भग्न हो जानेसे सुरेन्द्र, अथवा जैसे केशरीके नखोंसे विदीर्ण हुआ हाथी; वैसे ही वह नरपति वहाँ दुःखसे खिन्न हुआ ठहरा। वह काँपता, डोलता व सलबलाता था और लगातार दुःखसे अपने हाथ मलता था। सिरकमल धुनता, दीर्घ ध्वनि करता ५ और गद्गद स्वरसे पुनः-पुनः कहता—हाय, आज मुझ दुष्ट खलने यह क्या किया? हाय, इसके फलसे मुझे पाप लगेगा। हाय, मैं किस कर्मसे प्रेरित हो गया। राजा हाथपर मुँह रखकर बैठ रहा और कहने लगा—"जो देवसमूहों-द्वारा वंदित, पूज्य-महिम व धर्मका निलय था, उस जगतिलक देवको मैंने कहाँ लाकर छोड़ा?"

१६—देवका आगमन व राजाको आश्वासन

इस प्रकार शोकसे विह्वल, विषादयुक्त हुआ राजा जब वहाँ बैठा था, तभी कोई एक पुण्यवान् देव आकाशसे वहाँ आ उतरा। वह गुणोंका निवास और दुःखोंका विनाश था, एवं विरागका हन्ता और सरागका जनक। किरीटसे युक्त, जिनेन्द्रमें दत्त-चित्त, महा दीप्तिवान्, नभमें भ्रमणशील, सुरूपधारी, गिरीन्द्रका अनुसरण करता हुआ, धरादेवीका सार, भुजङ्गकुमार, झुककर नमनशील और विशुद्ध वाक्शील तथा सम्पूर्ण रूपसे सुन्दर गात्र वह देव वहाँ आकर पहुँचा। ५ राजाने उसे देखा और मनमें प्रसन्न हुआ। वह देव नृपका आनन्दकारी और जनोंका भी आनन्दकारी था। वह बोला—"हे नराधिप, दुःखका त्याग कर। किन्तु शोकवश अपने इस आग्रहको मत छोड़। मैंने अपने मनमें जो कुछ सोचा था, उसे तूने किया और वही आगे करेगा भी बहुत।"

१७—देवका आत्म-परिचय

हे नरपति! मैं यहाँ चिरकालसे रहता हूँ और इस जलवाहिनीको रोकनेमें समर्थ हूँ। यदि मैं रुष्ट हो जाऊँ तो ग्रहोंके समूहको भी नीचे गिरा दूँ, धरणीतलमें शेषनागके फणको भी तोड़ डालूँ, विस्फुरायमान भूधरोंको चूर-चूर कर दूँ, व संग्राममें बढ़ते हुए देवोंको भी प्रति-

संचरइ ण महो भीएँ सुरो वि किं अवरु [1] विरुद्धउ पुणु णरो वि ।
[2] पर अच्छिउ पडिमहे रक्खवालु भारियउ हवेसइ दुसमु कालु । 5
चिरकालेँ कलियउ सरलचित्त पेच्छंतहँ तुहु [3] आयउ सि मित्त ।
मइँ रक्खिय एत्तिउ कालु भद्द थिय णिक्खय सहिसहास अद्द ।
लइ सुंदर [4] सुंदरु कियउ एउ जललयणि णिवेसिउ परमदेउ ।

घत्ता—जिणु आणवि धरियउ रयणमउ कणयामरलयणे समुज्जलए ।
पइँ कीयउ णिव हउँ मोक्कलउ सइँ हिंडमि लीलएँ महिवलए ॥ १७ ॥ 10

इय करकंडमहारायचरिए मुणिकणयामरविरइए भव्वयणकण्णावयंसे पंचकल्लाणविहाण-कप्पतरुफलसंपत्ते करकंडजिणपडिमादंसणो णाम चउत्थो परिच्छेउ समत्तो ।

॥ संधि ॥ ४ ॥

१७. १ N वि कुद्धउ. २ N अर अत्थिउ. ३ J आयओ सि, S आउसि. ४ S J सुंदरु.

स्खलित कर दूँ। मेरे भयसे सुर भी सञ्चार नहीं कर सकता; दूसरे वैरी मनुष्यकी तो बात ही क्या ? पर मैं तो यहाँ इस प्रतिमाका रक्षपाल होकर रहा हूँ। आगे भारी दुष्काल आनेवाला है। ५ हे सरल चित्त, मैंने चिरकालसे तेरी प्रतीक्षा की है, और हे मित्र, तू मेरे देखते यहाँ आ गया। हे भद्र, मैंने इतने काल तक इस प्रतिमाकी रक्षा की, जिससे वह साठ हजार वर्षों तक अक्षत रही। हे सुन्दर, तूने यह सुन्दर काम किया जो परमदेवको जल-लयणमें निवेशित कर दिया। रत्नमय जिनेन्द्रको लाकर इस समुज्ज्वल कनकवर्ण अमर-लयणमें रखा, यह काम तूने कर दिया। हे राजन्, अब मैं मुक्त हुआ, स्वयं महीमण्डलमें लीलापूर्वक भ्रमण करूँगा। १०

इति मुनि कनकामर विरचित भव्यजनकर्णावतंस पञ्चकल्याणविधान कल्पतरु-फलसम्पन्न करकण्डमहाराज चरित्रमें करकण्डका जिनप्रतिमादर्शन नामक चतुर्थ परिच्छेद समाप्त।

संधि–५

१

Who built the ancient cave ?

ध्रुवकं—करकंडें पुच्छिउ सो अमरु भणु केण कराविउ इहु लयणु ।
वररयण विणिम्मिय कें पडिम रंजियउ जाएँ महो तणउ मणु ॥

तं सुणेवि वाउवेउ ता फणीकुमारु एउ
पुच्छियं पि जं णिवेण तं कहेइ तक्खणेण ।
एत्थु जंबुदीवयम्मि भारहम्मि खेत्तयम्मि । 5
तत्थ अत्थि सोहमाणु विज्जयड्ढु अप्पमाणु ।
खेयरेहिँ रम्ममाणु कुंजरेहिँ गज्जमाणु ।
तासु तुंग बे वि अग्ग सायरस्स जाइ लग्ग ।
चक्कलत्तु जोयणाइँ पंचवीसदूणियाइँ ।
तुंगएण पंचवीस जोयणाइँ अत्थि तस्स । 10

घत्ता—जोयणदसहिँ मि उप्परिण अत्थि सेणि दाहिणिय वरं ।
विज्जाणाहहिँ परियरिय अहिलसहिँ जा वि देक्खिवि सुर ॥ १ ॥

२

Nila and Mahānīla came from Vijayārdha, settled at Terapur and became devotees of Jina.

तहिँ अत्थि णयरु खेयरवमालु णामेँ रहणेउरु चक्कवालु ।
तहिँ खेयर भायर अत्थि वे वि णामेण णीलमहणील ते वि ।
ते अच्छहिँ रज्जु करंत जाव पडिपेल्लिय दोण्णि वि अरिहिँ ताव ।
उद्दालिउ ताहँ वि विज्जयाउ णिद्धाडिवि घल्लिय पट्टणाउ ।
सिरिपासजिणिंदहो तणइँ काले सुरखेयरकिण्णररववमाले । 5
अइदुम्मण[१] दुक्खु वहंति भाय महि लंघिवि तेराणयरु आय ।
तहिँ थाइवि कीयउ रज्जु भव्वु उवसाहिउ महियलु तेहिँ सव्वु ।
कह पासजिणिंदहो दुरियणासि सुय एक्कहिँ दिणि मुणिवरहो पासि ।

घत्ता—सा सुणिवि मणोहर दुहमहिय परिओसेँ ते कंटइयतणु ।
थिय णिच्चल धम्मेँ दयसहिय जिणु झायहिँ भत्तिए एयमण ॥ २ ॥ 10

---

१. १. N हर.
२. १ J N उद्दमण.

सन्धि—५

१—विजयार्द्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणी

करकण्डने उस देवसे पूछा—"कहिए, इस लयणको किसने बनवाया है, तथा जिस प्रतिमाने मेरे मनको इतना अनुरक्त किया है उस उत्तम रत्नमयी प्रतिमाको किसने निर्मित कराया ?" यह सुनकर वायुवेग नामके नागकुमार देवने जो कुछ राजाने पूछा वह तत्क्षण कहा—"इस जूम्बद्वीपके भरतक्षेत्रमें शोभायमान व अप्रमाण विजयार्द्ध पर्वत है। वहाँ खेचर रमण करते हैं, एवं कुञ्जरोंकी गर्जना सुनायी देती है। उसके दो ऊँचे अग्र (पार्श्व) भाग हैं जो समुद्रसे जाकर लगे हैं। उस पर्वतकी परिधि पचीसके दुगुने (अर्थात् पचास) योजन है, और उसकी ऊँचाई पचीस योजन है। उसकी दस योजनकी ऊँचाईपर वह उत्तम दक्षिण श्रेणी है जो विद्याधरोंसे सेवित है, एवं जिसे देखकर देव भी उसकी अभिलाषा करने लगते हैं।" ५

२—नील और महानील विद्याधरोंका तेरानगरमें आगमन

वहाँ खेचरोंसे भरा हुआ रथनूपुरचक्रवाल नामका नगर है। वहाँ नील और महानील नामके दो विद्याधर भ्राता रहते थे। जब वे वहाँ राज्य करते हुए रह रहे थे, तब उन दोनोंपर वैरियोंने दबाव डाला। उन्होंने दोनोंकी विद्याओंको उड़ा दिया और उन्हें पट्टणसे बाहर निकाल फेंका। यह श्रीपार्श्व जिनेन्द्रके कालकी बात है जब सुरों, खेचरों व किन्नरोंके कोलाहलकी खूब धूम थी। वे दोनों भाई बड़े उदास, दुःखधारण करते हुए, पृथ्वीको लाँघकर तेरानगरमें आये। ५ वहाँ रहकर उन्होंने भव्य राज्य किया और समस्त पृथ्वीतलको अपने वशीभूत किया। एक दिन उन्होंने मुनिवरके पास पार्श्व जिनेन्द्रकी पापनाशिनी कथा सुनी। उस मनोहर, दुःखनाशक कथाको सुनकर वे परितोषसे रोमांचित हो उठे, तथा निश्चल होकर धर्म व दयासहित भक्ति-पूर्वक एकाग्र मनसे जिनेन्द्रका ध्यान करने लगे।

३

They built the beautiful cave.

अणुराएँ तेहिँ मि भायरेहिँ पुणु लयणु कराविउ खेयरेहिँ।
थंभाण सहासहिँ णिम्मवीउ अब्भंतरु सुंदरु कारवीउ।
मणिरयणहिँ मणिणिम्मविययाहँ किउ ठाउ तेहिँ जिणपडिमयाहँ।
अणवरउ ण्हाणपूया करंत थिय बहुयकाल जिणु अणुसरंत।
तहिँ वड्ढिय अणुदिणु मणहरीय णाणाविह महिमा खेयरीय। 5
एहु पव्वउ वेड्ढिउ खेयरेहिँ णं मेरु महागिरि सुरवरेहिँ।
सा सोहा पेक्खिवि सुरगणेस ठिय विंभियमण तहिँ णिरवसेस।
तहिँ अवसरे भो भो सरलचित्त तावाइय णीलहो परममित्त।
घत्ता—वेयड्ढहो तहो उत्तरदिसिहिँ णयरु अत्थि गयणयलु पिउ।
सुरकिण्णरखेयरवल्लहउ णं अमरणयरु आवेवि थिउ ॥ ३ ॥ 10

४

Amitavega and Suvega find a Jina temple on Pūdi mountain on their way to Lankā.

तहिँ खगवइ अच्छहिँ बे वि भाय अण्णोण्णणिविडसंबद्धराय।
ससिकंतदिवायरपउरधाम ते अमियवेयसुव्वेयणाम।
सुविसुद्धसील संगरे अहंग सम्मत्तरयणपरिभूसियंग।
ते पव्वदिवहिँ वंदण करंत संचल्लिय एक्कहिँ दिणे महंत।
दक्खिणदिसि लंकहिँ जंतएहिँ मलयम्मि विसएँ ता दिट्ठु तेहिँ। 5
सिरिपूदी णामेँ गिरिवरिंदु[1] जहिँ कीलणत्थु आवइ सुरिंदु।
तहो उवरि खणद्धेँ ऊवडीय[2] णं सग्गहो सुरवइ परिवडीय।
घत्ता—ते पेक्खिवि छुहपंकयधवलु[3] चउवीसजिणालउ गयगयणु।
तं पेक्खिवि हरिसहिँ तहिँ जि गय विणिवारिउ दूरहो जेहिँ मयणु ॥४॥

५

The temple was built by a descendant of Ravāna.

सुहभावेँ लंकाणाहएण रावणहो वंसे उप्पण्णएण
सूरप्पहणामपसिद्धएण सिरिसेणाघरिणिहिँ कंतएण।
एक्कहिँ दिणि रमणहिँ णिग्गएण[1] पुणु पूदीमंदरु पत्तएण।
मलयम्मि विसएँ परिजंतएण अइरमणभूमि देक्खंतएण।
कइलासे जेम भरहेसरेण चउवीस पडिम भत्तीभरेण। 5
तहँ तेण कराविउ सुहयराहँ चउवीसजिणालउ जिणवराहँ।
मणिरयणविणिम्मियणिम्मलाहँ झायंतहँ मणे फेडियमलाहँ।
जो सयलकालु वंदिउ सुरेहिँ परिपुज्जिउ झायउ आयरेहिँ।
घत्ता—देक्खंतहँ णयणहँ सुहु जणहिँ झायंतहँ फेडहिँ दुरियमलु।
संसारणिहोडणु खणे करहिँ जं चिंतिउ तं पावहिँ सयलु ॥ ५ ॥ 10

---

४. १ N में इससे पूर्व हासियेमें जोड़ा गया है–कियअक्कियपडिमउ अणुसरंत। णयराउ तो वि जिणगुण वहंत। २ D जं चडीय, J N खणद्धं उवरीय. ३ D पंकइं.

५. १ N में इससे पूर्व हासियेमें जोड़ा गया है—तं रम्मि विसए परिजंतएण

३—विद्याधर भ्राताओं-द्वारा जैनधर्म ग्रहण

फिर उन खेचर भ्राताओंने अनुरागसे यह लयण बनवाया। उसका निर्माण सहस्रों स्तम्भों-सहित किया गया और उसका भीतरी भाग सुन्दर कराया गया। उन्होंने मणिनिर्मित जिन-प्रतिमाओंके लिए भी यह स्थान मणि-रत्नोंसे बनवाया। निरन्तर स्नान-पूजा करते व जिनेन्द्रका अनुसरण करते हुए वे खेचर भ्राता बहुत काल तक रहे। यहाँ दिनोंदिन खेचरोंकी मनोहर व नानाविध महिमा बढ़ी। यह पर्वत खेचरोंसे वेष्टित हो गया, जैसे मेरु महागिरि सुरवरोंसे। उस ५ शोभाको देखकर समस्त सुरगणेन्द्र यहाँ विस्मित मन होकर रह जाते थे। उस अवसरपर, हे सरलचित्त! नीलके परम मित्र आये। उस विजयार्द्ध पर्वतकी उत्तर दिशामें गगनतल नामका प्रिय नगर है, जो सुरों, किन्नरों व खेचरोंका वल्लभ है, जैसे मानो देवनगर ही आकर ठहर गया हो।

४—अमितवेग और सुवेग विद्याधरोंका सिरिपूदीपर्वतपर चतुर्विंशति जिनालयका दर्शन

उस गगनतल नामक नगरमें दो खगपति भ्राता रहते थे। उनका परस्पर घनिष्ठ प्रेम था। चन्द्रके समान कमनीय तथा दिवाकरके समान प्रवर तेजस्वी उन भाइयोंके नाम थे अमितवेग और सुवेग। वे सुविशुद्ध शील, समरमें अभंग तथा सम्यक्त्वरूपी रत्नसे परिभूषितांग थे। वे महान् खेचर पर्वके दिनोंमें एक दिन वन्दना करनेके लिए चल पड़े। दक्षिण दिशामें लंकाको जाते हुए मलय प्रदेशमें उन्होंने उस सिरीपूदी नामके गिरिवरेन्द्रको देखा, जहाँ सुरेन्द्र भी क्रीड़ार्थ ५ आता था। क्षणार्द्धमें वे उस पर्वतके ऊपर उतर पड़े, मानो स्वर्गसे सुरपति उतरे हों। वहाँ उन्होंने सुधापंकसे धवल (चूनेसे पुता हुआ स्वच्छ) गगनचुम्बी चतुर्विंशति जिनालय देखा। उसे देख हर्षसे वे वहाँ (जिनबिम्बोंके समीप) गये, जिन्होंने दूरसे ही मदनका निवारण किया था।

५—रावण-वंशी राजा सूरप्रभ-द्वारा उस जैनमन्दिरका निर्माण

रावणके वंशमें एक सूरप्रभ नामसे प्रसिद्ध लंकाका राजा हुआ। उसकी प्रिय गृहिणीका नाम श्रीसेना था। एक दिन वह रमण करनेके लिए निकल कर मलय प्रदेशमें जाते हुए व अति रमणीक भूमि देखते हुए पूदीपर्वतपर आ पहुँचा। और जिस प्रकार भरतेश्वरने भक्तिभावसे कैलासपर चौबीस प्रतिमाएँ करायी थीं, उसी प्रकार उस लंकानाथने शुभ भावसे पूदी मन्दरपर जिनवरोंका वह चतुर्विंशति जिनालय निर्माण कराया था। वे जिनप्रतिमाएँ मणिरत्नोंसे विनिर्मित, ५ निर्मल तथा ध्यान करनेवालोंके मनमें मलोंका नाश करनेवाली थीं। उस जिनालयकी देव सदाकाल वन्दना व आदरसे पूजा व ध्यान करने लगे। वे जिनबिम्ब दर्शन करनेवालोंके नेत्रोंको सुख उत्पन्न करते, ध्यान करनेवालोंके पापरूपी मलका नाश करते, एवं एक क्षणमें (जन्ममरणरूप) संसारका नाश करते थे। उनके दर्शकगण जो चिन्तन करते वह सकल वस्तु पा जाते थे।

६

Hymn to the Jina.

जिणेसरबिंबइँ दिट्ठइँ तेहिँ णिवारिउ मिच्छमहातमु जेहिँ।
सरीरइँ वायइं सुद्धमणेहिँ जिणिंदु अणिंदु सुदेउ [1]थुणेहिँ।
ण अत्थि जयत्तए तेत्तिय वाणि सुथुव्वइ जेत्तिएँ केवलणाणि।
तिलोयसरूवहो लद्धपमाण णमो जयणाह अमेय अमाण।
णमो मणमारमहापहु देव णमो भयवंत अरूव अलेव। 5
णमो गयराय मयारिविणास णमो णरदेव सुहाण गयास।
णमो कलहीण सिवम्मि णिलीण णमो जियमार वियारविलीण।
णमो हयकम्म सुझाण खणेण णमो तुह पाय णमामि मणेण।
घत्ता—जय जिण केवलणाणरविमिच्छत्ततिमिरणिण्णासयर।
ते वंदिवि पूजिवि संथुणिवि एक्केक्क णिहालहिँ पुणु खयर ॥ ६ ॥ 10

७

They brought the image to Terapur.

ते पडिमउ देक्खिवि सुंदराउ अणवरउ जणिउ मणे साणुराउ।
पुणु भणहिँ ते वि विजयड्ढयम्मि सुरकीलाथाणहो उवगयम्मि।
पडिछंदँ आयहँ केरएण जिणबिंब करावहुँ तहिँ रएण।
इउ भणिवि अइभत्तीभरेहिँ संगहिय पडिम बेहिँमि करेहिँ।
जिणपासहो बहुरयणहिँ [1]कलीय उच्चाएवि सा ते संचलीय। 5
गयणयलि सुणिम्मल विप्फुरेइ णं चंदलेह विवरीसरेइ।
णं विज्जु[2] लवंती अइविहाइ गय उत्तरदिसि जम्मु मुएवि णाइँ।
जिणजणियराय परिणिविडगत्त ते[3] बे वि सहोयर एत्थु पत्त।
घत्ता—परिमेल्लिवि उप्परि गिरिवरहो रयणेहिँ विणिम्मिय सा पडिम।
गय लयणहो सम्मुहुँ गुणहँ घर अवहरिय जेण भवभयपडिम ॥ ७ ॥ 10

८

But they could not carry it further.

तहिँ वंदणहत्ति करेवि बे वि णियपडिमहिँ सम्मुहँ गय वलेवि।
तहिँ जाइवि सा पुणु लेहिँ जाम णियथाणहो ण चलइ पडिम ताम।
णं थंभिय केण वि खेयरेण णं रम्मु णिएविणु थिय भरेण।
सा णिच्चल पेक्खिवि णियमणम्मि संपीडिय दुक्खेँ तक्खणम्मि।
परलोयकज्जे पर[1]मुट्ठएहिँ हा किं किउ अम्हहिँ दुट्ठएहिँ। 5
जं थाणहो चालिउ जिणहो लिंगु तं होइ णरयपडिवडणलिंगु।
बिहुँ थाणहुँ एक्कु ण हुयउ थाणु परिवड्ढिउ केवलु पउरु [2]णाणु।
मंजूस करेवि ता भयगएहिँ णिक्खणिवि मुक्क भूमीएँ तेहिँ।
घत्ता—सा झंपिवि ते परिझीणतण गय तुरियउ सहसकूडभवणु।
तं वंदिवि झाणपरिट्ठियउ मुणि जसहरु दिट्ठउ जित्तमणु ॥ ८ ॥ 10

---

६. १ N सुणेहिं.

७. १ D संवलीय. २ N विज्ज. ३ N ती.

८. १ N परमुट्ठिएहिं. २ N भाणु.

६—विद्याधरों-द्वारा जिनेन्द्रकी स्तुति

(उन अमितवेग और सुवेग नामक खेचर भाइयोंने उसी लंकानाथ-द्वारा निर्मापित चतुर्विंशति जिनालयमें) उन जिनेश्वरके बिम्बोंको देखा, जिन्होंने मिथ्यात्वरूपी महातमका निवारण किया था। वे शरीरसे, वचनसे तथा शुद्ध मनसे उन अनिंद्य सुदेव जिनेन्द्रकी स्तुति करने लगे। जगत-त्रयमें उतनी वाणी नहीं है, जितनीसे केवलज्ञानीकी भले प्रकार स्तुति की जा सके। त्रिलोकके स्वरूपका प्रमाण जाननेवाले किन्तु स्वयं अमेय और अमान, हे जगन्नाथ, आपको हमारा नमन है। हे मन्मथको जीतनेवाले महाप्रभु देव, आपको नमस्कार है। नमस्कार है हे भगवन्त, अरूप, अलेप। नमस्कार है, हे वीतराग, मदरूपी शत्रुके विनाशक। नमस्कार है नरदेव, जिन्होंने (सांसारिक) सुखोंकी आशा छोड़ दी है। हे इन्द्रियहीन, व शिवमें विलीन, नमस्कार है आपको। मारको जीतनेवाले और विकारोंको विलीन करनेवाले, नमस्कार है आपको। अपने शुक्ल ध्यान द्वारा क्षणमात्रमें कर्मोंका घात करनेवाले, नमस्कार है आपको। आपके चरणोंको मैं मनसे नमस्कार करता हूँ। हे केवलज्ञानरूपी रविके द्वारा मिथ्यात्वरूपी अन्धकारका पूर्ण रूपसे नाश करनेवाले जिनेन्द्र, जय हो आपकी। इस प्रकार वन्दना, पूजा व स्तवन करके वे खेचर उन प्रतिमाओंको एक-एक करके देखने लगे।

७—पार्श्वकी प्रतिमाको लेकर उनका तेरापुर आना

उन सुन्दर प्रतिमाओंको देख-देखकर निरन्तर उनके मनमें अनुराग उत्पन्न हुआ। फिर वे कहने लगे कि देवोंके क्रीड़ास्थानको प्राप्त विजयार्द्ध पर्वतपर इन प्रतिमाओंके ही समान हम भी भक्तिपूर्वक जिनबिम्ब बनवायेंगे। ऐसा मनमें विचारकर उन्होंने अति भक्तिभारसे अपने दोनों हाथों-द्वारा जिनेन्द्र पार्श्वनाथकी नाना रत्नोंसे जड़ी प्रतिमा ग्रहण की और उसे उठाकर वे वहाँसे चल पड़े। वह सुनिर्मल प्रतिमा गगनतलमें ऐसी स्फुरायमान हुई, जैसे चन्द्रमाकी चाँदनी फैल रही हो, अथवा जैसे विद्युत् लपलपाती हुई शोभायमान हो। उसे लेकर वे उत्तर दिशामें चले, मानो (दक्षिण दिशावर्ती) यमको छोड़कर जा रहे हों। वे परिनिविड गात्र (सबल शरीर) जिन भगवान्‌में अनुरक्त दोनों सहोदर यहाँ पहुँचे। यहाँ वे गुणोंके घर (दोनों भ्राता) उस रत्नोंसे निर्मित प्रतिमाको पर्वतके ऊपर छोड़कर उस लयणके सम्मुख गये जिसने भव (संसार) के भयको प्रतिमाको दूर कर दिया था।

८—पार्श्व-प्रतिमा पर्वतपर अचल हो गयी

वहाँ (उस गुफामें) वे दोनों भ्राता वन्दन-भक्ति करके लौटकर अपनी उसी प्रतिमाके सम्मुख आये। वहाँ जाकर जब वे उस प्रतिमाको पुनः लेने लगे, तब वह अपने स्थानसे चलायमान ही न हुई, मानो किसी खेचरने उसे स्तम्भित कर दिया हो, अथवा मानो उस रम्य स्थानको देखकर वह स्वयं अपने ही भारसे स्थिर हो गयी हो। उसे निश्चल देखकर वे दोनों भाई अपने मनमें तत्क्षण दुःखसे बहुत पीड़ित हुए। परलोक कार्यमें परम उत्सुक होकर, हाय, हम दुष्टोंने यह क्या किया ? हमने जो जिनेन्द्रकी प्रतिमाको उसके स्थानसे चलायमान किया, यही हमारे नरकमें पड़नेका कारण होगा। दो स्थानोंमें-से एक भी स्थान न रहा। इस प्रकार उन्हें केवल-(शुद्ध) प्रचुर ज्ञान बढ़ा। तब उन्होंने भयभीत होकर एक मंजूषा बनायी और उसे खोदकर भूमिमें रख दिया। उसे झाँपकर वे परिक्षीण शरीर हो तुरन्त सहस्रकूट भवनको गये और उसकी वन्दना करके, वहाँ मनको जीतकर ध्यानमें स्थित यशोधर मुनिको उन्होंने देखा।

९

Amitavega practised Penances and attained heaven.

सो वंदिवि पुच्छिउ तेहिँ जई भो मुणिवर णिसुणहि सुद्धमई ।
अम्हेहिँ भमंतहिँ जिणपडिमा उवलद्धिय बहुविहकयमहिमा ।
सा लेविणु जंतहिँ णिययपुरे परिधरिय एत्थु गिरिवरसिहरे ।
वंदण करेवि लयणम्मि वर सा तुरिय लेवि जा वलहुँ किर ।
ता ण चलइ थाणहो किं करहुँ किं सामिय जीवहुँ किं मरहुँ । 5
तं सुणिवि भणइ तहँ मुणिपवरु इत्थम्मि हवेसइ तित्थवरु ।
अण्णहिँ भवि भायरु तुह तणउ सम्मत्तु लएसइ बहुगुणउ ।
तं सुणिवि खणद्धें बे वि भाय तवे संठिय ता ते साणुराय ।
घत्ता—अमियवेउ विज्जाणियरु परिछंडिवि तणु व मणोहरउ ।
गउ सग्गहो तक्खणे तउ करिवि तहिँ हूयउ सो सुरु वंधुरउ ।। ९ ।। 10

१०

Suvega practised religious hypocrisy and was reborn an elephant.

एत्तहिँ लहुभायरु जणे महिउ तेँ बारहवरिसइँ संगहिउ ।
गुरुपासि पसिद्धउ अइतुरिउ एक्कंतरेण भोयणु सरिउ ।
ता एक्कहिँ दिणि सो सलवलिउ वावीसपरीसहपरिमलिउ ।
छुहतण्हएँ पीडिएँ किं कियउ गामंतरे गमणु सुचिंतियउ ।
तहिँ जाइवि भुत्तउ जलु पियउ जणे पयडिउ अणसणु मइँ कियउ । 5
गामंतरि पुणु अण्णहिँ जि दिणे उववासु पघोसिउ पयडु जणे ।
एयाइँ विहिएँ बहुदिण थियउ जणु सयलु सुउत्तिएँ वंचियउ ।
मायाएँ सुवेएँ कियउ तउ पुणु मरिवि सो वि वणे हत्थि भउ ।
घत्ता—जो डिंभेँ धम्मु समायरइ बगवेसेँ खंचिय णिययतणु ।
सो विरसु रसंतउ भग्गडउ परदुक्खइँ पावइ मूढमणु ।। १० ।। 10

११

He is, however, re-enlightened by Amitavega.

ता अमियवेएण अमरेण हूएण
थियएण सग्गमि चिंतियउ हिययम्मि
महो भाय लहुओ वि उप्पण्णु कहिँ होवि ।
पुणु ओहिणाणेण परिकलिउ सो तेण ।
तहो तणएँ करुणेण संचलिउ वेएण । 5
करि वसइ वणे जम्मि सो पत्तु खणे तम्मि ।
मुणिवेसु परिकरिवि सो कुंभि अणुसरिवि ।
अइमहुरवयणेण पुणु भणिउ करि तेण ।
भो णिसुणि सुअवेय दुहु पत्तु बहुभेय ।
मिच्छत्तमूलाइँ तउ कियउ मायाइँ । 10
तुहुँ तेण बलिएण करि हुवउ दुरिएण ।
तं सुणिवि तहो वयणु करि सरइ मुणिचरणु ।

९—मुनिराज-द्वारा भविष्यवाणी और विद्याधरोंकी जिन-दीक्षा

उस यतिकी वन्दना करके उन्होंने पूछा—"हे मुनिवर, शुद्धमति, सुनिए। हमने भ्रमण करते हुए नाना प्रकारकी महिमासे युक्त एक जिनप्रतिमा प्राप्त की। उसको लेकर अपने पुरको जाते हुए हमने उसे इस गिरिराजके शिखरपर रख दी। किन्तु जब लयणमें उत्तम वन्दना करके उसे तुरन्त लेनेके लिए लौटे, तब वह स्थानसे चलती ही नहीं। हम क्या करें? हे स्वामी, हम जियेंगे कि मरेंगे?" यह सुनकर मुनिप्रवरने उनसे कहा—"यहाँ एक बड़ा तीर्थ बनेगा और तुम्हारा यह भाई अन्य भवमें यहाँ बहुगुणयुक्त सम्यक्त्व प्राप्त करेगा। यह सुनकर क्षणार्द्धमें उन दोनों भाइयोंने भक्ति-सहित तप धारण कर लिया। अमितवेग विद्याधर तप करके व अपने मनोहर शरीरको छोड़कर शीघ्र ही स्वर्ग गया और वहाँ सुन्दर देव हुआ। ५

१०—लघु भ्राता-द्वारा व्रतका दम्भ व उस पापसे हाथीका जन्म

यहाँ उसका लघु भ्राता लोगोंमें पूज्य हुआ और उसने बहुत जल्दीमें गुरुके पास बारह वर्षोंके लिए प्रसिद्ध एकान्तर भोजनका व्रत धारण कर लिया। किन्तु एक दिन वह बाईस परीषहों से पीड़ित होकर सलबला उठा। क्षुधा व तृष्णासे पीड़ित होकर उसने क्या किया कि दूसरे ग्राममें गमन करनेका सोचा। वहाँ जाकर उसने भोजन किया व जल पिया, तथा जनपदमें प्रकट किया कि (पूर्वदिन) मैंने अनशन किया था। दूसरे दिन पुनः अन्य ग्राममें लोगोंमें प्रकट उपवास घोषित किया कि मैंने कल उपवास किया था। इसी विधिसे वह बहुत दिन करता रहा और सब लोगोंको अपनी उक्तिसे वंचित करता रहा। इस प्रकार सुवेगने मायासे तप किया। अतः वह मरकर वनमें हाथी हुआ। जो कोई बक-वेषसे अपने शरीरको खींचकर तप धारण कर दम्भसे धर्मका आचरण करता है, वह नीरस बकवाद करता हुआ भगोड़ा व मूढ़-मन बड़े दुःख पाता है। ५

११—अमितवेग देव-द्वारा हाथीको उपदेश

तब जो अमितवेग देव हुआ था उसने स्वर्गमें स्थित होते हुए हृदयमें चिन्ता की कि मेरा लघु भाई कहाँ उत्पन्न हुआ होगा। फिर अवधिज्ञानसे उसने उसे जान लिया। उसके प्रति करुण होकर वह वेगसे चल पड़ा और एक क्षणमें वह उस वनमें आ पहुँचा जहाँ वह हाथी रहता था। उसने मुनिका वेष बनाकर उस हाथीका अनुसरण किया, और फिर वह अतिमधुर वचन-द्वारा हाथीसे बोला—"हे सुवेग, सुन, तूने नानाप्रकार दुःख पाया। तूने मिथ्यात्वमूलक मायाचारसे तप किया। उसी बलवान् पापसे तू हाथी हुआ है। उसका यह वचन सुनकर हाथीने मुनिके चरणों का अनुसरण किया। वह सिरकी ओर आँखें चढ़ाकर पूर्वजन्मका स्मरण करने लगा। वह दुःखसे ५

चिरजम्मु सुमरंतु सिरे णयण कुव्वंतु ।
दुक्खेण वेल्लंतु सरु पउरु मेल्लंतु ।
घत्ता—तें देवें जाणिउ करिहियउ पुणु भणियउ वयणु सुकोमलउ । 15
सम्मत्तरयणु मा मुयहि तुहुँ जें पावहि णाणु सुणिम्मलउ ॥ ११ ॥

१२

The religious elephant attains heaven.

पुणु दिण्णइँ अणुवयगुणवयाइँ जणसोक्खकरइँ सिक्खावयाइँ ।
णिसिभोयणविरमणु बहुगुणालु पंचुंबरवज्जणु सयलकालु ।
चिरजम्ममुणियभयवेविरासु पूजाफलु कहियउ करिवरासु ।
पुणु कहिय पडिम तहो मणहरीय जा वामिएँ तेहिँ मि चिरु धरीय ।
जं किं पि पयासिउ सुरवरेण तं सयलु वि गहियउ करिवरेण । 5
इउ कहिवि गयउ सुरु णियघरम्मि[1] सो करि पहु अच्छइ इह वणम्मि ।
अण्णहिँ दिणे जलु पोमाइँ लेवि जा आवइ वामिए पुणु यलेवि ।
णउ देक्खइ तहिँ जिणु वीयराउ जलु पोमइँ मेल्लिवि करिवराउ ।
घत्ता—सम्मत्तु लएविणु दिढु करिवि सण्णासु करेविणु सो खयरु ।
सुहभावें भाविवि देउ जिणु करि हूयउ तइए सग्गे सुरु ॥ १२ ॥ 10

१३

Karakaṇḍa constructs two more caves.

भो णरवइ जं पइँ पुच्छियउ मइँ सयलु वि तं तुह अक्खियउ ।
पइँ सुंदरु कीयउ महो मणिउ जं लयणु णरेसर पइँ चिणिउ ।
तम्हा तुहुँ एवहिँ इउ सरहि लयणोवरि अवरु लयणु करहि ।
इउ भणिवि पयत्तें णिवरहो गउ सुरवरु लीलइँ णियघरहो ।
लयणोवरि करकंडें लयणु काराविउ जिणवरवरभवणु । 5
तहो उप्परि पुणु खुद्दयलयणु अइमणहरु कारिउ हयमयणु ।
तिहु लयणहो सोहा वहइ कह सुरणाहघरहँ अणुहरइ जह ।
णिउ करिवि ताइँ जिणमंदिरइँ सइँ पूजिवि अंचिवि मणहरइँ ।
अइतोसु वहंतउ हियएँ बहु आवासहो गउ पुणु धरिणिपहु ।
घत्ता—जावच्छइ तहिँ आवासे ठिउ करकंडु णरेसरु अरिमहणु । 10
ता आयउ करि थिरथोरकरु जलु पियणहँ सरवरे मयमहणु ॥ १३ ॥

१४

A ferocious elephant threatens Karakaṇḍa's forces and disappears.

जा अच्छइ तीरे सरोवरासु सेण्णाहिँ गंधु ता गयउ तासु ।
उब्भाइवि करयलु सिरु धुणेवि अवलोइय करिणा मुहु वलेवि ।
सा पेक्खिवि सो करिवरु विरुद्ध उद्धाविउ[1] करि मयगंधलुद्धु ।
करु दसणे करंतउ गुलुगुलंतु पयभारें मेइणि णिद्दलंतु ।
सो पेक्खिवि लोयहिँ अइणिरुत्तु करि धरणहुँ णिब्भरु कियउ चित्तु । 5

१२. १ N में 'णियघरासु' पाठ है और हासियेमें जोड़ा गया है—करि गयउ तुरिउ ता सरवरासु । कर भरिवि जलें पोमाइं लेवि । आहारु वउब्भिहु तहि मुएवि ।

१४. १ N उट्ठाविउ.

वेल उठा और जोरकी चीत्कार करने लगा। तब उस देवने हाथीके हृदयको जान लिया। वह फिर सुकोमल वचन बोला कि तू अब सम्यक्त्वरूपी रत्नको मत छोड़ना। उसीसे तुझे सुनिर्मल १० ज्ञान प्राप्त होगा।

१२—पूजाके प्रभावसे हाथी मरकर स्वर्ग गया

फिर उसने उसे जनसुखकारी अणुव्रत, गुणव्रत तथा शिक्षाव्रत प्रदान किये एवं सदा कालके लिए बहुत गुणयुक्त निशिभोजन-त्याग व पञ्च उदुम्बर-त्यागके व्रत भी दिये। उसने अपने पूर्व जन्मको जानकर भयसे काँपते हुए करिवरको पूजाका फल भी कह सुनाया। फिर उसने उस मनोहर प्रतिमाकी बात कही जो उन्होंने उस वामीमें बहुत पहले रखी थी। इस प्रकार जो ५ कुछ उस सुरवरने प्रकाशित किया उस समस्त बातको करिवरने ग्रहण कर लिया। पूर्वोक्त प्रकार कहकर वह सुर अपने घर चला गया, और वह हाथी यहीं वनमें रहने लगा। तत्पश्चात् अन्य दिन जब वह जल और कमल लिये हुए फिर लौटकर वामीपर आया तब उसे वहाँ वीतराग जिनेन्द्र दिखायी नहीं दिये। तब उस करिवरने जल और कमलोंको वहीं डाल दिया तथा सम्यक्त्व को लेकर उसे दृढ़ करके व संन्यास करके वह खेचर (का जीव हाथी) शुभ भावसे जिनेन्द्रदेवकी १० भावना करके तीसरे स्वर्गमें देव हुआ।

१३—करकण्ड-द्वारा दो और लयनोंका निर्माण

हे नरपति ! जो कुछ तूने पूछा वह समस्त बात मैंने तुझे कह दी। तूने मेरे मनकी सुन्दर बात की, जो नरेश्वर, तूने लयणको चिनवाया। इसलिए अब तू इतना और स्वीकार कर कि लयणके ऊपर एक दूसरा लयण बनवा दे। इस प्रकार प्रयत्नपूर्वक राजाको कह कर वह सुरवर लीलासे अपने घर चला गया। करकण्डने लयणके ऊपर जिनेन्द्रका सुन्दर भवनरूप लयण बनवाया ५ तथा उसके भी ऊपर एक अति मनोहर मदनापहारी छोटा-सा लयण और बनवाया। उन तीनों लयणोंकी शोभा कैसी हुई, जैसे मानो वे सुरनाथके घरोंका अनुहरण कर रहे हों। वह राजा धरणीनाथ उन जिनमन्दिरोंको बनवाकर और उन मनोहर मन्दिरोंकी स्वयं पूजा-अर्चा करके अपने हृदयमें बहुत सन्तोष धारण करता हुआ अपने डेरेपर आया। जब वह शत्रु-विनाशक करकण्डु नरेश्वर वहाँ अपने आवासमें था, तब एक स्थिर व स्थूल सूँड़वाला महान् मदोन्मत्त १० हाथी सरोवरमें जल पीने आया।

१४—करकण्डकी सेनापर एक मदोन्मत्त हाथीका आक्रमण

जब वह हाथी सरोवरके तीरपर खड़ा था, तब उसे सेनाकी गन्ध मिली। तब अपनी सूँड़को उठाकर व सिर हिलाकर हाथीने मुख मोड़कर उस ओर अवलोकन किया। उस सेनाको देखकर वह करिवर विरुद्ध हो गया (भड़क उठा) और मदकी गंधका लोभी वह हाथी सूँड़को दाँतपर रखकर गुलगुलाता हुआ, पैरोंके भारसे पृथ्वीको रौंदता हुआ दौड़ पड़ा। उसे देखकर लोगोंने हाथीको रोकनेमें पूर्णरूपसे अपने चित्तको लगाया। वे उठकर तुरन्त हाथीसे जा लगे ५

ते हड्डिवि तुरियहिँ करिहे लग्ग करिघायभयएँ पुणु सयल भग्ग ।
सो धाइउ णरवइ करकिवाणु पडिखलियउ वारणु जुज्झमाणु ।
करणाइँ देवि किर हणइ जाम अइंसणु वारणु हुयउ ताम ।
घत्ता—अइंसणे हूयएँ करिवरइँ णिदुरियणयणु सो तक्खणिणँ[3] ।
पेक्खंतहँ णासिवि करि गयउ थिउ विंभिउ णरवइ णियमणिणँ[3] ॥१४॥ 10

१५

Madanāvali is found missing.

आवासहो आवइ जाव राउ मयणावलि णउ पेच्छइ वि ताउ ।
जोइयइ चउद्दिसु[1] हियहीणु उव्वेविरु हिंडइ महिहे दीणु ।
ता संकिउ णरवइ गलियगव्वु कहिँ गउ कलत्तु सव्वंगभव्वु ।
मयणावलि जा आणंदभूअ सा एवहिँ किं विवरीय हूअ ।
ता पेसिय किंकरवर णिवेण अवलोवहु सामिणि दिसिवहेण । 5
जोएवि दिसिहिँ आगय वलेवि पुक्कारहिँ उब्भा कर करेवि ।
ता राएँ देक्खिवि ते रुवंत परिमुक्क अंसु णयणहिँ तुरंत ।
हे पयंवय[2] तुहुँ सवणाणुबंधु महु अक्खहि सुंदरि णेहबंधु ।
हा मुद्धि मुद्धि तुहुँ केण णीय किं एवहिँ लिहिकिवि कहिँ मि ठीय ।
हा कुंजर किं तुहुँ जमहो दूउ किं रोसइँ महो पडिकूलु हूउ । 10
घत्ता—चिरु मोहु वहंतउ को वि हियइँ लडहरूउ अग्गइँ हुयउ ।
विज्जाहरु आयउ सो वि तहिँ विज्जासायरपारु गउ ॥ १५ ॥

१६

The king in his bereavement is consoled by a Vidyādhara.

वोल्लाविउ तेँ खेयरवरेण अहो णरवइ किं रोवइ भरेण ।
किं महिलहे कारणे खवहि देहु जणे महिल होइ दुहणिवहगेहु ।
जा कीरइ णारी णरयवासु कह किज्जइ णारीसहुँ णिवासु ।
परिफुरिएँ[1] चित्ते जा जरु करेइ दुहकारणु सा को अणुसरेइ ।
भववल्ली वड्ढइ जाहे संगि रामा[2] लायइ दुह मणुयअंगि । 5
वलवंता कीरइ वलविहीण सा अबला सेवहिँ जे णिहीण ।
तं वयणु सुणेविणु णीससंतु अवलोवइ मयणावलि भणंतु ।
ता[3] खेयरु देक्खिउ णियमणम्मि हेट्ठामुहु लज्जइँ हुउ खणम्मि ।
घत्ता—तेँ खयरेँ पुणु पुणु सो भणिउ किं अच्छहि तुहुँ परिचत्तजणु ।
कोमलवयणपउत्तियहिँ बुज्झाविउ णरवइ विमणमणु ॥ १६ ॥ 10

१७

The Vidyādhara recalls an incident of his past life.

तं वयणु सुणेविणु समरधीरु संतुट्ठउ मण करकंडु वीरु ।
तेँ भणिउ खयरु संजणियधम्मु कहिँ लद्धउ वयणविलासु रम्मु ।

---

२ N करुणाइं. ३] °णेण.

१५. १] चउद्दिसि. २ S पायव तुंहु सउणाणुबंधु.

१६. १] परिफुरिय चित्ति. २] रामा लायइ जा मणुउ अंगि; DN को रामा लायइ मणुउ अंगि.
३] DN सो.

(भिड़े)। किन्तु हाथीके आघातके भयसे वे सब भाग गये। तब स्वयं नरपति हाथमें कृपाण लेकर दौड़ा और उसने युद्ध करके हाथीको रोक दिया। किन्तु करण (अर्थात् पैंतरा) देकर जब वह चोट करने लगा तभी वह हाथी अदृष्ट हो गया। करिवरके अदृष्ट हो जानेपर वह राजा तत्क्षण आँखोंसे अकचका गया। देखते-देखते हाथी लुप्त हो गया। इसपर नरपति अपने मनमें विस्मित होकर खड़ा रहा। १०

१५—मदनावलीका अपहरण व करकण्डका विलाप

जब राजा अपने डेरेपर आया, तब उसे वहाँ मदनावली दिखायी नहीं दी। वह हृदयहीन होकर चारों दिशाओंमें देखने लगा और काँपता हुआ हीनभावसे पृथ्वीपर भ्रमण करने लगा। राजा शंकित हो उठा और उसका गर्व गलित हो गया। कहाँ गयी—मेरी सर्वांग-भव्य पत्नी ? जो मदनावली मेरी आनन्दभूत थी, वह इस प्रकार विपरीत क्यों हो गयी ? फिर राजाने अच्छे-अच्छे किंकरोंको प्रेषित किया और कहा—प्रत्येक दिशाके मार्गसे अपनी स्वामिनीको देखो तो। ५ सब दिशाओंमें देखकर वे लौट आये और ऊँचे हाथ करके पुकार मचाने लगे। तब राजाने उन्हें रोते देखकर अपनी आँखोंसे भी तुरन्त आँसू बहाये (वह विलाप करने लगा) हे पादप ! जिस प्रकार प्रजापति सज्जनोंका बन्धु है, उसी प्रकार तू शकुनों (पक्षियों) का बड़ा बन्धु है; अतएव मेरी स्नेहकी पात्र सुन्दरीकी खबर तो कहो। हे मुग्धे ! मुग्धे ! तुझे कौन ले गया ? क्यों तू इस प्रकार कहीं छिपकर ठहरी हुई है ? हाय कुञ्जर, क्या तू यमका दूत था ? तू क्यों रोषसे १० मेरे प्रतिकूल हो गया ? ऐसे समयपर कोई एक विद्याधर जो सुन्दररूप, विद्यारूपी सागरका पारगामी था वह चिरकालीन स्नेह धारण करता हुआ राजाके आगे आकर खड़ा हो गया।

१६—विद्याधर-द्वारा करकण्डका सम्बोधन

उस खचरवरने राजाको बुलाते हुए कहा—हे नरपति ! तू इतना अधिक क्यों रोता है क्यों एक महिलाके कारण अपनी देहको खपाता है। लोगोंको यह महिला दुःख-समूहोंका घर है। जो नारी नरकवास उत्पन्न करती है, ऐसी नारीके साथ क्यों निवास किया जाये ? जो चित्तमें परिस्फुरित होने मात्रसे ज्वर (ताप) उत्पन्न करती है, ऐसी दुःख-उत्पादक नारीका कौन अनुसरण करे। रमणीके संगसे भववल्ली (जन्ममरणरूप संसारकी बेल) बढ़ती है और वह मनुष्यके अंगमें ५ दुःख लाती है। जिसके द्वारा बलवान्, बलहीन कर दिये जाते हैं, ऐसी अबलाका वे ही सेवन करें जो नितान्त हीन हों। इस वचनको सुनकर राजा निःश्वास भरता हुआ व 'हाय मदनावली' कहता हुआ उसकी ओर देखने लगा। खेचरको देखकर वह अपने मनमें लज्जित होकर एकक्षण नीचेको मुख किये रह गया। तब उस खेचरने उसे पुनः-पुनः कहा कि तू अपने सब लोगोंको छोड़कर क्यों बैठा है ? उसने उदास मन राजाको कोमल वचन-प्रोक्तियों-द्वारा सम्बोधित किया। १०

१७—विद्याधरसे करकण्डका प्रश्न

उसके वचनको सुनकर समर-धीर, करकण्डवीर अपने मनमें सन्तुष्ट हुआ। उसने खेचरसे पूछा कि आपने धर्मोपदेश देने योग्य यह रम्य वचन-विलास कहाँसे प्राप्त किया। क्या आपने

दूराउ पणासियहरिसरोसु किं मुणिवरु सेविउ विगयदोसु ।
तव दंसणे णयणइँ णिद्धयाइँ पइँ पेक्खिवि अण्णहिँ ण वि गयाइँ ।
कुलगयणचंदआणंदभूउ किं बंधउ अण्णहिँ जम्मि हूउ । 5
परिपुच्छिउ पइँ हउँ संसएण किं को वि देउ कहि णिच्छएण ।
तं वयणु सुणेविणु मइगहीरु आहासइ खेयरु णिवहो धीरु ।
पारावयकुले चिरलद्धजम्मु हउँ हुंतउ तुज्झु वि णयणरम्मु ।
घत्ता—तहिँ अच्छहिँ जा पंजरे ठियइँ रम्मसणु घरिणिहिँ वलिउ ।
ता गुरुफुक्कारहिँ फुक्करिवि महु समुहउ विसहरु संचलिउ ॥ १७ ॥ 10

१८

He explains to Karakanda his friendship and the other Vidyadhara's enmity towards him.

अवलोइवि तेँ महो गहिउ पाउ ता धाविउ खणे तुहुँ मिउसहाउ ।
मइँ करुणइँ रक्खहु विसहरासु छंडाविउ पुणु हउँ पइँ मि तासु ।
तहो भीएँ हउँ मुच्छापवण्णु पइँ करुणइँ महो णवयारु दिण्णु ।
तहो फलइँ सुओ विज्जाहिवासु उप्पण्णउ हउँ गुणणियरवासु ।
मइँ जाणिउ तुहुँ अइसंसएण जुज्झंतउ पेक्खिवि सहुँ गएण । 5
उवयारु महंतउ तुह वहंतु विज्जाहरकुमरहिँ सहुँ रमंतु ।
फिर होसमि तुज्झ वि हउँ सहाउ इउ मण्णिवि तुरियउ एत्थु आउ ।
सो विसहरु खेयरु हुउ खणेण णवकारइँ मुणिणा दिण्णएण ।
घत्ता—तहिँ अवसरे तेँ परिहवगएण मयणावलि पीणपओहरिया ।
तेँ करिवररूवेँ खेयरइँ णिय तुह घरिणि मणोहरिया ॥ १८ ॥ 10

१९

He assures the king that he will regain Madanāvalī and illustrates his point by the story of Naravāhanadatta.

उद्धाणणु उरु हत्थेँ हणंतु हा मुद्धि मुद्धि एहउ भणंतु ।
रोवंतउ पइँ पेक्खेवि आउ मा रोवहि छंडहि मणि विसाउ ।
अइपवर महाबल अवगणेवि आवेसहि जइयहुँ महि जिणेवि ।
एहु[१] खेयरु मण्णिवि गुणविसालु पणवेसइ पइँ पुणु सामिसालु ।
छणवासरससहरआणणीय पावेसइ पुणु इह कामणीय । 5
करकंडु सुणिवि तहो ललिय वाणि पडिवयणु भणइ ता दीहपाणि ।
भो खयर[२] सुलक्खण गुणविणीय किं आवहिँ तियँ[३] जे हरिवि णीय ।
तो खयरु भणइ महुरइँ सरेण हउँ अक्खमि तुम्हहँ किं परेण ।
घत्ता—णरवाहणदत्तहो वल्लहिया कणयामरवरगुण णिम्मलिया ।
सा मिलिय तुरंती तहो णिवहो विज्जाणियरहिँ संवलिया ॥ १९ ॥ 10

इय करकंडमहारायचरिए मुणिकणयामरविरइए भव्वयण-कण्णावयंसे पंचकल्लाणविहाण-कप्पतरुफलसंपत्ते णीलमहाणीलआयमणो णाम पंचमो परिच्छेउ समत्तो ।

॥ संधि ॥ ५ ॥

---

१८. १] सुहउ; D सुरउ.

१९. १] मह. २ S खेयर सलक्खणु. ३ S ति; J N ते.

कोई ऐसे मुनिवरकी सेवा की है जिन्होंने दूरसे ही हर्ष और रोषको नष्ट कर दिया है और जो दोषरहित हैं ? आपके दर्शनसे मेरे नेत्र ऐसे स्निग्ध हुए हैं कि वे आपको देखकर अन्य किसीकी ओर जाते ही नहीं हैं। क्या आप अन्य जन्मके अपने कुलरूपी गगनमें चन्द्रके समान आनन्द उत्पन्न करनेवाले मेरे कोई बन्धु हैं ? अथवा, मैं संशयपूर्वक आपसे पूछता हूँ कि आप कोई देव तो नहीं हैं ? मुझे निश्चयसे कहिए। यह वचन सुनकर वह गम्भीर-मति व धीर खेचर राजासे कहने लगा—पूर्वमें परेवाके कुलमें जन्म लेकर मैं तुम्हारा नयन-रम्य पक्षी था। उस जन्ममें जब मैं अपनी गृहिणी (परेवी) के साथ रमण करता हुआ तुम्हारे यहाँ पिंजड़ेमें रह रहा था, तब एक विषधर बड़ी फूत्कारोंसे फुफकारता हुआ मेरी ओर बढ़ा। ५ १०

१८—विद्याधर-द्वारा पूर्वजन्म-वृत्तान्त कथन

उसने मुझे देखकर मेरा पैर पकड़ लिया। तब तुम मृदुस्वभावी होते हुए उसी क्षण करुणापूर्वक विषधरसे मेरी रक्षा करनेके लिए दौड़ पड़े, और मुझे आपने उससे छुड़ा लिया। किन्तु उसके भयसे मैं मूर्च्छित हो गया। तब आपने करुणासे मुझे नमोकार मन्त्र दिया। उसके फलसे मैं जो शुक था वह गुणसमूहोंका निधान विद्याधर उत्पन्न हुआ हूँ। मैंने तुम्हें गजके साथ युद्ध करते देखकर बड़े संशयसे पहचाना। मैं तुम्हारे उस महान् उपकारको धारण करता हुआ विद्याधर कुमारोंके साथ रमण करते हुए भी यह सोचकर तुरन्त यहाँ आया हूँ कि मैं भी सम्भवतः तुम्हारा सहायक हो सकूँ। वह जो विषधर था वह भी मुनि-द्वारा दिये गये नमोकार मन्त्रके प्रभावसे उसी क्षण खेचर हुआ। चूँकि उस अवसरपर उसका तुम्हारे द्वारा पराभव हुआ था, अतएव उस खेचरने उस महान् हाथीका रूप धारण करके तुम्हारी पीनपयोधरा मनोहारिणी गृहिणी मदनावलीका अपहरण किया है। ५ १०

१९—विद्याधर-द्वारा मदनावलीकी पुनः प्राप्तिका आश्वासन

ऊँचा मुँहकर हाथसे उरस्थलको पीटते हुए, तथा हे मुग्धे! हे मुग्धे! ऐसा कहकर तुम्हें रोते हुए देखकर मैं यहाँ आया हूँ। अब आप रोइए मत, तथा अपने मनके विषादको छोड़ दीजिए। जब आप अतिप्रवर व महाबलवान् (द्रविड राजाओं) को पराजित कर व पृथ्वीको जीतकर यहाँ फिर लौटेंगे तब वही खेचर आपको महागुणशाली मानकर अपने स्वामिश्रेष्ठके रूपमें प्रणाम करेगा। तभी आप अपनी पूर्णचन्द्रमुखी कामिनीको भी पुनः प्राप्त करेंगे। उस खेचरकी इस ललित वाणीको सुनकर दीर्घपाणि करकण्डने पूछा—हे खेचर! जो सुलक्षण व गुण-विनीत स्त्रियाँ हरणकर ले जायी गयी हैं, वे क्या पुनः वापस आ सकती हैं ? तब खेचरने मधुर स्वरसे कहा—अन्य क्या, मैं तुम्हें (इसका उदाहरण) कहता हूँ। नरवाहनदत्तकी कनक व अमरके समान श्रेष्ठ गुणवती, निर्मल वल्लभा अनेक विद्याओंके समूहों-सहित उस राजाको शीघ्र ही प्राप्त हुई थी। ५ १०

इति मुनि कनकामर विरचित-भव्यजनकर्णावतंस पंचकल्याणविधानरूप कल्पतरु फल सम्पन्न करकण्ड महाराज चरित्रमें नील-महानीलका वर्णन करनेवाला पाँचवाँ परिच्छेद समाप्त।

संधि—६

१

Naravahanadatta is crowned king.

करकंडें पुच्छिउ सो कहइ णरवाहणदत्तहो तणिय कह ।
आयण्णहि तुहुँ एक्कें मणिणे आणंदिय जें सुरवरहँ सह ॥

एत्थम्मि भरहे वच्छावयंसि कउसंबि णयरि तहिँ अत्थि संसि ।
तहिँ अत्थि णराहिउ वच्छराउ जसु अणुदिणु णिम्मलु धम्मि राउ ।
तहो घरिणि सुवीणा णाम जाय हियएण सरइ जिणवरहो पाय । 5
तहो णंदणु अइसयगुणमहंतु णरवाहणु हूयउ जसमहंतु ।
जो सयलकलालउ पउरधामु रूवेण विडंबिउ जेण कामु ।
सो पिउणा पेक्खिवि बुद्धिवंतु किउ पट्टबंधु राएँ तुरंतु ।
अप्पुणु पडिवण्ण रिसिंदवित्ति वित्थारिय तिहुवणे णिययकित्ति ।
तउ करिवि घोरु मयणावहारि गउ सिद्धिविलासिणि तणइँ बारि । 10

घत्ता—णियजणणविओएँ विमणमणु णरवाहणदत्तु ण कहिँ रमइ ।
वाहजलोल्लियमुहकमलु विहलंघलु उद्धाणणु भमइ ॥ १ ॥

२

In sorrow for his father's retirement, he goes to the forest and meets a sage.

णरवाहणदत्तहो अमियलच्छि दिण्णी ण वि भावइ रायलच्छि ।
हिययम्मि वहंतउ जणणसोउ ण समीहइ सुंदरु अंगभोउ ।
पियसोउ वहंतउ णियमणम्मि ता णरवइ लहु एक्कहिँ दिणम्मि ।
सुरखेयरणरवरहिययरम्मि संपत्तउ गिरिकालिंजरम्मि ।
विज्जाहरकिण्णरणयणइट्ठु कुसुमावलिणंदणवणे पइट्ठु । 5
धम्माणुराउ जणमणि कुणंतु सहजायविरुद्धहँ दिहि जणंतु ।
मिच्छामयजणवयमणु हरंतु परमप्पयपवयणु अणुसरंतु ।
दूराउ णिवारिउ जेण दोसु तहिँ दिट्ठउ जइवरु हरियदोसु ।

घत्ता—तेण तुरंतएँ मुणिवरहो पयकमलहिँ जुंजउ णिययमणु ।
पुणु वंदिउ गुरु गुरुभत्तियएँ पयपाडिउ सयलु वि जेण जणु ॥ २ ॥ 10

---

१. १ S मणेण. २ SN जइ महंतु; J आइमंतु.

२. १ S अणयण; N जणमण. २ D परमप्पयवयणु वि.

संधि—६

१—नरवाहनदत्तका राज्याभिषेक व पितृशोक

करकण्डके पूछनेपर उस खेचरने कहा—हे राजन्, अब तू एकाग्र मनसे नरवाहनदत्तकी उस कथाको सुन, जिसके द्वारा देवोंकी सभा भी आनन्दित हुई थी। इसी भरतक्षेत्रमें, वत्सदेश में प्रधान, प्रशंसनीय कौशाम्बी नगरी है। वहाँ वत्सराज नराधिप था जिसका प्रतिदिन धर्ममें निर्मल अनुराग रहता था। उसकी गृहिणी सुवीणा नामकी थी और वह भी हृदयसे जिनवरके चरणोंका स्मरण करती थी। उस राजाका पुत्र अतिशय गुणशाली महायशस्वी नरवाहन नामका हुआ। वह समस्त कलाओंका आलय, अति तेजस्वी, एवं रूपमें कामदेवके समान था। उसे पिताने बुद्धिमान् देखकर शीघ्र ही उसका पट्टबन्ध (राज्याभिषेक) कर दिया और स्वयं आपने ऋषीन्द्र वृत्ति (मुनि-दीक्षा) स्वीकार कर ली, तथा त्रिभुवनमें अपनी कीर्ति फैलायी। कामवासनाको दूर करनेवाला घोर तप करके, वह सिद्धिविलासिनी (मुक्ति) के द्वारपर जा पहुँचा। इधर अपने पिताके वियोगमें उदास-मन होकर नरवाहनदत्त कहीं भी प्रसन्न नहीं होता था। वह अश्रुजलसे अपने मुखको गीला किये हुए विह्वल रूपसे मुँह उठाये इधर-उधर फिरता था।

२—नरवाहनदत्तका वनमें मुनिदर्शन

नरवाहनदत्तको वह दी हुई अमित (अपार) लक्ष्मीयुक्त राजलक्ष्मी भाती नहीं थी। वह हृदयमें पिताका शोक धारण करता हुआ सुन्दर शारीरिक सुखोंकी इच्छा नहीं करता था। पिताके शोकको अपने मनमें लिये हुए वह नरपति एक दिन सहज ही उस कालिंजर गिरिपर जा पहुँचा जो देवों, खेचरों तथा नरवरोंके हृदयको रमणीय था। वहाँ वह विद्याधर व किन्नरोंके नेत्रोंको इष्ट राजा पुष्पोंकी पंक्तियोंसे युक्त नन्दन वनमें प्रविष्ट हुआ। वहाँ उसने एक यतिवरके दर्शन किये जो लोगोंके मनमें धर्मानुराग उत्पन्न करते थे, सहज-विरोधी जीवोंमें परस्पर स्नेह उत्पन्न करते थे; मिथ्या मत (मिथ्यात्व) से लोगोंके मनको हटाते थे; परमात्म प्रवचनका अनुराग करते थे; जिन्होंने दोषोंका दूरसे ही निवारण किया था; तथा जिन्होंने रोषका परित्याग कर दिया था। नरवाहनने तुरन्त इन मुनिवरके चरणकमलोंमें अपना मन योजित किया (लगाया) और फिर बड़ी भक्तिसे उस गुरुकी वन्दना की जिन्हें सभी लोग पैरोंमें पड़कर नमस्कार करते थे।

३

The sage preaches the householder's dharma to him.

पयपाडियफणिसुरवरणरिंद तुहुँ करुण करेविणु मुणिवरिंद ।
महो अक्खहि णिम्मलु धम्मसारु परिपावउँ जेँ संसारपारु ।
ता कहइ भडारउ वीयराउ जेँ बद्धउ सिवपहे णिविडु राउ ।
बहुएण पलावेँ किं किएण भाविज्जइ जिणवरु सहुँ हिएण ।
अणवरउ णराहिव दाणवुद्धि अइणिम्मल किज्जइ मणविसुद्धि । 5
अणुवयइँ पंच सिरसिहरे देवि सिक्खावय गुणवय दिव्व लेवि ।
भेसहआहाराभयसुणाणु चउभेयभिण्णु जो देइ दाणु ।
हियइच्छिय णिम्मल फलसमिद्धि सो लहइ णरेसर विउलरिद्धि ।
घत्ता—णिसिभोयणु णरवरु परिहरइ मोणवइँण भोयणु असइ ।
सो अच्छरराणियहिँ परियरिउ सुरहर लीलएँ परिवसइ ॥ ३ ॥ 10

४

The sage illustrates the bad effect of expecting penitential reward by the story of Mādhava and Madhūsudana.

उवहसिय सुरूवेँ णरसुरिंद मणि खोउ ण किज्जइ हे णरिंद ।
खोएण णिवज्झइ गुरुउ कम्मु णउ पावइ सोहणु मणुवजम्मु ।
उप्पज्जइँ वयरइँ हिययहारि णयणाण पियारी लडहणारि ।
मणरंजण णंदण इट्ठ भाय वइराण णियाणइँ सयल आय ।
णउ सक्कहिँ तहिँ भवि दुहु करेवि णीयाणु करहिँ परिभउ वहेवि । 5
अण्णहिँ भवि एहँ दुहु देहुँ जेव होएज्जहि अम्हहँ जीव तेव
चिरु पयडी जा कह मुणिगणेण सा णिसुणि णरेसर थिरमणेण ।
एत्थत्थि पसिद्धी णयणरम्म महुराउरि मणिचित्तलियहम्म ।
तहिँ दियवर दाइय णाइँ हत्थि माहवमहुसूयण दोण्णि अत्थि ।
ते वहरु महंतउ मणे वहंति अवरोप्परु गुणगणु णउ सहंति । 10
घत्ता—दिवसेहिँ गलंतहिँ माहवहो धणरिद्धि परम्मुह लहु भइउ ।
णउ णिवसणु घरिणिहिँ संपडइ बलसत्ति वि सयल वि तहो गलिय ॥४॥

५

Mādhava in his penury goes to his rival Madhusūdana.

तहो घरिणिएँ ता एक्कहिँ दिणम्मि संचिंतिउ दुत्थिएँ णियमणम्मि ।
तुहुँ पिययम णिसुणहि वयणु किं पि महुसूयणु दुरिवउ सरहु गंपि ।
मुक्खाइँ किलावियणिद्धणाहँ सो देइइ भोयणु विहिँ जणाहँ ।
तहे वयणु सुणेविणु माहवेण पडिवयणु भणिउ खलिएँ रवेण ।
माणुण्णइँ छंडिवि किं परासु घरि जाइवि पइसहुँ दुहयरासु । 5
वरि कवलहिँ खाइवि विसु मुयउ णउ दुज्जणघरि किंकरु हुयउ ।
पुणु भणियउ माहवघरिणियाइँ माणुण्णइणियरिँ किं कियाइँ ।

---

३. १ प्रतिषु 'सिवपइ.'
४. १] परिहउ.

३—मुनिका नरवाहनदत्तको धर्मोपदेश

फिर नरवाहनदत्तने मुनिसे कहा—नाग, देव और नरेन्द्र जिनके चरणोंमें नमस्कार करते हैं, ऐसे हे मुनि-वरेन्द्र, आप करुणा करके मुझे वह निर्मल धर्मका सार कहिए जिससे मैं संसारका पार पा सकूँ। तब शिवमार्गमें दृढ़ अनुराग बाँधनेवाले उन वीतराग भट्टारकने कहा—बहुत प्रलाप करनेसे क्या लाभ ? अपने हृदयसे जिनवरकी भावना करो। हे नराधिप, निरन्तर दानमें बुद्धि व अति निर्मल मनकी विशुद्धि करते रहना चाहिए। जो कोई पाँच अणुव्रतोंको ५ अपने सिरके ऊपर रखकर (धारण करके) तथा दिव्य शिक्षाव्रत और गुणव्रत लेकर, औषध, आहार, अभय और सुज्ञान, इन चार भेदोंसे विभक्त दान देता है, वह, हे नरेश्वर, मनोवांछित निर्मल समृद्धि तथा विपुल ऋद्धि रूप फल पाता है। जो मनुष्य निशिभोजनको त्याग देता है तथा मौनव्रतसे भोजन करता है, वह अप्सरारूपी गणिकाओंसे सेवित देवोंके विमानमें लीला करता हुआ रहता है। १०

४—निदान वैरका दृष्टान्त

अपने रूपसे नरेन्द्रों व सुरेन्द्रोंका उपहास करनेवाले, हे नरेन्द्र, मनमें शोक नहीं करना चाहिए। शोकसे बड़ा कर्म बँधता है, जिससे शोभनीक मानव-जन्म नहीं प्राप्त होता। हृदयहारी व नयनप्यारी सुन्दर नारी वैरसे उत्पन्न होती है, व वैरके निदानसे ही मनरंजन पुत्र व इष्ट भ्राता आदि सब आते हैं। वे एक भवमें दुःख उत्पन्न नहीं कर सकते, इसलिए वे पराभवकी भावना रखकर निदान करते हैं कि अन्य भवमें जिस प्रकार हम इसे दुःख दे सकें, ऐसा हमारा जीव उत्पन्न ५ होवे। इस विषयपर मुनिगणने जो कथा चिरकालसे प्रगट की है उसे, हे नरेश्वर, स्थिर मनसे सुनो। इसी देशमें प्रसिद्ध व नयनरम्य मथुरापुरी है, जहाँके भवन मणियोंसे चित्रित हैं। वहाँ माधव और मधुसूदन नामके दो ब्राह्मण थे, जो दायाद होते हुए परस्पर हाथियोंके समान वैरी थे। वे अपने मनमें महान् वैर रखते थे और एक दूसरेके गुणगणको सहन नहीं करते थे। दिवस जाते शीघ्र ही माधवकी धन-ऋद्धि पराङ्मुख हो गयी। यहाँतक कि उसकी गृहिणीके लिए वस्त्र १० भी प्राप्त नहीं होता था। उसकी समस्त बलशक्ति भी क्षीण हो गयी।

५—माधवकी दुर्भावना और मधुसूदनकी सज्जनता

तब उसकी गृहिणीने अपनी दुरवस्थामें एक दिन मनमें विचार किया (और अपने पतिसे कहा)—हे प्रियतम, तू कुछ मेरा वचन सुन। जाकर तुरन्त मधुसूदनका अनुसरण कर। वह भूखसे पीड़ित व निर्धन हम दोनों जनोंको भोजन देगा। उसका यह वचन सुनकर माधवने गद्-गद स्वरसे उत्तर दिया—मैं अपनी मानोन्नतिको छोड़कर दुःखकारी परायेके घरमें जाकर कैसे प्रवेश करूँ ? अपने कौरोंसे विष खाकर मर जाना अच्छा, किन्तु दुर्जनके घर किंकर होना अच्छा ५ नहीं। इसपर माधवकी गृहिणीने फिर कहा—ऐसी मानोन्नतिका पुंज लेकर रहनेसे क्या लाभ ?

तहे सुणिवि वयणु महुसूयणासु गउ माहउ तहो घरि सज्जणासु ।
घत्ता—सहुँ घरिणिएँ माहउ दुहणिलउ घरे आयउ पेक्खिवि विमणमणु ।
महुसूयणु करपंजलि करिवि तहो सम्मुहुँ हूयउ एयमणु ॥ ५ ॥ 10

६

The latter receives him well; but Mādhava thinks of a peculiar way of punishing him in his next birth.

विणएण विणामियसीसएण भणियाइँ ताइँ महुसूयणेण ।
महो पियरइँ तुम्हइँ कवणु चोज्जु हउँ तुम्हहँ दिण्णउ असमि भोज्जु ।
जगि करुणवंतु अइमण्णणिज्जु[1] कह होइ ण सज्जणु वंदणिज्जु ।
हियएहिँ ताइँ मच्छरु वहंति तहो तणिय रिद्धि मणि णउ सहंति ।
एक्कहिँ दिणि रोसेँ माहवेण किउ गमणु पयागहो तुरिउ तेण । 5
तहिँ दिट्ठु तवोहणु कसणु एक्कु तहो पायमूलि खणु एक्कु थक्कु ।
सो पुंच्छिवि[2] जइवरु माहवेण तवचरणु लयउ णिट्ठुरहिएण ।
तणु खवियउ तेँ सल्लेहणेण सो मुयउ णियाणइँ तक्खणेण ।
घत्ता—हउँ होसमि महुसूयणहो सुउ महुराउरिविप्पहो वल्लहउ ।
पुणु देविणु दुक्खु महंतु तहो महो पच्छइँ मरणु वि संभवउ ॥६॥ 10

७

Mādhava is reborn Madhusūdana's son and dies young, thus causing grief to the latter.

सो माहउ महुसूयणघरम्मि उप्पण्णउ दियहहिँ सुंदरम्मि ।
जणसूहउ सयलकलाणिहाणु लहुओ वि हुयउ लोयहँ पहाणु ।
ता एक्कहिँ दिणि जमदूयएहिँ लहु विप्पहो णंदणु णियउ तेहिँ ।
महुसूयणु पुत्तहो तणु सरंतु धरणियले णिवडिउ सिरु धुणंतु ।
तहो कंठु ण मेल्लइ मरणे जाइ रोवंतउ एक्कु वि खणु ण थाइ । 5
बुज्झाविउ णउ बुज्झइ वराउ संवड्ढउ तणयहो उवरि भाउ ।
सुअदुक्खइँ मरणहुँ बंभणाउ पायागहो गउ तग्गयमणाउ ।
दुक्खाणलदड्ढउ मरइ जाम खेयरइँ केण सो धरिउ ताम ।
घत्ता—तेँ अक्खिउ वइयरु माहवहो तवचरणणियाणइँ जो मुयउ ।
महुसूयण महुराउरिणयरि तुहु णंदणु मणहरु सो हुयउ ॥ ७ ॥ 10

८

Naravāhanadatta narrates his experiences; how he lost his wife.

सो सुणिवि वयणु विज्जाहरासु गउ सोउ मुएविणु णियघरासु ।
सोएण विडंबिय णरसुरिंद तेँ सोउ ण किज्जइ हे णरिंद ।
ता लद्धावसरइँ तहिँ ठिएण णिउ पुच्छिउ केण वि खेयरेण ।
भो णरवइ किं पइँ दिव्वदेह उवसाहिय मेइणि पवर एह ।
ता कहइ णरेसरु खेयरासु मणिरयणमउडमंडियसिरासु । 5
कुमरत्तणि हउँ बलवंतदेहु महो माणिणि कवण ण करइ णेहु ।

६ १ N अणमण्णिणिज्जु. २ N पुज्जिवि.

उसकी यह बात सुनकर माधव सज्जन मधुसूदनके घर गया। दुखी और उदास मन माधवको गृहिणी-सहित अपने घर आया देखकर मधुसूदन हाथ जोड़कर एकाग्र मनसे उसके सम्मुख उपस्थित हुआ।

६—माधवका निदानपूर्वक मरण

मधुसूदनने विनयसे सिर झुकाकर उनसे कहा—हे मेरे माता-पिता, तुम्हें कौन चिन्ता है ? मैं तो तुम्हारा दिया अन्न खाता हूँ। जगत्‌में करुणावान् सज्जन क्यों न अति माननीय और वन्दनीय होवें ? किन्तु वे दोनों (माधव और उसकी गृहिणी) अपने हृदयमें मात्सर्य (डाह) रखते हुए मधुसूदनकी ऋद्धिको अपने मनमें सहन नहीं करते थे। एक दिन माधवने रोषसे अकस्मात् प्रयागका गमन कर दिया। वहाँ उसे एक कृश तपस्वीका दर्शन हुआ और वह एक क्षण उसके चरणोंके समीप बैठा। माधवने यतिवरसे पूछकर निष्ठुरभावसे तपश्चरण ले लिया। उसने संलेखना-द्वारा अपने शरीरको क्षीण कर डाला और वह तत्क्षण निदान करके मरा कि मैं मथुरापुरीके मधु-सूदनका प्यारा पुत्र होऊँ और फिर उसे महान् सुख देकर पीछे मेरा मरण हो जाये। ५

७—मधुसूदनका पुत्र-प्रेम व मोहका निराकरण

इस प्रकार माधव कुछ दिनों पश्चात् मधुसूदनके सुन्दर गृहमें उत्पन्न हुआ। बचपनमें ही वह जनप्रिय, सकल कलाओंका निधान तथा लोगोंमें प्रधान हो गया। फिर एक दिन वह विप्रका छोटा-सा पुत्र यमदूतों-द्वारा अपहृत (मृत्युको प्राप्त) हो गया। मधुसूदन पुत्रके शरीरका अनु-सरण करता हुआ, सिर धुनता हुआ, भूतलपर गिर पड़ा। वह उसका कण्ठ छोड़ता ही नहीं था। स्वयं मरने जाता व रोता हुआ एक क्षण भी नहीं रुकता था। वह बेचारा समझानेपर भी समझता ही नहीं था। अपने पुत्रके ऊपर उसने ऐसा अनुरागभाव बाँधा था। पुत्रके दुःखसे वह ब्राह्मण उसीमें चित्त लगाये मरनेके लिए प्रयागको गया। दुःखाग्निसे दग्ध होकर जब वह मरने लगा, तब किसी खेचरने उसे रोका। उस खेचरने उसे उस माधवका वृत्तान्त कहा जो तपश्चरण करके निदानपूर्वक मरा था। उसने कहा—हे मधुसूदन, माधवका वही जीव मथुरा नगरीमें तुम्हारा मनोहर पुत्र हुआ था। ५ १०

८—नरवाहनदत्तका आत्मनिवेदन

विद्याधरका यह वचन सुनकर मधुसूदन शोक छोड़ अपने घर लौट गया। विद्याधर नर-वाहनदत्तसे बोला—हे नरेन्द्र, सभी नरेन्द्र और सुरेन्द्र शोकसे विडम्बित हुए हैं। इसलिए शोक नहीं करना चाहिए।

तत्पश्चात् अवसर पाकर वहींपर बैठे हुए किसी एक खेचरने राजा नरवाहनदत्तसे पूछा—हे दिव्यदेह नरपति, आपने इस विशाल पृथ्वीको किस प्रकार अपने वशीभूत किया ? तब उस मणिरत्नमयी मुकुटसे मण्डित सिरवाले खेचरको नरेश्वरने कहा—कुमारकालमें मैं सबल-शरीर था। कौन ऐसी मानिनी स्त्री थी, जो मुझसे स्नेह न करे। मेरे नामसे शत्रुजन थर्रा जाते ५

महो णामें अरिणर थरहरंति भयभीयचित्त वणु अणुसरंति।
जा अच्छउँ हउँ सहुँ सयणरेण महो घरिणि ताव णिय खेयरेण।
घत्ता—तहे तणएँ विओएँ दुम्मियउ विहलंघलु कह व ण रइ करमि।
किं देसहो हुंतउ णीसरमि किं केत्तहो जाइवि हउँ मरमि ॥ ८ ॥ 10

९

How he meets a young woman near Paithan.

इउ चिंतिवि सयलु वि णियघराउ गउ सुरसरितीरु सुरोहराउ।
पइठाणसमीवइँ सुहणिवासु मइँ जिणवरु देक्खिवि दुहविणासु।
पणवेप्पिणु जिणु वीसमिउ तेत्थु कुसुमाउहसरु पइसइ ण जेत्थु।
णिद्दाभरमउलियलोयणेण पडिसद्दु सुणिउ तहिँ तक्खणेण।
किं सोवहि कुमर विरत्तचित्तु तुह तुरिउ मिलेसइ णियकलत्तु। 5
परिफुरियउ तं महो वयणे राउ णीसरियउ हउँ जिणमंदिराउ।
अवलोइय चउदिसु मणहरीय ण वि णयणहिँ दिट्ठिय सुंदरीय।
णीसरिवि गयउ उववणहो जाव तहिँ दिट्ठी सुंदरि का वि ताव।
घत्ता—मुहकमलु करंती करकमले अंगुलिएँ लिहंती धरणियलु।
कोमलवयणपउत्तियहिँ सा परिपुच्छिय मइँ सयलु ॥ ९ ॥ 10

१०

The woman tells him about her love troubles.

तुहुँ सुंदरि अच्छहि किं वणम्मि समणयणहिँ झायहि किं मणम्मि।
सेण्णाणसरोरुहखरदिणिंद ता ताइँ पयासिउ महो खगिंद।
विज्जाहरपव्वयदाहिणंगे पुरि अत्थि जयंती सिंधुसिंगे।
तहिँ धूमकेउ विज्जाहिणाहु[2] घरि घरिणि सुणंदा अत्थि ताहु[3]।
अवरुप्परु विरइयतिलरिणाहँ हउँ धूव हूव तहु विहिँ जणाहँ। 5
एक्कहिँ दिणे सहियहिँ अणुसरेवि एत्थागय कीला मणे धरेवि।
णाणाविहकीलाकोलिरीहिँ सहुँ सहियहिँ खेलमि सुंदरीहिँ।
जा कील करेविणु सुह ठियाउ ता खेयरु मयणामरु इहाउ।
घत्ता—सो पेक्खिवि मयणें हउँ णडिय वायाहय केलि व कंपविय।
महो हियउ मुणंतिएँ सहयरिएँ तहो सहयरु जाइवि अणुसरिय ॥१०॥ 10

११

How she had fallen in love with a Vidyādhara.

सो पुच्छिउ ताएँ महासईएँ को अक्खहि पहु णिम्मलमईएँ।
सो भणइ एत्थु विजयड्ढे रम्मि सिरिउप्पलखेडि मणोहरम्मि।
तहिँ खेयरु हूयउ पउमएउ तहो तणउ तणउ पहु मयणवेउ।
उत्तरवेयड्ढहो गुणणिकेउ मणवेयहो णंदणु पवणवेउ।
तहो णेहएँ तहिँ किर जाइ जाव ता तुम्हइँ दिट्ठउ एहु ताव। 5

---

८. १ D सहयरेण; N सह घरेण. २ SD भइ.

१०. १ D J N सण्णाण. २ D विज्जाहिवासु. ३ D तासु. ४ N में इससे पूर्व हासियेमें जोड़ा गया है–विणु सुयणहु तहो को करइ णेहु, आणेविणु वल्लह परममोहु.

थे और चित्तमें भयभीत होकर वनका अनुसरण करते थे। इस प्रकार जब मैं अपने स्वजनों-सहित रहता था, तब एक खेचर मेरी गृहिणीका अपहरण कर ले गया। उसके वियोगसे दुखित होकर विह्वल हुआ मैं किसी प्रकार भी अपने चित्तको प्रसन्न नहीं कर पाता था (और ऐसा विचार होता था) कि क्या मैं देशसे निकल जाऊँ, अथवा कहीं जाकर आत्मघात कर लूँ ? १०

९—नरवाहनदत्तका पत्नी-वियोगमें भ्रमण

ऐसा सब चिन्तन कर मैं अपने घरसे निकल पड़ा और उस सुरसरि (गोदावरी) के तीरपर जा पहुँचा जो सुरगणोंको प्यारा है। प्रतिष्ठान (पैठण) के समीप मुझे सुखके निवास व दुःखके विनाशक जिनवरके दर्शन हुए। जिनेन्द्रको प्रणाम कर मैं उसी स्थलपर (मन्दिरमें) विश्राम करने लगा, जहाँ कामदेवका बाण प्रवेश नहीं करता। जब निद्राके भारसे मेरे नेत्र मुँद रहे थे, तभी मैंने उसी क्षण एक शब्दध्वनि सुनी—'हे कुमार, तू विरक्त चित्त हुआ क्यों सो रहा है; शीघ्र ही तुझे अपनी भार्या मिल जायेगी।' इससे मेरे मुखपर रंग आ गया, और मैं जिनमन्दिरसे निकल पड़ा। मैंने चारों दिशाओंमें देखा किन्तु वह मनोहर सुन्दरी मेरी आँखोंको कहीं दिखायी न दी। वहाँसे निकलकर जब मैं उपवनमें पहुँचा, तब वहाँ मुझे कोई एक सुन्दरी दिखायी पड़ी। वह अपने मुखकमलको हस्तकमलपर करके अँगुलीसे भूतलपर कुछ लिख रही थी। मैंने कोमल वचन-प्रोक्तियों-द्वारा उससे सब बात पूछी। ५ १०

१०—विद्याधरीका आत्मनिवेदन

मैंने पूछा—हे सुन्दरि, तू इस वनमें क्यों बैठी है, और शान्त नेत्रोंसे अपने मनमें क्या ध्यान कर रही है ? तब, हे सज्ञानरूप कमलोंके प्रखर सूर्य खगेन्द्र, उसने मुझपर प्रगट किया कि विद्याधर पर्वतके दक्षिण भागमें सिन्धु-शिखरपर जयन्ती नामकी पुरी है, वहाँ धूमकेतु नामका विद्याधर राजा रहता है। उसके घरमें उसकी सुनन्दा नामकी गृहिणी है। परस्पर स्नेह करनेवाले उन दोनोंकी मैं पुत्री उत्पन्न हुई। एक दिन अपनी सखियोंके साथ चलकर मनमें क्रीड़ाकी इच्छा करके यहाँ आ पहुँची और नानाप्रकारकी क्रीड़ाओंमें आसक्त हुई अपनी सुन्दरी सखियोंके साथ खेलने लगी। जब क्रीड़ा करके हम सब सुखसे बैठी थीं, तब मदनामर नामका खेचर यहाँ आया। उसे देखकर मैं मदनसे विह्वल हो गयी, और पवनसे आहत केलीके समान काँप उठी। मेरे हृदयको जानकर मेरी सहचरीने जाकर उस विद्याधरके सहचरका अनुसरण किया। ५

११—उसके प्रेमी विद्याधरका परिचय

उस निर्मलमति महासखीने उस मदनामरके सखासे पूछा—कहिए, ये कौन हैं ? उसने कहा—इस रम्य विजयार्धपर मनोहर श्री उत्पलखेड़ नगरमें पद्मदेव नामका खेचर हुआ है, उसीका यह मदनदेव नामका पुत्र है। उत्तर विजयार्धमें मनवेगका गुणनिधान पुत्र पवनवेग रहता है। उसीके स्नेहसे यह वहाँ जा रहा है। इसी बीच तुमने उसे यहाँ देख लिया है। उसने भी मेरे

परिपुच्छिवि सो कुलु महो महंतु   मणु मेरउ णेहलु सो लहंतु ।
इउ कहिवि ताइँ गय खयर बे वि   मयणामरु आयउ पुणु वलेवि ।
तहो लज्जएँ ण वि महो वयणि वाणि बोल्लंति वि तें सहुँ वहउँ काणि ।
ता सहियएँ भणिउ तुरंतियाएँ   भो सुंदर णिवसहि सहुँ पियाएँ ।

घत्ता—णियकंठउ लेविणु णियकरइँ मुत्ताहलमाला सुंदरिय   10
जा घल्लइ कंठइँ महो तणइँ ता कोक्कहुँ आइय सहयरिय ॥ ११ ॥

१२

How her lover was turned in to a parrot by the curse of an ascetic girl whose modesty he outraged.

ता केउमइएँ हउँ घरहो णीय   विवणम्मण घरे दुक्खेण थीय ।
पुणु वलिवि आय हउँ पंथ जाव   मयणामरु मइँ ण वि दिट्ठु ताव ।
तहो तणउ विरहु विज्जाहरीएँ   परिअक्खिउ काएँ वि दुहहरीएँ ।
सुविरुद्धवयणु पुणु पुणु लवंतु   उद्धाण्णु विहलंघलु भमंतु ।
विरहाणलताविउ पइँ सरंतु   रिसिकण्णहे लग्गउ सो तुरंतु ।   5
ता तुरिउ विलक्खी हूइयाएँ   मयणामरु सूयउ कियउ ताएँ ।
तहे सहियएँ धम्में तरलियाएँ   सा भणिय तुरंतिय करुणियाएँ ।
तुहुँ देवि अणुग्गहु करहि तेव   णियभज्जहे सहुँ कीलेइ जेव ।

घत्ता—ता भणियउ ताएँ महासइएँ णरवाहणदत्तइँ जं दिवसि ।
परिणेवउ रूउ मणोहरउ रइविब्भमणामउ लद्धजसि । ॥ १२ ॥   10

१३

Another woman arrives there with a portrait.

हे सहियरे सुंदरु ललियदेहु   णरु होसइ तइयहुँ पुणु वि एहु ।
हे सुंदर इउ महो ताइँ कहिउ   इउ भणिणवि मइँ वणवासु गहिउ ।
आयण्णिवि तं हउँ थियउ जाव   लीलावइ आइय तेत्थु ताव ।
तहे करयले णिहियउ पडु विचित्तु   पेच्छंतहँ मोहइ जणइँ चित्तु ।
परिपुच्छिय सा मइँ उज्जएण   एत्थागय तुहुँ कज्जेण केण ।   5
ता भणिउ ताएँ सुणि पवर वीर   जणवल्लह सुंदर मेरुधीर ।
विजयड्ढहो दाहिणसिंधुतीरे   सुरखेयरपरिमलवरसमीरे ।
रयणाण णिलउ णयणाहिरामु   तहिँ अत्थि णयरु कणयउरु णामु ।

घत्ता—तहिँ राणउ णामें हंसरहु विज्जाहरणियरहिँ परियरिउ ।
हंसिणिएँ हंसु व मणहरउ सो विमलाएविएँ अणुसरिउ ॥ १३ ॥   10

१४

She gives information about his lost wife.

तेँ आणिय माणवि[1] हरिवि का वि   अहिलासहो कह व ण तहो गयो[2] वि ।
तहो मंदिरे अच्छइ सरियधम्म   जा मयणकरंडी रयणरम्म ।
ण वि जंपिउ केण वि समउ ताएँ   णियरमणु अलेहिउ तग्गयाएँ[3] ।

११. १ D N णियकुलु.

१४. १ J S माणिवि. २ DN तग्गाया वि. ३ N भग्गयाएँ.

महान् कुलकी बात पूछ ली। मेरे स्नेहक मनको लेकर वह खेचर, तथा पूर्वोक्त वार्तालाप करके ५
उसका वह सहचर, ये दोनों विद्याधर वहाँसे चले गये। मदनामर पुनः लौटकर आया। किन्तु
लज्जावश मेरे मुखसे वाणी ही नहीं निकली। उसके साथ बोलनेमें भी मुझे लाज लगी। तब मेरी
सखीने तुरन्त उससे कहा—हे सुन्दर, प्रियाके साथ बैठिए। इसपर उसने अपने हाथसे अपने कण्ठ
की सुन्दर मोतियोंकी माला ज्योंही मेरे कण्ठमें डाली, त्योंही एक सहचरी मुझे बुलाने आ पहुँची। १०

१२—ऋषिकन्या-द्वारा शाप व भविष्यवाणी

फिर केतुमती मुझे घर ले गयी। मैं घरमें उदास मनसे दुःखपूर्वक रही। मैं जब पुनः लौटकर उसी मार्गपर आयी, तब मुझे वहाँ मदनामर दिखायी नहीं दिया। उसके विरहकी बात एक कोई दुःखहारिणी विद्याधरीने मुझे सुनायी कि—मदनामर पुनः-पुनः बहुत विरुद्ध वचन बोलता हुआ (असंबद्ध प्रलाप करता हुआ) मुँह उठाये विह्वल होकर घूमता हुआ, विरहानलसे संतप्त होकर तेरा स्मरण करता हुआ, शीघ्र एक ऋषि-कन्यासे जा लगा। उस कन्याने तुरन्त घबराकर ५ (अपने शाप-द्वारा) मदनामरको सूआ बना दिया। तब उसकी सखीने धर्मसे तरलित होकर तुरन्त करुणापूर्वक ऋषि-कन्यासे कहा—हे देवि, तुम इतना तो अनुग्रह करो कि यह अपनी भार्यासे क्रीड़ा कर सके। तब उस महासतीने कहा कि जिस दिन नरवाहनदत्तसे मनोहर रूपवती व यशःप्राप्त रतिविभ्रमा नामकी कन्यासे विवाह होगा—

१३—नरवाहनदत्तके पास चित्रपट लेकर लीलावतीका आगमन

हे सखि, तब यह पुनः सुन्दर और ललित देह मनुष्य हो जावेगा। हे सुन्दर, (नरवाहनदत्त राजा)—यह बात उस विद्याधरीने मुझसे कही। और उसीको मानकर मैंने वनवास ग्रहण कर लिया। (नरवाहनदत्त विद्याधरसे कहता है कि) यह सुनकर मैं जब वहीं बैठा था,- तब वहाँ लीलावती आयी। उसके हाथमें एक सुन्दर चित्रपट था, जो देखनेवाले लोगोंके चित्तको मोहित करता था। मैंने उद्यत होकर उससे पूछा कि तू किस कार्यसे यहाँ आयी है? तब उसने कहा— ५ "हे प्रवरवीर, जनवल्लभ, सुन्दर, मेरुधीर, सुन। विजयार्द्धके दक्षिणमें सिन्धुके तीरपर जहाँ देवों और खेचरों (को प्रसन्न करनेवाली) उत्तम सुगन्धित वायु चलती है, वहाँ रत्नोंका निधान, नयनाभिराम कनकपुर नामका नगर है। वहाँ विद्याधरोंके समूहोंसे सेवित हंसरथ नामका राजा है। वह विमला देवीसे युक्त ऐसा मनोहर दिखायी देता है जैसा हंसिनीके साथ हंस।

१४—नरवाहनदत्तकी पत्नी मदनमंजूषाका पता

वह किसी एक मानवीको हरकर ले आया है। किन्तु उस मानवीको उसके प्रति कोई अभिलाषा नहीं है। वह नयनरम्य मदनकरंडी (मदनमंजूषा) उसके महलमें धर्मका अनुसरण करती हुई रहती है। वह किसीके साथ बातचीत भी नहीं करती। उसने चुपचाप मन लगाकर

सो पेक्खवि णियमणि रमइ जाव वेगवइ सुखेयरि आय ताव ।
परिपुच्छिय सरमंजूस ताएँ को लिहियउ पइँ एहु भणहि माए । 5
किं खेयरु किण्णरु सुरु णरो वि किं वम्महु[4] संधियगुणसरो वि ।
वेगवइहे कहियउ ताएँ सारु णरवाहणु महु पिउ एहु चारु ।
अवलोइउ[5] जा तं फलहु लेवि धरणियले णिवडिय तणु धुणेवि ।
घत्ता—परिपुच्छिय जाणिवि वेगवइ किउ हासउ कणयमईए तहे ।
ण वि रुचइ कवणु वि ताहे वरु रूवेण वि दिट्ठइँ गय धरहे ॥ १४ ॥ 10

१५

Naravahanadatta is attracted by the portrait brought by her.

तं कोडएँ देक्खहुँ लहुसलहु लेवाविउ[1] कणयमईए फलहु ।
परिभावइ जा पुणु तं मणम्मि धरणियले णिवडिय सा खणम्मि ।
दुक्खेण सचेयण कह व हूअ परिपुच्छिय सहियहिँ सरलभूअ ।
मुच्छाइँ पवण्णी[2] सहिए काइँ तुहुँ दुक्खइँ भणु हिययम्मि जाइँ ।
सा भणइ बहिणि इहु पडु विचित्तु[3] महो कीयउ एण णिरत्थु चित्तु । 5
किं सुरउ माइ किं होइ कामु लइ भावइ एयहो तणउ णामु ।
तहो विरहेँ अइविमणम्मणीहिँ हउँ पेसिय ताहिँ मि बिहिँ जणीहिँ ।
चिरु चारणमुणिणा जं भणीउ तं ताहिँ मि णियमणि परिगणीउ ।
रइविब्भम जो परिणेइ संतु सो होसइ अम्हहँ तणउ[4] कंतु ।
सा तुरिउ लिहाविय पडे सुराय सो पडु लएवि हउँ एत्थु आय । 10
घत्ता—जा पडु वि लएविणु णियकरइँ पुणु भाविउ रूउ मणोहरउ ।
ता मुच्छएँ[5] रुंभिउ हियउ महो हे खेयर किं पि ण संभरउ ॥ १५ ॥

१६

Naravahanadatta concludes his story by saying that he went and married all those girls.

सहियाण मज्झे णिम्मलमईएँ तहिँ णीयउ हउँ लीलावईएँ ।
ता जाइवि गरुवइँ उच्छवेण रइविब्भम परिणिय मइँ णिवेण ।
वेयमइएँ सहुँ कंचणमई वि वेवाहिय पुणु लीलावई वि ।
अवराइँ वि पंचसयाइँ तेत्थु वेवाहियाइँ थिउ मयणु जेत्थु ।
खेयरइँ तेण जा हरिवि णीय महो मिलिय घरिणि सुमणोहरीय । 5
संसाहियाइँ खेयरसयाइँ उप्पाइयाइँ अरिमणे भयाइँ ।
संसिद्धी मेइणि जलहि जाम जहिँ वसहिँ णिरंतर विउल गाम ।
आणाविउ जणवइ ताउ[1] देव कउ[2] पट्टबंधु जणविहियसेव ।
घत्ता—इउ वइयरु अक्खिउ खगवईहे[3] परिपुच्छिउ पइँ हउँ जं सयलु ।
कणयामरदाणइँ जणु थविउ परिवंदिउ मइँ जिणपयजुयलु ॥ १६ ॥ 10

इय करकंडमहारायचरिए मुणिकणयामरविरइए भव्वयणकण्णावयंसे पंचकल्लाणविहाणकप्पतरु-फलसंपत्ते णरवाहणदत्त-अक्खाण-आयण्णणो णाम छट्ठो परिच्छेउ समत्तो ।

संधि ॥ ६ ॥

---

४ J वम्महं संधिउ. ५ प्रतिषु 'अवलोइय'.
१५. १ J लेहाविउ. २ N पवण्णा. D J S इह फलहि चित्तु. ४ D N मणउ. ५ N मुच्छिउ.
१६. १ J ताव. २ J किउ. ३ J S खगवयहो.

अपने पतिका चित्र लिखा। उसे देख-देखकर जब वह अपने मनमें प्रसन्न हो रही थी, तभी वेगवती नामकी सुन्दर खेचरी वहाँ आ पहुँची। उसने स्मरमंजूषा (मदनमंजूषा) से पूछा— ५
आपने यह कौन लिखा है, (किसका चित्र बनाया है) मुझे कहिए तो ? यह कोई खेचर है, या किन्नर, या देव अथवा मनुष्य, या प्रत्यंचापर बाण चढ़ाये मन्मथ ही है ? तब मदनमंजूषाने वेगवतीसे सार बात कही—यह मेरा सुन्दर पति नरवाहन है। उसने उस फलकको लेकर ज्यों ही देखा, त्यों ही वह शरीर धुनकर भूतलपर गिर पड़ी। वेगवतीको मूर्छित हुई जानकर कनकमतीने उसका हास्य किया—इसे तो कोई वर रुचता ही नहीं था, और अब रूप देखने मात्रसे धरापर १०
पड़ रही।

१५—रतिविभ्रमाका चित्रपट

फिर कौतुकवश देखनेके लिए उस प्रशंसनीय फलकको कनकमतीने ले लिया। ज्यों ही उसने अपने मनमें उसकी परिभावना की, त्यों ही उसी क्षण वह भी धरणीतलपर गिर पड़ी। जब वह दुःखसे किसी प्रकार सचेत हुई, तब उस सरलबाहुसे सखियोंने पूछा—हे सखि, तू क्यों मूर्च्छाको प्राप्त हो गयी ? तेरे हृदयमें जो दुःख हों वे कह। उसने कहा—हे बहन, इस फलकपर जो चित्र लिखा है, उसने मेरे चित्तको निरर्थक (विवश) कर डाला। हे माता, यह कोई सुर है, या ५
काम ? मुझे इसका नाम बहुत भाता है। (पटधारिणी लीलावती नरवाहनदत्तसे कहती है कि) उसीके विरहसे अति उदासमन होकर उन दोनों विद्याधरियोंने मुझे भेजा है। बहुत पहले जो चारण मुनिने कहा था, वह उन्होंने अपने मनमें सोच रखा है—जो कोई रतिविभ्रमाका परिणय करेगा, वह हमारा भी पति होगा। तब उस रतिविभ्रमाका सुन्दर चित्रपट लिखाया गया और उस पटको लेकर मैं यहाँ आयी हूँ।" जब उस पटको अपने हाथमें लेकर मैंने (नरवाहनदत्तने) उस मनोहर रूपको देखा तब मेरा हृदय मूर्च्छासे रुद्ध हो गया, और, हे खेचर, मुझे कुछ भी स्मरण १०
न रहा।

१६—पति-पत्नीका पुनर्मिलन व नरवाहनकी समृद्धि

तब वह निर्मलमति लीलावती मुझे उन सखियोंके बीच ले गयी। वहाँ जाकर बड़े उत्साहसे मैंने रतिविभ्रमाका परिणय कर लिया। वेगमतीके साथ कंचनमतीको भी विवाहा, और फिर लीलावतीको भी। अन्य पाँच-सौ कन्याओंको भी वहीं विवाहा, जहाँ मदनका निवास बन गया था। जिसे वह खेचर हरकर ले गया था, वह मेरी सुमनोहर गृहिणी भी मुझे मिल गयी। मैंने सैंकड़ों खेचरोंको वशीभूत किया, शत्रुके मनमें भय उत्पन्न किये, और जहाँ निरन्तर विपुल ग्राम ५
बसे हुए हैं, ऐसी जलधि-पर्यन्त मेदिनी मेरे अधीन हो गयी। तब, हे लोकसेवित देव, मुझे जनपदमें लाया गया और मेरा पट्टबन्ध (राज्याभिषेक) कर दिया गया। हे खेचर, तूने जो कुछ मुझसे पूछा, वह सब वृत्तान्त मैंने सुना दिया। मैंने कनक और अमरदानसे लोगोंको सन्तुष्ट कर स्थापित किया, तथा जिनेन्द्रके चरण-युगलकी वन्दना की।

इति-मुनि-कनकामर विरचित भव्यजनकर्णावतंस पञ्चकल्याणविधान-कल्पतरु-फलसम्पत्त करकण्डमहाराज-चरित्रमें नरवाहनदत्त-आख्यानश्रवण नामक छठा परिच्छेद समाप्त।

संधि—७

१

The story of good omen. A Brahmin sees a good omen and dances over it.

करकंड सुबंधव भणमि पइँ [1]लइ देहि पयाणउ तुरिउ तुहुँ ।
अइ [2]सउणु सुहावउ सुंदरउ तहु [3]फलइं लहेसहि णारिसुहु ॥

भणु कवणहो सँउणहो फलइँ धीर   महो णारि हवेसइ खयरवीर ।
तहो कहइ खयरु मुणि पुरउ पेक्खु   फलु देइ णिरुत्तउ दिव्वचक्खु
कहि स[4]उँणहो फलु संपत्तु केण   ता कहइ खयरु संपत्तु जेण ।   5
को वि बंभणु मुक्खउ खीणदेहु   संचल्लिउ देसहो मुइवि गेहु ।
तें काणणि जइवरु एक्कु दिट्ठु   तहो तोसु महंतउ मणे पइट्ठु ।
एहु [2]सउणु सुहावउ मणि धरेवि   सो णच्चिउ उब्भा कर करेवि ।
खेल्लंतु अहेडउँ[5] रायउत्तु   ता तेत्थु खणद्धें को वि पत्तु ।
एक्कल्लउ अडविहिँ तुट्टमाणु   तें दिट्ठउ बंभणु णच्चमाणु ।   10

घत्ता—भो विप्प भडारा भणमि पइँ किं रण्णे पणच्चहि मोक्कलउ ।
अह लद्धउ किं पि मणोहरउ किं भायर हूवउ वावलउ ॥ १ ॥

२

A prince acquires the good omen in exchange for his ornaments and horse.

तहो कहइ दिएसरु सरलचित्त   णउ वायगहिउ हउँ होमि मित्त ।
गयभूसणणिवसणजंतएण   आणंदमहारसु पत्तएण ।
पंचाणणु णिवसइ जहिँ समत्थु   मइँ सवणु सुहावउ लद्धु एत्थु ।
तहो फलइँ लहेसमि रायलच्छि   भुंजेसमि मेइणि हरियकुच्छि ।
ता कुमरइँ तुरिउ पउत्तु भट्टु   उज्झाय तुहारउ हउँ मि चट्टु ।   5
महो देहि भडारा सवणु एहु   लइ भूसणु घोडउ दिव्वदेहु ।
आहरणसमाणउ तुरउ लेवि   गउ विप्पु घरहो तहो सवणु देवि ।
अहिणवमुणालवेल्लहलदेहु   संचल्लिउ कुमरु पइण्णणेहु ।

घत्ता—जिणसासणदेविएँ तहो पुरउ णियविज्जएँ णिम्मिउ जं जि तणु ।
तं मेल्लिवि कीयउ अवरु पुणु पेक्खंतहँ पसरइ जेण मणु ॥ २ ॥   10

---

१. १ D] लइ. २ D J N सवणु. ३. प्रतिषु 'वहु'. ४ D J N सवणहो. ५ S अहेडउ.
२. १ D में इससे पूर्व पाठ है—विप्पहु कयणाउ कि गहिउ सहु.

सन्धि—७

१—शुभ-शकुन

खेचरने कहा—हे सुबन्धु करकण्ड, मैं आपसे कहता हूँ कि आप यहाँसे तुरन्त प्रयाण कर दीजिए, क्योंकि इस समय बहुत सुन्दर सुहावना शकुन हुआ है, जिसके फलसे तुम्हें नारीसुखका लाभ होगा। (इसपर करकण्डने पूछा) कहिए—हे धीर, खेचरवीर, कौनसे शकुनके फलसे मुझे नारीकी प्राप्ति होगी। इसपर खेचरने कहा—देखिए अपने सम्मुख दिव्यचक्षु मुनिको; यह शकुन अवश्य अपना फल देगा। तब करकण्डने पूछा, कहिए, किसने इस शकुनका ऐसा फल पाया ५
है ? तब खेचरने इस फल-प्राप्तिकी कथा कही। कोई एक भूखा, क्षीण-शरीर ब्राह्मण घर छोड़कर विदेशको चल पड़ा। उसने वनमें एक यतिवरको देखा, जिससे उसके मनमें महान् सन्तोष हुआ। इसी सुहावने शकुनको मनमें धारण कर वह हाथ ऊँचे उठाकर नाचने लगा। उसी समय क्षणार्द्धमें वहाँ आखेट खेलता हुआ कोई राजपुत्र (क्षत्रियकुमार) आ पहुँचा। उसने अटवीमें उस ब्राह्मण-को अकेले हर्षसे नाचते हुए देखा। यह देखकर उसने पूछा—हे भट्टारक विप्र, मैं तुमसे पूछता १०
हूँ कि तुम मुक्तभावसे इस अरण्यमें क्यों नाच रहे हो ? क्या तुम्हें कोई मनोहर वस्तु प्राप्त हुई है, अथवा क्या, हे भाई, तुम बावले हो गये हो ?

२—शकुनके फलका उदाहरण

तब राजपुत्रसे उस द्विजेश्वरने कहा—हे सरलचित्त मित्र, मैं वातगृहीत (बावला) नहीं हुआ। बिना भूषण-वस्त्रके जाते हुए, व आनन्द महारसको पाते हुए यहाँ, जहाँ प्रबल पंचानन निवास करता है, मैंने एक सुहावना शकुन पाया है। उस शकुनके फलसे मुझे राज्यलक्ष्मीका लाभ होगा, और मैं हरी-भरी पृथ्वीका भोग करूँगा। यह सुनकर उस राजकुमारने तुरन्त भट्टसे कहा—हे उपाध्याय, मैं तो तुम्हारा शिष्य हूँ; हे भट्टारक, यह शकुन आप मुझे दे दीजिए, और ५
मेरे आभूषण तथा दिव्यदेह घोड़ेको आप ले लीजिए। इसपर वह विप्र आभरणों-सहित घोड़ेको लेकर, तथा अपना शकुन उस राजपुत्रको देकर, अपने घर चला गया। इधर नये मृणालके समान कोमल देहवान् कुमार प्रसन्न होकर आगे बढ़ा। तब उसी समय जिनशासन देवीने उसके सम्मुख अपनी विद्यासे जो शरीर निर्माण किया था, उसे छोड़, अन्य ऐसा शरीर धारण किया जिससे देखनेवालोंका मन उसकी ओर आकृष्ट हो गया। १०

३

The prince finds divine companions

तहो अग्गइँ हूई हरिणणेत्त णं राहवघरिणि सणेहचित्त ।
हउँ तुज्झु कुमर अणुमग्गयारि संहूई तुह अरिपलयकारि ।
सो ताएँ समउ गउ अडविमज्झि णरखेयरकिंणरसुरअसज्झि ।
तहिँ कूउ चिराणउ तेहिँ दिट्ठु हिययम्मि महाडरु णउ पइट्ठु ।
सहुँ दिट्ठउ विसहरु दद्दुरेण जुज्झंतउ तहिँ णिट्ठुरकरेण 5
जुज्झंता पेक्खिवि तुरिउ तेण णियअंगु पमण्णिवि तिणु व जेण ।
असिधेणुआएँ खंडेवि खाहु णियमंसु णिवेसिउ मज्झि ताहु ।
ता बिण्णि वि साहसु तहो मुणेवि अवयरिया अग्गइँ मणुव होवि ।
घत्ता—आहीरइँ रूवइँ एक्कु हुउ अण्णेक्कु वि वडुयहँ रूवधरु ।
तिहिँ जणहिँ सुसोहिउ सो कुमरु णं सग्गहो आयउ को वि सुरु ॥३॥ 10

४

Another prince attempts treachery and reaps the evil reward.

दिट्ठाइँ ताइँ केण वि णिवेण सम्माणियाइँ वयणुच्छवेण ।
देक्खेविणु रूवकरंडणारि मणि पइठी णं तहो पलयमारि ।
तहे णारिहे अहिलासहो गएण तहो पाणणासु चिंतियउ तेण ।
पारद्धिहिँ राणइँ कुमरु णीउ तहिँ अंधकूउ एक्कंति ठीउ ।
तहिँ पेल्लिवि घल्लिउ कुमरु सो वि गउ राणउ महिलहे सम्मुहो वि । 5
सप्पेण डसिउ सो मुयउ जाम सालूरइँ आणिउ कुमरु ताम ।
तहो कुमरहो बद्धउ रायपट्टु सव्वेहिँ समप्पिउ तुरयथट्टु ।
सो लीलइँ माणइ रायलच्छि तेँ पुच्छिय सा चक्कोरअच्छि ।
घत्ता—हे सुंदरि का तुहुँ कहहि महो णेहभरेण कयायरिय ।
ता वित्तु चिराणउ तहो कहिवि णियमंदिरु तक्खणि अणुसरिय ॥४॥10

५

Karakaṇḍa starts off and reaches the Simhala island.

गुणसायर सुंदर णिसुय पइँ एह सवणकहाणी कहिय मइँ ।
इउ भणिवि खयरु गउ णियघरासु णामेण सबलच्छीपुरासु ।
ता एक्कहिँ दिणि करकंडएण पुणु दिण्णु पयाणउ तुरियएण ।
गउ सिंहलदीवहो णिवसमाणु करकंडु णराहिउ णरपहाणु ।
जहिँ पाडलपिल्लइँ मणु हरंति सुर खेयर किंणर जहिँ रमंति 5
गयलीलइँ महिलउ जहिँ चलंति णियरूवें रइरूउ वि खलंति
जहिँ देक्खिवि लोयहँ तणउ भोउ वीसरियउ देवहँ देवलोउ ।
आवासिउ णयरहो बहिपएसे अरिसंक पवड्ढिय तहिँ जि देसे ।
आवासु मुएवि सहयरसमेउ करकंडु गयउ [1]रमणहिँ अमेउ ।

---

५. १ प्रतिषु 'रमणिहिं'.

३—शासनदेवीका अवतार

फिर वह मृगनयनी रामकी स्त्री (सीता)के सदृश सस्नेहचित्त होकर उसके आगे आयी और बोली—हे कुमार, मैं तुम्हारी अनुचरी हूँ और तुम्हारे शत्रुओंका प्रलय करनेके लिए उत्पन्न हुई हूँ। कुमार उसके साथ अटवीके मध्य भागमें गया जहाँ मनुष्यों, खेचरों, किन्नरों व देवोंका भी प्रवेश असाध्य था। वहाँ उन्होंने एक पुराना कूप देखा। तथापि उनके हृदयमें उससे कोई बड़ा डर प्रविष्ट नहीं हुआ। वहाँ उन्होंने देखा कि एक सर्प निष्ठुर पंजोंवाले मेढकसे युद्ध कर रहा है। उनको युद्ध करते देख उस कुमारने तुरन्त अपने अंगको तृण समान समझकर तलवारसे अपना मांस काटा, और उनके खानेके लिए उनके बीच फेंक दिया। उसके साहसको जानकर वे दोनों मानव होकर उसके आगे आ उतरे। एकने अहीरका रूप बनाया था, और दूसरेने बटु (ब्राह्मणकुमार) का। उन तीन व्यक्तियोंसे वह कुमार ऐसा सुशोभित हुआ जैसा मानो स्वर्गसे कोई सुर आ गया हो। ५ १०

४—राजपुत्रकी रक्षा और समृद्धि

उन्हें किसी राजाने देखा और उत्साहपूर्ण वचनोंसे उनका सम्मान किया। उस रूपकी पिटारी नारीको देखकर राजाके मनमें मानो प्रलयकी बीमारी प्रविष्ट हो गयी। उस नारीकी अभिलाषाको प्राप्त होकर राजाने कुमारके प्राणनाशका विचार किया। राजा उस कुमारको शिकार खेलने ले गया। वहाँ एकान्तमें एक अन्धकूप था। राजाने कुमारको उसमें ढकेलकर पटक दिया और आप महिलाके सम्मुख पहुँचा। किन्तु वहाँ उसे सर्पने डस लिया, जिससे वह मर गया। उसी समय मेढक कुमारको कुएँसे निकाल लाया। कुमारको राजपट्ट बाँधा गया और सबने घोड़ों का समूह समर्पित किया। अब वह लीलापूर्वक राज्यलक्ष्मीका उपभोग करने लगा। एक बार उसने उस चकोराक्षीसे पूछा—हे सुन्दरि, तू कौन है, मुझे कह दे। मैं खूब स्नेहसे आदरपूर्वक तुझसे पूछता हूँ। तब वह शासनदेवी अपना वही पुराना वृत्तान्त राजाको कहकर उसी क्षण अपने निवासस्थानको चली गयी। ५ १०

५—करकण्डका सिंहलद्वीपमें रमण

खेचरने करकण्डसे कहा—हे गुणसागर, सुन्दर, मैंने जो शकुनकी कहानी कही, वह तुमने सुन ली। यह कहकर वह खेचर सत्यलक्ष्मीपुर नामक अपने घर चला गया। फिर एक दिन करकण्डने तुरन्त वहाँसे प्रयाण कर दिया। नरप्रधान करकण्ड राजा (बीच-बीचमें) निवास (पड़ाव) करता हुआ सिंहलद्वीप पहुँचा, जहाँ राजहंस-शिशु मनको हरते थे; जहाँ सुर, खेचर व किन्नर रमण करते थे; जहाँ महिलाएँ गजलीलासे चलतीं तथा अपने रूपसे रतिके रूपको भी पराजित करती थीं; जहाँके लोगोंका भोग-विलास देखकर देवोंको देवलोक भी विस्मृत हो जाता था। करकण्डने नगरके बाहरी प्रदेशमें अपना पड़ाव डाला, जिससे उस देशमें शत्रुके आनेकी शंका बढ़ उठी। अमेय (दुर्जेय) करकण्ड अपने आवासको छोड़कर सहचरोंके साथ रमण करने निकला। वहाँ उसे एक महान् वटवृक्ष दिखायी दिया, जो सैकड़ों पक्षियोंसे भरा हुआ था, मानो देवोंसे ५

तहिँ गरुवउ सवणसएहिँ भरिउ णं कप्पवच्छु देवेहिँ धरिउ । 10
दलवंतहिँ पत्तहिँ वरियरिउ बहु दिट्टु राएँ समु वित्थरिउ ।
घत्ता—करकंडें पेक्खिवि तहो वडहो वीहइँ सुट्टु सुकोमलइँ ।
ता छेविणु गुलिया धणुहडिया विद्धाइँ असेसइँ सहलइँ ॥ ५ ॥

६

The Simhala king invites Karakanda to his palace.

वडपण्णइँ विद्धइँ जं सरेण णरणाहहो कहियउ सो चरेण ।
जो भासिउ चारणमुणिवरेण वरु आयउ णरवइ सो भरेण ।
ण वि जाणहुँ किं सो वरुणु चंदु अह होइ णरेसरु किं सुरिंदु ।
खेलंतें वणे णिवसुयगणेण वडपत्तणिवहु विद्धउ खणेण ।
ता राएँ पेसिय णरपहाण गय सिमिरहो खेवें ते सयाण 5
चंपाहिउ भणियउ तेहिँ मित्त पइँ कोक्कइ णरवइ सरलचित्त ।
सो तुम्हहँ उवरि णिवद्धणेहु संचल्लहु तुम्हइँ तासु गेहु ।
तं सुणिवि भणइ करकंडु राउ जइ आवइ सम्मुहुँ तुम्ह राउ ।
रयणाण विणिम्मियसुंदरासु ता जामि तुम्ह णिवमंदिरासु ।
तं सुणिवि तेहिँ खणि णियणिवासु घरि जाइवि अक्खिय वत्त[1] तासु । 10
घत्ता—सो आवइ पारवइ तुज्झु घरि जइ तुम्हइँ लेणहँ जाहु तहो ।
तं सुणिवि णराहिउ णीसरिउ मउ सम्मुहुँ सो चंपाहिवहो ॥६॥

७

Karakanda marries the Simhala princess.

सो दिट्ठउ राएँ अइसुतेउ णं विग्गहवंतउ मयरकेउ ।
अणुराएँ ता गुणसायरेण णिउ णयरे णराहिउ आयरेण ।
पइसंतउ सो पुरि जणहिँ दिट्ठु गोपालसहिउ णं देउ विट्ठु ।
जुवईजणमणसंताउ दिंतु करकंडु णराहिउ गेहु पत्तु ।
रइवेयहे णामें णियसुआहे । दक्खालिउ सो सुललियभुआहे । 5
सो बालएँ अवलोइउ जुवाणु णं हियएँ पइट्ठउ कुसुमवाणु ।
विहलंघल काइँ वि णउ मुणेइ [1]सा पेक्खइ किं पि ण ण वि सुणेइ ।
ण वि जणणहो लज्जा ताहे जाय कंपंतिहे पुलएँ खलिय वाय ।
पेक्खेविणु धूयहे सेयवाहु पारंभिउ राएँ खणे विवाहु ।
घत्ता—[2]कउ मंडउ मोत्तियतोरणहिँ गुरुचउरिय हेमें णिम्मविय । 10
अइउब्भिय मणहर वेइ किय रयणविणिम्मिय णिम्मलिय ॥ ७ ॥

८

Karakanda returns with the bride by the sea.

वेवाहु कियउ लहु ताहु के वि खेयर अहिलासहो जाहिँ जे वि ।
दाइज्जइँ दिण्णा तहे पयंड णिज्झरझरंतमयगिल्लगंड ।
वरतुरयथट्ट किंकिणिरवाल रयणेहिँ विणिम्मिय दिण्ण माल ।

---

६. १ N वात.

७. १ प्रतिषु 'सो'. २ N किउ ।

सुरक्षित हुआ कल्पवृक्ष हो। जो दलवान् (नये विकसित होते हुए) पत्तोंसे युक्त था, तथा जो समानरूपसे विस्तार लिये हुए था। करकण्डने उस वटवृक्षके दीर्घ और अति सुकोमल पत्तोंको १० देखकर अपना छोटा-सा गुलेल-धनुष ले उन सबको छेद डाला।

६—सिंहलनरेश-द्वारा करकण्डका स्वागत

जब करकण्डने बाणसे वटपत्रोंको वेध डाला, तब यह बात एक गुप्तचरने जाकर राजासे कही—हे नरपति, चारण मुनिवरने जिसकी भविष्यवाणी की थी, वह वर अब निश्चयसे आ गया है। मैं नहीं जानता हूँ कि वह वरुण है या चन्द्र, अथवा कोई नरेश्वर है, कि सुरेन्द्र। उसने राजपुत्रों-सहित वनमें खेलते हुए एक क्षणमें वटपत्रोंके समूहको वेध डाला है। तब राजाने अपने प्रधान पुरुषोंको भेजा। वे सयाने पुरुष तुरन्त करकण्डके शिविरको गये और चम्पाधिराजसे बोले— ५ हे सरलचित्त मित्र, तुम्हें हमारे नरपतिने बुलवाया है। उन्हें आपके ऊपर स्नेह हो गया है। अतएव आप उनके घर चलिए। यह सुनकर करकण्ड राजा बोले—यदि तुम्हारा राजा स्वयं मेरे सम्मुख आयेगा, तो मैं तुम्हारे राजाके रत्नोंसे निर्मित सुन्दर महलमें जाऊँगा। यह सुनकर उन्होंने उसी क्षण घर जाकर अपने राजासे यह बात कही—हे राजन्, वे आपके घर तभी आयेंगे, जब आप स्वयं उन्हें लेने जावें। यह सुनकर राजा निकल पड़ा और चम्पाधिपतिके १० सम्मुख पहुँचा।

७—रतिवेगाका प्रेमभाव व परिणय

सिंहलके राजाने अतितेजस्वी करकण्डको देखा, मानो वह शरीरवान् कामदेव ही हो। उस गुणसागर राजाने अनुरागसे आदरपूर्वक करकण्डका नगरमें प्रवेश कराया। नगरमें प्रवेश करते हुए करकण्डको लोगोंने ऐसे देखा जैसे मानो वह गोपालों-सहित विष्णुदेव (कृष्ण) ही हो। युवतीजनोंके मनको संताप पहुँचाता हुआ करकण्ड राजा महलमें आया। वहाँ उसे राजाने अपनी सुललित भुजाओंवाली रतिवेगा नामकी पुत्रीको दिखलाया। बालिकाके इस युवकका अव- ५ लोकन करते ही, मानो उसके हृदयमें कुसुम-(काम-) बाण प्रविष्ट हो गया। वह ऐसी विह्वल हुई कि कुछ मानती ही नहीं थी, न कुछ देखती थी और न कुछ सुनती। उसे अपने पिताकी भी लज्जा न रही। वह काँपने लगी तथा रोमांचसे उसकी वाणी लड़खड़ाने लगी। जब राजाने अपनी पुत्रीके (प्रेमभाव रूप) पसीनेके प्रवाहको देखा, तब उचित समयपर उसका विवाह प्रारम्भ कर दिया। मोतियोंके तोरणोंसे मण्डप सजाया गया; स्वर्णनिर्मित बड़ी-बड़ी चौरियाँ लटकायी गयीं; १० तथा अति उच्च, मनोहर, रत्ननिर्मित निर्मल वेदी बनायी गयी।

८—करकण्डकी जलयात्रा

शीघ्र ही उसका ऐसा विवाह किया गया कि खेचर भी उसकी अभिलाषा करने लगे। उसे दहेजमें धाराप्रवाह भरते मदसे गीले गण्डस्थलोंवाले प्रचण्ड हाथी, एवं किंकिणियोंकी ध्वनि करते हुए उत्तम घोड़ोंके समूह दिये, रत्नोंसे निर्मित मालाएँ दीं, तथा अन्य भी जो कुछ नयनाभिराम होता

जं अवरु किं पि णयणाहिरामु तहे राएँ दिण्णउ लेवि णामु।
एयहिँ समउ मणि तुट्ठएण जामायहो अप्पिय दुहिय तेण। 5
बहुरयणइँ दिण्णइँ तुरियएण पहिराविय राणा राणएण।
णरणाहे विसज्जिउ णिवपहाणु संजोइउ राएँ सलिलजाणु।
दुट्ठारिणरिंदहो पलयकालु तहिँ जाणे चडिण्णउ धरणिवालु।
धयवडवमालु परिघुलिउ भाइ तं पवणवसेँ जलमज्झे जाइ।
घत्ता—अवराइँ सहासइँ[2] छण्णवइँ णरणियरणिरंतरपूरियइँ। 10
णं अमरविमाणइँ धर सरहिँ जलगमणहो आसाऊरियइँ॥ ८॥

९

He encounters a sea monster.

जाम सिंधुमज्झि जाहिँ जाणयाइँ मंडिऊण ताडिऊण सज्जियाइँ।
ताव दिट्ठु राणएण मच्छु फारु णाइँ तेण सायरस्स लद्ध सारु[1]।
तेण रूवेँ णाइँ विण्हु कीलएइ सायरो व्व रायरिद्धि णं णिएइ।
जोयणाइँ सट्ठि अत्थि तुंगिमाइँ अद्धओ वि अद्धि आएँ होइ ताइँ।
सो वि सट्ठिसत्त पाय दीहमाणु सायरं पि रुंधिऊण थक्किमाणु। 5
मंदरो व्व तोयमज्झे अप्पमाणु उच्छलंतु पक्खलंतु छज्जमाणु।
मंदु मंदु सुप्पयंडु रंगमाणु रोसएण धाविऊण लग्गमाणु।
सो वि देक्खि राणयाहँ भग्गमाणु खंचियं पि तक्खणेण तोयजाणु।
घत्ता—भयभीयणरिंदहिँ दुत्थियहिँ सयलइँ जलजाणइँ उब्भियइँ।
णं काइँ वि दुट्ठएँ देवयएँ मंताण पहावेँ थंभियइँ॥ ९॥ 10

१०

Karakaṇḍa is carried away by a Vidyādharī

सो वि मच्छु पेक्खिऊण सुद्धभाउ छंडिऊण।
ताव तेण दुद्धरेण बद्धमाणमच्छरेण।
मल्लगंठि बंधिऊण खग्गवेणु कड्ढिऊण।
तं पि जाणु छंडिऊण रोसएण धाविऊण।
[1]राइणा तुरंतएण दिण्ण झंप कुद्धएण 5
उल्ललेवि ढुक्कु तित्थु थूलकाउ मच्छु जित्थु।
पोटमज्झे भाविऊण[2] सो वि मच्छु घाइऊण।
लूरियाइं वम्मयाइँ फाडियाइँ चम्मयाइँ।
जत्थ अत्थि सच्छणीरु [3]उच्छलंतु णट्ठु वीरु।
ताव[4] तम्मि खेयरीएँ णीउ राउ दुद्धरीएँ। 10
[5]सो वि णीउ पेक्खिऊण सुब्भडेहिँ चिंतिऊण।
दिण्ण झंप सायरम्मि दुक्खिएहिँ तक्खणम्मि।

---

८. १ J लइवि. २ S छणवइं। ९. १ S पारु,

१०. १ J रायणा; S रायिणा. २. N धाविऊण, ३. N में इससे पूर्व हासियेमें—'सायरो महागहीरु.' ४. N में इससे पूर्व हासियेमें—'ताव तम्मि जुज्झदच्छु', ५. N में इससे पूर्व हासियेमें—'णीउ हेरि सुद्धियाइं महागहीरु मुद्धियाइं.'

है, वह सब राजाने नाम ले-लेकर दिया। मनमें संतुष्ट होकर उक्त समस्त वस्तुओंसहित अपनी पुत्रीको अपने जामाताको अर्पित किया। राजाने अन्य राजाओंको भी तुरन्त बहुत-से रत्न दिये और उनकी पहिरावन की। सिंहलके राजासे विदा होकर, नृप-प्रधान करकण्डने जलयानका संयोग ५ किया और वह दुष्ट शत्रु राजाओंका प्रलयकाल, धरणीपाल उस यानपर जा चढ़ा। ध्वज-पताकाओंसे फहराता हुआ वह यान बड़ा सुन्दर दिखायी दिया, और पवनके वेगसे जलके मध्य चलने लगा। अन्य भी छयानवे हज़ार नौकाएँ नरसमूहोंसे खूब भर गयीं, मानो देवोंके विमान अपनी जलगमनकी आशा पूरी करनेके लिए पृथ्वीपर चल रहे हों।

९—समुद्रमें महामत्स्यका प्रादुर्भाव

जब वे यान मण्डित और वितानोंसे सुसज्जित होकर समुद्रमें जा रहे थे, तब राजा करकण्डने एक महाकाय मत्स्य देखा; जैसे मानो उसने सागरका सार पा लिया हो; जैसे मानो उस रूपमें विष्णु क्रीड़ा कर रहे हों; अथवा जैसे मानो स्वयं सागर करकण्डकी राज्य-ऋद्धिको देख रहा हो। उस मत्स्यकी ऊँचाई ६० योजन एवं विस्तार इसके आधेका आधा अर्थात् १५ योजन तथा उसकी दीर्घताका मान ६७ पाद था। इस प्रकार वह सागर-भरको रूँधकर स्थित था। वह मन्दर पर्वतके ५ समान जलमें अप्रमाण रूपसे उछलता-कूदता शोभा दे रहा था। धीरे-धीरे चलते हुए वह सुप्रचण्ड मत्स्य रोषसे दौड़कर यानके पीछे लग गया। उसे दौड़ते हुए देखकर राजाने उसी क्षण जलयानको खिंचवाकर रुकवा लिया। अन्य राजाओंने भी भयभीत व व्याकुल होकर समस्त जलयानोंको खड़ा करवा लिया, मानो उन्हें किसी दुष्ट देवताने मन्त्रोंके प्रभावसे स्तम्भित कर दिया हो।

१०—मत्स्यसे युद्ध और करकण्डका अपहरण

उस मत्स्यको देखकर उस दुर्द्धर राजाने अपना शान्तभाव छोड़, क्रोध धारण किया; तथा मल्लग्रन्थि बाँधकर एवं तलवार खींचकर, यान छोड़ रोषसे दौड़कर तुरन्त समुद्रमें छलाँग मारा। वह लपकता हुआ वहाँ पहुँच गया, जहाँ वह स्थूलकाय मत्स्य था। उसने उसके पेटके मध्यमें प्रविष्ट होकर मत्स्यको मार डाला, उसके मर्मस्थल छेद डाले और चर्म फाड़ डाले। फिर वह वीर उछलता हुआ स्वच्छ जलमें आ गया। उसी समय एक दुर्द्धर खेचरी राजाको ले उड़ी। ५ राजाको हरा देख सुभटोंने चिन्ता की तथा दुःखी होकर तत्क्षण सागरमें गोता मारा। सागरका

घत्ता—हल्लोहलि हुयउ सयलु जलु अपरंपरि जाणइँ[६] संचलहिँ ।
हा हा रउ उट्ठिउ करुणसरु तहो सोएँ णरवर सलबलहिँ ॥ १० ॥

११

Lamentations of Rativegā.

जा णरपंचाणणु वियसियआणणु जलि पडिउ ।
ता सयलहिँ लोयहिँ पसरियसोयहिँ अइडरिउ ॥
रइवेय सुभामिणि णं फणिकामिणि विमणभया ।
सव्वंगेँ कंपिय चित्ति चमक्किय मुच्छ गया ॥
कियचमरसुवाएँ सलिलसहाएँ गुणभरिया । 5
उट्ठाविय रमणिहिँ मुणिमणदमणिहिँ मणहरिया ॥
सा करयलकमलहिँ सुललियसरलहिँ उरु हणइ ।
उव्वाहुलणयणी गग्गिरवयणी पुण भणइ ॥
हा वइरिय वइवस पावमलीमस किं कियउ ।
मइँ आसि वरायउ रमणु परायउ किं हियउ ॥ 10
हा दइव परम्मुहु दुण्णय दुम्मुहु[१] तुहुँ हुयउ ।
हा सामि सलक्खण सुट्ठ वियक्खण कहिँ गयउ ॥
महो उवरि भडारा णरवरसारा करुण करि ।
दुहजलहिँ पडंती पलयहो जंती णाह धरि ॥
हउँ णारि वराइय आवइँ आइय को सरउँ । 15
परिछंडिय तुम्हहिँ जीवमि एवहिँ किं मरउँ[२] ॥
इय सोयविमुद्धइँ लवियउ मुद्धइँ जं हियइँ ।
हउँ बोल्लिसु तइयहुँ मिलिहइ जइयहुँ मज्झु पइ ॥
घत्ता—अइसोउ करेविणु मंतिवरु संबोहिवि परियणु दुम्मियउ ।
गउ जाणइँ लेविणु जलहितडे तं परियणु तहिँ णिच्चलु कियउ ॥११॥ 20

१२

Rativega worships goddess Padmāvatī.

आवासिय सेण्णा तित्थु जाव रइवेयएँ उज्जउ कियउ ताव ।
पुणु तुरिउ विलक्खीहूइयाइँ अणुसरिय देवि कोमलगिराइँ ।
उद्धरियउ मंडलु ताएँ रम्मु णं धम्मु जिणेंदेँ हरियछम्मु ।
तहो मज्झि णिवेसिय दिव्व देवि पोमावइ णामेँ थिर करेवि ।
पुव्वाहिँ मि दिसिहिँ मि जउ थियाउ आहूयउ देविउ आइयाउ[१] । 5
[२]रत्तंदणकट्ठेँ जा घडीय ससिचंदणकुंकुमसमलहीय[३] ।
फलफुल्लणिवेज्जहिँ पुज्ज कीय उववासइँ पढमउँ अणुसरीय ।
उवएसेँ लद्धउ बीयवंतु[४] णवकुंकुमकुसुमहिँ जविउ मंतु ।
घत्ता—आरत्तहिँ दव्वहिँ आलिहिवि आरत्तहिँ वत्थहिँ परिहणिय ।
आरत्तझाणु[५] झाएवि पुणु णिज्झाइय देवअ थिरमणिय ॥ १२ ॥ 10

---

६. J जाणहिं.
११. १ D दुण्णइ दुम्मुह. २ J करउं.
१२. १ J N आइयाउ. २ J रत्तंदिणकट्ठें; D रत्तंदणुकट्ठें. ३ J में 'समलहीय' से पंक्ति ८ के 'णवकुंकुम' तक पाठ छूटा है । ४ N बीयवंदु. ५ N आरत्तमाण माएवि.

समस्त जल खलभला उठा; यान परस्पर टकरा गये; हाय-हायका करुण स्वर उठ पड़ा, तथा उसके शोकमें सब मनुष्य कलबला उठे।

११—रतिवेगाका विलाप

जब वह प्रसन्नमुख नरसिंह जलमें पड़ गया, तब सब लोग भयभीत हो उठे और उनका शोक बढ़ गया। नागकन्याके समान सुन्दरी रतिवेगा विमनस्क हो उठी तथा सर्वांग कम्पित एवं चित्तमें चमत्कृत होकर मूर्च्छित हो गयी। तब उस गुणवती, मनोहर सुन्दरीको उसकी मुनियोंके मनको भी दमन करनेवाली रमणी सखियोंने खूब-चँवरियोंकी हवा करके, एवं जलकी सहायतासे मूर्च्छासे उठाया। तब वह अपने सुललित सरल करकमलों-द्वारा छाती पीटने लगी; और　५
फिर डबडबायी आँखों तथा गद्गद स्वरसे विलाप करने लगी। हाय, पापमलिन बैरी यम, यह तूने क्या किया? मैंने जिसे अभी ही अपने रमणके रूपमें वरा था, उसे तू क्यों मुझसे छीन ले गया? हाय देव, तू क्यों ऐसा पराङ्मुख, दुर्जय और दुष्ट हो गया? हाय, मेरे सुलक्षण, सुविचक्षण स्वामी, तुम कहाँ चले गये? हे भट्टारक, हे नरश्रेष्ठ, मेरे ऊपर करुणा कीजिए। हे नाथ, दुःखसागरमें पड़ती हुई, प्रलयको जाती हुई मुझे बचाइए। मैं एक दीन नारी हूँ। इस आपत्ति　१०
के आनेपर मैं किसका स्मरण करूँ? तुम्हारे छोड़कर चले जानेपर अब मैं जीऊँगी या यों ही मर जाऊँगी? इस प्रकार शोकविमूढ़ होकर उसने शुद्ध हृदयसे कहा (प्रतिज्ञा की) कि अब मैं तभी बोलूँगी जब मुझे मेरा पति मिल जायेगा। तब मन्त्रिवर अत्यन्त शोक मनाकर, तथा दुःखी परिजनोंको सम्बोधित करके, यानोंको लेकर समुद्रतटपर गया और वहाँपर उसने समस्त परिजन समाजको ठहरा दिया।

१२—रतिवेगा-द्वारा पद्मावतीकी पूजा

जब वहाँपर सेनाका पड़ाव पड़ गया, तब रतिवेगाने धर्मोद्योग (व्रतसाधन) किया। उसने विह्वल होकर कोमल वाणीसे देवीका अनुसरण (आह्वान) किया। उसने रमणीक मण्डलका निर्माण किया, जैसे मानो जिनेन्द्रने निश्छल धर्मका उद्धार किया हो। उस मण्डलके बीच उसने दिव्यदेवी पद्मावतीको, नाम लेकर, स्थापित किया। पूर्व दिशामें जो देवियाँ स्थित हैं, वे उसके आह्वान करनेपर वहाँ आयीं। उसने रक्त चन्दनके काष्ठसे गढ़ी हुई पद्मावतीकी मूर्त्तिकी　५
शुभ्र चन्दन व कुंकुमसे अर्चना की; तथा फल-फूल व नैवेद्यसे पूजा की; एवं उपवासपूर्वक उसका अनुस्मरण किया। उसने उपदेश-द्वारा जो बीज-मन्त्र पाया था, उसका नये कुंकुम और पुष्पों-सहित जाप किया। लाल द्रव्योंसे लिखकर, लाल वस्त्रोंका परिधान करके, लाल (अग्नि आदिक) द्रव्यका ध्यान करके, फिर उसने स्थिर मनसे देवतामें अपना ध्यान लगाया।

१३

Goddess Padmavati appears.

समच्चिवि पूजिवि झायइ जाव समागय देवय पोमिणि ताव ।
समंथरलील सकोमलअंगि कुणंतिय का वि अउव्विय भंगि
विणिम्मियरूवसमिद्धि खणेण सरीरहँ रत्तिय सुद्धमणेण ।
करेहिँ चऊहिँ करंति गुणाल सपोत्थयभिंग समुद्दमुणाल ।
सकुंडलकण्णफुरंतकवोल सणेउरकिंकिणिमेहलरोल । 5
फणीफणपंच सिरेण धरंति पसण्णिय णिम्मल का वि करंति ।
महीयलि पायसरोय थवंति सुहाविएँ वाणिएँ किं पि चवंति ।
दिसाहँ मुहम्मि पसारियधामु उरम्मि णिवेसियमोत्तियदामु ।
घत्ता—वरु देमि भणंती देवि खणे रइवेयहे अग्गइँ गुणभरिय ।
तुहुँ मग्गि किसोयरि जं हियइँ तउ कारणे धरणिहे अवयरिय ॥१३॥ 10

१४

The goddess grants a boon to Rativega who asks for information about her husband.

जा देविहे दिट्ठउ मुहकमलु रइवेयहे जायउ अंसुजलु ।
महो देवि भडारिए दुरियमलु तउ दंसणे णट्ठउ तं सयलु ।
पइँ देवि सहावेँ जो थुणइ सो दुक्खपरंपर णउ मुणइ ।
जो अणुदिणु झायइ तुज्झु मुहुँ तसु होहि तरंडउ देवि तुहुँ ।
महो दीणहे तुहुँ कारुण्णु करि दुहसायरे मइँ णिवडंति धरि । 5
हउँ किं पि ण मग्गम्मि देवि पइँ अब्भत्थिय तुहुँ वरु एक्कु मइँ ।
जइ सच्चउ भयवइ देहि वरु महो वयणु एक्कु तुहुँ देवि करु ।
रयणायरे महो सामिउ गयउ किं जीवइ अह किं सो मुयउ ।
घत्ता—ता कहइ सुरेसरि तुह रमणु जो जाणहो होंतउ परिपडिउ ।
कणयप्पहविज्जाहरसुअहे सो हियवइँ तक्खणे संचडिउ ॥ १४ ॥ 10

१५

Karakaṇḍa, says the goddess, had been taken to Tilakadvipa where he had become the lord of all.

ता मोहवसेँ कणयप्पहाए खणि तिलयदीउ सो णियउ ताए ।
वक्खालिउ जणणहो ताय पेक्खु मइँ सायरि लद्धउ दिव्वचक्खु ।
एहु सामि महारउ रिसिहिँ सिट्ठु जह लच्छिएँ लउद्ध देउ विट्ठु ।
अणुराउ मुणेवि विज्जाहिवेण वेवाहु कियउ तहे उच्छवेण ।
करकंडइँ ता एक्कहिँ दिणम्मि हउ वइरिउ ससुरहो तक्खणम्मि । 5
जो सुअणु परायउ असइ भोज्जु उवयारु करइ फिर कवणु चोज्जु
कणयप्पहवइरिउ हयउ जेण सो सामिउ होसइ किं परेण ।
इय मुणिवि केर विज्जाहरेहिँ पडिवण्णिय तुरिय कयायरेहिँ ।

१३. १ N मायइ.
१५. १ J तहिँ.

१३—पद्मावती देवीका प्रकट होना

रतिवेगाने जब पूजा-अर्चा करके ध्यान लगाया, तब पद्मावती देवी वहाँ प्रकट हुई। वह कोमलांगी देवी धीरे-धीरे, लीलापूर्वक, एक अनिर्वचनीय, अपूर्व मुद्रा धारण किये हुए थी। उसने उस समय अत्यन्त सौन्दर्यमय रूप धारण किया था। वह शरीरसे रक्तवर्ण थी, व मनसे विशुद्ध। वह अपने चार हाथोंमें गुणयुक्त पुस्तक, भृंग (झारी), मुद्रांगुली तथा मृणाल लिये हुए थी। उसके कपोल कर्णकुण्डलोंसे चमक रहे थे, तथा उनके नूपुरों व काँचीसे किंकिणियोंकी झंकार ५ हो रही थी। वह अपने सिरपर पाँच नागफण धारण किये हुए थी, एवं एक अपूर्व ही निर्मल प्रसन्नता फैला रही थी। वह पृथ्वीतलपर अपने चरण-कमलोंको रखती हुई, तथा सुहावनी वाणीमें कुछ कहती हुई आई। वह उरस्थलमें मोतियोंकी माला पहने हुए थी, जिसकी कान्ति समस्त दिशाओंमें फैल रही थी (यहाँ मौक्तिकदाम छन्दका प्रयोग है)। वह गुणोंसे भरी देवी क्षणमात्रमें रतिवेगाके आगे आ खड़ी हुई और बोली—"मैं वरदान देती हूँ। हे कृशोदरि, जो १० कुछ तेरे हृदयमें हो, सो तू माँग ले। मैं तेरे कारण ही धरणीपर उतरी हूँ।"

१४—रतिवेगाकी देवीसे वरदानकी प्रार्थना

जब देवीके मुखकमलको देखा, तब रतिवेगाकी आँखोंमें अश्रु भर आये। (वह बोली—) हे भट्टारिके देवि, तेरे दर्शनसे मेरा समस्त पापमल नष्ट हो गया है। हे देवि, जो कोई स्वभावसे तेरी स्तुति करता है, वह दुःख-परम्पराका अनुभव नहीं करता। जो कोई प्रतिदिन तेरे मुखका ध्यान करता है, उसके लिए, हे देवि, तू (संसारसागरसे तारनेके लिए) नौका बन जाती है। मुझ दीनपर तू दया कर; और दुःखसागरमें गिरती हुई मुझे बचा ले। हे देवि, मैं तुझसे कुछ ५ नहीं माँगती। केवल एक वरदानके लिए मेरी तुझसे प्रार्थना है। हे भगवति, यदि सचमुच ही तू मुझे वर देती है तो, हे देवि, तू मेरी एक बात कर—"मेरा स्वामी रत्नाकरमें चला गया है, वह जीवित है अथवा मृत्युको प्राप्त हो गया ?" (यह सुनकर) सुरेश्वरी बोली—"तेरा रमण जो यान परसे नीचे उतरा, वह तत्क्षण ही कनकप्रभा नामकी विद्याधर कन्याके हृदयपर चढ़ गया।"

१५—देवी-द्वारा करकण्डकी कुशल-वार्ता

तब मोहके वशीभूत होकर कनकप्रभा उसे उसी क्षण तिलकद्वीपको ले गयी, और उसे अपने पिताको दिखलाया—"देखिए तात! मैंने इस दिव्यचक्षु पुरुषको सागरमें पाया है। ऋषियोंने कहा था कि यही मेरा स्वामी होगा, जैसे कि लक्ष्मीने विष्णुको (सागरमें) पाया था।" विद्याधरने उसके अनुरागको जानकर उत्सवसे उसका विवाह कर दिया। फिर करकण्डने एक दिन अपने श्वसुरके वैरीका शीघ्र ही नाश कर डाला। जो सज्जन पुरुष पराया भोजन करता है, वह ५ उसका उपकार करे, इसमें आश्चर्य ही क्या है ? "जो कोई कनकप्रभके वैरीको मारेगा वही तुम्हारा स्वामी होगा, अन्य किसीसे क्या ?" इस भविष्य वाणीको मानकर विद्याधरोंने आदरपूर्वक तुरन्त करकण्डकी सेवा स्वीकार कर ली। उन्होंने अनुरागसे अपने दोनों हाथ जोड़कर और

घत्ता—अणुराएँ भउलेवि करजुवलु सिरु णविवि पयत्तें अणुसरिय ।
विज्जाहरु सो ण वि अत्थि तहिँ तसु तणिय केर जें ण वि धरिय ॥१५॥ 10

१६

The goddess assures Ratiyegā of her reunion with her husband.

तउ रमणइँ कीयइँ साहसाइँ को वण्णहुँ सक्कइ बहिणि ताइँ ।
वेवाहिय तेण अणंगलेह णं कामकिरायहो तणिय रेह ।
पुणु लीलएँ परिणिय चंदलेह णं मयणसहोयरि दिव्वदेह ।
कुसुमावलि चारुचरित्तचित्त रयणावलि परिणिय कणयदित्त ।
अवराइँ मि कण्णहँ सयइँ सत्त परिणीयइँ मइँ तुह कहिय वत्त । 5
ता सोउ णिवारिवि करहि धम्मु करकंडु मिलेसइ गलियछम्मु ।
अइतुरिउ लएविणु पउरदव्वु अणवरउ देहि तुहुँ दाणु भव्वु ।
रइवेएँ भणियउ तं सुणेवि किं सायरे गउ आवइ वलेवि ।
घत्ता—पडिवयणु भडारी तहे भणइ महो वयणहो संसउ किं करहि ।
कणयामरतेयसमग्गलउ सो अणुदिणु जिणवरु संभरहि ॥ १६ ॥ 10

इय करकंडमहारायचरिए मुणिकणयामरविरइए भव्वयणकण्णावयंसे पंचकल्लाणविहाणकप्पतरु-
फलसंपत्ते करकंडविज्जाहरविवाहलंभो णाम सत्तमो परिच्छेउ समत्तो ।

॥ संधि ॥ ७ ॥

सिर नवाकर प्रयत्नपूर्वक उसका अनुसरण किया। वहाँ अब ऐसा कोई विद्याधर न रहा जिसने उसकी सेवा स्वीकार न की हो। १०

१६—देवीका रतिवेगाको धर्मोपदेश

पद्मावती देवीने कहा—"हे बहन, तेरे रमणने जो साहस किये हैं, उनका वर्णन कौन कर सकता है ? उसने अनंगलेखाको भी विवाह लिया है, जो मानो कामरूपी किरातकी रेखा (शोभा) ही है। फिर उसने लीलापूर्वक चन्द्रलेखाका भी परिणय किया है, जो मदनकी सहोदरीके समान दिव्यदेह है। उसने सुन्दर चारित्र और चित्तवती कुसुमावली तथा सुवर्णकान्ति रत्नावलीका भी परिणय किया है। और भी सात-सौ कन्याएँ उसने विवाह की हैं। मैंने तुझे बात कह दी। अतः अब तू शोकका निवारण करके धर्मका पालन कर। तुझे निर्दोष रूपमें करकण्ड मिलेगा। अतिशीघ्र प्रचुर द्रव्य लेकर तू निरन्तर भव्य दान दे।" यह सुनकर रतिवेगाने कहा—"क्या सागरमें गया हुआ मनुष्य फिर लौटकर आता है ?" तब भट्टारिका देवीने उत्तर दिया—"तू मेरे वचनमें संशय क्यों करती है ? तू तो कनक व अमरतेजसे सम्पन्न जिनवरका प्रतिदिन संस्मरण कर।" ५ १०

इति मुनि-कनकामर-विरचित भव्यजनकर्णावतंस पंचकल्याणविधानकल्पतरुफल-सम्पन्न करकण्ड-महाराजचरित्रमें करकण्डका विद्याधर कन्याओंसे विवाह-लाभ नामक सातवाँ परिच्छेद समाप्त।

सन्धि–८

१

The goddess illustrates her point by the story of Aridamana,

रइवेय भणइ हे देवि सुणु तुह वयणु सुहावउ भावियउ।
महो अक्खु पसाउ करेवि तुहुँ किं को वि गयउ णरु आइयउ ॥

तं सुणिवि भडारी कहइ ताहे दुरिएण विलित्तउ मणु ण जाहे।
हे सुंदरि णिसुणहि सरलचित्ते जिणणाहहो चलणहँ परमभत्ते।
हउँ अक्खमि णेहेँ तुज्झु किं पि अरिदमणणराहिवचरिउ तं पि। 5
एत्थत्थि अवंती णाम देसु णं तुट्टिवि पडियउ सग्गलेसु।
तहिँ णयणपियारी णयरि अत्थि उज्जेणि णाउ गयरविगभत्थि।
तहिँ अत्थि पसिद्धउ पवरतेउ अरिदमणु णराहिउ गुणणिकेउ।
तहो विमला भामिणि णयणरम्म आसण्णभव्व परिगलियकम्म।
तहो अत्थि मंति जणजणियराउ वरदत्तु णराहिव[1]-दिण्णभाउ। 10

घत्ता—तहो मंतिहे वडवा सुंदरिय गय चरणहँ बाहिरे पुरवरहो।
सा रमिय तुरंतइं मयणभर पेक्खेविणु तुरयइँ गिरिवरहो ॥ १ ॥

२

Aridamana's minister got a colt which was watched by
a Vidyādhara in the form of a parrot.

सा गया पट्टणं मंतिणा पेक्खिया सव्वसल्लक्खणा गब्भिणी लक्खिया।
तेण संरक्खिया मंदिरे धारिया णेहवंताइँ खाणाइँ सा चारिया।
सोहणो वायवेओ किसोरो तहे[1] जायओ वासरे सुंदरे सोरहे।
णीलवण्णो सउण्णो मुहे वंकुडो मज्झहीणो उरे पच्छले वित्थडो।
दीहफुक्कारहिक्कारउद्दो धुरो तालुतंबोवमो लोयणा भंगुरो। 5
णण्हरोमावलीकण्णसंसग्गओ थोवएहिं दिणेहिं पवुड्ढिं[2] गओ।
मंतिचित्तस्स अच्चंतु सो भाविओ सूरतावेण वाएण णे पोविओ।
भूमिगेहम्मि जा वद्धओ अच्छए सग्गिणीछंदकीरो वि तं पेच्छए।

घत्ता—जउलगि गब्भि परिट्ठियउ गिरितुरयहो णंदणु जयपवरु।
तउलगि पेक्खइ दिणि जि दिणे को वि खेयरु कीरसुरूवधरु ॥२॥ 10

---

१. १ S] णराहिउ.

२. १] °हो. २] पविड्ढी.

सन्धि—८

१—वियोगियोंके पुनर्मिलनका उदाहरण

रतिवेगा बोली—"हे देवि, सुन। मैंने तेरा सुहावना बचन अपने ध्यानमें लिया। अब तू कृपा करके मुझे यह तो कह कि क्या कोई गया हुआ नर फिर वापस आया है?" यह सुनकर भट्टारिकाने, जिसका मन पापसे लिप्त नहीं था ऐसी उस रतिवेगासे कहा—"हे सरलचित्त, जिननाथ के चरणोंकी परमभक्त, सुन्दरि, सुन। मैं तुझे स्नेहसे अरिदमन राजाका चरित्र सुनाती हूँ। यहाँ अवन्ति नामका देश है; मानो स्वर्गका एक टुकड़ा टूट कर आ पड़ा हो। वहाँ एक नयनोंको प्यारी उज्जैनी नामकी नगरी है, जहाँ सूर्यकी किरणें प्रवेश नहीं कर पातीं। वहाँ प्रसिद्ध, प्रवर तेजस्वी, गुणनिधान, अरिदमन नामका राजा था। उसकी विमला नामकी भामिनी थी, जो नयनरम्य, आसन्नभव्य व क्षीणकर्म (निष्पाप) थी। उसका मन्त्री लोगोंका स्नेहभाजन तथा राजाका विश्वासपात्र वरदत्त नामका था। इस मन्त्रीकी सुन्दर घोड़ी नगरके बाहर चरने गयी। कामसे व्याकुल उसे देखकर, तुरन्त ही पर्वतके एक तुरंगने उसका रमण किया। ५ १०

।

२—राजमन्त्रीकी घोड़ी और उसका बछड़ा

घोड़ी पट्टणमें लौट आयी। मन्त्रीने देखा कि वह सर्वलक्षणसम्पन्न गर्भिणी हो गयी। अतएव उसने उसकी खूब रक्षा की, अपने घर ही रखा और चिकना घास-दाना चराया। फिर एक सुन्दर सुगन्धपूर्ण (शुभ) दिन उसके एक शोभनीय वायुवेग किशोर (बछेरा) उत्पन्न हुआ। वह नीलवर्ण, पुष्ट, मुखमें बाँकुड़ा, मध्यमें कृश तथा उरमें और पिछले भागमें विस्तीर्ण था। वह लम्बी फुकार करता तथा रौद्र हींस छोड़ता था, और धुर्य (खूब चलनेवाला—जोतने योग्य) था। उसका तालु ताम्रवर्ण था, और वह आँखोंसे चंचल था। उसकी रोमावली सूक्ष्म थी, और कानोंका परस्पर संसर्ग हो जाता था। थोड़े ही दिनोंमें वह बड़ा हो गया। मन्त्रीके चित्तको वह अत्यन्त भाया। उसके तेजको सूर्यताप, तथा वेगको वायु भी नहीं पाते थे। वह जब भूमिगृह (घुड़साल)में बाँधा हुआ रहता था, तब एक सूआ उसे स्वच्छन्द भावसे देखा करता था। (इस कडवकमें स्रग्विणी छन्दका उपयोग किया गया है)। जबतक वह विजयशाली पहाड़ी घोड़ेका पुत्र गर्भमें स्थित था, तब-तक कोई एक खेचर सूएका रूप धारण करके उसे दिन-प्रतिदिन देखा करता था। ५ १०

३

The parrot asks a cowherd to take it and sell to the king for 500 gold coins.

खेयरु हूयउ कीरो   पव्वयमत्थयधीरो ।
भोयसएहिँ णभग्गो   कंतहे णेहइँ लग्गो ।
अच्छइ जाव सुहेणं   भुंजइ भोय चिरेणं ।
ताव सधम्मु सुसीलो   मत्तयकुंजरलीलो ।
पीवरदीहरबाहो   सुंदरु गोहणणाहो । 5
तेत्थ वणम्मि पवण्णो   चेट्ठइ जाव णिसण्णो ।
दिट्ठउ ता णयणेहिँ   कीरइँ सो सगुणेहिँ
उत्तउ कोमलवाएँ   छंदइँ चित्तधयाएँ ।

घत्ता—तुहुँ गोवाल लएवि मइँ णेहि तुरंतउ पुरवरहो ।
कंचणपंचसएहिँ फुडु जाएवि देहि णरेसरहो ॥ ३ ॥ 10

४

On the way they see a merchant caught by a harlot who demanded money.

सुणीऊण वाणी   मुणीऊण णाणी ।
णएणं विणीए   मणे मण्णणीए ।
सुएणावि जुत्तो   पुरं झत्ति पत्तो ।
खणेँ दिंतु दिट्ठी   तहिँ दिट्ठ सिट्ठी ।
सुही कुट्टिणीएँ   धरीओ गणीएँ । 5
भणीओ बलाएँ   गिरा कोमलाएँ ।
तुमं रायआणा   म जाही अयाणा ।
तुमं जेट्ठउत्तो   सुईणे विसुत्तो ।
महं पुत्तियाएँ   घरे सुत्तियाएँ ।
सुछंदेँ विराएँ   कया सोमराएँ । 10
तहे देहि[3] दव्वं   णिवारेहि गव्वं ।

घत्ता—तहो कोलाहलु अइपवरु हट्टहँ मज्झेण पसरियउ ।
ण वि सक्कइ वारहो को वि णरु जामच्छइ वणिवरु धरियउ ॥४॥

५

The parrot settles the dispute by a wit.

तो भणेइ चारु कीरु   वच्छलेण वाय धीरु ।
भो कहेइ सेट्ठि मज्झु   वारयामि जेण जुज्झु ।
ता कहेइ सेट्ठि तासु   कारणं पि कंदलासु ।
तं सुणेवि सूयएण   णाणसायरं गएण ।
उत्तु सेट्ठि अक्कयाहिँ   देहि दव्वु सज्जयाहिँ । 5
सो सुणेवि दिव्ववाणि   तासु जाय चित्ते काणि ।

३. १ D बट्टइ; N बेट्ठइ.

४. १ D खणेँ उत्तमाणी. २ D N मज्झि. ३. D देवि. ४. J मज्झि पसारियउ.

३—सुएके रूपमें खेचर

वह खेचर एक पर्वतके मस्तकपर एक धैर्यवान् सूआ हुआ। वह आकाशमें उड़ता तथा अपनी कान्ताके स्नेहमें लगकर सैंकड़ों भोगों-सहित सुखसे रहता हुआ दीर्घ काल तक भोग भोगता रहा। तब एक धर्मवान्, सुशील, मत्तकुंजरके समान लीला करता हुआ, प्रबल और दीर्घ भुजाओंसे युक्त, एक सुन्दर गोधननाथ (ग्वाला) उस वनमें आया। वह जब वहाँ बैठा हुआ था, तब उस सूएने अपने सगुण नेत्रोंसे उसे देखा, और चित्तको हरण करनेवाली स्वच्छन्द कोमल- ५ वाणीसे कहा—"हे गोपाल, तू मुझे तुरन्त नगरमें ले चल, और पाँच-सौ सुवर्णमुद्राओंमें मुझे नरेश्वर के हाथ बेच दे।" (यहाँ चित्रध्वजा छन्द है।)

४—कुट्टिनीका सेठसे विवाद

यह वाणी सुनकर और समझकर वह ज्ञानी गोप, नीतिसे सुशिक्षित, तथा मनसे माननीय सूए-सहित झटपट नगरमें आया। वहाँ दृष्टि डालनेपर एक सेठ दिखायी दिया। उस सुहृद् सेठको कुट्टिनी गणिकाने पकड़ रखा था। वह अबला कोमल शब्दोंमें उससे कह रही थी—"तू राजा है, अज्ञानी मत बन। तेरा ज्येष्ठ पुत्र स्वप्नमें, अपने घरमें स्वच्छन्द भावसे विराग (स्नेहरहित) तथा शान्तभावसे युक्त सोती हुई मेरी पुत्रीके साथ सोया है। (यहाँ सोमराजी छन्द है) ५ अतएव तू उसे द्रव्य दे। अपना गर्व छोड़।" इस बातका भारी कोलाहल हाट (बाजार) के बीच फैल रहा था; और उस पकड़े गये वणिक्वरको कोई मनुष्य छुड़ानेमें समर्थ नहीं हो रहा था।

५—स्वप्नका स्वभाव दर्पण-प्रतिबिम्बवत्

तब वह सुन्दर धीर सूआ वात्सल्यभावसे बोला—"हे सेठ, मुझे बात तो बतला, जिससे मैं इस युद्धका निवारण कर सकूँ।" तब सेठने उस क्रन्दन (युद्धके कोलाहल) का कारण कहा। तब ज्ञानसागरको पहुँचे हुए (महाज्ञानी) सुएने सेठसे कहा—"इस सुसज्जित चाचीको द्रव्य दो।" इस दिव्य वाणीको सुनकर सेठके चित्तमें लज्जा उत्पन्न हुई। किन्तु ज्योंही सेठ द्रव्य लाकर, सब कुट्टिनीको देने लगा, त्योंही नीतिमार्गके ज्ञायक सूएने कहा—"सेठ, एक आदर्श (दर्पण) भी

आणएवि जाव दव्वु कुट्टिणीहे देइ सव्वु ।
ताव वुत्तु सूयएण णीइमग्गु जाणएण ।
आणि सेट्ठि आरिसो वि देमि दव्वु जेम को वि ।
आणियं च तं पि तेण सूयएण तक्खणेण 10
दप्पणस्स मज्झे बिंबु लेहि अज्ज एहु दव्वु ।
गूढचित्त जाणिया वि छंदिणा समाणिया वि ।
घत्ता—ता[2] बोल्लइ कुट्टिणि भग्ग सुय पडिबिंबु किं लेणहुँ[3] जाइ बले ।
तं सुणिवि पवुत्तरु सा भणिय सुइणइँ किं गहणउ लहइ चॅले[4] ।।५।।

६

The parrot reaches the palace.

हराविय कुट्टिणि जाम सुएण पयंपइ सेट्ठि सुयस्स णएण ।
सुवण्णपरिग्गहु एहु सरेहु लएविणु भावइ तं जि करेहु ।
सुणेविणु सूयइँ वुत्तइ तेम वणीसरु चित्ति चमक्कइ जेम ।
हिरण्णइँ अम्हइँ काइँ करेहुँ सुसज्जणलोयहँ चित्तु हरेहुँ ।
सुणेविणु कीरहँ भावविसुद्धि अहीरहँ दिण्णिय दाणपविद्धि । 5
अहीरु पउत्तउ सूयएँ एहि लएविणु रायदुवारहो णेहि ।
णिओ खणि रायदुवारहो सो वि हुओ घरु बुद्धिसमिद्धिहे जो वि ।
दुवारिउ उत्तउ कीरएँ मित्त सुमोत्तियदामपसारियचित्त ।
घत्ता—लइ अक्खइ वत्त महो तणिय णियरायहो अग्गइँ सरल तुहुँ ।
पेक्खेसमि णयणाणंदयरु छणससहरतुल्लउ तासु मुहु ।।६।। 10

७

It gives an account of itself to the king.

पडिहारइँ रायहो कहिउ एव सुउ बाहिरे अच्छइ देवदेव ।
तं सुणिवि[1] णिवाविउ राणयेण संभासिउ सो पोमाणणेण ।
ता सूएँ उच्चाएवि पाउ अहिणंदिउ आसीवाएँ राउ ।
भो णरवइ करिकरदीहबाहु चिरु जीवहि सुरसरि जाम वाहु ।
[2]भणि तुट्ठएँ राएँ कीरु वुत्तु किं आयउ को तुहुँ भणु णिरुत्तु । 5
पडिवज्जइ [3]जणवर णाहचारु तह कवडकहाणउ रयउ फारु ।
ता कहइ कीरु णरवइ पुरम्मि सुय पंचसयइं सेंबलितरुम्मि[4] ।
जावच्छहुँ ते मइँ[5] भणिय वेल्लि लइ छिण्णहुँ [6]सुहु हय तेहिँ लल्लि ।
णउ छिण्णिय तेहिं जा हि सोवि आरुहिय विडोवरि गुरुय होवि[6] ।
गुंजारुणणयणउ कसणवण्णु भिल्लाण णिवहु ता तहिँ पवण्णु । 10
घत्ता—तहिँ रुक्खे चडेविणु सुयघरइँ पासि समोडिय तेहिँ खणे ।
ता बद्धा अम्हइँ सयल सुअ मइँ चिंतिउ को वि उवाउ मणे ।।७।।

---

५. १ S] सक्क. २ J तो. ३ J लेणहं. ४ JN वले ।

७. १ J अणाविउ. २ S मणतुट्ठयं. ३ D जिणवर. N में 'जिणवर' को सुधारकर 'जह णर°' ४ J सेंबलियरुम्मि. ५ SJN मह. ६ SJN में यह पूरी पंक्ति छूटी है ।

लाओ जिससे मैं इसे अपूर्व द्रव्य दूँ।" सेठ दर्पण भी ले आया। सूएने तत्क्षण दर्पणके बीच उस द्रव्यका बिम्ब प्रकट करके कुट्टिनीसे कहा—"चाची, ले इस द्रव्यको।" तब वह गूढ़चित्त व समझदार कुट्टिनी अपनी इच्छासे बोली—"रे भगोड़े सुए, कहीं प्रतिबिम्ब भी लिया जाता है?" यह सुनकर सूएने प्रत्युत्तर दिया—"हे चंचले, कहीं स्वप्नमें देखी वस्तु भी ग्रहण की जा सकती है?" (यहाँ समानिका छन्द है)। १०

६—सुआ राजद्वारपर पहुँचा

जब सूएने इस प्रकारसे कुट्टिनीको हरा दिया, तब सेठ न्यायपूर्वक सूएसे बोला—"इस सुवर्ण-सम्पत्तिको सरेखो (गिनो) और इसे लेकर जो भावे सो करो।" यह सुनकर सुएने ऐसी बात कही, जिससे वणीश्वर चित्तमें चमक उठा। वह बोला—"हिरण्यका मैं क्या करूँगा? मैं तो सुसज्जन लोगोंका चित्त हरण करता हूँ।" सूएके विशुद्ध भावको सुनकर सेठने उस सुवर्णराशिका भारी दान उस अहीरको दे दिया। फिर सूएने अहीरसे कहा—"चलो, मुझे लेकर राजद्वारपर ५ पहुँचाओ।" तब जो सूआ बुद्धि-सम्पत्तिका घर हो रहा था, उसे लेकर ग्वाल एक क्षणमें राजद्वार पर पहुँचा। सूएने द्वारपालसे कहा—"सुन्दर मोतियोंकी मालापर अपना चित्त प्रसारित करनेवाले, हे सरल मित्र, लो, मेरी बात अपने राजाके आगे जाकर कहो। मैं राजाके पूर्णचन्द्रमाके तुल्य, नयनानन्ददायी मुखको देखना चाहता हूँ।" (यहाँ मौक्तिकदाम छन्द है)

७—सुएकी कपट-कहानी

प्रतीहारने जाकर राजासे कहा—"हे देवदेव, बाहर एक सूआ आया है।" यह सुनकर उस कमलमुख राजाने उसे अपने पास बुलवाया और उससे संभाषण किया। तब सूएने अपना पैर उठाकर आशीर्वाद-द्वारा राजाका अभिनन्दन किया—"हे हस्तिशुण्डके समान दीर्घबाहु नरपति, चिरजीवी हो; जबतक गंगाका प्रवाह चल रहा है।" मनमें सन्तुष्ट होकर राजाने सूएसे कहा—"तुम कौन हो, और यहाँ क्यों आये हो? ठीक-ठीक बतलाओ।" तब उस नभचर पक्षीने यह बात ५ स्वीकार की, और एक बड़ी कपट-कहानी रची। फिर सूएने कहा—"हे नरपति, पहले एक सेमल वृक्षमें पाँच-सौ सूए रहते थे। मैं भी वहीं रहता था। मैंने उन सबसे कहा—लो, इस बेलको काटो। उन्होंने ललकसे उसपर बार-बार आघात किये। अभी वह बेल उनके द्वारा पूरी कट भी न पायी थी, क्योंकि वह बढ़कर उस वृक्षपर खूब चढ़ गयी थी, तभी गुंजाके समान लाल आँखों-वाला कृष्णवर्ण भिल्लोंका एक समूह वहाँ आ पहुँचा। उन्होंने क्षणमात्रमें वृक्षपर चढ़कर सूओंको १० उनके घरों (घोसलों) से निकालकर अपने जालमें समेट लिया। तब हम सब सूए फँस गये। तब अपने मनमें मैंने एक उपाय सोचा।

८

How it reached a hermitage and learnt the Śastras. It then informs the king about the minister's beautiful horse.

मइँ वुत्ता सयल वि सुय करेवि कवडेण वि अच्छहु खणु मरेवि ।
भिल्लेण चडेविणु सयल दिट्ठ तले घल्लिय मण्णेवि ते णिचिट्ठ ।
ता उड्डिवि गय दसदिसिहिँ ते वि हउँ तावसवाडउ गउ वलेवि ।
मइँ सयलइँ सत्थइँ जाणियाइँ पव्वयसिरि सोक्खइँ माणियाइँ ।
तहिँ दिट्ठउ गिरिवरतणउ आसु गउ वडवासंगहो कामवासु । 5
अइसुंदरु घोडउ ताएँ जाउ धरणियले लग्गइ णाहि पाउ ।
मइँ जाणिउ सो विज्जाहरेण तुह अक्खिय णेहपरव्वसेण ।
घरि अच्छइ मंतिहे सो चरंतु तं सुणिवि णरेसरु गउ तुरंतु ।
घत्ता—घरु जाइवि तासु महंतयहिँ पुणु भणियउ वयणु णरेसरइँ ।
महो कज्जु ण रयणहिँ माणिकहिँ तुह तुरयइँ पुज्जइँ मणहरइँ ॥८॥ 10

९

The horse takes the king and the parrot across the sea where they see a hundred maidens.

णियहियवएँ दुक्खु वहंतएण सो अप्पिउ तेण महंतएण ।
गउ तुरउ लेवि णियमंदिरासु पल्लाणु विहिउ तहो बंधुरासु ।
तहिँ चडिउ णरेसरु सहुँ सुएण देवाविउ फेरउ दिढभुएण ।
कीरेण णिवारिउ देव थाउ मा पयडहि छंडहि णियसहाउ ।
णरणाहेँ तुरयहो सुयछलेण कसताडणु किउ कोऊहलेण । 5
ता तुरउ तुरंतउ णहयलेण गउ सायरु लंघिवि दूरएण ।
समरीणएँ राणएँ भणिउ कीरु कहिं लब्भइ बंधव विमलणीरु
ता कीरें गयणंगणु सरेवि अवलोइउ पाणिउ थिरु करेवि ।
आवेविणु कीरइँ भणिउ तासु लइ चलहि तुरिउ रयणायरासु ।
घत्ता—जाएविणु सायरि कण्णसउ दिट्ठउ तेत्थु रमंतियउ । 10
सुय वयणइँ ठाणे तहो तणइँ खणे रायइँ देउ समच्चियउ ॥९॥

१०

The king wins the heart of Ratnalekhā.

ण्हाणच्चणु देवहँ करिवि ताउ कण्णाण णिवहु णियघरु गयाउ ।
सूएण णराहिउ तक्खणेण अणुमग्गें णीयउ तहुँ तणेण ।
छोहारदीवसंपत्तएण कण्णाण णिलउ राणएँ गएण ।
अवरोप्परु चित्तें मिलियएण ता तक्खणि भणियउ सूयएण ।
हे णरवइ तुहुँ एह रयणलेह लइ परिणहि कंचणदिव्वदेह । 5
चिरु कहिय मुणिंदहिँ आरिसेहिँ परिणेवी एह तुम्हारिसेहिँ ।

---

८. १ D J N णिविट्ठु ।
९. १ N राउ २ D सुर°.
१०. १ N करइ. २ J में यह चरण छूटा है.

८—सूएने राजाको मन्त्रीके घोड़ेकी चाह उत्पन्न की

"मैंने सब सूओंसे कहा—क्षण-भरके लिए मर जानेका कपट (बहाना) बनाकर पड़ रहो। भीलने चढ़कर सबको देखा और उन्हें निश्चेष्ट जानकर नीचे डाल दिया। तब वे उड़-उड़कर दसों दिशाओंमें चले गये। मैं चलकर एक तापसोंके बाड़ेमें पहुँचा। वहाँ मैंने सकल शास्त्रोंका ज्ञान प्राप्त किया, तथा एक पर्वतकी चोटीपर सुखपूर्वक रहने लगा। वहाँ मैंने एक पहाड़ी घोड़ेको देखा, जिसने कामवासनासे एक घोड़ीका संग किया। उससे उस घोड़ीने एक अति सुन्दर बछेरेको जन्म दिया, जिसका पृथ्वीपर पैर ही नहीं लगता। मुझ विद्याधरने यह जान लिया, और यह बात स्नेहके परवश होकर तुझे कह दी। वह घोड़ा मन्त्रीके घर चारा चर रहा है।" सूएकी यह बात सुनकर, राजा तुरन्त वहाँ गया। उस नरेश्वरने उस (मन्त्री) के घर जाकर उससे कहा—"मुझे तेरे रत्नों और माणिक्योंसे कोई काम नहीं, मेरे मनोरथ तो तेरे तुरंगसे पूरे होंगे।" ५

६—घोड़ा राजाको ले उड़ा

उस महन्तने अपने हृदयमें दुःख अनुभव करते हुए वह घोड़ा राजाको अर्पित कर दिया। उसे लेकर राजा अपने महलको गया और उस सुन्दर घोड़ेपर पलाण खिंचवाया। नरेश्वर सूएके साथ उसपर चढ़ा और उस दृढ़भुजावालेने उसको फेरा (चक्कर दिलाया)। सूएने राजाको रोका—"हे देव, इसे चाबुक नहीं मारना, नहीं तो यह अपना शान्तभाव छोड़ देगा।" राजाने कौतूहलवश सूएकी आँख बचाकर घोड़ेको एक कोड़ा मारा। तुरंग तुरन्त ही आकाशतलमें ५ उड़ने लगा और सागरको लाँघकर दूर चला गया। राजाने श्रान्त होकर सूएसे कहा—"हे बन्धु, स्वच्छ पानी कहाँ मिले?" तब सूएने आकाशमें उड़कर स्थिरभावसे पानीका अवलोकन किया। फिर लौटकर सूएने राजासे कहा—"लो, तुरन्त रत्नाकरको चलिए।" सागरमें जाकर उन्होंने वहाँ सौ कन्याओंको रमण करते हुए देखा। उस स्थान पर राजाने सूएके वचनानुसार देवकी भले प्रकार अर्चना की। १०

१०—राजाकी रत्नमालासे भेंट

वह कन्याओंका समूह भी देवोंका स्नान और अर्चना करके अपने घर गया। सूआ राजाको भी तत्क्षण उन्हींके पीछे-पीछे ले गया। छोहार द्वीपमें पहुँचकर राजा उन कन्याओंके घर पहुँचा। उनके चित्तोंको परस्पर मिलाते हुए, सूएने तत्क्षण राजासे कहा—"हे नरपति, तू इस कंचनके समान दिव्यदेह रत्नलेखाका परिणय कर ले। बहुत पहले ही आर्य मुनीन्द्रोंने कह रखा है कि इसका परिणय तुम्हारे-जैसे पुरुष-द्वारा ही होगा।" यह सुनकर नरेन्द्रने उस कमलसमान ५

तं सुणिवि णरिंदें[3] सा भणीय अंभोरुहदीहरलोयणीयँ[4] ।
हे सुंदरि सूयउ भणइ जाइँ पडिहासँहिँ[5] तुहुँ वयणाइँ ताइँ ।
घत्ता—तं सुणिवि कुमारी पडिलवइ अणुराएँ वयणु पडिक्खलइ ।
मइँ केर तुहारी मणि धरिय सुयवयणु णरेसर किं चलइ ॥ १० ॥ 10

११

He sails with her for home and reaches a deserted island.

तं वयणु सुहावउ सुणिवि तेण सा परिणिय राणइँ तुरियएण[1] ।
तहिँ णेहइँ[2] भोयसहास भुत्त ता एक्कहिँ दिणे पडिलवइ धुत्त ।
पयडंतिए णिब्भरु परमु[3] णेहु हे णरवइ पेक्खहुँ तुम्ह गेहु ।
तहे वयणु सुणेविणु सोहमाणु परसज्जिउ राएँ सलिलजाणु ।
तं भरियउ रयणहिँ मणहरेहिँ परिसोहिउ धयवडसुंदरेहिँ । 5
सुयतुरयएँ घरिणिएँ सहुँ णरिंदु तहिँ चडियउ रेहइ णं सुरिंदु ।।
तं सलिलजाणु रयणायरम्मि वाएण गयउ दीवंतरम्मि ।
उव्वसि परिलग्गउ गयदिणम्मि ता राएँ चिंतिउ णियमणम्मि ।
घत्ता—पुणु भणियउ कीरु णरेसरइँ किम रयणि गमेवी एत्थु सुहि ।
तं सुणिवि कीरु पडिलवइ णिव अइणिब्भरु होइवि मा सुयहि ॥११॥ 10

१२

Their bad luck on the island and the sea.

हयणारिकीरणिव थिरमणेहिँ किय तुरिय जाम चउहिँ मि जणेहिँ ।
णिवपहरएँ तुरियइँ हयसमाणु ता चोरहिँ हरियउ सलिलजाणु ।
रविउग्गमे णरवइ णियइ जाव ण वि पेक्खइ बोहिथु तुरउ ताव ।
पुणु वत्त कहिय कीरहो णिवेण गउ बोहिथु णं जाणहुँ किं पहेणँ[2] ।
मणि खेउ वहंतएँ सूयएण पुणु भणिउ णराहिउ तुरियएण । 5
खँडु[3] कट्टिवि बंधहु तुरिउ तेव रयणायरु लीलएँ तरहु जेव ।
तं रइवि चडिण्णउ सरलराउ णियघरिणिहे सरिसउ सुयसहाउ ।
तँहो लहरिहिँ बंधइँ तोडियाइँ देसंतर राएँ हिंडियाइँ ।
घत्ता—ता उड्डिवि सूयउ वडि गयउ णिउ णरवइ लहरिहिँ कोंकणहो ।
तहो घरिणि मणोहर विहिवसइँ णिय खंभायचहो पट्टणहो ॥ १२ ॥ 10

१३

Ratnalekhā at Khambhāyacca.

तहिँ लंवझलंवा कुट्टणीएँ सा दिट्ठी ताइँ वियक्खणीएँ ।
घरि रयणलेह णेवावि ताएँ जलगंधु णिवारिउ सुललियाएँ ।
ता लंवझलंवएँ भणिय मुद्ध विणु गहणइँ वेस ण होइ सुद्ध ।
तं णिसुणिवि जंपिउ सुंदराए इह जूवइँ जो मइँ जिणइ माए ।
सो सोवइ मइँ सहुँ भणिउ ताएँ ता जिणिया जूवेँ णर तियाएँ । 5

---

३ णरिंदइं भणिय सा वि. ४ N °लोयणा वि. ५ N पडिहासइं.

११. १ N मुणियएण. २ N तेहइं. ३ J N परमणेहु.

१२. १ J में 'ण' छूटा है. २ N परेण. ३ S खडि कड्डेवि. ४ J तहिं.

दीर्घनयना कन्यासे कहा—"हे सुन्दरि, यह सूआ जो बातें कह रहा है, वे तू पसन्द करती है न ?" यह सुनकर उस कुमारीने उत्तर दिया। अनुरागसे उसके वचन लड़खड़ा रहे थे। वह बोली—"मैंने तो अपने मनमें आपकी सेवाका भाव धारण कर लिया है। हे नरेश्वर, सूएका वचन कैसे टल सकता है ?"

११—राजाकी जलयात्रा

उसका ऐसा सुहावना वचन सुनकर राजाने तुरन्त ही उसका परिणय कर लिया और वहाँ स्नेहसे सहस्रों भोग भोगे। फिर एक दिन उस कुशल कन्याने परमस्नेह प्रकट करते हुए कहा—"हे नरपति, मैं तुम्हारा घर देखना चाहती हूँ।" उसका वह शोभनीक वचन सुनकर राजाने एक सलिलयान (नौका) सुसज्जित कराया। उसे मनोहर रत्नोंसे भरा और सुन्दर ध्वजपटोंसे शोभायमान किया। सूए, घोड़े और गृहिणीके साथ उसपर चढ़कर नरेन्द्र ऐसा शोभायमान हुआ जैसे सुरेन्द्र। वह सलिलयान रत्नाकरके वायुके बलसे चलता हुआ द्वीपान्तरमें पहुँचा। दिन अस्त होते वह यान एक ऊजड़ द्वीपसे जा लगा। तब राजाने अपने मनमें चिन्ता की और फिर सूएसे कहा—"हे मित्र, यहाँ रात्रि कैसे निकाली जायगी ?" तब सूएने उत्तर दिया—"हे नृप, बहुत असावधान होकर मत सोइए।" ५

१२—नौका-भंग और पति-पत्नी वियोग

तब घोड़ा, नारी, सूआ और राजा—इन चारों जनोंने स्थिर मनसे चार पहरे नियत किये। राजाके पहरेमें चोर जल्दीसे घोड़े-सहित सलिलयानको हर ले गये। रवि उदय होनेपर जब राजाने देखा, तब उसे अपनी नौका व घोड़ा दिखायी नहीं दिया। तब राजाने यह बात सूएसे कही—"न जाने नौका किस मार्गसे चली गई ?" सूएने मनमें खेद धारण करते हुए तुरन्त राजासे कहा—"खड (लकड़ी) काटकर, तुरन्त उन्हें बाँधो, जिससे तुम सरलतासे रत्नाकरको तर सको।" ५ सरल स्वभावी राजा नौकाकी रचना करके अपनी गृहिणी तथा सूएके साथ उसपर चढ़ गया। किन्तु समुद्रकी लहरोंसे नौकाके बन्धन टूट गये और राजा देशान्तरमें भटक गया। तब सूआ उड़कर एक वटवृक्षपर जा पहुँचा, राजाको समुद्रकी लहरोंने कोंकणमें जा डाला तथा उसकी मनोहर गृहिणी विधिवश खम्भायत पट्टणमें जा पड़ी।

१३—रत्नलेखा खंभायतकी कुट्टनीके घर

खम्भायतमें रत्नलेखाको लम्बझलम्बा नामकी विलक्षण कुट्टनीने देखा। वह उसे अपने घर लिवा ले गयी और उस सुललिताने उसकी जलकी गन्धका निवारण किया। फिर लम्बझलम्बाने उस भोली महिलासे कहा—"बिना ग्रहण (प्रेम-बन्ध) के वेश्या शुद्ध नहीं होती।" यह सुनकर उस सुन्दरीने कहा—"हे माता, जो कोई मुझे जूएमें जीत सकेगा, वही मेरे साथ सो सकता है।"

तहँ दव्वु लेवि वेसहे विइण्णु पुणु वहिउ कूरु अंगणे पइण्णु ।
रयणायरवडे सूयहँ णिकाउ तं चुणिवि वलिवि पुणु तहिँ गयाउ ।
सुयणामइँ पुच्छिय कहिँ गयाय तुम्हइँ सुहि भोयणु लेवि आय ।
तहो कहिय वत्त तेहिँ मि सुएहिँ पुणु भणिय ते वि वयणुल्लएहिँ ।
घत्ता—मइँ लेविणु तुम्हइँ णेहु तहिँ जहिँ कूरु पइण्णउ बालियएँ । 10
ता णीयउ तेहिँ तुरंतयहिँ घरु वेसहिँ दिट्ठउ सो वि तएँ ।। १३ ।।

१४

Her fame in the game of dice reaches Aridamana's ear.

चुणंतइँ कीरइँ अंसुवमाल पमेल्लिय पेक्खिवि सामिणि बाल ।
चिराणउ सूयउ ताएँ मुणेवि अणाविउ सो सुयणामु भणेवि ।
अरे सुय भायर आवहि एत्थु तुहारउ सामिउ अच्छइ केत्थु ।
ण जाणउँ देवि कहिँ गउ राउ पवड्ढिउ ताहे मणम्मि विराउ ।
णिवारिय सूयएँ देवि विसाउ कुणंतहँ णासइ सुद्धउ भाउ । 5
महारउ चित्तु कहेइ मयच्छि मिलेसइ सामिउ पावियलच्छि ।
सुणेविणु कीरहो वाणि सणिद्ध रमंतिय अच्छइ भावविसुद्ध ।
पवड्ढिय कित्ति समुद्दपमाण सुमोत्तियदामइँ बद्ध जुवाण ।
घत्ता—अरिदमणहो केण वि इउ कहिउ पट्टणु खंभायच्चु जहिँ ।
ण वि सारिहिँ जूवइ को वि णरु ण वि सक्कइ जिणणहँ बाल तहिँ ।।१४।। 10

१५

Renuion of Ratnalekhā and Aridamana.

तं सुणिवि णरेसरु थिरमणेण गउ खंभाइच्चहो तक्खणेण ।
तहिँ जाइवि टिंटहिँ गउ तुरंतु जूवारहँ सयलहँ मणु हरंतु ।
तहँ मज्झि णिविट्ठउ सो सहेइ छणइंदहो लीला णं वहेइ ।
जीयाइँ णरिंदहँ आयरेण सोवण्णहँ सत्तसयाइँ तेण ।
धणु दिंतउ भंडहँ णग्गुडाहँ गउ वेसहँ घरु धणलंपडाहँ । 5
जूएण पसिद्धी कित्ति जाहे देवाविउ गहणउ तेण ताहे ।
अप्पुणु पुणु रयणिहिँ गयउ तेत्थु सूयएँ सहुँ रमणि णिविट्ठ जेत्थु ।
सा भणिय तेण णं मयणदूउ लइ सुंदरि खेल्लहिँ सारिजूउ ।
घत्ता—सा जित्ती तेण णराहिवइँ जा हूई मणे विहडप्फडिय ।
ता ताएँ वियाणिवि णियरमणु खणे अंगेँ अंगु समुब्भिडिय ।।१५।। 10

१६

The goddess reassures Ratīvegā and goes away.

जावच्छइ तिएँ सहुँ तेत्थु राउ ता तुरय लेवि को वि टक्कु आउ ।
तहिँ मज्झि णिहालिउ राणएण किउ ऊहणु तेँ सहुँ टक्कएण ।
बोल्लाविउ राएँ णामु लेवि ता घोडेँ जोइउ मुहु वलेवि ।

१४. १ N पविट्ठिउ.

१६ १ J तित्थु. २ S मज्झे. ३ J में 'सहुं' छूटा है ।

फिर उस महिलाने जूएमें अनेक पुरुषोंको जीत लिया और उनका द्रव्य लेकर उस वेश्याको दे　५
दिया। फिर उसने दही और भात आँगनमें बिखरा दिया। समुद्रके वटवृक्षमें रहनेवाले सूओंका
पुञ्ज उस दही-भातको चुनकर वापिस जब उसी वटवृक्षपर गया, तब उस राजाके सूएने उनसे
पूछा—"तुम कहाँ गये थे, जहाँसे, हे मित्र, तुम यह भोजन लेकर आये ?" तब उन सूओंने उसे
सब बात कही। तब उस सूएने पुनः उनसे बात कही—"तुम मुझे वहाँ ले चलो, जहाँ बालिकाने
भात फैलाया है।" तब वे उसे तुरन्त वहाँ ले गये और उसने वह वेश्याका घर देखा।　१०

१४—रत्नमालाके द्यूतकौशलकी ख्याति राजाके कानोंपर

उस सूएने भात चुनते हुए खूब आँसू बहाये। यह देखकर उसकी स्वामिनी बालाने
अपना पुराना सूआ पहचान लिया और नाम लेकर उसे बुलाया—"अरे भाई सूए, यहाँ आओ।
तुम्हारा स्वामी अब कहाँ है ?" सूएने उत्तर दिया—"नहीं जानता, देवि, कि राजा कहाँ गया ?"
यह सुनकर उस सुन्दरीके मनमें विराग बढ़ा। सूएने उसे रोका—"हे देवि, विषाद करनेसे
शुद्ध भाव नष्ट हो जाता है। हे मृगाक्षी ! मेरा चित्त कहता है कि स्वामी, लक्ष्मी प्राप्त करके　५
अवश्य मिलेगा।" सूएकी स्नेहपूर्ण वाणी सुनकर वह विशुद्धभावसे प्रसन्न रहने लगी। उसकी कीर्ति
समुद्रप्रमाण बढ़ गयी। उसने सुन्दर मोतियोंकी मालाओंसे युवकोंको बाँध लिया। (यह मौक्तिक-
दाम छन्द है।) यह बात अरिदमन राजासे किसीने कही कि खम्भायत पट्टणमें कोई नर सारा-
पांसा खेलना नहीं जानता। कोई भी वहाँकी एक बालिकाको नहीं जीत पाता।

१५—राजा-रानीकी द्यूतक्रीडा और पहिचान

यह सुनकर राजा अरिदमन अपना मन स्थिर करके तत्क्षण खम्भायतको गया। वहाँ
जाकर वह तुरन्त टेण्टा (जूआघर) में गया और वहाँ समस्त जुआड़ियोंके मनको हरण करने
लगा। उनके बीच बैठा हुआ वह ऐसा शोभता था, मानो उसने पूर्णचन्द्रकी लीला धारण की हो।
उस राजाने वहाँ आदरपूर्वक सात सौ सुवर्ण जीत डाले। फिर वह भाँड़ों और नगोड़ोंको धन
बाँटता हुआ उस धन-लम्पटा वेश्याके घर गया। उसने जिसकी जूएमें कीर्ति प्रसिद्ध थी—उसको　५
ग्रहण (आमन्त्रण) दिलवाया। फिर आप स्वयं रात्रिमें वहाँ गया, जहाँ सूएके साथ वह रमणी
बैठी थी। उसने उससे कहा—"लो सुन्दरि, हम मदनदूतके समान सारिद्यूत खेलें।" राजाने उसे
जीत लिया, जिससे वह सुन्दरी मनमें घबरा उठी। किन्तु जब उसने जान लिया कि वह उसीका
पति है, तब उसी क्षण उसके अंगसे अपने अंगका आलिंगन किया।

१६—देवोका रतिवेगाको सम्बोधन—जैसे वे मिले वैसे तुझे तेरा पति भी मिलेगा

जब राजा अरिदमन रत्नलेखाके साथ वहाँ खम्भायतमें रह रहा था, तब कोई एक टक्क
(पंजाब देशवासी) घोड़े लेकर वहाँ आया। राजाने उन घोड़ोंके बीच निहार कर देखा और उस
टक्कके साथ मोल-भाव किया। राजाने नाम लेकर घोड़ेको बुलाया। तब घोड़ेने भी मुँह मोड़कर

अइदुक्खलु ऊहणु जो किओ वि सोवण्णु देवि तें किणिउ सो वि ।
तियकीरणराहिवअस्सयाहँ मेलाविउ हूइउ दुत्थियाहँ । 5
भुंजंतइँ सोक्खइँ तहिँ ठियाइँ णियदेसहो पुणु तइय वि गयाइँ ।
मइँ कहियउ हॅलि तुह सो जि राउ रयणायरे पडियउ घँरहो आउ ।
जइ आयउ सो गुणगणमहंतु तुह मुद्धि मिलेसइ तुज्झु कंतु ।
घत्ता—इउ कहिवि भडारी तहेँ सयलु सव्वंगें णिरुवम कोमलिय ।
सा गइय तुरंती णियणिलउ चंदाणण देवहेँ परिमिलिय ।।१६।। 10

१७

Karakaṇḍa returns to Ratịvega.

रइवेयएँ[1] ता दुम्मणमणाएँ पंकयरुहकोमलआणणाएँ ।
जं देविएँ भणियउ वयणु किं पि अणुसरिउ खणद्धें ताएँ तं पि ।
धणु [2]पवरु लएवि तुरंतियाइँ अहिणवमुणालवरगत्तियाइँ ।
तं सयलु विहंजिवि दुत्थियाहँ सुहभोयणु दिण्णउ भुक्खियाहँ ।
जावच्छइ सा तहिँ रइ करंति जिणणाहहो चलणइँ मणि सरंति । 5
रयणावलिविहिभावेँ णमंति मुत्तावलिमोत्तियदाम दिंति ।
कुसुमंजलिकुसुमहिँ विप्फुरंति पल्लोवमविहिपल्लवे चरंति ।
चउसत्थियविहिसत्थेण जंति वसुहारविहाणहो मणु थवंति ।
ता एक्कहिँ दिणि कणयप्पहाएँ तहिँ आणिउ सो करकंडु ताएँ ।
घत्ता—रइवेयइँ दिट्ठउ णियरमणु तहिँ हरिसइँ वड्ढिउ अंसुजलु । 10
ता विज्जु चमक्किय कसणतणु सिहिकंतएँ णं जलहरु सजलु ।।१७।।

१८

Karakaṇḍa conquers the Southern kings.

[1]रइवेयएँ पुणु कणयप्पहाहे गुरु आयरु कीयउ सयलु ताहे ।
परिओसु पवड्ढिउ परियणाहँ सामंतमंतिविंभियमणाहँ ।
तहिँ अच्छिवि कित्तिय दिण सराउ संचल्लिउ ता करकंडु राउ ।
ता दिविडदेसु महियलु भमंतु संपत्तउ तहिँ मच्छरु वहंतु ।
तहिँ चोडचेरपंडियणिवाहँ केणावि [1]खणद्धें कहिउ ताहँ । 5
अरि आयउ तुम्हहँ उवरि देव तिम किज्जइ दूरहु जाइ जेव ।
तं सुणिवि खणद्धें ते मिलीय करकंडहो जाएवि पुणु भिडीय ।
करि करिहिँ भिडिय रह रहवराहँ हय तुरयहँ ता णर णरवराहँ ।
रोसारुण दारुण अइभिडंति धयदंडछत्तसीसइँ पडंति ।
अंतउ ललंति णर पक्खलंति जसलुद्ध महाभड पुणु मिलंति । 10
कउ संगरु तेहिँ महंतु केव गयणंगणि सुरवर डरिय जेव ।
घत्ता—करकंडएँ धरिया ते वि रणे सिरमउड मलिय चरणेहिँ तहु ।
मउडग्गहिँ देक्खिवि जिणपडिम करकंडहो जायउ बहलु दुहु ।।१८।।

---

४ S हले. ५ J घरहिं,

१७. १ D रइवेएं. २ D पउरु.

१८. १ DN सणद्धें.

राजाकी ओर देखा। जो कुछ कमसे-कम मोल ठहरा, उतना सुवर्ण देकर राजाने घोड़ेको खरीद लिया। इस प्रकार दुरवस्थाको प्राप्त उन स्त्री, सूआ, राजा और अश्व, इनका फिर मिलाप हो गया। वे सुख भोगते हुए वहाँ रहे; और फिर वे अपने देशको चले आये। पद्मावती देवीने रतिवेगासे कहा—"हे बालिके, मैंने तुझे कह सुनाया कि किस प्रकार वह राजा समुद्रमें पड़कर भी घर लौट आया। जिस प्रकार वह महागुणवान् राजा आ गया, उसी प्रकार, हे मुग्धे, तेरा कान्त भी तुझे मिल जायेगा।" रतिवेगाको इतना सब कहकर वह सर्वांगसे निरुपम, कोमल व चन्द्रानना भट्टारिका पद्मावती देवी, तुरन्त अपने निवास-स्थानको चली गयी और देवोंमें जा मिली। १०

१७—रतिवेगा और करकण्डका पुनर्मिलन

तब यहाँ कमलके समान कोमलमुखी रतिवेगाने उदास मन होते हुए भी, जो कुछ वचन देवीने कहा था, उसका क्षणार्द्धमें अनुसरण करना प्रारम्भ कर दिया। उस अभिनव मृणालके समान सुन्दरांगी बालिकाने तुरन्त प्रचुर धन लेकर समस्त दुःखी दरिद्र लोगोंमें बाँट दिया और भूखे लोगोंको अच्छा भोजन कराया। इस प्रकार वह वहाँ भक्ति करती हुई, मनमें जिनेन्द्रके चरणोंका स्मरण करती हुई, रहने लगी। वह रत्नावली नामक उपवासविधिके भारसे झुक रही थी; ५ मुक्तावली रूपी मोतियोंकी माला धारण करती थी; कुसुमाञ्जली रूपी पुष्पोंसे चमकती थी; पल्योपम विधि-रूपी सार्थसे गमन करती थी, तथा वसुधारा नामक विधानमें अपना मन स्थापित करती थी। फिर एक दिन वह कनकप्रभा नामकी विद्याधर-कन्या करकण्डको वहाँ ले आयी। रतिवेगाने अपने पतिको देखा, तब हर्षसे उसकी आँखोंमें अश्रुजल भर आया। वह कृशांगी ऐसी चमक उठी जैसे कृष्णवर्ण सजल मेघ बिजलीसे चमक उठता है, अथवा मयूरी सजल मेघको १० देखकर नाच उठती है।

१८—करकण्डका द्रविड राजाओंसे युद्ध और उनकी पराजय

फिर रतिवेगाने कनकप्रभाका सब प्रकारसे बड़ा आदर किया। परिजनोंमें तथा विस्मित मन सामन्तों और मन्त्रियोंमें परितोष बढ़ा। वहीं कुछ दिन आनन्दपूर्वक रहकर करकण्ड राजा वहाँसे चल पड़ा। महीतलपर भ्रमण करते हुए, तथा मनमें मात्सर्य (क्रोध) भाव रखते हुए, वह द्रविड़ देशमें पहुँचा। वहाँ चोड, चेर व पाण्ड्य राजाओंसे किसीने क्षणार्द्धमें जाकर कहा—"हे देव, तुम्हारे ऊपर बैरी चढ़ आया है। ऐसा कीजिए जिससे वह दूरसे ही चला जाये।" यह ५ सुनकर वे राजा क्षणार्द्धमें परस्पर मिले और फिर जाकर करकण्डसे भिड़ गये। हाथी हाथियोंसे, रथ रथवरोंसे, हय तुरंगोंसे तथा पुरुष पुरुषोंसे भिड़ने लगे। वे रोषसे लाल होकर दारुण रीतिसे युद्ध करने लगे। ध्वजा, दण्ड, छत्र तथा सिर कट-कटकर पड़ने लगे। योद्धा अन्तरंगमें ललकते और प्रस्खलित होते। यशके लोभी महाभट पुनः परस्पर मिलते। इस प्रकार उन द्रविड राजाओंने ऐसा महान् संग्राम किया कि जिससे गगनांगनमें सुरवर भी डर उठे। करकण्डने उन राजाओंको १० रणमें पकड़ लिया और उनके सिरपरके मुकुटोंको अपने चरणोंसे रौंदा। किन्तु मुकुटोंके अग्रभाग पर जिन-प्रतिमाको देखकर करकण्डको बहुत दुःख उत्पन्न हुआ।

१९

He reinstalls them and returns to Terapur.

हा हा मइँ मूढइँ किं कियउ जिणबिंबु वि चरणें आहयउ ।
इह पावफलें दुग्गइणिवासु णउ जाणहुँ होसइ कहिँ मि वासु ।
मणि दुम्मिय मउलियलोयणेण चोडाहिव मुक्का ते वि तेण ।
जं संगरि मइँ तुम्हइँ खलीय जं चरणहिँ मउडइँ दरमलीय ।
तं खमहु सयलु महो बंधवासु पडिगाहहु देसु सपिंडवासु । 5
तं णिसुणिवि तेहिँ पडिवयणु उत्तु तुह सेव करेसहिँ अम्ह पुत्त ।
इय जंपिवि ते चंपाहिवासु पुणु सरिय खणद्धें अडविवासु ।
तणु तिणु व गणेविणु ललियगत्त तउ करिवि तेइँ सग्गग्गि पत्त ।
घत्ता—करकंडु तहंतउ णीसरिउ गउ संमुहुँ तेरापट्टणहो ।
जहिँ सुंदरि मयणावलि हरिय संपत्तउ तं पएसु वणहो ॥१९॥ 10

२०

Karakaṇḍa regains Madanāvali and returns to campā

जावच्छइ सो तहिँ आयरेण मयणावलि अप्पिय खेयरेण ।
ता तेण तुरिउ विज्जाहिवेण तहो कहिउ भवंतरु णियहिएण ।
अहि होंतउ हउँ अण्णहिँ भवम्मि हिंडंतु पराइउ तुह घरम्मि ।
ता दिट्ठउ मइँ पंजरठिओ वि पारावउ पाराविएँ जुओ वि ।
सो पाएँ गहिउ मइँ चडफडंतु ता पत्तउ तहिँ तुहुँ परिभमंतु । 5
छंडाविउ सो पइँ तुरियएण णवकारु पइण्णउ करुणएण ।
सो खेयरु जायउ तहो फलेण हउँ णासिवि गउ तुज्झु वि छलेण ।
एक्कहिँ दिणि चप्पिउ हयखुरेण मुणि कण्णजाउ दिण्णउ वरेण ।
हउँ खेयरु जायउ फलइँ तेण तुहुँ एत्थु दिट्ठ संपत्तएण ।
चिररोसेँ हरिय मइँ घरिणि तुज्झु लइ अक्खिउ मइँ तुह एउ गुज्झु । 10
हउँ एवहिँ किंकरु तुह भरेण पुणु णमिय चरण सण्णयसिरेण ।
अवराहु कियउ जो मइँ वि देव सो खमहि ण छंडमि तुज्झ सेव ।
घत्ता—संमाणिवि दाणइँ सो खयरु गउ चंपहिँ साहिवि महि णिवइ ।
सो रज्जु करंतउ बहुय दिण तहिँ अच्छइ कणयामरणिलइँ ॥२०॥

इय करकंडमहारायचरिए मुणिकणयामरविरइए भव्वयणकण्णावयंसे पंचकल्लाणविहाणकप्पतरु-फलसंपत्ते करकंडपुहइसाहणो चंपापुरिपवेसो णाम अट्ठमो परिच्छेउ समत्तो ।

॥ संधि ॥ ८ ॥

---

२०. १ DN सविणय.

१९—करकण्डका पश्चात्ताप व तेरापुरका आगमन

करकण्ड पश्चात्ताप करने लगा—"हाय हाय, मुझ मूढ़ने यह क्या किया ? जिनबिम्बको भी चरणसे आहत किया। इस पापके फलसे न जाने कौन-सी दुर्गतिमें मेरा निवास होगा ?" इस प्रकार मनमें दुःखी होकर तथा अपनी आँखें मींचकर उसने उन चोड राजाओंको छोड़ दिया और कहा—"जो मैंने संग्राममें तुम्हें पराजित किया, व जो अपने चरणोंसे तुम्हारे मुकुटोंको रौंदा, यह सब मुझे अपना बन्धु समझकर क्षमा करो, और अपने पैतृक-निवास देश (जन्मभूमि) को वापिस लो।" यह सुनकर उन द्रविड राजाओंने उत्तर दिया—"अब आपकी सेवा हमारे पुत्र करेंगे।" चम्पाधिपको ऐसा कहकर फिर उन्होंने क्षणार्द्धमें वनवासका अनुसरण किया। वे ललितगात्र नृप अपने शरीरको तृणके समान गिनकर तपस्या करके स्वर्गके अग्रभागको प्राप्त हुए। करकण्ड वहाँसे निकलकर तेरापट्टनके सम्मुख गया और वनके उस प्रदेशमें पहुँचा, जहाँ सुन्दरी मदनावली हरी गयी थी। ५ १०

२०—मदनावलीकी पुनः प्राप्ति और चम्पापुरी-आगमन

वहाँ जब वह आदरपूर्वक रह रहा था, तब उस खेचरने मदनावलीको लाकर अर्पित किया। उस विद्याधरने तुरन्त ही अपने हृदयसे अपना भवान्तर कह सुनाया। मैं पूर्व भवमें सर्प था। भ्रमण करता हुआ मैं तुम्हारे घरमें आ पहुँचा। वहाँ मैंने पिंजरेमें स्थित परेवीसे युक्त परेवेको देखा। मैंने उसका पैर पकड़ लिया। वह तड़फड़ाने लगा। उसी समय तू घूमता हुआ वहाँ आ पहुँचा। तूने उसे तुरन्त छुड़ा लिया और करुणापूर्वक उसे णमोकार मन्त्र दिया। उसके फलसे वह परेवा खेचर हो गया। मैं तेरी आँख बचाकर वहाँसे भाग गया। एक दिन मैं एक घोड़ेके खुरसे कुचला गया। उस समय एक मुनिवरने मेरे कानमें णमोकार मन्त्रका जाप दिया। उसके फलसे मैं खेचर हो गया, और यहाँ आनेपर मैंने तुझे देखा। उस पुराने रोषके कारण मैंने तेरी गृहिणीका हरण किया। ले, मैंने तुझे यह गुप्त बात कह दी। अब मैं पूर्णरूपसे तेरा किंकर हूँ। इतना कहकर उस खेचरने अपना सिर नवाकर करकण्डके चरणोंको नमस्कार किया। फिर बोला—"हे देव, मैंने जो अपराध किया, उसे क्षमा कीजिए। मैं अब कभी तुम्हारी सेवा नहीं छोड़ूँगा।" करकण्ड नृपतिने उस खेचरका दानसे सम्मान करके व पृथ्वीको साधकर (वशीभूत करके) चम्पाको गमन किया। वहाँ वह राज्य करते हुए बहुत दिनों तक अपने कनकमय अमर प्रासादमें रहा। ५ १०

इति मुनि-कनकामर-विरचित भव्यजनकर्णावतंस पञ्चकल्याणविधान-कल्पतरु-फलसम्पन्न करकण्डमहाराज-चरित्रमें करकण्डका पृथ्वीसाधन तथा चम्पापुरी-प्रवेश नामक अष्टम परिच्छेद समाप्त।

संधि—६

१

The forest guard reports the arrival of sage shilagupta.

चंपाहिउ बुहयणवेढियउ सुहलीलइँ अच्छइ जाव तहिँ ।
ता आयउ उज्जाणाहिवइ अत्थाणि णिविट्ठउ राउ जहिँ ।।

सो पुच्छिउ करकंडएँ णिवेण कहि आयउ तुहुँ कज्जेण केण[1] ।
सो कहइ णरेसर उववणम्मि जो झायहिँ सुमरहिँ णियमणम्मि ।
जसु दंसणे हरि उवसमु सरेइ करिकुंभहो गाहु ण सो करेइ । 5
अवरुप्परु वइरइँ जे वहंति तहो दंसणे मइउ मणे लिहंति ।
जसु दंसणे अणुवय के वि लिंति जिणु छंडिवि अण्णहिँ मणु ण दिंति ।
केहिँ मि मणि गहियइँ गुणवयाइँ अवराइँ मि पुणु सिक्खावयाइँ ।
धम्मालउ संजमणिलउ भाइ किं जिणवरु मुणिवेसेण णाइँ ।
तहिँ आयउ मुणिवरु णाणजुत्तु णामेण पसिद्धउ सीलगुत्तु । 10

घत्ता—करकंडु सुणेविणु तं वयणु अत्थाणहो उट्ठिउ तक्खणिण ।
गउ सत्तपयइँ मउलेवि कर सुमरंतउ मुणिवरपय मणिण ।।१।।

२

People start on a visit to the sage.

ता आणँदभेरि तुरंतएण देवाविय तुट्ठइँ राणएण ।
तहे णंद[1] सुणेविणु[2] लद्धभोय परिमिलिय खणद्धेँ भवियलोय[3] ।
क वि माणिणि चल्लिय ललियदेह मुणिचरणसरोयहेँ बद्धणेह ।
क वि णेउरसद्देँ रणझणंति संचल्लिय मुणिगुण[4] णं थुणंति ।
क वि रमणु ण जंतउ परिगणेइ मुणिदंसणु हियवएँ सइँ मुणेइ । 5
क वि अक्खयधूव भरेवि थालु अइरहसइँ चल्लिय लेवि बालु ।
क वि परिमलु बहलु वहंति जाइ विज्जाहरि णं महियलि विहाइ ।

घत्ता—काइ वि छणससहरआणणिय करे कमल करंती संचलिय ।
आणंदिय भेरिहे सुणिवि सरु लहु भवियण सयल वि तहिँ मिलिय ।।२।।

३

On his way Karakanda sees a miserable woman.

जिणिंदधम्मरत्तओ मुणिंदपायभत्तओ ।
सुवण्णकंतिदित्तओ सरोयपत्तणेत्तओ

---

१. १ J जेण.
२. १ DJ णंदियँ. २ DN सद्द. ३ DN णयरलोय. ४ N मुणिवरगुण थुणंति.

सन्धि—९

१—चम्पाके उपवनमें शीलगुप्त मुनिका आगमन

बुधजनोंसे वेष्टित चम्पाधिप जब सुख व लीलापूर्वक वहाँ रह रहा था, तब जहाँ सभामें राजा बैठा था वहाँ उद्यानका अधिपति आया। करकण्ड राजाने उससे पूछा—"तू किस कार्यसे आया है, सो कह।" उसने कहा—"हे नरेश्वर, जिसका लोग अपने मनमें ध्यान और स्मरण करते हैं, जिसके दर्शनसे सिंह भी उपशान्त हो जाता है, और हाथीके मस्तकका आग्रह नहीं करता; जिसके दर्शनसे परस्पर वैर धारण करनेवाले प्राणी भी अपने मनमें मार्दव भाव ले लेते हैं; जिसके ५ दर्शनसे कोई अणुव्रत ले लेते हैं और जिनेन्द्रको छोड़कर अन्य किसीमें मन नहीं देते; कोई गुणव्रत ग्रहण कर लेते हैं और पुनः अन्य शिक्षाव्रत ले लेते हैं; जैसे धर्मालय ही हों, अथवा संयमके घर, या मानो मुनिके वेशमें जिनवर ही हों—ऐसे ज्ञानयुक्त शीलगुप्त नामके प्रसिद्ध मुनिवर उपवनमें आये हैं।" यह वचन सुनकर करकण्ड अपने सिंहासनसे तत्क्षण उठ खड़ा हुआ तथा हाथ जोड़कर व मनमें मुनिवरके पदोंका स्मरण करते हुए सात पग आगे बढ़ा। १०

२—नर-नारियोंका मुनि-दर्शनके लिए उत्साह

फिर तुरन्त ही राजाने सन्तुष्ट होकर आनन्दभेरी दिलवायी। उस भेरीका नाद सुनकर सौभाग्यशाली भव्य लोग क्षणार्द्धमें आ मिले। कोई ललितदेह मानिनी मुनिके चरण-कमलोंमें स्नेह बाँधकर चल पड़ी। कोई नूपुरके शब्दोंसे झुन-झुन ध्वनि करती हुई चली, मानो मुनिके गुणोंका स्तवन कर रही हो। कोई अपने साथ चलते हुए रमणकी ओर ध्यान न देकर स्वयं हृदयसे मुनिके दर्शनकी अभिलाषा कर रही थी। कोई अक्षत व धूपसे थाल भरकर, बालकको ले, बड़े वेगसे चल ५ पड़ी। कोई खूब सुगन्ध उड़ाती हुई जा रही थी, मानो विद्याधरी महीतलपर शोभित हो रही हो। कोई पूर्णचन्द्रमुखी हाथमें कमल लेकर चल पड़ी। इस प्रकार आनन्दभेरीका स्वर सुनकर सभी भव्यजन शीघ्र वहाँ आ मिले।

३—शोक-व्याकुल स्त्रीका दृश्य

जिनेन्द्रधर्ममें अनुरक्त, मुनीन्द्रके चरणोंका भक्त, स्वर्ण समान कान्तिवान्, कमलपत्रके समान नेत्रवान्, प्रलम्ब व पीनभुजशाली, सब शास्त्रोंका ज्ञाता एवं विशुद्ध व सुसन्धित-गात्र राजा कर-

पलंबपीणहत्थओ विसुद्धसव्वसत्थओ ।
विसुद्धसंधिगत्तओ पणेण जाव पत्तओ ।
तहिं पि ताव दिट्ठिया भणंति हा पमूढिया । 5
पुरंधि का वि दुक्खिया हणंति दो वि कुक्खिया ।
रुवंति अंसुवाहुलं जणाण दुक्खसंकुलं ।
कुणंति चित्तु आउलं धरंति वेसु वाउलं ।
घुलंति जा वि मुच्छए पडंति भूपएसए ।
सुणेवि तं णरेसरो सुबाहुणिद्धणीसरो । 10

घत्ता—करकंडइँ पुच्छिउ को वि णरु एह णारि वराई किं रुवइ ।
विलवंती हियवइँ दुहु करइ अप्पाणउ विहलंघल मुअइ ॥ ३ ॥

४

He learns the cause of her troubles and becomes disgusted with the ways of the world.

ता अक्खिय रायहो वत्त तेण दुक्खाउर हूई एह जेण ।
तं कारणु णिसुणहि सामिसाल भुंजंतिहे भोयइँ सयलकाल ।
उप्पण्णउ णंदणु विहिवसेण सो णीयउ आयहे वइवसेण ।
तें रुवइ सदुक्खउ महिल एह अप्पाणउ घल्लइ बद्धणेह ।
परिमेल्लइ पासु ण णंदणासु वीसरइ ण सो पुणु णियमणासु । 5
तं सुणिवि वयणु रायाहिराउ संसारहो उवरि विरत्तभाउ ।
धी धी असुहावउ मच्चलोउ दुहकारणु मणुवहँ अंगभोउ ।
रयणायरतुल्लउ जेत्थु दुक्खु महुबिंदुसमाणउ भोयसुक्खु ।

घत्ता—हा माणउ दुक्खइँ दड्ढतणु विरसु रसंतउ जहिँ मरइ ।
भणु णिग्घिणु विसयासत्तमणु सो छंडिवि को तहिँ रइ करइ ॥४॥ 10

५

Transitory nature of worldly existence.

कम्मेण परिट्ठिउ जो उवरे जमरायएँ सो णिउ णिययपुरे ।
जो बालउ बालहिँ लालियउ सो विहिणा णियपुरि चालियउ ।
णवजोव्वणि चडियउ जो पवरु जमु जाइ लएविणु सो जि णरु ।
जो बूढउ वाहिसएहिँ कलिउ जमदूयहिँ सो पुणु परिमलिउ ।
बलहद्दएँ सहुं हरि अतुलबलु सो विहिणा णीयउ करिवि छलु । 5
छक्खंड वसुंधर जेहिँ जिया चक्केसर ते कालेण णिया ।
विज्जाहर किंणर जे खयरा बलवंता जममुहे पडिय सुरा ।
फणिणाहइँ सरिसउ अमरवइ जमु लिंतउ कवणु वि णउ मुअइ ।

घत्ता—णउ सोत्तिउ बंभणु परिहरइ णउ छंडइ तवसिउ तवि ठियउ ।
धणवंतु ण छुट्टइ ण वि णिहणु जह काणणे जलणु समुट्ठियउ ॥५॥ 10

---

४ १ N सव्वलोउ.

कण्ड जब बाजारमें पहुँचा, तब उसने वहाँ देखा कि एक कोई दुःखी पुरवासिनी मूढ़भावसे हाय-हाय कर रही है; अपनी कुक्षिको दोनों ओर कूट रही है; खूब आँसू बहा-बहाकर रो रही है; लोगोंके चित्तको दुःखसे संकुलित और व्याकुल कर रही है; बावला भेष धारण किये है; मूर्च्छासे ५ डोल रही है; व भूमिपर गिर-गिर पड़ती है। उस लोगोंपर प्रभाव डालनेवाले मदिरा-पानसे उन्मत्त ध्वनिके समान स्वरको सुनकर करकण्डने किसी मनुष्यसे पूछा—"यह बेचारी नारी क्यों रोती है; और क्यों विलाप करती हुई हृदयमें दुःख करती, एवं अपने-आप विह्वल हो-होकर मर रही है ?"

४—करकण्डका वैराग्यभाव

तब उस मनुष्यने राजासे बात कही—"जिस कारणसे वह ऐसी दुःखातुर हुई है, उस कारणको, हे स्वामिसार, सुनिए। सदाकाल भोग भोगते हुए इसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ। किन्तु विधिवशात् उसे इसके पाससे यमराज छुड़ा ले गया। इसीसे यह महिला दुःखी होकर रोती है, और स्नेहसे बँधकर आत्मोत्सर्ग कर रही है। वह अपने पुत्रका साथ नहीं छोड़ती और न उसे अपने मनसे भुलाती है।" उस वचनको सुनकर राजाधिराज करकण्ड, संसारके ऊपर विरक्त-भाव ५ होकर कहने लगे—"धिक्-धिक्, यह मर्त्यलोक बड़ा असुहावना है। शरीरका भोग ही मानवके दुःखका कारण है। यहाँ समुद्रके तुल्य महान् दुःख है, तथा भोगोंका सुख मधुबिन्दुके समान अत्यल्प। हाय, जहाँ मानव दुःखसे दग्धशरीर होकर बुरी तरह कराहता हुआ मरता है, ऐसे संसारमें निर्लज्ज व विषयासक्त मनुष्यको छोड़, कहो और कौन प्रीति कर सकता है ?"

५—अनित्य-भावना

कर्मवश जो उदरमें आकर बैठा, उसे यमराज अपने पुरमें ले गया। जिस बालकको लाला-पाला, उसे विधिने अपने नगरको चला दिया। जो नवयौवनमें चढ़ा, उस प्रवर मनुष्यको भी यम लेकर चल देता है। जो बूढ़ा होकर सैकड़ों व्याधियोंसे पीड़ित है, वह तो फिर यमदूतों-द्वारा परिमर्दित होनेवाला ही है। बलभद्रके साथ अतुल बलशाली नारायणको भी विधि छल करके ले भागा। जिन चक्रवर्तियोंने छह खण्ड वसुन्धराको जीता, उन्हें भी काल ले उड़ा। जो विद्याधर, ५ किन्नर, खेचर, सुर व देव हुए, वे बलवान् होते हुए भी यमके मुखमें जा पड़े। नागेन्द्रके सदृश अमरेन्द्रको भी यम ले जाता है; वह किसीको छोड़ता नहीं। न वह श्रोत्रिय ब्राह्मणको बचने देता, और न तपमें स्थित तपस्वीको छोड़ता। उससे न धनवान् छूटता और न निर्धन। जैसे मानो काननमें दावानल भभक उठा हो (ऐसी संसारकी अनित्य दशा है)।

६

Fickleness of worldly pleasures.

दइवेण विणिम्मिउ देहु जं पि लायण्णउ मणुवहँ थिरु ण तं पि ।
णवजोव्वणु मणहरु जं चडेइ देवहिँ वि ण जाणिउ कहिँ पडेइ ।
जे अवर सरीरहिँ गुण वसंति ण वि जाणहुँ केण पहेण जंति ।
ते कायहो जइ गुण अचल होंति संसारहँ विरइ ण मुणि करंति ।
करिकण्ण जेम थिर कहिँ ण थाइ पेक्खंतहँ सिरि णिण्णासु जाइ । 5
जह सूयउ करयलि थिउ गलेइ तह णारि विरत्ती खणि चलेइ ।
भूणयणवयणगइ कुडिल जाहँ को सरल करेवइँ सक्कु ताहँ ।
मेल्लंती ण गणइ सयण इट्ठ सा दुज्जण-मेत्ति व चल णिकिट्ठ ।
घत्ता—णिज्झायइ जो अणुवेक्ख चल वइरायभावसंपत्तउ[3] ।
सो सुरहरमंडणु होइ णरु सुललियमणहरगत्तउ ॥६॥ 10

७

Helplessness of the mortals.

रयणीए[1] परिसमणु संगामे सुरदमणु
आवइउँ[2] पत्ताइँ हिययम्मि सुत्ताइँ ।
तहो किं पि णउ फुरइ उट्ठेइ वइसरइ ।
अह विवरे पइसरउ सुरलोउ अणुसरउ ।
सुरगिरिहिँ आरुहउ पंजरहिँ तणु छुहउ । 5
बंधवहिँ मित्तेहिँ करधरियकुंतेहिँ ।
पुत्तेहिँ सुत्थियउ मंतेहिँ रक्खियउ ।
भडणियरपरियरिउ णउ तेहिँ पुणु धरिउ ।
बलएउ चक्कहरु सुरणाहु णहे खयरु ।
जमु वरुणु धरधरणु ण वि होइ कु वि सरणु । 10
घत्ता—असरणअणुवेक्खउ जो वि पुणु अणुदिणु भावइ णियमणे ।
सो सुरणारिहिँ ललियतणु भोयवंतु भुंजियइ खणे ॥ ७ ॥

८

Troubles of life.

संसारे भमंतहँ कवणु सोक्खु असुहावउ पावइ विविहदुक्खु ।
णरयालइँ[1] णाणाणारएहिँ चिरकियहिँ णिहम्मइ वइरएहिँ ।
हियएँ ण वि चिंतहु सक्कियाइँ तहिँ भुत्तइँ पवरइँ दुक्कियाइँ ।
अवरुप्परु जाइविरुद्धएहिँ तिरियाण मज्झे उप्पण्णएहिँ ।
मुहबंधणछेयणताडणाइँ पावियइँ तेहिँ तणुफाडणाइँ । 5
मणुयत्तणे माणउ परिमलंतु परिझिज्जइ[2] णियमणे सलवलंतु ।
सुरलोएँ पवण्णउ णट्ठबुद्धि मणि झिज्जइ देक्खिवि परहो रिद्धि

---

६. १ N णु. २ DN थाइ. ३ S] संपण्णउ.

७. १] रमणीए. २ DN सत्ताइं.

८. १ S पायालएं. २ N परिमिज्जइ.

६—अनित्य-भावना (चालू)

दैवने जिस देहका निर्माण किया है, मानवका वह लावण्य भी स्थिर नहीं है। जो मनोहर नवयौवनपर चढ़ता है, उसे भी देव न जाने कहाँ जा पटकते हैं। शरीरमें जो और गुण निवास करते हैं, वे सब भी न जाने किस मार्गसे निकल जाते हैं। यदि वे कायके गुण अचल होते, तो मुनि संसारसे विरक्ति नहीं करते। गजकर्णके समान लक्ष्मी कहीं स्थिर नहीं ठहरती; देखते ही देखते वह विनष्ट हो जाती है। जिस प्रकार पारा हथेलीपर रखते ही गल जाता है, ५ उसी प्रकार नारी विरक्त होकर एक क्षणमें चली जाती है। जिसकी भौंहें, नयन, बचन व गति सब कुटिल हैं, उस नारीको कौन सरल बना सकता है? जो छोड़ते समय न स्वजनोंको गिनती और न इष्ट, वह नारी दुर्जन-मैत्रीके समान चंचल और निकृष्ट होती है। जो वैराग्य-भावको प्राप्त होकर इस अनित्य-अनुप्रेक्षाका ध्यान करता है, वह नर सुललित और मनोहर गात्र होकर देवोंके विमानका आभूषण बनता है। १०

७—अशरण-भावना

रात्रिमें विश्राम लेता और संग्राममें देवोंका दमन करता। किन्तु जब आपत्ति आ पड़ती है और हृदय सो जाता है, तब उसकी कोई चेष्टा नहीं रहती। न वह उठता है, और न बैठता। चाहे गुफामें जा छिपो, चाहे सुरलोकका अनुसरण करो, या सुरगिरिपर जा चढ़ो, अथवा पिंजड़ेमें अपने शरीरको डाल रखो। चाहे बन्धु और मित्र हाथोंमें भाले लिये खड़े रहें। पुत्र बचाते रहें और मन्त्र-रक्षा करते रहें, या योद्धाओंका समूह घेरे रहे। किन्तु ये सब किसीको मृत्युसे नहीं ५ बचा सकते। बलदेव, चक्रधारी नारायण, सुरेन्द्र, आकाशगामी खेचर, यम, वरुण, शेषनाग—कोई शरण नहीं हो सकता। जो कोई उस अशरण-अनुप्रेक्षाकी प्रतिदिन अपने मनमें भावना करता है, उसके शरीरका सुरनारियाँ लालन करतीं और यथासमय उस सौभाग्यशालीके साथ भोग भोगती हैं।

८—संसार-भावना

संसारमें भ्रमण करते हुए जीवको कौन-सा सुख होता है? वह नाना प्रकारके असुहावने दुःखोंको ही पाता है। नरक-लोकमें उसे उसके पूर्वके वैरी नारकी मारते हैं। वहाँ ऐसे बड़े-बड़े पाप भोगने पड़ते हैं, जो हृदयसे सोचे भी नहीं जा सकते। परस्पर जाति-विरोधी तिर्यंचोंके बीच उत्पन्न होकर, उनके द्वारा मुखबन्धन, छेदन, ताड़न व अंगफाड़नके दुःख प्राप्त होते हैं। मनुष्यभवमें मान धारण करता हुआ अपने मनमें सलबलाता और परिक्षीण होता रहता है। ५ सुरलोकमें पहुँचकर यह नष्ट-बुद्धि जीव दूसरोंकी ऋद्धि देखकर मनमें खीझता रहता है। जिस

णंडणारि[3] जेम रूवइँ करेइ तिम जीउ कलेवर सइँ धरेइ ।
घत्ता—संसारहँ उवरि णिहालणउ किउ जेण णरेण कयायरेण ।
भणु काइँ ण लद्धउ तेण जइ पवररयणरयणायरेण ॥ ८ ॥ 10

९

Sole responsibility of each individual.

जीवहो सुसहाउ ण अत्थि को वि णरयम्मि पडंतउ धरइ जो वि ।
सुहिसज्जणणंदणइट्ठभाय ण वि जीवहो जंतहो ए सहाय ।
णिय जणणि जणणु रोवंतयाइँ जीवेँ सहुँ ताइँ ण पउ गयाइँ ।
धणु ण चलइ गेहहो एक्कु पाउ एक्कल्लउ भुंजइ धम्मु पाउ ।
तणु[2] जलणि जलंतइँ परिवडेइ एक्कल्लउ वइवसघरि चडेइ । 5
जहिँ णयणणिमेसु ण सुहु हवेइ एक्कल्लउ तहिँ दुहु अणुहवेइ ।
अहिणउलसीहवणयरहँ मज्झे उप्पज्जइ एक्कु वि जिउ असज्झे ।
सुरखेयरकिंणरसुहयगाम तहिँ भुंजइ एक्कु वि जियइ जाम ।
घत्ता—इह अणुवेक्खा[3] जो अणुसरइ सीलेँ मंडिवि णिययतणु ।
सासयपए सो सुहणिलए एक्कल्लउ सोहइ मुक्कतणु ॥ ९ ॥ 10

१०

Senses and qualities are alien to Self.

इउ भासइ मुणि गुणगण वहंतु जीवहो परिभिण्णउ तं कहंतु ।
परिपोसिउ उसहंसएहिँ जं पि भिण्णउ सरीरु जीवाउ तं पि ।
लोयणइँ सुतारइँ दीहराइँ जीवहो परिभिण्णइँ सुहयराइँ ।
जीहा तरुपल्लवसण्णिहा वि जीवहो दूरेण वि सा थिया वि ।
तणुफंसगंधकण्णहँ समिद्धि जीवहो अइभिण्णी रूवरिद्धि । 5
जे अवर वि गुण कायहो मिलंति ते जीवहो भिण्णा संचलंति ।
जे कायहो थूला बहुय के वि अइसुहुमा जीवहो दूरे ते वि ।
कोहाइचउक्कु वि पुण्णपाव ते जीवहो भिण्णा कम्मभाव ।
घत्ता—एह अणुवेक्खा थिर करिवि णियमणि झायइ जो जि णरु ।
सो परमप्पउ णिम्मलउ देहविवज्जिउ होइ वरु ॥ १० ॥ 10

११

Impure nature of the physical body.

एहु देहहो भणु गुणु को विहाइ कउ मंडणु असुइ सहावेँ[1] जाइ ।
जे णयण तरल विब्भमगया वि ते दूसाणिवहहिँ दूसिया वि ।
भणु णासारंधहो का विसुद्धि जहिँ गलइ सिंभु पयडउ असुद्धि ।
गुणअमिउ अहरे जणु किं कलेइ जहिँ लालासारणि परिघुलेइ ।
गुणुदीसइ कवणु उरोरुहाहँ परिपूरिय पूयएँ वणणिहाहँ । 5

---

३ D णरणारि S णरु णारि.

९. १ J में यहाँसे लेकर पंक्ति ६ के 'एक्कल्लउ' तकका पाठ छूट गया है । २ D N S जलणु.
३ J अणुपेक्खा.

११. १ N सहाव.

प्रकार नट-नारी नाना रूप धारण करती है, उसी प्रकार यह जीव स्वयं नाना कलेवर धारण किया करता है। जिस मनुष्यने भले प्रकार संसारके ऊपर अवलोकन किया, और महान् रत्नत्रय रूपी रत्न प्राप्त कर लिये उसे कहो, इस जगमें क्या नहीं मिला ?

९—एकत्व-भावना

जीवका ऐसा कोई सुसहायक नहीं है, जो उसे नरकमें गिरनेसे बचा ले। सुहृद्, स्वजन, नन्दन व इष्ट भ्राता, ये जीवके जाते समय सहायक नहीं होते। स्वयं अपनी जननी या जनक, रोते हुए भी, जीवके साथ एक पैर भी नहीं जाते। धन भी एक पैर घरके बाहर साथ नहीं चलता। जीव अकेला ही धर्म व पापका फल भोगता है। शरीर जलती अग्निमें गिरकर भस्म हो जाता है। जीव अकेला ही यमके घरको चढ़ता है। वहाँ नयन-निमेष (पल) मात्र भी सुख नहीं होता। वहाँ जीव अकेला ही दुःखका अनुभव करता है। असाध्य (दुःखपूर्ण) अहि, नकुल, सिंह आदि वनचरोंके बीच अकेला जीव ही जाकर उत्पन्न होता है। सुरों, खेचरों व किन्नरोंके सुन्दर ग्राममें भी जीव अकेला ही जबतक जीता है, भोग भोगता है। जो कोई अपने शरीरको शीलसे मण्डित कर इस एकत्व अनुप्रेक्षाका अनुसरण करता है, वह शरीरसे मुक्त होकर सुखके निलय शाश्वत पदमें अद्वितीय रूपसे शोभायमान होता है। ५ १०

१०—अन्यत्व-भावना

गुणगणोंके धारी मुनिने फिर भाषण किया और जीवसे जो सर्वथा भिन्न है, उसे बतलाया। जो सैकड़ों औषधोंसे परिपोषित किया जाता है, वह शरीर भी जीवसे भिन्न है। बड़े-बड़े दीर्घ सुखकारी लोचन भी जीवसे परिभिन्न हैं। वृक्षके पल्लव समान चंचल यह जिह्वा भी जीवसे दूर ही स्थित है। शरीरके स्पर्श, गन्ध व कानोंके गुण तथा रूपऋद्धि, जीवसे अतिभिन्न हैं। और भी जो गुण कायमें आ मिलते हैं, वे सब जीवसे भिन्न होकर चले जाते हैं। जो भी कायके बहुतसे स्थूल व अतिसूक्ष्म गुण हैं, वे भी जीवसे दूर ही हैं। क्रोधादिक चारों कषाय व पुण्य और पाप, ये सब कर्मभाव जीवसे भिन्न हैं। जो मनुष्य इस अनुप्रेक्षाको स्थिर करके अपने मनमें ध्याता है, वह देहसे विवर्जित, निर्मल और उत्तम परमात्मा हो जाता है। ५

११—अशुचि-भावना

इस देहमें कहो कौन-सा गुण दिखायी देता है ? जो स्वभावतः अशुचि है उसका मण्डन क्या ? जो तरल और विभ्रमपूर्ण नेत्र हैं, वे दूषण-समूहोंसे दूषित हैं। कहो, नासिका-रन्ध्र में क्या विशुद्धि है, जहाँ स्पष्ट ही अशुद्ध श्लेष्म बहता रहता है ? अधरमें लोग क्यों अमृतगुण की कल्पना करते हैं, जब कि वहाँ लारका प्रवाह घूमता रहता है ? स्तनोंमें कौन-सा गुण दिखायी देता है, जब कि वे पीवसे भरे हुए फोड़ोंके सदृश हैं ? सघन मांसके बढ़े हुए, दूषित पिण्डोंसे ५

घणमंसपवड्डियपिंडयाइँ [2]को करइ रई तहँ दूसियाइँ ।
कडिमंडलु भणियउ [3] किं बुहेहिँ परिसवइ असुद्धउ विहिँ मुहेहिँ ।
वसरुहिरमंसहड्डाइं जेत्थु भणु सुद्धिहे कारणु कवणु तेत्थु ।
जइ भितरु बाहिरु विहि करंतु भणु जणवउ को तहिँ रइ सरंतु ।
घत्ता—उप्पण्णउ सुक्कइँ सोणियइँ असुइसहावउ जो जणु झायइ । 10
एह अणुवेक्खा णिसुणिय तं पुणु सिद्धिहे मग्गएँ लायइ ॥ ११ ॥

१२

How Karmas are contacted.

रयणायरे जलसंघाउ जेव कम्माण णिवहु आसवइ तेव ।
जह सछ्रु पणट्ठउ बुंवएण आणियइ कम्मु तह जीवएण ।
सद्दंसणेण परिचत्तएण संमिलइ कम्मु मिच्छत्तएण ।
वज्जरइ जिणेसरु गलियकम्मु अविरइपरिणामें मिलइ कम्मु ।
कम्मासउ कोहें माणएण तह डंभइँ लोहइँ कीयएण । 5
मणमारणु सोलउ जइ हवेइ कम्मासववइरि ण संघवेइ ।
हिंसालउ वयणु वि जो सरेइ तहो कम्मु मिलंतउ को धरेइ ।
जो हिंसइँ काउ समायरेइ सो कम्मइँ सहुँ ता रइ करेइ ।
घत्ता—बंधहो कारणु करेवि तणु अणुवेक्ख जो झायइ पुणु हियए ।
सो धण्णउ सासयसोक्खरसु अविरामएँ सो णरु तहिँ पियए ॥ १२ ॥ 10

१३

How the inflow of Karmas is checked.

जो समसु धीरे[1]चित्तु उद्धरेइ सो वि दुट्ठ मिच्छदिट्ठि संवरेइ ।
जो खमाएँ सुद्धियाएँ वावरेइ कोहवारि दुक्खकारि सो हरेइ ।
मद्दवेण जो चरेइ सुद्धएण[2] माणखंभु तासु जाइ णिच्छएण ।
अज्जवम्मि चित्तु देइ जो महंतु [3]सो हवेइ वंचणाविसो णिहंतु ।
कायपिंडे सुंदरे वि जो णिरीहु सो णिरुत्तु पक्खलेइ लोहसीहु । 5
धम्मे संतु भाउ देवि जो सरेवि तं मणो वि मक्कडो वि सो धरेवि ।
पूययाएँ पूयएइ वीयराउ तक्खणेण सो हणेइ दुट्ठराउ ।
धम्मसव्वु भावसुद्धि झाणजोइ जो करेइ सो धरेइ कोउलाइं ।
घत्ता—खमदमसहियउ गुणणिलउ एयउ जो पयडिउ संवरइ ।
अणुहुंजिवि सोक्खइँ सग्गे पुणु सो सिद्धिहे सम्मुहुँ संचरइ ॥ १३ ॥ 10

१४

How Karmas are got rid of.

विहिँ भेयहिँ णिज्जर खवियणेहे सविवायावायहिँ मुणहिँ एह ।
चिरकालें संचिउ कम्मु फारु उप्पायइ भुंजइ बहुपयारु ।

---

२ J D N में यह चरण छूटा है. ३ S भणिउ. ४ S हड्डाइं

१३. १ S] धीरे. २ S में 'सुद्धएण'. से पूर्व 'माएण' जुड़ा है. ३ S सोह देइ. ४ S भारु. ५ DN केउलोई.

१४. १ N °देह. २ N में इससे पूर्व हाँसियेमें जोड़ी गयी पंक्ति है—तिरियहं हवेइ अविवाइ फारु । संभवइ णरहं सववाइ सारु । ३ J सो पायइ.

कौन रति करे ? बुद्धिमानों (कवियों) ने कटिमण्डलका न जाने क्यों वर्णन (प्रशंसन) किया है, जब कि वहाँ दो-दो गुह्य मुखोंसे अशुद्ध मल बहता है ? जिस शरीरमें वसा, रुधिर, मांस और हड्डियाँ हैं, वहाँ कहो शुद्धिका कौन-सा कारण है ? यदि भीतरी व बाहरी विधि (शुद्धि) का विचार करें, तो कौन मनुष्य इस शरीरके साथ रति करेगा ? यह शरीर शुक्र व शोणितसे उत्पन्न हुआ स्वभावतः अशुचि है, ऐसा जो मनुष्य ध्यान करता है, उसे यह अनुपम अनुप्रेक्षा १० सिद्धिके मार्गपर लगा देती है।

१२—आस्रव-भावना

जिस प्रकार समुद्रमें जलका समूह एकत्र होता है, उसी प्रकार जीवके साथ कर्मोंके पुंजका आस्रव होता है। जिस प्रकार खोया हुआ शल्य (लोहेकी सूई) चुम्बकसे पकड़ा जाता है, उसी प्रकार जीव (कषायोंकी प्रेरणासे) कर्म ग्रहण करता है। सम्यग्दर्शनके परित्यागसे मिथ्यात्व-भावके द्वारा कर्मका सम्मिलन होता है। अज्ञानको दूर करनेवाले (केवलज्ञानी) जिनेश्वरने कहा है कि कर्म अविरत परिणाम (व्रत-हीनता) के कारण संचित होता है। कर्मोंका आस्रव ५ क्रोधसे, मानसे, मायासे तथा लोभ करनेसे होता है। यदि मनके दमन रूप शील उत्पन्न हो जाये, तो कर्मास्रवरूपी वैरीकी सम्भावना नहीं रहती। जो हिंसामय वचनका अनुसरण करता है, उसे कर्मबन्ध होनेसे कौन बचा सकता है ? जो हिंसाभावसे काय-क्रिया करता है, वह तब कर्मोंमें रति करता है। जो इस शरीरको बन्धका कारण मानकर, हृदयसे इस अनुप्रेक्षाका ध्यान करता है, वह मनुष्य धन्य है। वह शाश्वत सुख रूपी रसका अविराम भावसे पान करेगा। १०

१३—संवर-भावना

जो धीरचित्त होकर सम्यक्त्वका उद्धार करता है, वह दुष्ट-मिथ्यादृष्टिका संवरण करता है। जो शुद्ध क्षमाभावसे व्यापार करता है, वह दुःखकारी क्रोधरूपी जल-प्रवाहको रोक सकता है। जो शुद्ध मार्दव-भावसे आचरण करता है, उसका मान रूपी स्तम्भ निश्चयसे चला जाता है। जो महापुरुष आर्जव गुणमें चित्त देता है, वह वञ्चनारूपी विषका निहन्ता हो जाता है। जो इस सुन्दर कायपिण्डमें भी निरीह है, वह निश्चय ही लोभरूपी सिंहको जीत लेता है। ५ जो धर्ममें शान्तभाव देकर (रखकर) आचरण करेगा, वह इस मनरूपी मर्कटको वशमें ला सकेगा। जो पवित्रभावसे वीतरागकी पूजा करता है, वह तत्क्षण ही दुष्ट-राग (मोह) का नाश करता है। जो सब प्रकारसे धर्माचरण करता है, भावोंमें शुद्धि लाता है तथा ध्यान-योग करता है, वह केवलज्ञान भी प्राप्त कर लेता है। जो कोई क्षमा व दमन (इन्द्रिय-निग्रह) से सहित, गुणोंका धारी होता हुआ इन कर्म-प्रकृतियोंका संवर कर लेता है, वह स्वर्गमें सुख १० भोगकर फिर सिद्धि (मोक्ष) की ओर गमन करता है।

१४—निर्जरा-भावना

रागका क्षय करनेवाली निर्जराको दो प्रकारसे जानना चाहिए—एक सविपाक निर्जरा, और दूसरी अपाक निर्जरा। जीवने चिरकालसे बहुत-सा कर्म संचित किया है, वर्त्तमानमें भी

रविकिरणहिँ गिंभे जो तणु खवेइ जो तरुतले बरिसालैं गमेइ
सिसिरम्मि तुसारु जो सिरे धरेइ सो कम्मु पयत्तें अवहरेइ।
जो दुद्धरु तवभरु उव्वहेइ उववासहिँ जो तणु तिणु करेइ। 5
अणिबद्धउ वयणु जि संवरेइ °सो सयलइँ कम्मइँ णिज्जरेइ।
मणु मारइ जो बाहिरे चरंतु सो हणइ कम्मु जणु मणि तुरंतु।
चंदायणे भोयणु जो चरेइ सोवीराहारु जो आयरेइ।
बहु कायकिलेस जो अणुसरेइ बावीसपरीसहँ जो सहेइ।
अविवाय सो णिज्जर जणु वहेइ जो दुविहु परिग्गहु परिहरेइ। 10
सयमेव समावइ कम्मु जासु णिज्जर हवेइ सविवाय तासु।

घत्ता—णिज्जरइ कम्मु संसुद्धमणु मणवयकाएँ जो वि णरु।
देवाण मज्झे भुंजेवि सुहु सो णिच्छइँ सिवपए लहइ घरु॥ १४॥

१५

Divisions of the universe.

तिहिँ खंडहिँ खंडिउ लोउ एहु सो चउदह रज्जुय उड्ढदेहु।
णारयणिवासु पढमउ विहाइ पल्हत्थिउ मल्लउ धरिउ णाइँ।
घरु बीयउ तिरियहँ[1] जं अमेउ झल्लरिसमाणु तं तिरियलोउ।
जहिँ अमरहँ विरइ ण अत्थि भोइ[2] अमरालउ [3]मुरयसमाणु होइ।
दुहु दीसइ जहिँ ण वि णिमिसमेत्तु तहो उवरि पसिद्धउ सिद्धखेत्तु। 5
जं कहियउ मुणिगणवरगुणीहिँ तं थक्कउ वायवलेहिँ तीहिँ।
गयणंगणे रवि अच्छेइ जेव एहु भुवणु ण केण वि धरिउ तेव।
किरियाविहीणु णहु किं परेण तह भुवणु ण केण वि किउ णरेण।

घत्ता—पालिवि पंच महव्वयइँ लोयणुवेक्खहे जो मणु जुंजइ।
सो णरु धण्णु सलक्खणउ अमरहँ सुहइँ अणेयइँ भुंजइ॥ १५॥ 10

१६

Pious thoughts.

जिणणाहपायपंकयरुहाहँ संभवउ पयत्तइँ भत्ति ताहँ।
सद्दंसणणाणचरित्तयाहँ महो होउ जम्मु कुले सावयाहँ।
महो जम्मे जम्मे पंच वि वयाइँ संपज्जहुँ बिहिँ भेयहिँ गयाइँ।
परियाणिउ जें संसारसारु जिणसासणु महो संपडउ चारु।
समदमजमणियमकयायराहँ महो भत्ति होउ मुणिसायरा[1]हँ। 5
दहलक्खणधम्महो सुंदरासु महो भत्ति होउ सिवसुहयरासु।
जरजम्मणमरणइँ अवहरंतु मग्गण मणे चउदह विप्फुरंतु।
चउदहगुणठाणइँ महो घडंतु गुण सिद्धहँ महु थिर मणे चडंतु।

घत्ता—अणुवेक्खा बोहिएँ अणुसरिवि पुणु हियएँ चडाविय जेण लहु।
सिवकामिणिवयणहो मंडणउ कियउ खणद्धें तेण बहु॥ १६॥ 10

---

४ S J बरिसाउल. ५ S J मणु. ६ N अणुबद्धउ. ७ प्रतियोंमें यह चरण दसवीं पंक्तिके पश्चात् आया है। किन्तु छन्दनिर्वाहकी दृष्टिसे उसे यहां रखा गया है। ८ N °काएहिं.

१५. १ S में पाठ है–'विरियहिं' और उसपर टिप्पण है–जामीहि. २ प्रतिषु 'भोउ' ३. S J मुरइ.

१६. १ S °सारयाहं.

उत्पन्न करता है, और उसे बहुत प्रकारसे भोगता है। जो कोई ग्रीष्मकालमें सूर्यकी किरणोंसे अपना तन खपाता है, जो वृक्षतलमें वर्षाऋतुका गमन करता है, जो शिशिर कालमें अपने शिरपर तुषार झेलता है, वह प्रयत्नपूर्वक कर्मका अपहरण करता है। जो दुर्द्धर तपका भार धारण ५ करता है, जो उपवासों-द्वारा अपने शरीरको दुर्बल करता है, तथा जो अनिबद्ध (अप्रासंगिक-अप्रामाणिक) वचनोंका संवरण करता है, वह अपने समस्त कर्मोंकी निर्जरा कर लेता है। जो बाहर विचरण करते हुए मनको मार लेता है, वह मनुष्य तुरन्त ही अपने मनमें कर्मका हनन कर देता है। जो चान्द्रायण-विधिसे भोजन करता है, जो सौवीर (कांजी) का आहार लेता है, जो बहुत-से कायक्लेश रूप तपोंका अनुसरण करता है, जो बाईस परीषहोंको सहन करता है, और १० जो दोनों प्रकारके (अन्तरंग व बहिरंग) परिग्रहका परिहरण (त्याग) करता है, वह मनुष्य अविपाक निर्जरा करता है। जिसका कर्म स्वयमेव (अपना फल देकर) समाप्त हो जाता है, उसके सविपाक निर्जरा होती है। जो नर शुद्ध मन होकर मन-वचन-कायसे कर्मकी निर्जरा करता है, वह देवोंके बीच सुख भोगकर निश्चय ही शिवपदमें घर (स्थान) पाता है।

१५—लोक-भावना

यह लोक तीन खण्डोंमें विभाजित है, और चौदह राजू ऊँचा है। पहला खण्ड नरक-लोक है जो आकारसे ऐसा दिखायी देता है, जैसे मानो उलटा कर मल्लक (शराब-शकोरा) रख दिया गया हो। दूसरा खण्ड तिर्यक् लोक है, जो झालरके समान है, अमेय (असंख्यात योजन प्रमाण) है, और तिर्यंच जीवोंका घर है। तीसरा खण्ड अमरालय (स्वर्गलोक) है, जो मुरज (मृदंग) के समान है, जहाँ देवोंमें भोगकी प्रवृत्ति है, विरक्ति नहीं। इसके ऊपर वह प्रसिद्ध सिद्ध ५ क्षेत्र है, जहाँ निमिष मात्र भी दुःख नहीं दिखायी देता। जैसा उत्तम गुणधारी मुनिगणोंने कहा है, यह समस्त लोक तीन वात-वलयोंसे घिरा हुआ स्थित है। जिस प्रकार गगनांगनमें रवि रहता है, उसी प्रकार इस भुवनको कोई धारण करनेवाला नहीं है। जिस प्रकार आकाश क्रिया-विहीन (अकृत्रिम) है उसी प्रकार इस भुवनको किसी मनुष्यने नहीं बनाया है। जो कोई पाँच महाव्रतोंका पालन कर इस लोकानुप्रेक्षामें अपने मनको लगाता है, वह नर धन्य है, सुलक्षण है और वह देवोंके १० अनेकों सुख भोगता है।

१६—बोधि-दुर्लभ-भावना

जिनेन्द्रके चरणकमलोंमें मेरी प्रयत्नपूर्वक भक्ति होवे। मेरा जन्म ऐसे श्रावकोंके कुलमें होवे, जिनमें सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक् चारित्रकी प्रवृत्ति है। जन्म-जन्ममें मुझे दोनों प्रकारके (अणुव्रत और महाव्रत रूप) पाँचों व्रत प्राप्त हों। जिसके द्वारा संसारका सार जान लिया गया है, वह सुन्दर जैन-शासन मुझे प्राप्त होवे। शम, दम, यम व नियममें आदर करनेवाले मुनीश्वरोंमें मेरी भक्ति हो। सुन्दर मोक्ष-सुखके दायक दशलक्षण धर्ममें मेरी भक्ति ५ होवे। जरा, जन्म और मरणका अपहरण करनेवाली चौदह मार्गणाएँ मेरे मनमें विस्फुरायमान हों। मुझे चौदह गुणस्थान घटित हों। सिद्धोंके गुण स्थिर भावसे मेरे मनपर चढ़ जायें। इस प्रकार बोधिपूर्वक अनुस्मरण करके जिसने इस अनुप्रेक्षाको शीघ्र ही अपने हृदयपर चढ़ा लिया, उसने क्षणार्द्धमें अपनेको बहुत कुछ शिवरूपी कामिनीके मुखका मण्डन बना लिया (वह मोक्षमार्ग पर लग गया)। १०

१७

Fruits of observing Dharma.

दहलक्खणलक्खिउ होइ धम्मु जो पालइ तहो स कियत्थु[1] जम्मु ।
धम्मेण तुरंगम संपडंति वरचमरइँ लीलइँ तहो पडंति ।
धम्मेण बिमाणहिँ रइ करेइ रहकुंजरजाणहिँ संचरेइ ।
धम्मेण लहइ वरलच्छि फार संसारमहण्णवरयणसार ।
संपज्जहिँ धम्मइँ विविह भोय णउ आणालंघणु करहिँ लोय । 5
धम्मेण सरासइ वयणि ठाइ हियइच्छिय मणहरु लहइ भाइ ।
धम्मेण सत्तभोमइँ घराइँ वररयणइँ णाणासुहयराइँ ।
सुर सेवहिँ धम्में जिणवरिंद धम्मेण सयल सुरवर णरिंद ।
धम्मेण सलक्खण होइ णारि मयमत्तजुवाणहँ पलयकारि ।
घत्ता—दामोयर जिणवर धम्में फुडु पडिकेसव संकर सग्गि सुर । 10
कल्लाणइँ सयलइँ ते हवहिं धम्मेण वि हलहर चक्कहर ।। १७ ।।

१८

With the pure thoughts Karakaṇḍa reaches the sage.

अणुवेक्खउ एयउ मणे सरंतु विसयाण परम्मुहु सइँ[1] करंतु ।
महिलाण णिवहु तिणसमु गणंतु सवणाण पियारी गिर भणंतु ।
मणु चवलु चलंतउ संथवंतु संपत्तउ णंदणवणु भमंतु ।
जं किण्णरखेयररववमालु तं दिट्ठउ णंदणवणु विसालु ।
कोहाइजलणविद्दमणमेहु जो णाणकिरणविप्फुरियदेहु । 5
जो कामकिरायहो हियसल्लु जो मोहभडहो पडिखलणमल्लु ।
दहलक्खणधम्महो जो णिवासु परसमयकयारहो जो हुवासु ।
जो तवसिरिकामिणिकयणरत्तु जो कम्मणिबंधणबंधचत्तु ।
घत्ता—जो जम्मणमरणविणासयरु दुविहभेयसंजमणिलउ ।
सो उववणे दिट्ठउ सीलणिहि सिवकामिणिवयणहो[2] वरतिलउ ।।१८।। 10

१९

The king hymns the sage and requests for a religious sermon.

तहो दंसणें जायउ हरिसु अंगे कमलाण जेम रविकिरणसंगे ।
भामरि तिउ देविणु थुइ करेवि पुणु चरणकमलजुवलउ सरेवि ।
जय तिमिरपणासणखरदिणिंद पयपाडिय पइँ सुरणरफणिंद ।
जय माणमहागिरिवज्जदंड जय णिरुवम मोक्खहो भरियकुंड ।
जय मोहविडविछिंदणकुठार जय चउगइसायरतरणकार । 5
तुहुँ दूरि णमंतहँ हरहि पाउ जह दिणयरु तमफेडणसहाउ ।
पइँ सुमरइ अणुदिणु जो मणेण सो सिवपुरि पावइ तक्खणेण ।

---

१७. १ S कि बत्थु.

१८. १ D N मइ. २ N का पत्र ७३ नहीं मिला जिसमें यहाँसे लेकर कडवक २३की ४थी पंक्ति तकका पाठ था ।

१७—धर्म-भावना

धर्म दशलक्षणयुक्त होता है। इसे जो पालन करता है उसका यह जन्म कृतार्थ है। धर्मसे तुरंग प्राप्त होते हैं और लीलापूर्वक उसके ऊपर उत्तम चमर ढोले जाते हैं। धर्मसे ही जीव विमानोंमें आनन्द करता है तथा रथों, कुंजरों व यानों-द्वारा संचार करता है। धर्मसे ही संसाररूपी महासमुद्रके रत्नोंकी सारभूत उत्तम प्रचुर लक्ष्मी प्राप्त होती है। धर्मसे नानाप्रकारके भोग प्राप्त होते हैं, और लोग आज्ञाका उल्लंघन नहीं करते। धर्मसे सरस्वती मुखमें विराजमान होती है, और हे भाई, मनुष्य मनोहर हृदयेच्छित वस्तुओंको प्राप्त करता है। धर्मसे सतखण्डे घर तथा नाना सुखकारी उत्तम रत्न मिलते हैं। धर्मसे ही देव जिनवरेन्द्रोंकी सेवा करते हैं, और धर्मसे ही सब उत्तम देव और नरेन्द्र होते हैं। धर्मसे ही मदोन्मत्त युवकोंकी प्रलयकारी सुलक्षणा नारी होती है। धर्मसे ही स्पष्टतः दामोदर (नारायण), जिनवर, प्रतिनारायण, शंकर और स्वर्गमें देव होते हैं। उसीसे सकल कल्याण प्राप्त होते हैं। धर्मसे ही बलदेव और चक्रवर्ती होते हैं। १०

१८—शीलगुप्त मुनिका दर्शन

इन अनुप्रेक्षाओंको मनमें स्मरण करता हुआ, स्वयंको विषयोंसे पराङ्मुख बनाता हुआ, महिलाओंके समूहको तृण समान गिनता हुआ, श्रवणोंको प्यारी वाणी बोलता हुआ, चलायमान चपल मनको स्थिर करता हुआ, करकण्ड चलते-चलते नन्दन वनमें पहुँचा। उसने उस विशाल नन्दनवनको देखा, जो किन्नरों और खेचरोंके कोलाहलसे परिपूर्ण था। फिर उसने उस उपवनमें उन शीलोंके निधान (शीलगुप्त) मुनिको देखा, जो क्रोधादि कषायरूप अग्निको बुझानेके लिए मेघ थे, जिनका शरीर ज्ञानकी किरणोंसे विस्फुरायमान था, जो कामरूपी किरातके हृदयके शल्य थे, जो मोहरूपी भटको पराजित करनेवाले मल्ल थे। जो दशलक्षण धर्मके निवास तथा परसमय (मिथ्यामत) रूपी कूड़े-करकटके हुताश थे। जो तपश्रीरूपी कामिनीके वदनमें अनुरक्त थे, जो कर्मबन्ध व कर्मोंके बन्धक हेतुओंसे रहित थे, जो जन्म और मरणका नाश करनेवाले थे, दो प्रकारके संयमके निधान थे, तथा शिवकामिनीके मुखके उत्तम तिलक थे। १०

१९—मुनिराजकी स्तुति

मुनिराजके दर्शनसे करकण्डके अंगमें हर्ष उत्पन्न हुआ, जिस प्रकार रविकी किरणोंके संगसे कमलोंको। मुनिकी तीन प्रदक्षिणा देकर स्तुति करके और फिर उनके युगल चरण-कमल की वन्दना करके करकण्ड प्रार्थना करने लगे—जय हो आपकी, जो अन्धकारका नाश करनेके लिए प्रखर सूर्य हैं। आपने देवों, मनुष्यों व फणीन्द्रोंको अपने चरणोंमें झुकाया है। जय हो, मानरूपी महागिरिके वज्रदण्ड। जय हो, मोक्ष (सुख) के भरे हुए अनुपम कुण्ड। जय हो, मोह वृक्षके छेदक कुठार। जय हो, चतुर्गति रूप सागरके तारक। आप दूरसे ही नमस्कार करनेवालोंके पापको हरण करते हैं, जिस प्रकार अन्धकारको हटाना दिनकरका स्वभाव ही है! जो कोई प्रति-

कमकमलइँ वंदिवि मुणिवरासु उवविट्ठउ अग्गएँ तवघरासु।
सो भणइ भडारा हरियछम्मु महो को वि पयासहि परमधम्मु।
घत्ता—जें कियइँ पणासइ दुहणिवहु परिवड्ढइ सिवसुहु अणुवमउ। 10
तं कहहि भडारा करुण करि इहलोयहं भव्वहं सग्गमउ॥ १९॥

२०

The sage's sermon on holy conduct and ways of charity.

तं सुणिवि तहो वयणु मुणि भणइ हयमयणु।
तहो कहइ वरधम्मु जं करइ सुहजम्मु।
जो धम्मतरु राय सो होइ दुहु भेय
वयजलइँ सिंचियउ वड्ढेइ सुत्थियउ।
णरजम्मलद्धेण भावएँ विसुद्धेण। 5
जिणपुज्ज जो करइ मुणिचरण मणे धरइ।
सज्झाउ अणुसरइ संजमइँ संचरइ।
तवणियमभारेण दिण गमइ सारेण।
चउभेयपरिभिण्णु जें दाणु जणे दिण्णु।
तिविहस्स पत्तस्स सुविसुद्धपत्तस्स 10
जिणगेह जाएवि भत्तीएँ आणेवि।
अह गेहि पत्तस्स कालिं भमंतस्स।
मुणिगणहँ भत्तेण सुविसुद्धचित्तेण।
मज्झण्णे हूयम्मि णियगेहेपत्तम्मि।
ठा भणेवि गेण्हेवि तहो पट्टु पुणु देवि। 15
पयकमल धोवेइ जलु तं पि वंदेइ।
चंदणइँ अक्खेहिँ फुल्लेँ णिवज्जेहिँ।
दीवेण धूवेहिँ पूजेइ पूगेहिँ।
अंजलियणीरस्स वंदेइ पय तस्स।
घत्ता—छहिँ कम्महिँ जो णरु संचरइ छव्वासयछायउ जासु तणु। 20
असुहत्तउ लेसउ परिहरिवि जिणबिंबहो जुंजइ णिययमणु॥ २०॥

२१

Right faith and righteous living.

किं बहुयइँ णरवर जंपिएण। सद्दंसणु पालइ जो हिएण।
सद्दंसणु जिणवरणिच्छएण सद्दंसणु फिट्टइ मिच्छएण।
सद्दंसणु तच्चहँ सद्दहेण संकाइयदोसहँ णिग्गहेण।
पुणु मज्जु मंसु महु णवणियाइँ वडपिप्पल जेण विवज्जियाइँ।
पिप्लि क्खिणि फेंफरि उंबरी वि जो वज्जइ इह पंचुंबरी वि। 5
ण वि खेलइ जूउ ण पियइ सीहु जो होसइ मंसहो णरु णिरीहु।
जो वज्जइ वेसा णयणरम्म पारद्धि ण खेलइ जो अहम्म।

१९ १ प्रतिपु 'हिय'.

दिन मनमें आपका स्मरण करता है, वह शीघ्र ही मोक्षपुरीको पा लेता है। फिर मुनिवरके चरण-कमलोंकी वन्दना करके करकण्ड उस तपस्वीके आगे बैठ गया और बोला—"हे भट्टारक, मुझे अज्ञानको दूर करनेवाला कुछ परम धर्म समझाइए, जिसके करनेसे दुःखका समूह प्रनष्ट हो और अनुपम मोक्ष-सुखकी वृद्धि हो। हे भट्टारक, करुणा करके ऐसा धर्म कहिए, जो लोकमात्रको हितकारी व भव्योंको सद्‌गमनकारी (या स्वर्गमय) हो।" १०

२०—साधुको आहारदानकी विधि

करकण्डका यह वचन सुनकर, कामविजयी मुनि बोले, और उन्हें ऐसा उत्तम धम समझाने लगे जिससे जन्म सफल हो। वे बोले-"हे राजन्, जो धर्मरूपी वृक्ष है, वह दो प्रकारका (श्रावक धर्म और मुनिधर्म) होता है। जब वह व्रतरूपी जलसे सींचा जाता है, तब वह भले प्रकारसे बढ़ता है। नरजन्म पाकर विशुद्ध भावसे जो कोई जिनेन्द्रकी पूजा करता है, मनमें मुनियोंके चरणोंको धारण करता है, स्वाध्याय करता है, संयमपूर्वक आचरण करता है तथा तप और नियमके सारभूत भारसे दिन निकालता है (वह धर्मपालक है)। जो लोगोंको चार प्रकारका दान देता है, जो तीन प्रकारके पात्रोंमें-से प्राप्त हुए किसी भी सुविशुद्ध पात्रको (निम्न विधिसे) आहार-दान देता है—या तो जिनमन्दिरमें जाकर भक्तिपूर्वक पात्रको ले आवे अथवा यथाकाल भ्रमण करते, गृहपर आये हुए साधुको मध्याह्नके समय सुविशुद्ध चित्तसे मुनिगणोंका भक्त श्रावक 'ठहरिए' कहकर उन्हें पड़गाहे, फिर उन्हें लेकर और (बैठनेको) पट्ट देकर उनके पदकमलोंको धोवे, और उस जलकी भी वन्दना करे। फिर चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप व फलोंसे उनकी पूजा करे। फिर अंजलीमें जल लेकर उनके पदोंकी वन्दना करे। जो नर षट्‌कर्मोंका आचरण करता है, जिसका शरीर छह आवश्यकोंसे युक्त है, जो लेशमात्र भी अशुभभावका परिहरण करके जिनबिम्बमें अपना मन योजित करे। ५ १०

२१—सम्यग्दर्शनका स्वरूप

"हे राजन्, बहुत कहनेसे क्या लाभ? जो कोई हृदयसे सम्यग्दर्शनका पालन करता है (वही सच्चा धार्मिक है)। यह सम्यग्दर्शन जिनेन्द्रमें निश्चयपूर्वक श्रद्धान करनेसे होता है। मिथ्यात्वसे सम्यग्दर्शन नष्ट हो जाता है। सम्यग्दर्शन तत्त्वोंके श्रद्धानसे तथा शंकादिक दोषोंके निग्रहसे उत्पन्न होता है। फिर जो कोई मद्य, मांस, मधु, नवनीत (मक्खन), बड़, पीपर इनका त्याग करता है; एवं पिल्ली, खिरनी, फॅफरी व उदुम्बरी आदि पाँच उदुम्बरोंको छोड़ता है (वह श्रावक है)। जो न जूआ खेलता है, न मदिरा पीता है, जो मांसकी सर्वथा इच्छा नहीं रखता, जो नयनरम्य वेश्याका त्याग करता है, जो अधर्मरूप आखेट नहीं खेलता, जो नर पराया धन कदापि ५

जो हरइ ण परधणु णरु कया वि   दूराउ विवज्जइ परतिया वि ।
घत्ता—जो सत्त वि वसणइँ परिहरइ विसतरुवरु जह सव्वायरइँ ।
सो सोक्खु णिरंतर अणुहवइ ण वि खज्जइ दुक्खणिसायरइँ ॥ २१ ॥ 10

२२

Religious observances for a honseholder.

वयहीणु ण णरवइ महइ को वि   वयवंतउ रंकु वि पुज्जु होइ ।
विहिँ भेयहिँ ताइँ समासियाइँ   घरवयइँ जईसरसंठियाइँ ।
अणुवयइँ सुथूलइँ अक्खियाइँ   अइसुहुमइँ ताइँ महव्वयाइँ ।
तसजीवहँ रक्खा जो करेइ   सो माणउ पढमउ वउ धरेइ ।
णउ बोल्लइ थूली अलियवाणि   सो बीयउ अणुवउ धरइ णाणि । 5
णउ चोरिएँ गिण्हइ दव्वु जो वि   सो पालइ अणुवउ तइयओ वि ।
जो णारि पराई गणइ माय   सो अणुवउ तुरियउ धरइ राय ।
परिमाणु परिग्गहे जो करेइ   सो णरवइ पंचमु वउ धरेइ ।
घत्ता—णिसिभोयणे सहुँ दिसिगमविरमु पसुपासु जु बंधणु परिहरइ ।
भोयइँ उपभोयइँ तणु करिवि सो सुरहरि लीलइँ रइ करइ ॥ २२ ॥ 10

२३

Householder's Dharma continues.

समभावइँ जीवइँ जो णिएइ   परिभावइ संजमु जो हिएइँ ।
जो अट्टरउद्दइँ परिहरेइ   सो णरवरु सामाइउ धरेइ ।
उववासु करइ मासहो चयारि   दो अट्ठमि चउदसि दुक्खहारि ।
जो णरवरु चउविहु देइ दाणु   दय जीवहँ देइ जो अवरु णाणु ।
वाहीणहँ ओसहु जो करेइ   सो सग्गु अलीढइँ अणुसरेइ । 5
जो भोयणवेलहे पत्तदाणु   अणुराएँ दिण्णउ खाणु पाणु ।
कारुण्णइँ दीणहँ दुत्थियाहँ   जेँ भोयणु दिण्णउ भुक्खियाहँ ।
जो पच्छिमयालि सलेहणेण   सुहि पाण विसज्जइ थिरमणेण ।
घत्ता—जो एयइँ अणुवयगुणवयइँ सिक्खावय पालइ दुद्धरइँ ।
सो सासयबहुसुहलंपडउ पावेसइ सुक्खपरंपरइँ ॥ २३ ॥ 10

२४

Ascetic duties.

घरधम्मु णरेसर एम होइ   इउ भणहिँ विराणा परमजोइ ।
रिसिवयइँ पंच णिसुणेहि राय   खणु एक्कु ण पइसइ जेत्थु माय ।
तसथावरजीवहँ करइ रक्ख   सो भुंजइ भोय असंखलक्ख ।
अणुरायएँ अलिय ण कह भणेइ   सो वयणइँ सुरगुरु आहणेइ ।
जो परधणु कह व ण अवहरेइ   सो सुरवइ विवणम्मणु करेइ । 5
जो णवविहु कीरइ बंभचेरु   सो पावइ सिवसुहु णट्ठमेरु ।
जो दुविहु परिग्गहु परिहरेइ   संसारमहण्णउ सो तरेइ ।

२२.] १ णिसहइ.
२३. १ N सुह.

हरण नहीं करता, एवं जो पर-स्त्रीका दूरसे ही त्याग करता है। इस प्रकार जो सर्व आदरपूर्वक सातों ही व्यसनोंका विषवृक्षके समान परिहरण करता है, वह निरन्तर सुखोंका अनुभव करता है एवं दुःखरूपी निशाचरका भक्ष्य नहीं बनता।

२२—अणुव्रत व गुणव्रत

हे राजन्! व्रतहीन पुरुषका कोई आदर नहीं करता, किन्तु व्रतवान् रंक भी पूज्य होता है। वे व्रत संक्षेपमें दो प्रकारके कहे गये हैं। एक गृहस्थव्रत (अणुव्रत) और दूसरे मुनिव्रत (महाव्रत)। अणुव्रत स्थूल होनेके कारण कहे गये हैं। वे ही व्रत अतिसूक्ष्म रूपमें महाव्रत कहलाते हैं। जो त्रसजीवोंकी रक्षा करता है, वह मानव पहला (अहिंसा) व्रत धारण करता है। जो स्थूलरूपसे झूठ वचन नहीं बोलता, वह ज्ञानी दूसरा (अमृषा) अणुव्रत धारण करता है। ५ जो चोरी करके द्रव्य ग्रहण नहीं करता, वह तीसरा (अचौर्य) अणुव्रत पालता है। जो परायी नारी को माता गिनता है, वह, हे राजन्, चौथा (ब्रह्मचर्य) अणुव्रत धारण करता है। जो परिग्रहमें परिमाण करता है, (मर्यादा रखता है) वह, हे नरपति, पाँचवाँ (अपरिग्रह) अणुव्रत धारण करता है। जो कोई निशिभोजन त्यागके साथ दिशागमनका विराम (मर्यादा) रखता है, तथा पशुओंको पाशमें फँसाना या बाँध कर रखना छोड़ देता है, एवं भोगों व उपभोगोंको स्वल्प कर लेता है, १० वह देवोंके विमानमें लीलापूर्वक सुख भोगता है।

२३—शिक्षाव्रत

जो कोई जीवोंको समताभावसे देखता है, जो हृदयसे संयमकी परिभावना करता है, जो आर्त और रौद्र ध्यानोंका परिहरण करता है, वह उत्तम मनुष्य सामायिक धर्मका धारी है। जो एक मासमें चार दुःखहारी उपवास करता है, अर्थात् दो अष्टमी और दो चतुर्दशीके, जो श्रेष्ठ नर चतुर्विध दान देता है, जो जीवोंपर दया करता है एवं ज्ञानदान देता है, जो व्याधियों-की औषध करता है, वह निश्चयसे स्वर्ग प्राप्त करता है। जो भोजनके समय भक्तिपूर्वक खान- ५ पान रूप पात्रदान देता है तथा करुणापूर्वक दीन, दुखी व भूखोंको भोजन देता है, एवं जो सुहृदय व्यक्ति अन्तकालमें स्थिर मनसे सल्लेखना-द्वारा प्राण विसर्जित करता है (वह सच्चा गृहस्थ है)। इस प्रकार जो इन दुर्द्धर अणुव्रतों, गुणव्रतों व शिक्षाव्रतोंका पालन करता है, वह मुक्तिरूपी वधूके मुखका अभिलाषी सुखोंकी परम्पराको प्राप्त करेगा।

२४—महाव्रतोंका स्वरूप

हे नरेश्वर, गृहस्थ धर्म इस प्रकारका होता है, ऐसा चिरन्तन परम योगियोंने कहा है। अब, हे राजन्, उन पाँच मुनिव्रतोंको सुनो—जहाँ एक क्षण-मात्रके लिए भी माया (मनकी वक्रता)-का प्रवेश नहीं होता। जो त्रस और स्थावर जीवोंकी रक्षा करता है, वह असंख्य लाख भोगोंको भोगता है। जो अनुरागके कारण झूठ वचन नहीं बोलता, वह अपने वचनसे बृहस्पतिको भी जीत लेता है। जो पराये धनका कदापि अपहरण नहीं करता, वह इन्द्रको भी चिन्तित कर देता ५ है। जो नौ प्रकार ब्रह्मचर्यका पालन करता है, वह असीम मोक्ष-सुखको प्राप्त करता है। जो दो प्रकार (अन्तरंग व बहिरंग) परिग्रहका परिहरण करता है, वह संसाररूपी महासमुद्रको पार

मूलगुणइँ जो णरवइ धरेइ आलिंगणु तहो सिववहु करेइ ।
उत्तरगुण जेत्तिय मुणिवराहँ णिव पारु ण पावइ को वि ताहँ ।
विहिँ भेयहिँ जं थिउ सवणरम्मु तं णरवइ मइँ तुह कहिउ धम्मु । 10

घत्ता—एयाइँ वयइँ पंच वि णिवइ परिपालइ सत्तिएँ जो वि णरु ।
कणयामरसिवमाणिणि वरइ सो हवइ णिरुत्तउ ताहे वरु ॥ २४ ॥

इय करकंडमहारायचरिए मुणिकणयामरविरइए भव्वयणकण्णावयंसे पंचकल्लाणविहाणकप्पतरु–फलसंपत्ते करकंडधम्मायण्णणो णाम णवमो परिच्छेउ समत्तो ।

॥ संधि ॥ ९ ॥

२४. १ प्रतिषु 'णरु वइ.'

कर लेता है। हे नरपति, जो मूलगुणोंको धारण करता है, उसका शिवरूपी वधू आलिंगन करती है। मुनिवरोंके जितने उत्तरगुण हैं, हे राजन्, उनका कोई पार नहीं पा सकता। हे नरपति, जो श्रवणरम्य धर्म दो प्रकारसे व्यवस्थित है (गृहस्थ धर्म और मुनि धर्म) वह मैंने तुम्हें समझा १० दिया। हे नृपति, जो मनुष्य इन पाँचों व्रतोंको अपनी शक्ति-भर पालन करता है, वह कनक व अमररूप मुक्ति-मानिनीका वरण करता है और वह निश्चय ही उसका वर बनता है।

इति मुनि कनकामर-विरचित भव्यजनकर्णावतंस पंचकल्याणविधानकल्पतरुफल-सम्पन्न करकण्ड-महाराजचरित्रमें करकण्ड-धर्मश्रवण नामक नौवाँ परिच्छेद समाप्त।

संधि—१०

१

Karakanda's questions and the sage's reply.

आयण्णिवि तं चंपाहिवेण पुणु भणिउ मुणीसरु णयसिरेण ।
महो अक्खहि करुणइँ मुणिपवर जं पुच्छउँ[1] हउँ तुच्छेँ सरेण ।

जइ अंगु सलोणउ हुयउ महु — करे कंडु कीस तं कहहि लहु ।
अइवल्लहु महु जणणिहे रमणु — विच्छोयउ केँ कम्मेण भणु ।
केँ कम्मेँ सा करिणा हरिया — महो घरिणि काइँ खयरेण णिया । 5
तं सुणिवि पयासइ तासु मुणि — जं भणमि णरेसर तं णिसुणि ।
एत्थम्मि भरहे वेयड्ढगिरि — तहो दाहिणदिसिहिँ समिद्धसिरि ।
रहणेउरु चक्कवालु णयरु — तहिँ णीलु णराहिउ हुउ खयरु ।
णिद्धाडिउ सो दाइयहिँ तहो — गउ णासिवि तेरापट्टणहो ।
उवसाहिय मेइणि तहिँ ठियइं — जिणघरइँ अणेयइँ तेँ कियइं । 10
धणमित्तु णाउ तहिँ अत्थि वणि — जो सेवइ अणुदिणु सयलगुणि ।
सम्मत्तरयणरयणायरहो — घरे धणवइ गेहिणि अत्थि तहो

घत्ता—जं वुच्चइ तं सयलु वि करइ गुणवंतउ ताहे वि हरइ मणु ।
धणयत्तु अत्थि गोवालु वरु सीलेण विहूसिउ जासु तणु ॥ १ ॥

२

Cowherd Dhanadatta of Terapur once plucked a lotus.

सो एक्कहिँ दिणि णिसि मोक्कलेवि — गउ दाहिणदिसि महिसिहुँ लएवि ।
तहिँ दिट्ठु सरोवरु तेण रम्मु — वरकमलहिँ फुल्लिउ णाइँ धम्मु ।
कमलायरु रेहइ अइसुतारु — णं धरहिँ समागउ णहु सुतारु ।
पोमिणिदलउप्परि पुंडरीय — णं हरियधरहिँ णिवपुंडरीय ।
रेहंति अह व वियसियसुराय — हरिभायणे णं मणि पोमराय । 5
तहो मज्झि परिट्ठिउ एक्कु पोमु — उडुगणहिँ सुसोहिउ णाइँ सोमु ।
तं देक्खिवि तहो मणि फुरिउ राउ — सरि पइठउ लेणहिँ साणुराउ ।
जलि पइसिवि लइयउ पोमु तेण — णं खुडिउ सरोवरसिरु खणेण ।

घत्ता—तं लेविणु जा सो णीसरइ हरिसुक्कंठियणिययतणु ।
परिफुल्लियपोमहो संगमेण तेँ वियसिउ णिम्मलु तासु मणु ॥ २ ॥ 10

---

१. १ S] पुच्छिउ मइं. २ यहांसे चौथे कडवककी तृतीय पंक्ति तक पाठसहित N का ७५वाँ पत्र अप्राप्य है ।

संधि—१०

१—करकण्डका मुनिराजसे प्रश्न

चम्पाधिप करकण्डने उक्त प्रकार धर्मश्रवण करके, सिर नवाकर, मुनीश्वरसे फिर कहा—"हे मुनिराज, अब करुणा करके मुझे वह बतलाइए, जो मैं अपने तुच्छ शब्दोंमें पूछता हूँ। यदि मेरा यह अंग ऐसा सलोना (सुन्दर) हुआ, तो मेरे हाथपर यह कण्डु (खुजलीका दाग) कैसे हुआ ? यह शीघ्र कहिए। जब मेरी माताका पति अत्यन्त प्यारा था, तब कहिए उसका वियोग किस कर्मसे हुआ ? किस कर्मके कारण उसका हाथीने अपहरण किया ? तथा वह खेचर मेरी ५ गृहिणीको क्यों ले गया ?" यह सुनकर मुनि करकण्डको बतलाने लगे—हे नरेश्वर, मैं जो कहता हूँ, उसे सुनो। इसी भरत क्षेत्रमें विजयार्द्धपर्वत है। उसकी दक्षिण दिशामें लक्ष्मी-सम्पन्न रथनूपुर-चक्रवाल नामका नगर है। वहाँ नील नामका खेचर राजा हुआ। वह अपने वैरियोंसे पीड़ित हुआ वहाँसे भागकर तेरापट्टनमें पहुँचा। वहाँ रहते हुए उसने पृथ्वीको वशीभूत किया और अनेक जिनमन्दिर बनवाये। उसी नगरमें धनमित्र नामका वणिक् रहता था, जो प्रतिदिन समस्त १० गुणी जनोंकी सेवा करता था। सम्यक्त्वरूपी रत्नके रत्नाकर उस वणिक्के घरमें उसकी धनवती नामकी गृहिणी थी। उसके धनदत्त नामका एक अच्छा ग्वाला था जिसका तन शीलसे विभूषित था। वह जो कुछ उसका स्वामी कहता था, वह सब करता था; और ऐसा गुणवान् था कि अपनी स्वामिनीके मनको भी हरण करता था।

२—धनदत्त गोपने कमल तोड़ा

वह ग्वाला एक दिन रात्रि व्यतीत होनेपर भैंसोंको ले, दक्षिण दिशामें गया। वहाँ उसने एक रम्य सरोवर देखा। वह उत्तम कमलोंसे ऐसा फूला हुआ था, जैसे (भव्य जनोंसे) धर्म। वह अति विशाल कमल सरोवर ऐसा सुन्दर दिखायी देता था, जैसे मानो आकाश अपने सुन्दर तारामण्डल-सहित पृथ्वीपर आ गया हो। कमलपत्रोंके ऊपर पुण्डरीक ऐसे शोभायमान थे, जैसे हरी-भरी पृथ्वीपर बड़े-बड़े राजा। अथवा, वे विकसित लाल कमल ऐसे शोभायमान थे, जैसे ५ पद्मरागमणि हरे पात्रमें रखे हों। उस सरोवरके मध्यमें एक पद्म स्थित था, जैसे मानो तारा-गणोंसे सुशोभित चन्द्र हो। उसे देखकर गोपके मनमें चाह उत्पन्न हुई, और वह अनुरागसे उसे लेनेके लिए सरोवरमें प्रविष्ट हुआ। जलमें प्रवेश करके उसने उस कमलको तोड़ लिया, मानो एक क्षणमें ही सरोवरका सिर काट लिया गया हो। उसे लेकर अपने तनमें हर्षसे उत्कण्ठित होता हुआ जब वह सरोवरसे निकला, तब उस खूब फूले हुए पद्मके प्राप्त होनेसे उसका निर्मल १० मन खूब प्रसन्न हुआ।

३

A Sura charged him to present the flower to the greatest person on pain of death.

तं सररुहु लेविणु चलिउ जाम सुरु आयउ णायकुमारु ताम ।
गोवालु भणिउ तें सुरवरेण सरु रक्खिउ मइँ इउ आयरेण ।
जं फुल्लु ण लेणहँ लहइ को वि णउ खेयरु विसहरु सुरवरो वि ।
तं लइयउ सुंदर पइँ णरेण मइँ भणियउ तुहुँ सव्वायरेण ।
ता एह करेजहि मज्झु वाय जो वड्डउ तिहुवणे णमियपाय । 5
जसु दंसणि तुरियउ दुरियणासु इउ कुसुमु चडावहि चरणि तासु ।
जो मज्झु वयणु ण करेहि मित्त तो णिच्छउ मारमि सुद्धचित्त ।
फणिदेवें भणियउ वयणु जं पि धणयत्तु गयउ मण्णेवि तं पि ।
घत्ता—तें चिंतिउ वड्डउ सेट्ठि महु जो पणविउ सयलहिँ णरवरहिँ ।
एँ फुल्लें अंचमि पाय तहो जं रक्खिउ देवहिँ विसहरहिँ ॥ ३ ॥ 10

४

The cowherd in search of the greatest man.

तं सुणिवि गयउ सेट्ठिहे समीउ तहो पुरउ परिट्ठिउ सो विणीउ ।
ता पुच्छिउ सेट्ठिहिँ महो पुरो वि किं थक्कउ तुहुँ पंजलियरो वि ।
धणयत्तु भणइ भो सेट्ठि ताय एँ पोमें पुज्जमि तुज्झु पाय ।
कहि कारणु पुच्छिउ सो कहेइ सरे लयउ पोमु मइँ सुरु भणेइ ।
जो वड्डउ तिहुवणि पुज्जि सो वि णउ पुज्जहि जइ मारेमि तो वि । 5
इउ सुणिवि ताय चिंतंतु आउ लइ अप्पहिँ पुज्जमि तुज्झु पाउ ।
तुहुँ वड्डउ जणवयवंदणिज्जु फुल्लेण वि एणँ पुज्जणिज्जु ।
तं सुणिवि सेट्ठि पभणेइ पुत्त महो णरवइ वड्डउ चारुचित्त ।
वणि लेवि गयउ सो णिवघरम्मि णिउ दिट्ठउ ता जिणमंदिरम्मि ।
पुव्वुत्तउ सयलु वि कहिवि तासु तुहुँ वड्डउ पणवइ लोउ जासु । 10
घत्ता—तें आयइँ पुज्जहुँ पाय तुहुँ फुल्लेण सरोवरलद्धइण ।
तं सुणिवि णरेसरु पडिलवइ महो वड्डउ मुणिवरु णिच्छइण ॥ ४ ॥

५

He worshipped the Jina with the flower with his hands and feet unwashed. Hence he was reborn as Karakaṇḍa.

गय सव्व पुरउ ते मुणिवरासु तं फुल्लु चडावहुँ जसहरासु ।
तुहुँ वड्डउ मुणिवर वीयराय परिपुज्जहुँ पोमें तुज्झु पाय ।
हउँ वड्डउ होमि ण मुणि भणेइ सव्वहँ गरुआरउ जणु गणेइ ।
देवाण देउ जिणवरु पसिद्धु अरिकम्म हणेविणु जो विसुद्धु ।
जो णाणसमिद्धउ सिद्धिपत्तु सो पुज्जहि तुहुँ अणुरायरत्तु । 5

---

३. १ J तिहुअणि. २ S J सुद्धचित्त.
४. १ S N सुणेवि. २ N पंजलि यरेवि.
५. १ S अणुराएं तुरंतु.

३—देवका गोपको आदेश

उस कमलको लेकर ज्योंही वह चला, तभी वहाँ नागकुमार नामका देव आ पहुँचा। उस देवने ग्वालेसे कहा—"मैं बड़े आदरसे इस सरोवरकी रक्षा करता हूँ। जिस फूलको लेनेमें न कोई खेचर समर्थ है, न नाग और न देव, उसे, हे सुन्दर, तूने नर होते हुए भी ले लिया है। अब मैं सर्व आदरपूर्वक तुझसे कहता हूँ, मेरी यह बात मान। जो कोई त्रिभुवनमें सबसे बड़ा हो, जिसके चरणोंको सब कोई नमस्कार करता हो, तथा जिसके दर्शनसे तुरन्त पापका नाश होता हो, उसीके चरणोंमें इस पुष्पको चढ़ाना। यदि तू मेरे वचनको नहीं मानेगा, तो हे शुद्धचित्त मित्र, मैं तुझे निश्चय ही मार डालूँगा।" नागकुमार देवने यह जो वचन कहा, उसे मानकर धनदत्त वहाँसे चला आया। उसने विचार किया—मेरा सेठ ही सबसे बड़ा है, जिसे सभी बड़े-बड़े नर प्रणाम करते हैं; इसलिए जिस फूलकी रक्षा आगे देवोंने की है, उससे उसी (सेठ) के चरणों-की पूजा करूँ। ५ १०

४—त्रैलोक्यमें सबसे बड़ा कौन ?

ऐसा विचारकर, गोप सेठके समीप गया और उसके सम्मुख विनीत भावसे खड़ा हो गया। तब सेठने पूछा—"तू मेरे आगे हाथ जोड़े क्यों खड़ा है ?" धनदत्त बोला—"हे तात सेठ, मैं इस कमलसे तुम्हारे चरणोंकी पूजा करूँगा।" सेठने पूछा—इसका कारण तो बतला ?" उसने कहा—"जब मैंने सरोवरसे इस कमलको लिया, तब देवने मुझसे कहा कि जो त्रिभुवनमें बड़ा हो, उसकी पूजा करना। यदि तू पूजा नहीं करेगा, तो मैं तुझे मार डालूँगा। यह सुनकर, हे तात, मैं चिन्तन करता हुआ आया हूँ; मैं अपनेसे तुम्हारे चरणोंकी पूजा करता हूँ। तुम बड़े हो और जनपद-द्वारा वन्दनीय हो। अतएव इस फूलसे आप ही पूजनीय हैं।" यह सुनकर, सेठ बोला—"हे सुन्दर चित्तवान् पुत्र, मुझसे तो नरपति बड़ा है।" तब वह वणिक् उसे लेकर राजाके घर गया। उन्हें राजाकी भेंट जिनमन्दिरमें हुई। उससे पूर्वोक्त समस्त वृत्तान्त कहकर वह बोला—"तुम बड़े हो, जिसे लोग प्रणाम करते हैं। इसीलिए हम इस सरोवरसे प्राप्त फूलसे तुम्हारे चरणोंकी पूजा करने आये हैं" यह सुनकर नरेश्वर बोला—"मुझसे तो मुनिवर निश्चय ही बड़े हैं।" ५ १०

५—गोपकी जिनेन्द्र-पूजा और करकण्डके रूपमें पुनर्जन्म

तब वे सब यशोधर मुनिराजके आगे फूल चढ़ानेको गये और बोले—"हे वीतराग मुनिवर, तुम बड़े हो, अतएव इस पद्मसे हम तुम्हारे पैर पूजेंगे। तब मुनि बोले—"मैं बड़ा नहीं हूँ। लोग सबसे बड़ा तो देवोंके देव जिनेन्द्रको मानते हैं, जो प्रसिद्ध हैं और जो कर्मरूपी शत्रुओंका विनाश कर विशुद्ध हुए हैं, जो ज्ञानसे उद्दीपित हैं और सिद्धि प्राप्त कर चुके हैं। तू भक्तिपूर्वक उसी जिनेन्द्र देवकी पूजा कर।" मुनिकी यह वाणी सुनकर, धनदत्तने बिना हाथ-पाँव धोये ही उस ५

धणदत्तु सुणेविणु तासु वाणि धोवंतउ ण वि पुणु चरणपाणि ।
जिणु अंचिउ तें पोमें वरेण चिरु मेरुहिँ णाइँ पुरंदरेण ।
तहो लोयहिँ साहुकारु दिण्णु भत्तीभरेण मणु जासु भिण्णु ।
तहो एक्कहो फुल्लहो फलइँ सो वि चंपाहिवणंदणु तुहुँ हुओ वि ।
जिणमहिम विसुद्धिएँ जो करेइ सिवकामिणि करयलि सो धरेइ । 10

घत्ता—कइमइँ विलित्तहिँ पयकरहिँ जं अंचिउ जिणवरु जयतिलउ ।
तें कंडू तुह पए करे हुयउ इउ अक्खिउ मइँ तुह सुहणिलउ ॥ ५ ॥

६

Past life of Karakaṇḍa's parents, Nāgadatta and his faithless wife.

भो णरवइ गुणगणहरियसहा[1] सुणि एवहिँ जणणहो तणिय कहा[2] ।
इह भरहे अत्थि सावत्थिपुरि[3] जहिँ रमइँ णिरारिउ चिरु खयरि ।
तहिँ अत्थि पसिद्धउ महुरझुणि सिरिणायदत्तु णामेण वणि ।
तहो णायदत्त णामें घरिणि चिंताणलउब्भव सा अरणि ।
तहो पासु वणीसरु णउ मुअइ णउ रयणिदिवसु करथइँ सुवइ । 5
तें वणिणा जो परिपालियउ कामिणिकरपल्लवलालियउ[4] ।
वणिणंदणु णरवइ रूढिगउ णियगुणहिँ विणीयउ तहिँ भयउ ।
सो एक्कहिँ दिणि बंभणहो सुँओ कुंजरकरदीहरपीणभुओ ।

घत्ता—फणिदत्तइँ सो बंभणसुयउ अवलोयउ पंकयणेत्तियएँ ।
अणुराउ पवड्ढिउ तहो उवरि मणि चिंत्तिउ सुललियगत्तियएँ ॥६॥ 10

७

Her love advances out of wedlock

सा जोवइ पुणु पुणु सो कुमारु पच्चक्खु णाइँ ससरीरु मारु ।
णवकणयवण्ण सिसुहरिणणेत्त ता हूई खणे विवरीयचित्त ।
सव्वंगमयणसरसल्लियाहे हिययम्मि ण भावइ किं पि ताहे ।
कर विहुणइ रोमंचउ वहेइ तहो पयडो रोमावलि वहेइ[1] ।
थण दावइ छोडइ णीविबंधु भणु किं किं ण करइ मयणअंधु । 5
कुसुमाउहसरणियरेण जित्त णउ संकइ कासु वि चलियचित्त[2] ।
परलोयकज्जे उज्जुवमणाहँ णउ गुरुवणलोयहँ सज्जणाहँ ।
णउ बीहिय[3] पुत्तहो बंधवासु णउ मायहे लज्जइ पिययमासु ।

घत्ता—जो सयलगुणायरु णिउणमइ विणयभावसंजुत्तउ ।
कोमलवयणपउत्तियहिँ सो किं ताएँ ण उत्तउ ॥ ७ ॥ 10

---

६. १ J सह. २ J कह. ३ N बासत्थि. ४ SJ बालियउ. ५ JS में यह चरण नहीं है व N में हासिये पर दिया है ।

७. १ S हवेइ; N कहेइ. २ SJ चलइ. ३ N वीहिय.

उत्तम पद्मसे जिन भगवान्‌की पूजा की, जैसे पूर्वमें इन्द्रने मेरुपर जाकर की थी। लोगोंने उसे साधुवाद दिया, क्योंकि उसका मन भक्तिके भारसे भर रहा था। उसी एक फूलके फलसे वह धनदत्तका जीव तू चम्पाधिराजके पुत्रके रूपमें उत्पन्न हुआ है। जो कोई विशुद्धिपूर्वक जिन भगवान्‌की पूजा करता है, वह शिवकामिनीको अपने हाथसे पकड़ लेता है। क्योंकि तूने कीचड़-से विलिप्त हाथ-पैरोंसे जगतिलक जिनेन्द्र भगवान्‌की पूजा की थी, इसीलिए तेरे हाथ और पैरमें १० यह कण्डु (खुजलीका दाग) हुआ है। मैंने तुझे सुखकारी बात बतला दी।"

६—करकण्डके माता-पिताका पूर्व जन्म

अपने गुणगणोंसे सभाके मनको हरण करनेवाले हे नरपति, अब अपने पिताके सम्बन्धकी कथा सुन! इसी भरतक्षेत्रमें श्रावस्ती नामकी नगरी है, जहाँ नित्य ही खेचरियाँ रमण करती हैं। उस नगरमें एक प्रसिद्ध मधुरभाषी श्री नागदत्त नामका वणिक् रहता था। उसकी नागदत्ता नामकी गृहिणी थी, जो चिन्ता रूपी अग्निको उत्पन्न करनेके लिए अरणि रूप थी। वह वणिक् उसका पास नहीं छोड़ता था, और न रात-दिन कहीं सो पाता था। उस वणिक्‌ने जिसका ५ परिपालन किया था, तथा कामिनी स्त्रियोंके करपल्लवों-द्वारा लालन कराया था, वह वणिक् पुत्र, हे राजन्, बड़ा हुआ तथा अपने गुणोंसे विनयशील निकला। कुञ्जरकी सूँड़ समान विशाल व स्थूल भुजशाली उस ब्राह्मण पुत्रको एक दिन कमलनेत्री नागदत्ताने देखा, जिससे उसके ऊपर उसका अनुराग बढ़ा। उस कोमलगात्री सेठानीने अपने मनमें उसका चिन्तन किया।

७—नागदत्ताकी पतिपालित ब्राह्मण कुमारपर प्रेमासक्ति

वह पुनःपुनः उस कुमारको देखने लगी, जैसे मानो वह प्रत्यक्ष शरीरवान् कामदेव हो। फिर वह नये सुवर्ण सदृश वर्णवाली, बाल-मृगनयनी एक क्षणमें विपरीत चित्त हो गयी। उसका सर्वांग मदनके बाणसे ऐसा विद्ध हुआ कि उसे अपने हृदयमें कुछ भाता ही नहीं था। वह हाथ मलती और रोमाञ्चित होती, एवं उसे अपनी रोमावली प्रकट करके दिखलाती। कभी स्तन दिखलाती और कभी नीवीबन्ध छोड़ती। कहो कामान्ध मनुष्य क्या-क्या नहीं करता? कामदेवके बाणसमूह ५ से पराजित होकर वह चलायमान चित्त हुई किसीकी शंका ही नहीं करती थी। न तो वह परलोक कार्यमें उद्यतमन गुरुजनों व सज्जनोंकी लाज करती, न पुत्र व बन्धुजनोंका भय खाती और न माता व प्रियतमकी लाज करती। जो कुमार सकल गुणोंकी खान, निपुणमति एवं विनय-भावसे संयुक्त था, उससे उसने कोमल वचन-प्रोक्तियों-द्वारा क्या-क्या नहीं कहा?

८

The Brahmin boy resists, but ultimately succumbs.

तं सुणिवि वयणु कयउच्छवेहिँ ता पिहिय सवण करपल्लवेहिँ ।
विप्फारिवि लोयण सिरु धुणेवि सो जंपइ दुट्ठिय सा मुणेवि ।
हा माए माए किं चवहि एत्थु विहलंघल कय मज्जेण जेत्थु ।
हउँ णंदणु तुहुँ महो तणिय माय बोल्लंति हियएँ तुह कवण छाय ।
गयणयलु व लीला जो वहंतु परियाणहि किं ण वि कुलु महंतु । 5
सम्माणदाणसम्माणियाए इउ साहसु किमु पइँ कियउ माए ।
जणणयणसवणआणंदभूय किं माए बुद्धि विवरीय हूय ।
तं हणिवि वयणु करें धरिवि ताएँ सो णिब्बलु किउ मयभिंभलाएँ ।
घत्ता—हरिहरबम्हपुरंदरहँ देवाहँ वि तिय खणे मणु हरइ ।
जो माणउ पडियउ ताहे पिडि मइहीणु वरायउ किं करइ ॥८॥ 10

९

Her faithlessness discovered by her husband who retires for penance and is reborn as Dhādivāhana.

सब्भावेँ कामुउ सयलु जणु तिय झायइ हियवएँ एयमणु ।
जइ अणुमइ पावइ तहो तणिय ता भणहि णारि किं अवगणिय ।
तहे संगइँ जासु ण चलइ मइ सो लहइ णरेसर सिद्धगइ ।
ता एत्तहिँ रवि अत्थइरि गउ बहुपहरहिँ णं सूरु वि सुयउ । [1]
बहुवण्णिय संझा सरइ णहु रत्तंबर सा णं गयणवहु । [2] 5
तमु पसरिउ बहलउ जाव तहिँ पुण्णाय महायणु चलइ जहिँ । [3]
फणियत्तएँ मयणइँ मोहियएँ परिचिंतिवि अंधारउ हियएँ ।
सो बम्हणु पुणु अवरुंडियउ अहरुल्लउ छुडु तहे खंडियउ ।
ता ससहरु उइयउ तहिँ जि खणे असईयणे दुहु पयडंतु मणे ।
ता वणिणा दिट्ठउ तहो चरिउ वणवासु तुरंतइँ अणुसरिउ । 10
तउ चरिवि णिसंगउ सग्गि गउ तहिँ सोक्खइँ भुंजिवि पुणु वि चुउ ।
पुरि चंपहिँ णिववसुपालसुओ वसुमइहे गब्भे दिवसेहिँ हुओ ।
घत्ता—जो जणवयवल्लहु जयतिलउ सिरिधाडीवाहणु पीणभुओ ।
परिझाइवि महिहरु [4] पंचगुरु सग्गग्गि परिट्ठिउ अमरु हुओ ॥९॥

१०

The Brahmin reborn an elephant and the faithless wife a family woman again.

सो बम्हणु परयारहो फलेण संसारि भमाडिउ तेँ खणेण ।
दुहु भुंजिवि अडविहिँ दुप्पवेसे उप्पण्णउ कुंभि कलिंगदेसे ।
सो केण वि कम्मेँ णिम्मिओ वि चंपाहिवणिवकरिवरु हुओ वि ।

---

८. १ D मई.

९. १ SJ मुयउ. २ N मयणवहु. ३ N सुण्णाय महीयणु ('सुण्णाय' पर टिप्पण है 'दुश्चारिणी') ४ SJD महीहर; N महाहर.

८—कुमारकी विनयशीलता और नागदत्ताकी मदोन्मत्तता

उसका वह वचन सुनकर ब्राह्मणकुमारने अपने कर-पल्लवोंको ऊपर उठाकर कान मूँद लिये तथा आँखें फाड़कर और सिर हिलाकर एवं उसे दुष्ट-प्रकृति जानकर, वह कुमार बोला—"हे माँ, हे माँ, यह तू क्या कहती है ? क्या तू मदिरा पीकर उन्मत्त हुई है ? मैं तेरा पुत्र हूँ, और तू मेरी माता। हृदयसे ऐसी बात बोलते हुए तेरी कौन-सी शोभा है ? अरी, गगनतलके समान निर्मलता धारण किये हुए, क्या अपने महान् कुलको तू नहीं जानती ? सम्मान और दान- ५
से सम्मानित होते हुए भी, हे माँ ! तूने यह साहस कैसे किया ? लोगोंकी आँखों और कानोंको आनन्द देनेवाली तेरी बुद्धि, हे माँ, ऐसी विपरीत क्यों हो गयी ?" कुमारके इन वचनोंकी उपेक्षा करके और उसे हाथसे पकड़ कर उस मदोन्मत्त स्त्रीने उसे निश्चल कर दिया। स्त्री एक क्षणमें हरि,हर, ब्रह्मा और इन्द्र आदि देवोंके भी मनको हरण कर लेती है, फिर जो इसके पिण्डमें पड़ा, वह बेचारा मतिहीन मानव क्या कर सकता है ? १०

९—नागदत्ता और ब्राह्मणकुमारका पाप तथा वणिक्‌का वैराग्य

स्वभावसे सब लोग कामुक हैं और एकाग्र मनसे अपने हृदयमें स्त्रीका ध्यान करते हैं, फिर यदि कोई उसकी अनुमति पा जाये, तो कहो क्या वह नारीकी अवहेलना करेगा ? स्त्रीके संगसे जिसकी मति चलायमान न हुई, वह पुरुष, हे राजन्, सिद्धगतिको प्राप्त करता है। फिर इतने हीमें सूर्य अस्ताचलपर पहुँच गया, मानों बहुत प्रहरों (प्रहारों) से सूर (शूर) भी सो गया। नाना वर्णयुक्त सन्ध्या आकाशमें छा गयी, मानो वह रक्ताम्बर धारिणी मदन वधू (रति) ५
ही हो। जब वहाँ खूब अन्धकार फैल गया, तब दुराचारिणी स्त्रियाँ महाजनोंके पीछे पड़ने लगीं। नागदत्ताने कामसे मोहित हो व अन्धकार हो गया ऐसा हृदयसे विचार करके, उस ब्राह्मणकुमारका आलिंगन किया। उसने भी उसके अधरको दन्तक्षत किया। इतनेमें ही असती स्त्रियोंके मनमें दुख उत्पन्न करता हुआ चन्द्र उदित हो गया। चन्द्रके प्रकाशमें वणिक्‌ने अपनी स्त्रीका चरित्र देख लिया, जिससे उसने तुरन्त वनवासका अनुसरण किया। वह राग-रहित तपस्या १०
करके स्वर्ग और वहाँ सुख भोगकर, पुनः च्युत होकर वसुमतीके गर्भमें आया व दिवस (समय) व्यतीत होनेपर चम्पापुरीमें राजा वसुपालका पुत्र हुआ। जो वह जनपदवल्लभ, जगतिलक, पीन-भुजशाली, धाडीवाहन हुआ वही (पश्चात्) पर्वतपर पंचगुरुका ध्यान करके स्वर्गके अग्रभागमें परिस्थित होकर अमर हो गया।

१०—ब्राह्मणकुमारका हाथीके रूपमें पुनर्जन्म

वह ब्राह्मण परदार गमनके फलसे संसारमें निरन्तर भ्रमण करने लगा। वह दुःख भोगकर कलिंगदेशमें एक दुर्गम अटवीमें हाथी उत्पन्न हुआ। वह अपने किसी कर्मके वशीभूत होकर

परपुरिसु रमेप्पिणु णायदत्त संसारमहण्णवदुहइँ पत्त ।
एत्थत्थि भरहे पुरि तामलित्ति जोयंतु ण सुरवइ लहइ तत्ति । 5
वसुमित्तु ताहे वणि अत्थि साहु सो णायदत्तघरिणिएँ सणाहु ।
एक्कहिँ दिणि सुहइँ रमंतयाहँ दुइ धूयउ जायउ तम्मि ताहँ ।
पहिलारी णामें धणमई वि पुणु दुइजी णामें धणसिरी वि ।
घत्ता—णालंदणयरि धणदत्तु वणि धणमित्ता गेहिणि तहो सुयउ ।
धणपालु णाउ वंदियणिउ धणवइकंतु पढमहिँ हुयउ ॥१०॥ 10

११

She loses her husband and takes to religious ways

कउसंविणयरि वसुपालु सेट्ठि वसुमइ तहो गेहिणि जणियतुट्ठि ।
वसुदत्तु पुत्तु तहो हुउ जियारि जिणपायपोमअणुरायकारि ।
तहो दिण्णी धणसिरि गुणकरंडि जयणाहहो ईसहो णाइँ चंडि ।
तहुँ लीलइँ सुहइँ रमंतयाहँ वहु दिणइँ गयइँ भुंजियसुहाहँ ।
ता एक्कहिँ दिणि णिट्ठुरकरेहिँ वसुमित्तु णियउ जमकिंकरेहिँ । 5
वइराएँ ता कउसंवियाहे गय णायदत्त घरु णियसुयाहे ।
धणसिरियएँ कुवलयणेत्तियाएँ वयहीण जणणि जाणंतियाएँ ।
जिणमंदिरु णीय तुरंतियाएँ मुणिचरणसरोरुहभत्तियाएँ ।
देवाविय णिसिभोयणविरत्ति मा भुंजहि भोयणु माएँ रत्ति ।
तं सुणिवि जणणि पडिलवइ पुत्ति वयणियमहो केरी दिव्वजुत्ति । 10
मुणिचरण णवेप्पिणु णयसिरेण सा लेवि महासइ णियमणेण ।
घत्ता—संसारहो तारणु रोयहरु गुणणियरकरणु जाणंतियएँ ।
जं किं पि पयासिउ णिसिविरमु तं लइयउ धणसिरिजणणियएँ ॥११॥

१२

She was reborn as the daughter of king Vasupāla who threw her in the Jumna.

ता णायदत्त एक्कहिँ दिणम्मि गय धणवइगेहहो सा खणम्मि ।
तहिँ दिवह बहुय अच्छंतियाहे गुरुदुहियएँ णिसिवउ भग्गु ताहे ।
जहे तहे वउ भग्गउ एक्कवार तह तिण्णिवार भग्गउ सुतार ।
पुणु चउथियवारहे णायदत्त धणसिरिहे गेहु गय विमलचित्त ।
ता णायदत्त जमदूवएहिँ कालेँ सा णीय तुरंतएहिँ । 5
कउसंविए वसुपालहो णिवासु मणभामिणि वसुमइ अत्थि तासु ।
पुणु णायदत्त तहो तणिय धूव उप्पण्णिय सा अइसइसरूव ।
तहे तणए जम्मे वसुमइ वि माएँ बहुवाहिँ गहिय करतणुविपाएँ ।
तेँ राएँ छुहिवि मंजूसियाहे लइ घल्लिय पुणु जउणापवाहे ।
घत्ता—सा जउणहे सोहइ कसणजले रयणेहिँ विणिम्मिय उज्जलिया 10
णं णाइणिमत्थएँ अमलमणि णियथाणहो होंती संचलिया ॥१२॥

---

११. १ N में इससे पूर्व हासियेमें जोड़ा गया है—ण वि जयणी तहि यामंतियाएं

चम्पानरेशका हाथी बन गया। उधर नागदत्ता परपुरुषका रमण करके संसार रूपी महासमुद्रके दुःखोंको प्राप्त हुई। इसी भरतक्षेत्रमें ताम्रलिप्ति नामकी पुरी है जिसे देखते हुए सुरपति भी तृप्ति नहीं पाता। वहाँ वसुमित्र नामका एक साधु वणिक् था और वही नागदत्ता गृहिणीका पति हुआ। ५ सुखसे रमण करते हुए उनके एक दिन दो पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं। पहलीका नाम धनमती और दूसरीका नाम धनश्री हुआ। नालन्दा नगरीमें धनदत्त नामका वणिक् और उसकी धनमित्रा नामकी गृहिणी थी। उनका पुत्र धनपाल नामका था, जिसकी बन्दीजन प्रशंसा करते थे। वही पहली कन्या धनमतीका पति हुआ।

११—नागदत्ताका पुनर्जन्म

कौशाम्बी नगरीमें वसुपाल सेठ रहता था। उसकी वसुमती नामकी सन्तोषदायिनी गृहिणी हुई। उसके शत्रुओंको जीतनेवाला तथा जिनेन्द्रके चरणकमलोंका अनुरागी वसुदत्त नामका पुत्र हुआ। उसीको गुणोंकी पिटारी धनश्री विवाहमें दी गयी, जैसे जगके नाथ शिवको चण्डिका। उनके लीलापूर्वक सुखसे रमण करते व सुख भोगते हुए बहुत दिन निकल गये। फिर एक दिन निष्ठुर हाथोंवाले यमके किंकरों-द्वारा वसुमित्रका हरण हो गया तब वैराग्यभावसे नागदत्ता ५ कौशाम्बी छोड़ अपनी पुत्रीके घर आ गयी। कुवलयनेत्री धनश्री अपनी माताको व्रतहीन जानकर तुरन्त जिनमन्दिरमें ले गयी और उस मुनियोंके चरणकमलोंकी भक्तिनीने उसे रात्रिभोजन त्यागका व्रत करा दिया और कहा—"हे माता, अब रात्रिको भोजन मत करना।" यह सुनकर माता बोली—"हे पुत्रि! व्रत नियमकी युक्ति दिव्य है।" फिर उस महासतीने सिर झुकाकर मुनिके चरणोंमें नमस्कार करके अपने मनसे व्रत ले लिया। इस प्रकार धनश्रीकी माताने निशिभोजन त्याग व्रतको १० संसारका तारक, रोगहारी, एवं गुणसमूहकारी जानकर, जैसा उसका स्वरूप मुनिने प्रकाशित किया, उस प्रकार ग्रहण कर लिया।

१२—नागदत्ता कौशाम्बीकी राजपुत्रीके रूपमें

तत्पश्चात् एक दिन नागदत्ता धनमतीके घर गयी। वहाँ बहुत दिन रहनेपर, बड़े दुखित मनसे उसका निशिव्रत भंग हो गया। जिस प्रकार उसका व्रत एक बार भंग हुआ उसी प्रकार वह बढ़कर तीन बार भंग हुआ। फिर चौथी बार नागदत्ता शुद्ध मनसे धनश्रीके घर गई। तत्पश्चात् शीघ्र ही यथाकाल नागदत्ताको यमके दूत ले गये। कौशाम्बीमें राजा वसुपालकी प्रिय भामिनी वसुमती थी, उसीकी नागदत्ता अतिशय सुरूपवती पुत्री उत्पन्न हुई। उसके जन्म समय ५ वसुमती माता अपने कर्मोंके विपाकसे बहुत व्याधियोंसे ग्रसित हो गयी। तब राजाने पुत्रीको एक पेटीमें बन्द किया और उसे लेकर यमुनाके प्रवाहमें छोड़ दिया। वह रत्नोंसे विनिर्मित उज्ज्वल मञ्जूषा यमुनाके काले जलमें, नागिनीके मस्तकपर निर्मल मणिके समान शोभायमान होती हुई अपने स्थानसे बह चली।

१३

She turns out to be Padmāvatī, Karakaṇḍa's mother.

कट्ठाण विणिम्मिय अवर जा वि तह मज्झ छुद्ध गुप्पविय[1] सा वि ।
णिच्छेदिय सुंदर जा घडीय सा वूढमाण गंगहिँ पडीय ।
उल्लोलहिँ कत्थइँ पडिखलंति भमणम्मि पडिय कत्थइँ चलंति ।
अइउज्जुव कत्थइँ परिवहेइ जलजाणु णाइँ सायरे सहेइ ।
सा दिवसहिँ कुसुमउरम्मि पत्त तहिँ मालिणि अच्छइ कुसुमदत्त । 5
गय गंगहे सा पउ अणुसरंति मंजूस दिट्ठ ता ताएँ जंति ।
सा कड्ढेवि णियघरु गइय लेवि अइतुट्ठपहिट्ठइँ थियइँ बे वि ।
उग्घाडिवि जोयहिँ सा वि जाव सुय दिट्ठी मणिकंबलइँ[2] ताव ।
सा दिवहहिँ पुणु जोव्वणे चडीय तुह जणणहो पुणु दिट्ठिहे पडीय ।
पोमावइ णामें जणपसिद्ध तणुछायसलोणी अइसणिद्ध 10
सा परिणिय जणणइँ तुह तणेण तहे गब्भे परिट्ठिउ तुहुँ खणेण ।

घत्ता—तहिँ अवसरे सा करिवरि चडिवि परिभमियउ पट्टणु ताइँ किर ।
चिरमोहु वहंतइँ कुंजरेण सा णीय तुरिय भयवेविर ॥१३॥

१४

Previous births of Madanāvalī and the Khecara who had temporarily abducted her.

सा छुट्टिय दुक्खें कह व तासु उज्जाणहो गय भीसावणासु ।
मालियइँ केण णियघरहो णीय तहो घरिणिएँ ता कलि खणिण कीय ।
दुक्खाउर पेयवणम्मि पत्त तहिँ जायउ तुहुँ मइँ कहिय वत्त ।
सुणि एवहिँ मयणावलिहे वत्त जीवाण होइ विसमिय भविक्ति[1] ।
पारावयकुले जा लद्धजम्म पाराविय सा हुय णयणरम्म । 5
दहिऊरु कूरु पंजरे चरंति जा रमणइँ सहुँ अच्छइ रमंति ।
तावायउ विसहरु परिभमंतु भीसाणणु णं पत्तउ कयंतु ।
तें पायहिँ धरियइँ बे वि ताइँ पइँ करुणइँ धाविय[2] रक्खियाइँ ।
णवयारइँ सा उप्पण्ण एह तव उवरि णरेसर बद्धणेह ।

घत्ता—पारावउ अहि खेयर वि हुय णवयारइँ लद्धइँ मुणिवरहो । 10
अहिखयरइँ रोसें तुह वहुय णिय हरिवि तुरंतइँ णियघरहो ॥१४॥

१५

Padmāvatī comes and requests the sage for religious instruction.

जं पुच्छिउ णरवइ किं पि पइँ तं अक्खिउ णियसत्तीए मइँ ।
तं सुणिवि णरेसरु विंभियउ तवचरणु मणेण विचिंतियउ ।
पोमावइ एत्तहिँ आय तहिँ मुणि धम्मु पयासइ ललिउ जहिँ ।
पुणु वंदिवि भत्तिएँ णयसिरेण बोल्लाविवि[1] णंदणु कलसरेण ।

---

१३ १. J रुप्पविय. २ DN कंचणइं.

१४. १ SJ विमत्ति २ J धाइय.

१५. १ N बोल्लाविउ.

१३—जलप्रवाहमें मञ्जूषा और पद्मावतीका वृत्तान्त

वह मञ्जूषा काष्ठकी बनी हुई एक दूसरी पिटारीमें सुरक्षित रूपसे रखी गयी थी और निच्छिद्र व सुन्दर रूपसे गढ़ी गयी थी। वह जमुनाके प्रवाहमें बहती हुई गंगामें जा पड़ी। कहीं वह जल कल्लोलों-द्वारा डगमगाती, कहीं भँवरमें पड़कर घूमती और कहीं अतिसरल प्रवाहमें बहती हुई ऐसी शोभायमान हुई जैसे सागरमें जलयान। कुछ दिनोंमें वह कुसुमपुरमें पहुँची। वहाँ कुसुमदत्ता नामकी मालिनी रहती थी। वह पानी भरने गंगाको गयी। तब उसने ५ बहती हुई पिटारीको देखा। उसे जलसे निकालकर वह अपने घरले आयी। उसे देख पति-पत्नी दोनों बड़े सन्तुष्ट और प्रहृष्ट हुए। मञ्जूषाको उघाड़कर जब उन्होंने देखा तब उन्हें मणिकम्बलमें लिपटी हुई कन्या दिखायी दी। तत्पश्चात् कुछ दिनोंमें वह यौवनको प्राप्त हुई और फिर तेरे पिताकी दृष्टिमें पड़ी। उस पद्मावती नामकी जन-प्रसिद्ध, शरीर-कान्तिसे सलोनी, अति स्निग्ध युवतीको तेरे पिताने विवाह लिया। यथासमय तू उसके गर्भमें आया। उस अवसरपर उसने १० महान् हाथीपर चढ़कर पट्टणका परिभ्रमण किया। तब वह कुञ्जर पुराना मोह धारण करता हुआ, उस भयसे काँपती हुई रानीको तुरन्त ले भागा।

१४—मदनावली और उसका हरण करनेवाले खेचरका पूर्व जन्म

पद्मावती किसी प्रकार उस हाथीसे छूटी और एक भीषण उद्यानमें जा पहुँची। वहाँसे एक माली उसे अपने घर लिवा ले गया। शीघ्र ही उसकी गृहिणीने उससे कलह की। तब दुःखातुर होकर वह श्मशानमें पहुँची और वहाँ तेरा जन्म हुआ। इस प्रकार मैंने तुझे बात कह दी। अब मदनावलीकी बात सुन। जीवोंकी भवितव्यता विषम होती है। जिसने पारावतके कुलमें जन्म लिया था, वह परेवी बड़ी नयन-रम्य हुई। दही-भात खाती हुई जब वह पिंजरेमें अपने ५ रमणके साथ क्रीड़ा कर रही थी, तब वहाँ भ्रमण करता हुआ एक सर्प आया जो यमके समान भयानक था। उसने उन दोनोंके पैर पकड़ लिये। तब तूने करुणासे दौड़कर उनकी रक्षा की। तेरे दिये हुए नमोकार मन्त्रके प्रभावसे वह इस मदनावलीके रूपमें उत्पन्न हुई और इसीसे वह, हे नरेश्वर, तेरे ऊपर इतना स्नेह रखती है। वह परेवा भी खेचर हुआ, तथा वह सर्प भी मुनिवरके द्वारा दिये हुए नमोकारके प्रभावसे विद्याधर हुआ। वही सर्पका जीव खेचर रोषके १० कारण तेरी वधूको हरकर तुरन्त अपने घर ले गया।

१५—पद्मावतीका आगमन व मुनिराजसे प्रश्न

हे नरपति, जो कुछ तूने पूछा, वह मैंने तुझे अपनी शक्तिके अनुसार कह दिया। यह सुनकर करकण्ड राजा विस्मित हुआ और अपने मनमें तपश्चरणका विचार करने लगा। इतनेमें ही वहाँ पद्मावती आ पहुँची, जहाँ मुनि ललित धर्मको प्रकाशित कर रहे थे। उसने सिर झुकाकर भक्तिसे मुनिराजकी वन्दना की तथा मधुर स्वरमें अपने पुत्रसे संभाषण किया। फिर उसने ज्ञान-

ता पुच्छिउ मुणिवरु णाणदेहु थीवेउ णिहम्मइ जेण एहु । 5
को वि अम्हहँ सामिय भणु विहाणु दुहणरयणिवासहो गुरुपिहाणु ।
संसारमहण्णवसंकियाहँ उवभोयणिवहसुह छंडियाहँ ।
करुणेण जईसरु दुक्खियाहँ सुहसंपइविहि अक्खेइ[3] ताहँ ।
घत्ता—पडिवइँ आइ करेवि तहिँ उववासइँ पुत्ति सया करहि ।
हियइच्छिय सो सुहु अणुहवइ सुरसेज्जहिँ लीलए रइ करइ ॥१५॥ 10

१६

Efficacy of fasts.

पडिवइँ उपवासिएँ पढमु सग्गु बीयाइँ दुइज्जउ देववग्गु ।
तइयाइँ तइज्जएँ सग्गि वासु चउथीएँ तुरीयइँ सुहणिवासु ।
पंचमि तह पंचमि सुक्खु देइ सग्गम्मि छट्ठि छट्ठीएँ णेइ ।
सत्तमउ सग्गु सत्तमिएँ जाइ अट्ठमएँ सग्गे अट्ठमिएँ भाइ ।
पुणु णवमिएँ णवमउ देवलोउ परिपावइ दहमिए दहमे भोउ । 5
एयारसि एयारहमि सग्गे दोवालसि बारहमम्मि वग्गे ।
तेरहमउ तेरसि पायडेइ चउदहमउ चउदसि संघडेइ ।
पण्णरसमु पुण्णिम दक्खलेइ सोलहमउ तासु जु उज्जवेइ ।
घत्ता—अह पाणाहारइँ जो करइ जिणपुज्ज करेविणु मणहरिय ।
सोवाणहिँ एयहिँ खणे चडिवि सिवकामिणि णिच्छउ तेँ सरिय ॥१६॥ 10

१७

Completion of a fast.

जो विहाणु चारुचित्त उज्जमेइ भावजुत्त ।
सेण्हएण[1] रत्तएण दित्तएण वत्थएण ।
सोक्खवीहिँ अंचएवि कुंभु अग्गए थएवि ।
सो वि वत्थकोरएण पंगुरेवि सुंदरेण ।
अप्पिऊण सव्वएहिँ पूजिऊण केणएहिँ । 5
तेत्थु पोथउ ढूरेवि तूरएण जागरेवि ।
चारु पत्ति दाणु देवि पोत्थयाइँ पूजएवि ।
ण्हाविऊण देवदेउ आयरेहु तुम्ह एउ ।
घत्ता—चंदोवा सोलह जिणभवणे धय देविणु किंकिणिरवमुहलं[2] ।
एहो वयहो उवासइँ मणहरहो पावेसहि वंछिय[3] सुह सयल[4] ॥१७॥ 10

१८

The story of Sumitrā who was reborn a boy.

पुणु ताएँ पपुच्छिउ मुणिवरिंदु [1]पयकमलहिँ पाडिउ जेँ सुरिंदु ।
हो मुणिवर कहिँ इउ कियउ केण को पत्तउ एयहो वयफलेण ।
तं सुणिवि मुणीसरु भणइ एव मणि संसउ फिट्टइ ताहे जेव ।
उज्जेणीरायहो पुत्तियाएँ मणि गहिउ सुमित्तएँ बुत्तियाएँ

---

३ S णिवहु.

१७. १ DJ णण्हएण २ SJN मुहलु. ३ प्रतिषु 'वंछहि' ४ SJN सयलु.

१८. १ J पय पाडिय कमलहिं.

शरीरी मुनिवरसे पूछा "हे स्वामी ! मुझे कोई ऐसा विधान बतलाइए, जिससे इस स्त्रीवेदका विनाश हो, तथा दुःखों व नरक-निवासका दृढ़तासे निवारण हो।" तब उस संसाररूपी महासमुद्रसे शंकित उपभोग-समूहोंके सुखोंको छोड़नेवाली व दुःखी पद्मावतीको, यतीश्वरने करुणापूर्वक, सुख-रूपी सम्पत्ति प्राप्त करनेकी विधि बतलायी। वे बोले "हे पुत्रि, प्रतिपदासे प्रारम्भ करके लगातार पूर्णिमा तक उपवास कर ! जो कोई ऐसा करता है, वह मनोवाञ्छित सुखोंका अनुभव करता तथा सुरशय्यापर लीलापूर्वक क्रीड़ा करता है।"　५　१०

१६—उपवासोंका फल

प्रतिपदाको उपवास करनेसे प्रथम स्वर्ग मिलता है, तथा द्वितीयाके उपवाससे दूसरा स्वर्ग। तृतीयाके उपवाससे तृतीय स्वर्गमें वास होता है, और चतुर्थीसे चतुर्थ स्वर्गमें सुखपूर्वक निवास होता है। पञ्चमीसे पञ्चममें सुख मिलता है, और छठेसे षष्ठीमें गमन होता है। सप्तमीसे जीव सप्तम स्वर्गमें जाता है, और अष्टमीसे आठवें स्वर्गमें शोभायमान होता है। फिर नवमीसे नवम देवलोक मिलता है, और दशमीसे दशवेंमें भोग प्राप्त होता है। एकादशीसे ग्यारहवें स्वर्गमें, तथा द्वादशीसे बारहवें स्वर्गमें, जन्म होता है। त्रयोदशी तेरहवाँ स्वर्ग प्राप्त कराती है, और चतुर्दशी चौदहवेंसे मेल कराती है। पूर्णिमाका उपवास पन्द्रहवें स्वर्गके दर्शन कराता है, तथा उपवासोंका उद्यापन करनेवालेको सोलहवाँ स्वर्ग प्राप्त होता है। इस प्रकार उपवास-विधि पूर्ण करके तथा मनोहर जिनपूजा करके जो कोई आहार-पान ग्रहण करता है, वह इन्हीं सीढ़ियोंसे शीघ्र चढ़कर निश्चय ही शिवकामिनीका अनुसरण करता है।　५　१०

१७—उपवासके उद्यापनका विधान

प्रसन्नचित्त व भावयुक्त होकर उपवासका उद्यापन करना चाहिए जिसका विधान निम्न-प्रकार है—एक सूक्ष्म व चमकदार लालवस्त्रसे आच्छादित करके तथा सूखे व्रीहि (चावल) से अर्चा करके आगे कुम्भ रखे, और उसे भी सुन्दर कोरे वस्त्रसे लपेट दे। फिर सर्वमंगल द्रव्य अर्पित करके पूजा करे। वहाँ पोथी भी स्थापित करे। प्रातःकाल शीघ्र जागकर, पात्रको भले प्रकारका दान दे, पोथियोंकी पूजा करे, एवं जिनेन्द्र देवका अभिषेक करे। इस विधिका तुम भी आदर करो। जिन-मन्दिरको सोलह चन्दोवा तथा घण्टियोंकी ध्वनियोंसे झनझनाती हुई सोलह ध्वजाएँ अर्पित करे। (मुनिराज पद्मावतीसे कहते हैं कि) इस मनोहर व्रतके उपवाससे तू अपने मनोवाञ्छित समस्त सुख पा सकेगी।　५

१८—उपवासके फलका दृष्टान्त

फिर पद्मावतीने, सुरेन्द्रको अपने चरणकमलोंमें झुकानेवाले उन मुनिवरेन्द्रसे पूछा—"हे मुनिवर, इस व्रतको कहाँ किसने किया, और उसके फलसे क्या पाया ?" यह सुनकर मुनीश्वरने ऐसी बात कही, जिससे उसके मनका संशय मिट जाये। उज्जयिनीके राजाकी पुत्री चतुर सुमित्राने मनसे इस व्रतको ग्रहण किया, किन्तु पहला उपवास करनेके पश्चात् ही उसकी मृत्यु हो गयी।

उववासें पहिल्लएँ सा मुया वि घरे विप्पहो उज्जेणिहिँ हुया वि । 5
कुइयडियहिँ पालिवि इउ विहाणु थीवेउ हणेविणु दुहणिहाणु ।
गब्भम्मि हुयउ तहो जणणणासु जणणीएँ कियउ सुहु सयलु तासु ।
एक्कहिँ दिणि कलहु करंतियाएँ णीसारिउ णंदणु जणणियाएँ ।
घत्ता—गउ रूसिवि बाहिरि पट्टणहो सो रयणिहिँ जुण्णएँ मढे वसिउ ।
तहिँ आयउ विज्जाहरिणियरु ते देक्खिवि सो मणि उल्लसिउ ॥१८॥ 10

१९

Good fortune of the boy.

तहो अंचले लग्गउ सो खणेण सव्वाउ पणट्ठउ तहो भएण ।
तहो करयले चडियउ तं जि चीरु पुणु वलिवि समागउ घरहो वीरु ।
आणंदु कियउ जणणीएँ तासु तं लेविणु गय घरु वणिवरासु ।
तं लयउ वणीसें देवि दव्वु तें अप्पिउ रायहो अंसु भव्वु ।
सो पुच्छिउ राएँ अवरु अत्थि जइ आणहि ता तुह देमि हत्थि । 5
तें कहियउ णंदणु बंभणासु सो बीयउ आणइ देव वासु ।
सो पेसिउ राएँ दव्वु देवि कारोहणे गउ बम्हणु वलेवि ।
देवंती[1] कत्ती णिवकरेण तहिँ दिट्ठी रक्खसि ताव तेण ।
घत्ता—जाणेविणु रक्खसि बम्हणइँ सिरि लउडउ लीयउ तहे तणइं[2] ।
कर जोडिवि रक्खसि बम्हणहो भयकंपिर अग्गइँ तहो भणइ ॥१९॥10

२०

The king's minister becomes jealous of the boy and devises means to get rid of him.

अवराहइँ किं पि ण मइँ कियाइँ तुहुँ कुवियउ अम्हहँ उवरि काइँ ।
बोलंतउ बंभणु तहे ण भाइ एउ लउडउ रक्खससयइँ खाइ ।
णिद्दरियणयण भयकंपियाइँ तहो चलणहो लग्गि तुरंतियाइँ ।
मा मारहि सामिय संवरेहि तं करमि सव्वु जं तुहुँ भणेहि ।
तें ताहे कराविउ रूउ रम्मु ता तेण णीय अप्पणउ हम्मु । 5
सा कप्पडु मग्गिवि बंभणेण तें अप्पिउ रायहो तक्खणेण ।
तं पेक्खिवि तुट्ठउ राउ तासु अइ दिण्णउ पवरु पसाउ तासु ।
सो देक्खिवि भट्टु महंतएण तहो पाणणासु चिंतिउ मणेण ।
घत्ता—तें मंतिएँ जाइवि खणे भणिय तहो रायहो राणी वल्लहिया ।
आणावहि वग्घिहे दुद्ध तुहुँ ता ताएँ वि सेज्जा खणे गहिया ॥२०॥ 10

२१

One device fails; another is tried.

एह वत्त सुणेविणु राणियाहे गउ राणउ तुरियउ पासु ताहे ।
तं कहियउ ताएँ णरेसरासु तें दिण्णउ पेसणु दियवरासु ।
घरि जाइवि रक्खसि तें दिएण किय वग्घि सकंठी[1] तुरियएण ।

---

१९. १ J देवंती; DN येवंती. २ D णतए.

२१. १ N सकंटी.

तब वह उज्जयिनीमें ही एक विप्रके घर उत्पन्न हुई। उसने इस विधानको केवल दो घड़ी पालन ५
किया था जिससे ही उसके दुःखका निधान स्त्रीवेद नष्ट हो गया। उसके गर्भमें आते ही पिताकी
मृत्यु हो गयी। तब उसकी माताने ही उसके समस्त सुखकी व्यवस्था की। एक दिन कलह करके
माताने अपने पुत्रको घरसे निकाल दिया। वह रुष्ट होकर नगरके बाहर चला गया और रात्रि-
को एक जीर्ण मठमें बस रहा। वहाँ एक विद्याधरियोंका समूह आया, जिन्हें देखकर वह अपने
मनमें उल्लासित हुआ। १०

१६—ब्राह्मणपुत्रको विद्याधरीका दिव्य वस्त्र मिला

वह ब्राह्मणपुत्र एक विद्याधरीके आँचलसे जा लगा (अँचलको पकड़ लिया)। उसके भयसे
सब विद्याधरियाँ वहाँसे भाग गयीं। किन्तु वह चीर उसके हाथ चढ़ गया। वह वीर लौटकर अपने
घर आया। उसकी माताने आनन्द मनाया और उस चीरको लेकर वह वणिक्वरके घर गयी।
वणिक्वरने द्रव्य देकर उसे ले लिया और उसने उस भव्य वस्त्रको राजाको अर्पित किया। राजाने
उससे पूछा—"क्या तेरे पास और भी ऐसा वस्त्र है? यदि ले आवे तो मैं तुझे एक हाथी दूँगा?" ५
बनियाने उस ब्राह्मणपुत्रका नाम बतलाकर कहा—"हे देव, वही आपको ऐसा दूसरा वस्त्र
लाकर दे सकता है।" राजाने द्रव्य देकर उस ब्राह्मणपुत्रको भेजा। और वह लौटकर फिर
वनमें गया। वहाँ उसने अपने हाथसे एक कटारीको रेतते हुए (पैनी बनाते हुए) एक राक्षसी-
को देखा। ब्राह्मणने उसे राक्षसी जानकर उसके सिरपर अपना डण्डा उठाया, तब राक्षसी
भयसे काँपती हुई हाथ जोड़कर उस ब्राह्मणके आगे खड़ी होकर बोली— १०

२०—ब्राह्मण-द्वारा राक्षसीका वशीकरण

"मैंने तेरा कोई अपराध नहीं किया; तू मेरे ऊपर क्यों कुपित हुआ है?" ब्राह्मण बोला—
"मेरा यह डण्डा सैकड़ों राक्षसोंको खानेवाला है।" यह बात उस राक्षसीको भायी नहीं। वह
अकचकाई आँखोंसे एवं भयसे काँपती हुई तुरन्त ही उसके चरणोंसे लग गयी और बोली—"हे
स्वामि, मुझे मत मारिए। अपने डण्डेको रोकिए। जो कुछ आप कहेंगे, मैं वह सब करूँगी"।
तब वह ब्राह्मणकुमार उसे सुन्दर रूप धारण कराकर अपने घर ले आया। उससे वह कपड़ा ५
माँगकर ब्राह्मणने तत्क्षण राजाको अर्पित कर दिया। उस वस्त्रको देखकर राजा उसपर बहुत
प्रसन्न हुआ और उसे अपना प्रचुर प्रसाद प्रदान किया। प्रधानमन्त्रीने उस भट्टको (राजाका
कृपापात्र बना) देखकर, अपने मनमें उसे मार डालनेका विचार किया। उस मन्त्रीने उसी
क्षण जाकर उस राजाकी वल्लभा रानीसे कहा कि "तू उससे व्याघ्रीका दूध मँगवा।" रानीने
तुरन्त कोपशय्या ग्रहण कर ली। १०

२१—मन्त्रीका षड्यन्त्र और रानीका हठ

रानीके कोपशय्या ग्रहण करनेकी बात सुनकर, तुरन्त ही राजा उसके पास गया। उसने
नरेश्वरसे वह अपने मनकी बात कही। राजाने उस द्विजवरको आज्ञा दी। द्विजने घर जाकर,
उसी राक्षसीको तुरन्त एक रोमाञ्चित व्याघ्री बना लिया और उसे राजाके घर ले जाकर तत्क्षण

घरि णीय णरिंदहो बम्हणेण सा अप्पिय वग्घिणि तक्खणेण ।
तहे दंसणे जणवउ सयलु णट्ठु इह[2] मंति दुहइ तुह देव सुट्ठु । 5
भयभीयएँ मंतिएँ भणिउ राउ णिव कज्जु ण दुद्धइँ एहु जाउ ।
तहिँ मंतिएँ मंतु करंतएण पुणु राणिय भणिय तुरंतएण ।
बोल्लंतउ जलु आणावि देवि एहु णावइ तिम करि गउ वलेवि ।

घत्ता—ता भणिउ ताएँ णिव सुणहि तुहुँ बोल्लंतउ लइ आणेवि जलु ।
तं सुणिवि दिएसरु तेँ भणिउ [3]एहु पेसणकेरउ तुज्झु छलु ।।२१।। 10

२२

The Brahmin dies with austerities and is reborn as Arjuna. Padmāvati accepts the vow.

तेँ रक्खसि आणिय जलु करेवि बोलाविउ णिवअग्गएँ धरेवि ।
तं भणइ महंतउ राणिया वि हउँ भक्खउँ णरवइ दुइ जणा वि ।
इउ सुणिवि णरिंदहो चोज्जु जाउ तं सयलु दिएसरु पुच्छियाउ ।
तेँ कहियउ मंतिहे तणउ कम्मु णीसारिउ राएँ सो अहम्मु ।
तेँ राएँ बम्हणु कियउ मंति तहो णयरहो लोयहो होइ संति । 5
ता एक्कहिँ दिणि भट्टो वि चारु तउ करिवि गयउ सो सग्गदारु ।
उप्पण्णउ अज्जुणु होवि सोइ फलु एहउ पुत्ति विहाणे होइ ।
तं गहियउ ताइँ तुरंतियाएँ पुणु कियउ जिणेसरभत्तियाएँ ।

घत्ता—तहो वयहो फलेण वि दुद्धरइँ थीलिंगु हणेविणु मणहरिय ।
सण्णासु करेविणु पुणु मुइय सा तुरिउ सग्गु[1] खणे अणुसरिय ।।२२।। 10

२३

Karakaṇḍa transfers the kingdom to Vasupāla and retires for austerities.

ताव तहिँ करकंडहो णिवासु तं सुणिवि पवड्ढिउ दुक्खु तासु ।
जिणचरणलग्गु दुक्खाउ भीउ संसारहो उवरि विरत्तु थीउ ।
दुहजम्मणमरणपरंपराएँ चिरु कवलिउ हउँ दुक्कियघराएँ ।
ता भणिउ भडारउ करुणभाउ जिणपडिमहो लग्गउ मज्झु पाउ ।
तहो दोसहो महो पच्छित्तु देहि इउ दुरिउ खणद्धेँ खयहो णेहि । 5
मोक्खि भडारा तउ करेमि कोहाइमहाभड जह हरेमि ।
पडिवण्णउ मुणिणा करुणएण वसुपालहो देविणु रज्जु तेण ।
संसारमहादुहखिण्णएण तवयरणु लयउ करकण्डएण ।
उप्पाडिय कुंतल कुडिलवंत णं कम्मभुवंगम सलवलंत ।
तिणसमउ गणिवि अंतेउराइँ परिहरियइँ अंगहो अंबराइँ । 10

घत्ता—जा तेण वि लइयउ तवचरणु सामंतमंतिमहि परिहरिवि ।
ता पुरवरि अक्खिय वत्त खणे दुहभरियइँ केण वि पइसरिवि ।।२३।।

२] अह. ३] अहु.
२२. १ N खग्गि.

उस व्याघ्रीको अर्पित कर दिया। उसके दर्शनमात्रसे सब लोग भाग उठे। ब्राह्मणने राजासे कहा–"हे देव, इसे आपका मन्त्री दुहेगा।" तब मन्त्रीने भयभीत होकर राजासे कहा–"हे राजन्, इसके दूधसे अपनेको कोई काम नहीं, इसको जाने दीजिए।" मन्त्रीने मन्त्र (षड्यन्त्र) करके पुनः तुरन्त रानीसे कहा–"हे देवि, इससे बोलता हुआ जल मँगाइए। ऐसा कीजिए जिससे जाकर, यह फिर लौटकर न आवे।" रानीने राजासे कहा–"हे राजन् सुनिए, आप बोलनेवाला जल मँगाइए।" यह सुनकर उसने द्विजेश्वरसे कहा—"इस कामको पूरा करना तुम्हारे ही कौशलसे सम्भव है।"

२२—पद्मावतीका व्रतपूर्वक स्वर्गवास

वह द्विज उस राक्षसीको जल बनाकर ले आया और राजाके आगे रखकर उसे बुलवा दिया। जल बोला–"हे नरपति, मैं इस महन्त (मन्त्री) और रानी दोनों जनोंको, खा जाऊँगा।" यह सुनकर नरेन्द्रको आश्चर्य हुआ और उसने उस द्विजेश्वरसे सब बात पूछी। उसने मन्त्रीकी करतूत कह सुनायी। उसपर राजाने उस अधर्मीको निकाल भगाया। फिर राजाने उसी ब्राह्मण-को मन्त्री किया जिससे उस नगरके लोगोंको शान्ति हुई। तत्पश्चात् एक दिन वह सुन्दर ब्राह्मण तप करके स्वर्गके द्वारपर जा पहुँचा। वहाँसे वह अर्जुन होकर उत्पन्न हुआ। (मुनिराज पद्मावतीसे कहते हैं)–"हे पुत्रि, इस विधानका ऐसा फल होता है।" तब उस जिनेश्वरकी भक्त पद्मावतीने तुरन्त ही वह व्रत ग्रहण कर लिया और उसे पूरा किया। उस दुर्द्धरव्रतके फलसे स्त्रीलिङ्गका हनन करके वह मनोहर पद्मावती संन्यासपूर्वक मृत्युको प्राप्त हुई और क्षणमात्रमें चतुर्थ स्वर्गमें पहुँच गयी।

२३—करकण्डका वैराग्य

यहाँ जब करकण्ड राजाने यह बात सुनी तब उसे बहुत दुःख बढ़ा। वह दुःखसे भयभीत होकर, तथा संसारके ऊपर विरक्तभाव धारण कर जिनेन्द्रके चरणोंमें लग गया। उसने सोचा मैं चिरकालसे पापके घर दुःख, जन्म और मरणकी परम्पराका लक्ष्य बन रहा हूँ। फिर उसने करुण-स्वभावी भट्टारक मुनिसे कहा—"हे मुनिराज, मेरे पाँवसे जिन-प्रतिमाका स्पर्श हो गया है; उस दोषका मुझे प्रायश्चित्त दीजिए और इस पापको तुरन्त ही क्षय कीजिए। मुझे, हे भट्टारक, अनुमति दीजिए कि मैं तप करूँ, जिससे क्रोधादिक महाभटोंको पराजित कर सकूँ।" करुण मुनिने राजाको अनुमति दे दी। तब करकण्डने वसुपालको राज्य देकर व संसार रूपी महा-दुःखसे खिन्न होकर तपश्चरण ग्रहण कर लिया। उसने अपने घुँघराले केशोंको उखाड़ डाला, मानो सलबलाते हुए कर्मरूपी भुजंगोंको उखाड़ फेंका हो। तथा अन्तःपुरकी स्त्रियोंको तृण समान गिनकर उसने अपने शरीरके वस्त्रोंका भी परिहरण कर दिया। इस प्रकार जब उसने अपने सामन्तों, मन्त्रियों तथा पृथ्वीका त्यागकर, तपश्चरण ले लिया, तब किसीने दुःखसे पूर्ण होकर व नगरीमें प्रवेश करके यह बात उसी क्षण कही।

२४

All his queens also take to religious austerities.

ता उट्ठिय तुरियउ संवरेवि मयणावलि माला परिहरेवि ।
रइवेव पधाइय उरु हणंति कप्पूरकरंडउ [1] तिणु गणंति ।
कुसुमावलि कुसुमइं विक्खिरंति [2] रयणावलि रयणइँ णउ धरंति ।
मणि छंडिवि चलिय अणंगलेह खणे मंददेह हुय चंदलेह ।
सव्वाउ पधायउ वहुवडाउ मुणिअग्गएँ हुउ णिवलंपडाउ । 5
णिउ देक्खिवि ता उवसमु गयाउ कर मउलिवि सव्वउ तहिँ थियाउ ।
परिपुच्छिउ मुणिवरु देहि तिक्खु [3] वउ सामिय अम्हहँ चरहुं दिक्खु [4] ।
मोक्कलिउ मुणिणा ताव तेहिँ वउ लइयउ वम्महु हयउ जेहिँ ।
घत्ता—तउ घोरु करेविणु दुद्धरउ सव्वाउ गयउ सुरपुरवरहो ।
करकंडु सरंतउ जिणु हियइँ विहरंतउ गउ देसंतरहो ॥२४॥ 10

२५

Efficacy of Panca-kalyāṇa-vidhana.

पुणु तेण भोयणिव्विण्णएण संसारमहण्णवखिण्णएण ।
अण्णाणु पणासइ जेँ थिएण मणु णिच्चलु थक्कइ जेँ किएण ।
बलएव णरायण णर सधम्म जेँ हवहिँ महाबल मणुयजम्म ।
देविंद फणिंद णरिंद राय जेँ कियएँ होहिँ जिण वीयराय ।
कल्लाणइँ सयलइँ जेँ घडंति वरकेवलदंसणे जेँ चडंति । 5
जेँ कामएव मणहरण होंति गुणणिहिलसमुद्दहो पारु जंति ।
मलरहिउ सदंसणु जेँ वहंति णिव्वाणविलासिणि लहु लहंति ।
दुहणरयणिवासहो जं पिहाणु जेँ लद्धएँ केवलु लहइ णाणु ।
[1]घत्ता—णामेण पसिद्धउ भुवणयले पणकल्लाणविहाणु णिरुत्तउ ।
केवलणाणिहिँ महरिसिहिँ सव्वविहाणहँ तिलउ पउत्तउ ॥२५॥ 10

२६

Manner of performing the Panca-kalyāṇa.

जं कियउ आसि चक्केसरेण सण्णयसिरेण ।
जिणण्हवण पंच घियदहियएहिँ पयघडसएहिँ ।
अच्छंतइँ दिणयरे करिवि तिण्णि रयणीहिँ दोण्णि ।
जयरयणकरावलितूरएहिँ महिपूरएहिँ ।
गब्भावयारु कल्लाणु तेण सुपसण्णएण । 5
कसणम्मि पक्खे भद्दवइँ मासे पडिवएँ पयासे ।
उववासिउ चारुचरित्तएण सिद्धिहे कएण ।
किय किरिया रयणिहिँ सिद्धभत्ति चारित्तभत्ति ।
तह पच्छएँ किय तेँ सत्थभत्ति णासियभवित्ति ।
पुणु दिण्णउ काओसग्गु चारु विहिँ सयहिँ फारु । 10

२४. १ N तिणि गुणंति. २ D विक्खरंति. ३ DJN तिक्खु. ४ DJN दिक्खु.
२५. १ D का ६०वाँ पत्र यहाँसे २८ वें कडवककी ४ थी पंक्ति तक पाठसहित अप्राप्य है ।

२४—राजवधुओंकी जिनदीक्षा

तब तुरन्त ही मदनावली सँभलकर, व मालाका परिहरण कर तुरन्त उठ खड़ी हुई। रति-वेगा कर्पूरकी पिटारीको तृण समान गिनती हुई व छाती पीटती हुई दौड़ पड़ी। कुसुमावली अपने कुसुमोंको बिखेरने लगी और रत्नावली रत्नोंका परिहार करने लगी। अनंगलेखा मणियोंको छोड़-कर चल पड़ी और चन्द्रलेखा एक क्षणमें मन्ददेह हो उठी। इस प्रकार नृपमें आसक्त वे सभी वधुएँ दौड़ीं और मुनिराजके आगे जा खड़ी हुईं। नृपको देखकर वे उपशम भावको प्राप्त हो गयीं और वे सब वहाँ हाथ मलती रह गयीं। उन्होंने भी मुनिवरसे पूछा—"हे स्वामी, हमें भी दीक्षा दीजिए। हम भी तीक्ष्ण व्रत करेंगी।" मुनिने अनुमति दे दी और कामदेवको विनष्ट करने-वाली उन सबने व्रत ले लिया। फिर घोर और दुर्द्धर तप करके वे सभी सुरलोक गयीं। इधर करकण्ड हृदयसे जिनेन्द्रका स्मरण करते हुए देशान्तरमें विहार करने लगे। ५

२५—पञ्चकल्याण व्रतका माहात्म्य

फिर भोगोंसे निर्विण्ण तथा संसाररूपी महासमुद्रसे खिन्न हुए करकण्डने वह प्रधान व्रत धारण किया, जिसके सद्भावमें अज्ञान नष्ट होता है व जिसके करनेसे मन निश्चल होता है। जिसके प्रभावसे मनुष्य जन्ममें भी बलदेव, नारायण व प्रतिनारायण-जैसे धर्मशील महाबली नर होते हैं। जिसके करनेसे देवेन्द्र, फणीन्द्र, नरेन्द्र, राजा व वीतराग जिनेन्द्र बनते हैं। जिससे समस्त कल्याण घटित होते हैं, और जिससे उत्तम केवलदर्शनकी प्राप्ति होती है। जिससे मनोहर कामदेव होते हैं, तथा समस्त गुणरूपी समुद्रके पार जाते हैं। जिससे मलरहित सम्यग्दर्शनका पालन होता है व शीघ्र ही निर्वाणरूपी विलासिनीका लाभ मिलता है। जो दुःखरूप नरक-निवास-का अवरोधक है, तथा जिसके लाभसे केवलज्ञान भी प्राप्त होता है। वह व्रत भुवनतलमें निश्चय ही पञ्चकल्याण विधान नामसे प्रसिद्ध है, जिसे केवलज्ञानी महाऋषियोंने सब विधानोंका तिलक कहा है। ५ १०

२६—पञ्चकल्याणका क्रिया-विधान

इस व्रतको चक्रवर्तीने सिर झुकाकर (निम्न प्रकारसे) किया था। जिन-भगवान्‌का अभिषेक घृत और दधिसहित जलके सैकड़ों घड़ोंसे पाँच बार किया, तीन बार दिनमें और दो बार रात्रिमें। उस समय ऐसी जयध्वनि, करतलध्वनि और तूर्यध्वनि की गयी कि जिससे पृथ्वीतल भर गया। फिर सुप्रसन्न मनसे भाद्रपद मासके कृष्ण पक्षकी प्रतिपदा को गर्भावतार कल्याणक मनाया। उस दिन सिद्धिके लिए शुद्ध चरित्रपूर्वक उपवास रखा और रात्रिमें क्रिया करके सिद्ध-भक्ति तथा चारित्र-भक्ति व तत्पश्चात् भविष्यके भवोंको नाश करनेवाली शास्त्र-भक्ति की। फिर दो-सौ आर्यों- ५

तह पंचमि दिणि जम्मावयारु वउ कियउ सारु ।
पुव्वुत्तिय किरिया मणहरीय किय गुणभरीय ।
उववासु करेविणु अट्ठमीहिँ दुहणिट्ठवीहिँ ।
णिक्खवण जोयभत्तीसमेय किय किरिय सेय ।
पुणु दहमिहिँ किरिया केवलीय सा तेण कीय । 15
पुव्वुत्तिय सुयभत्तिएँ समाणु सुहसयलठाणु ।
चउदसि उववासिवि आयरेण गुणसायरेण ।
विउसग्गहिँ अट्ठहिँ विप्फुरंति गुणगण धरंति ।
पंचमकल्लाणहो अणुसरीय सा किय किरीय ।
अंतिमउ जाउ किउ विहुसएहिँ अट्ठुत्तरेहिँ ।

घत्ता—तं तेण वि कीयउ वयतिलउ हियएँ वहंतइँ परमरसु ।
जो अवरु वि कीरइ णिउणु जणु सो महिहिँ भमाडइ णिययजसु ॥२६॥

२७

Karakaṇḍa attains the highest heaven.

तउ घोरु करेविणु सो गुणालु णाणातरुमूलहिँ किउ तियालु ।
तोडेविणु माया माणु मोहु णीसारिउ दूरहो तेण लोहु ।
पंचिंदियजं ता संवरेवि मणवयणसरीरइँ तणु करेवि ।
पालेविणु संजमु दुविहु सो वि परमप्पउ हियवएँ परिकलेवि ।
झाणाणलें जालिवि कम्मरुक्खु सिविणे वि ण दीसइ जित्थु दुक्खु । 5
तिणणिवहसमाणइँ कंचणाइँ सम भाविवि वासी चंदणाइँ ।
परिहरियइँ कामुक्कोयणाइँ णासग्गे णिवेसिवि लोयणाइँ ।
णिज्जुंजिवि अप्पउ परमणाणि कलरहियएँ णिम्मलणहसमाणि ।

घत्ता—णियरूउ लहेविणु सो णियइ फेडिवि कम्मणिबंधणइं ।
सव्वत्थसिद्धि संपत्तु खणे कणयामरमुणिवरवयफलइं ॥२७॥ 10

२८

Author's eulogy.

चिरु दियवरवंसुप्पण्णएण चंदारिसिगोत्तें विमलएण ।
वइरायइँ हुयइँ दियंबरेण सुपसिद्धणामकणयामरेण ।
बुहमंगलएवहो सीसएण उप्पाइयजणमणतोसएण ।
आसाइणयरि संपत्तएण जिणचरणसरोरुहभत्तएण
अच्छंतइँ तहिँ मइँ चरिउ एहु धर पयडिउ भवियणविणउ गेहु । 5
मइँ सत्थविहीणइँ भणिउ किं पि सोहेविणु पयडउ विबुहु तं पि ।
परकज्जकरणउज्जुयमणाहँ अप्पाणउ पयडिउ सज्जणाहँ ।
कर जोडिवि मग्गिउ इउ करंतु महो दीणहो ते सयलु वि खमंतु ।

घत्ता—जो पढइ सुणइ मणि चिंतवइ जणवएं पयडइ इउ चरिउ ।
सो णरु भुवणहो मंडणउ लहइ सकित्तणु गुणभरिउ ॥२८॥ 10

---

२८. १ S] आसाइय. २ N का पाठ यहाँ समाप्त होता है, क्योंकि उसका अगला ८८वाँ पत्र अप्राप्य है ।

सहित शुद्ध व उत्तम कायोत्सर्ग किया। तत्पश्चात् पञ्चमीके दिन सारभूत जन्मावतार व्रत किया। उस दिन भी पूर्वोक्त गुणोंसे भरी हुई मनोहर क्रिया की। फिर दुःख-विनाशी अष्टमीको उपवास करके योगभक्ति सहित श्रेयस्कर निष्क्रमण (तप) कल्याणक क्रिया की। फिर उसने दशमीके दिन केवलज्ञान कल्याणक क्रिया की, जिसमें पूर्वोक्त क्रियाके अतिरिक्त समस्त सुखोंके स्थानरूप श्रुतभक्ति भी की। फिर चतुर्दशीके दिन उस गुणसागरने आदरपूर्वक उपवास करके आठ व्युत्सर्गोंसे स्फुरायमान, गुणगणोंका धारक, पंचम निर्वाण कल्याणक क्रिया की तथा दो-सौ आठ बार अन्तिम जाप किया। इसी प्रकार करकण्डने भी हृदयमें परम आनन्द मनाते हुए उस श्रेष्ठ व्रतको किया। और भी जो कोई निपुण जन इस व्रतको करता है वह पृथ्वी-भरमें अपना यश फैलाता है।

२७—करकण्डका तप और ध्यान एवं सर्वार्थसिद्धि-गमन

करकण्डने घोर व गुणालय व्रत किया। उसने नाना वृक्षोंके मूलमें त्रिकाल तप किया। उसने माया, मान, मोह व लोभको तोड़कर दूर निकाल फेंका। फिर उसने चलायमान पाँचों इन्द्रियोंका संवरण करके, मन, वचन और कायको क्षीण करके, दोनों प्रकार संयम पालते हुए, हृदयमें परमात्म-ध्यान करते हुए, कर्मरूपी वृक्षको ध्यानाग्निमें ऐसा जला दिया कि जिससे स्वप्नमें भी दुःखका दर्शन न हो। उसने कांचनको तृणसमूह सदृश समझा एवं कीचड़ और चन्दनको एक समान गिना। उसने कामोद्दीपनका परिहार किया और नेत्रोंको नासाग्रपर निवेशित करके, निर्मल आकाशके सदृश मलरहित परमज्ञानमें अपनेको योजित करके, अपना आत्मस्वरूप प्राप्तकर, एवं कर्मबन्धनोंको काटकर, कनकामर मुनिवर-द्वारा उपदिष्ट व्रतके फलसे वह क्षणमात्रमें सर्वार्थसिद्धिको प्राप्त हुआ।

२८—कविका आत्म निवेदन

पहले द्विजवर (ब्राह्मण) वंशमें उत्पन्न, विमल चन्द्रर्षि गोत्री, वैराग्यके कारण दिगम्बर हुए, सुप्रसिद्ध नामधारी कनकामर, बुधमंगलदेवके शिष्य, लोगोंके मनको सन्तोषदायक, जिनेन्द्रके चरणकमलोंके भक्त, मैंने आसाई नगरीमें पहुँचकर, वहाँ रहते हुए भव्यजनोंके विनयपूर्वक व स्नेहवश इस चरित्रको धरातलपर प्रकट किया। मुझ शास्त्रविहीनने जो कुछ कहा है, उसे विद्वान् शोधकर प्रकट करें। मैंने तो परोपकारमें उद्यत-मन सज्जनोंको आत्मभाव प्रकट किया है और ऐसा करते हुए मैंने हाथ जोड़कर माँगा है कि वे मुझ दीनके समस्त दोषोंको क्षमा करें। जो कोई इस चरित्रको पढ़ेगा, सुनेगा, मनमें चिन्तन करेगा अथवा जनपदमें प्रकट करेगा, वह नर भुवनका मण्डन होता हुआ गुणोंसे भरा आत्मकीर्त्तन प्राप्त करेगा।

२९

The author eulogizes his patron.

जो णवजोव्वणे दिवसहिँ चडियउ अमरविमाणहो णं सुरु पडियउ ।
कणयवण्णु अइमणहरगत्तउ जसु विजवालु णराहिउ रत्तउ ।
धम्ममहातरु सिंचिय अप्पुणु जो विजवालहो णं मुहदप्पणु ।
जो अरि णिहणइ दुस्सह लीलइँ जसु मणु रंजिउ कुंजरकीलइँ ।
बंधवइट्ठमित्तजणरोहणु [1]णिवभूवालहो जो मणमोहणु । 5
दीणाणाहहो जो दुहभंजणु कण्णणरिंदहो आसयरंजणु ।
जो बोलंतउ णिवसह खोहइ[2] जो ववहारइँ णरवइ मोहइ ।
जो गुरुसंगरि अइसयधीरउ जो जणपयडु ण कायरहीरउ ।
जो चामीयरकंकणवरिसणु जो वंदीयणु सहलउ करिसणु ।
जो जिणपायसरोयहँ महुयरु जो सव्वंगु वि णयणहँ सुंदरु । 10
जो कामिणिहिँ मणम्मि ण मुच्चइ जो जणसीलतरंगिणि उच्चइ ।
कित्ति भमंतिय कह व ण थक्कइ जसु गुण लिंती सरसइ संकइ ।
तहो सुय आहुल रल्हो राहुल मुणिकणयामरपयउव्वाहुल ।

घत्ता—तहो अणुराएँ इउ चरिउ मइँ जणवइँ पयडिउ मणहरउ ।
तेँ बंधवपुत्तकलत्तसहु चिरु णंदहु जा रविससि हरइं ॥२९॥ 15

इय करकंडमहारायचरिए मुणिकणयामरविरइए भव्वयणकण्णावयंसे पंचकल्लाणविहाणकप्पतरु-
फलसंपत्ते करकंडसव्वत्थसिद्धिलाहो णाम दहमो परिच्छेउ समत्तो ।

॥ संधि ॥ १० ॥

---

२९. १ J णिय. २ D णिव संखोहइ.

२१—कविके प्रोत्साहक

जो दिवस बीतनेपर नवयौवनको प्राप्त हुआ, जैसे मानो अमर विमानसे सुर आ पड़ा हो। जो कनकवर्ण व अतिमनोहर-गात्र था और जिसमें विजयपाल नराधिप अनुरक्त था। जो अपने धर्मरूपी महावृक्षको सींचते हुए विजयपालका मानो मुखदर्पण था। जो दुस्सह वैरियोंका लीलामात्रसे विनाश करता था और जिसका मनोरञ्जन कुञ्जर-क्रीडासे होता था। जो बान्धवों, इष्टों व मित्रजनोंका उन्नतिकारी था और नृपभूपाल (या निजभूपाल) का मनमोहक था। जो दीन और अनाथोंका दुःखभंजक था और कर्णनरेन्द्रका हृदयरञ्जक था। जो बोलने मात्रसे राज-सभामें क्षोभ उत्पन्न करता था, एवं व्यवहारसे जो नरपतिको मोह लेता था। जो बृहत् संग्राममें अतिशय धैर्यशाली था और जो लोगोंमें प्रसिद्ध था कि वह कायर बुद्धिमें रत नहीं। जो सुवर्ण और धान्यकी वर्षा करनेवाला था (बड़ा दानी था)। जो जिनेन्द्रके चरणकमलोंका मधुकर था। जो नयनोंको सर्वांग सुन्दर दिखायी देता था। जो कामिनियोंके मनसे दूर नहीं होता था। जिसे लोग शीलतरंगिणी कहते थे। जिसकी कीर्त्ति भ्रमण करती हुई कभी थकती नहीं थी और जिसके गुणोंका वर्णन करते सरस्वती भी शंकित होती थी। उसके तीन पुत्र थे—आहुल, रल्हु और राहुल, जो मुनि कनकामरके चरणकमलोंके भ्रमर थे। उसीके अनुरागसे मैंने इस मनोहर चरित्रको जनपदमें प्रकट किया। अतएव वह अपने बान्धवों, पुत्रों व कलत्र सहित, तबतक चिरकाल आनन्द करे, जबतक सूर्य और चन्द्र स्थिर हैं।

इति मुनि-कनकामर-विरचित भव्यजनकर्णावतंस पञ्चकल्याणविधानरूप कल्पतरुफल-सम्पन्न करकण्ड महाराज-चरित्रमें करकण्डका सर्वार्थसिद्धि-लाभ नामक दसवाँ परिच्छेद समाप्त।

॥ संधि १० ॥
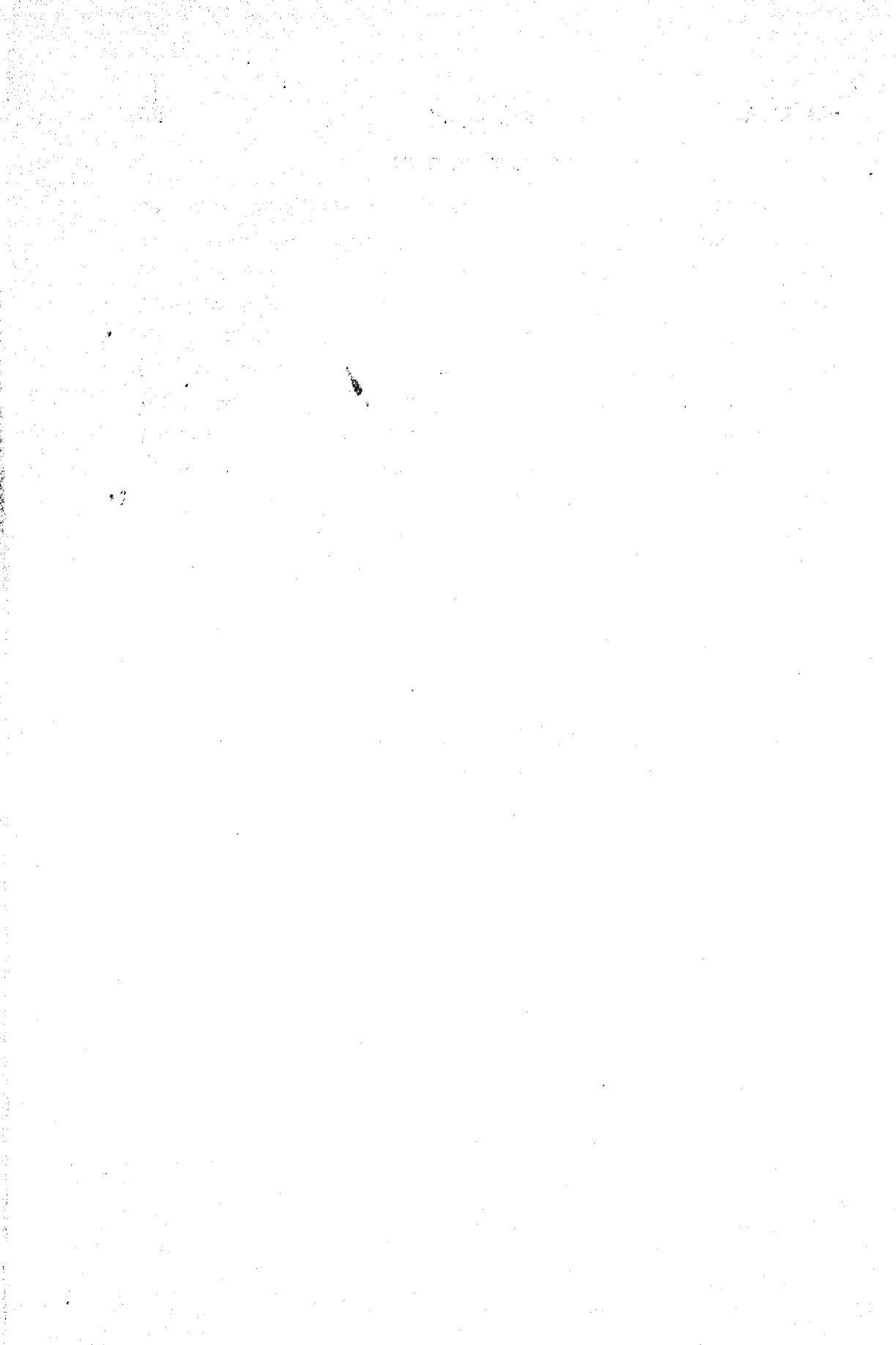
Translation of Karakaṇḍacariu

CHAPTER I

1. "I recall to mind the feet of the most gracious *Jina*, the destroyer of Cupid, dweller of the city of salvation, the sun that removes the darkness of sin, who rests in the highest abode and is absolved from death. Victory, oh God, the giver of the matchless happiness of salvation, and served by the rulers of gods, serpents and men. Victory, oh seer of the other end of the ocean of knowledge, who has brought the most deserving to the path of salvation. Victory, oh charm for overpowering the snake of *Karma*, the root of all incantations, the allayer of the ghost, the mind. Victory, oh sole asylum of people lying in the four forms of life, and remover of the mass of miseries of the good men who are warless. Victory, oh royal swan of the lake of restraint, praised by the swanlike wise men. Victory, oh ample water to the fire of wrath, dispeller of darkness and holder of supreme knowledge. Victory, oh dweller of the heart of eternal bliss, waited upon by a hundred *Indras*, and abode of happiness. Victory, oh sun (lit.-friend of the lotuses) to the lotuses in the form of the deserving, having lovable virtues, and the rich ocean of the nector of self. Victory, oh God, the stainless, destroyer of the fear of worldly existence, ornament of the great mansion, the world. May the desired fruit be of the man who bows to your feet or recalls them to mind.

2. Bearing in mind *Saraswati* of divine speech, as well as the feet of the learned *Mangaladeva*, I narrate the life of king *Karakanda* pleasing to the ears of men, sweet, graceful, endowed with the gem of prosperous acts, well-known and brimmed with multitudinous excellences. Though the wicked are exceedingly perverse, though the people are tasteless and sullied in their mind, though I know no grammar or metre, and am dull in crossing the ocean of scriptures, though graceful speech does in no way flow forth, though I fight shy of the learned, though I did not sit at the feet of poets and though I sullied my fame by the company of the stupid, still, whatever fruit has accrued to me by recalling to my heart *Siddhasena*, worthy *Samantabhadra*, *Akalamkadeva* the ocean of the water of scriptures, *Jayadeva*, the large-minded *Svayambhu* and the honourable *Puspadanta*, the abode of the goddess of speech, and by paying my respects to them, from that I express the theme of my heart full of interest and devoid of unpleasantness. Here there is no simulation.

3. In this *Jambudvipa*, the foremost of the continents, the lamp of the islands, marked by the *Jambu* tree, girt up with the surrounding briny ocean and measuring a hundred thousand *Yojanas*, there is the vast and prosperous *Bharata* country shining with the rivers *Ganga* and *Sindhu*, the depositary of the jewels of the earth consisting of six parts and beautiful like

the mine of gems (i. e. the ocean). Here is the pleasant *Anga* country as if the lady earth had put on a divine apparel; where lotuses have blossomed in lakes like eyes on the face of the earth; where the divine-bodied *Yakshas* having their affection fixed on the beauty of the farmers' wives, do not move off; where fields of paddy are protected by girls by enchanting the flocks 10 of deer with their music; where travellers rid themselves of the fatigue by feasting upon grapes and sleep happily on earth-lotuses and where the row of lotuses in the waters of canals looks extremely beautiful as if the earth were smiling. In that pleasant country, full of corn and gold, there is the attractive city by name *Campa* lovely to the eyes of people, the best on the 15 surface of the earth and abounding in all excellences.

4. It is surrounded by a moat full of water like the earth looking beautiful with the ocean. With lofty and white towers it is, as it were, touching the sky with hundreds of arms; where lofty Jina-temples look beautiful as if they were pure, unbroken heaps of merit; where silk-banners are shaking on every house as if white serpents were gliding 5 in the sky, which is resplendent with the rays of five-coloured gems as if a handful of flowers had been offered by Cupid; which is beautiful with picture-houses like fascinating aerial cars of gods: and which looks beautiful with streaks of saffron as if declaring itself to be the battle-field of Cupid. There are red lotuses on earth as if it declares to be holding hundreds of 10 fruits. By the divine virtue of the Jina *Vasupujya*, the lustful persons were not overpowered by love. There ruled king *Dhadivahana* who shattered his enemies and was an elephant to the tree of arrogance, who was endowed with fine arts and virtues, was devoted to his superiors and had crossed the ocean of learning. 15

5. He bore the yoke of the great car of virtue and was a shelter to the helpless, the poor and the miserable. By his fame the surface of the earth was whitened; by his largess all people were pleased. Gods sing his virtues and the enemies do not move about being terror-stricken. The goddess of speech adorns his lotus-like mouth, the goddess of wealth resides in his spacious 5 bosom. His hand stretches forth to give wealth*, but never wields the arrow for the destruction of the living. Being struck with his commands the deer become maimed and do not roam about on earth. He was full-faced to the good; but terrible, with knitted eyebrows, to the wicked. His mind was dyed in the colour of virtue and was never, for a moment, dipped in sin. 10 His heart was deep like ocean, steady like *Meru* and broad like the sky. To him his attendants were loyal being pleased by his virtues. He became an ornament of the world.

6. One day *Dhadivahana* made an excursion to *Kusumapura*. There the king saw a beautiful girl brought up by a gardener. Seeing her so attractive, the good king became stricken with love which aroused his passion. Being afflicted by the heat of the fire of separation, the king inquired of a certain man "Tell me, oh friend, whose daughter she is, a veritable fruited 5

---

*There is a pun on the word 'dhanu' meaning wealth or bow.

branch of the tree of Cupid." The man then told the facts to the king that the beautiful person was the daughter of the gardener. The gardener *Kusumadatta* was then summoned and the stoutly built man was asked hesitatingly "Is she your daughter or of somebody else; kindly tell me." He told the king, the moon on earth "My wife Kusumadattā found her in a 10 box in the very deep current of the Ganges."

7. The very moment, the gardener, bearing the responsibility of virtue took the box and speedily showed it to the king (saying) "Oh lord, served by men, she was placed in this. It is not known, sir, whose daughter the girl was." The king, who had reached the ocean of knowledge, examined it and found in it a golden finger-ring imprinted. Then he read the beautiful 5 letters "This girl is the daughter of a king, She was born the very mansion of Cupid, the daughter Padmāvatī of *Vasupala* the king of *Kausambi*, of spreading glory." Knowing this the king, who had already felt attached, instantly married her who could shake off his woe.

8. Then the king, having given good wealth to the gardener and being accompanied by her who was endowed with a lustrous body, feeling satisfied, came to his palace with great rejoicings. There the two lovely ones indulged in sports with satisfaction. One night, the wife, in sleep, saw a monstrous, rutting elephant with its trunk raised up. Getting up, she repor- 5 ted to the king "Look, my lord, I have seen, during night, a desirable elephant approaching." Hearing those words and considering it as an omen, the king told her its bearing "There will be a son born to you, an ornament of the family, a delight to the mind of the people and destroyer of the wicked." 10

9. While she lived in the company of her lord, in the course of the happy days, it so happened that an unprecedented lustre became manifest on her body. The bright cheeks became pale. The pearl-necklace, having its brilliance set at nought by the majesty of the breasts, no more adorned her bosom, but in turning round it made the mouths (nips) of those breasts 5 dark like collyrium as a wicked person bccomes prideless towards the best of the qualified when his head is bent down in a combat. The three folds vanished in a moment with shame as if through the fear of the child. Her gait became slow due to the burden of the belly, and weariness increased along with sloth and yawning. Thus (the child) quickened developing these 10 good symptoms of pregnancy over the body of the mother. A pearl garland was then tastefully strung which surpassed the lustre of the sun and the moon*. Seeing the queen, pre-eminent in the world, like this, the king made rejoicings. At this occasion, on one bright day, a longing arose in her mind.

10. Afflicted by it the resolute and sportive lady would not talk or indulge in any pastime. "How should I fulfil the longing of my heart ?". She fell on the ground at the very moment. Seeing her, the good king inquired "what is the cause of your affliction ? What ailments are there in

---

***The line is more significant in its applied sense, i. e. the passage is composed in the mauktikadama metre.**

your body on account of which you do not make a reply, oh courageous lady ?" Then, putting up with her trouble, she made an answer to the gracious king who had satisfied the gods "What is the good of my telling it to you, oh king, why my ample body has shrunk in half a moment. I have a longing, oh lord of men, which is never attainable by men. In drizzling rains, dressing myself as a man and mounting on the mightiest elephant in your company, oh lord of men, I would go round the city including the principal gateway. This is in my heart. If it is not accomplished, then I die even now."

11. "Is it this desire that you have in your heart, oh darling" said the king smilingly; "I thought it was some cause, proceeding from me, that was giving you trouble. How great have you counted it, oh charming lady; do not wear out your body in vain." Then the resolute lady says "During summer, when terrible forest-conflagrations rise up, where can a cloud be, my lord ? It is not possible, oh illustrious one." Then the king, considering it in his mind, thought of the deity *Megha-kumara*. The latter came because of his long attachment, having assumed the form of a cloud. When the sky became overecast by him, it began to drizzle. Then the king said to the lady who was easy at heart "Look at the dark cloud; quickly put on your dress, suitable for sport, and make your heart courageous, oh madam."

12. Then the king got ready a fat, brilliant elephant, and having ordered trumpets to be blown and auspicious songs to be sung and having decorated it and presented it before his wife, the gracious king got her mounted on its back. The lord of men, in company of her, shone forth on it as if he was the lord of the gods. Then sweet wind, blended with sandal, began to blow and the mass of clouds gently sent forth a spray of water. Then the memory came and the *Vindhyas* flashed forth in its mind; so the vicious elephant, excited at heart, ran off to Kalinjara. People ran after it but it could not be overtaken and it passed out of the town.

13. When the elephant was flying, heading for the forest, the queen, being terrified at, said to her husband—"My lord, oh lord, get down; do not die for my sake. In your survival the kingdom will survive; in your presence righteous deeds will prevail; in your life all people will live, in your existence the pleasures of life will exist. Return to the city, oh king, let the elephant take me away." Hearing that, the king caught hold of a tree and jumping off, came back instantly to the city with anxiety. In the meanwhile the irresistible elephant took her away further. The elephant, as it went on, came to a lake where it entered into deep water. Then that wife of the king, resembling a heavenly damsel, jumped into the water with a trick.

14. Bearing deep sorrow in heart, the highly virtuous lady, leaving the lake, went into the forest. There she saw a garden with decaying trees, beast-less and sapless like salvation devoid of passion and feeling. There, as she rested under a tree, the pleasure-garden blossomed up and became fruitful. Then some one reported the wonderful happening to the gardener incharge, in *Dantipur* "Listen, oh gardener, to my words; an unprecedented brilliance

is visible to-day in the forest. The *Bakula* the *Campaka* and the mangoes have blossomed and all creeper-bowers have become green. Even the good trees that bear fruit in different seasons are bending with their crop of fruits. Swarms of bees, greedy of the fragrance, are humming, as if the forest-beauty 10 is chanting pure notes. Has spring arrived in that forest so that it appears so beautiful to my mind ?" Hearing that, the forest-guard went there in a moment where the spring had manifested itself. Then, seeing that forest so lovely, the man was thrilled with joy for a moment and then he argued in his mind "Surely this has not blossomed through our good luck." 15

15. The forest-guard wandered through the forest; he looked for the cause of the affluence of the forest. Then wind, mixed with fragrance, blew as if the richness of the forest was declaring its nature. The guard went by the smell, by the way the wind was coming. He saw the heavenly damsel under a tree as if the forest-deity was shining forth in all her grace. He then 5 thinks "She is not an ordinary woman; of divine body, she is extra-ordinary in appearance". He then called her out addressing her as his daughter and raised her up by catching hold of the palm of her hand, "Why are you waiting here, sour at heart, oh daughter; come quick to my home." Hearing his words, delightful to the ears, the lady walked up to his house. While she 10 lived in the gardener's house, *Kuśumadatta* thought in her heart, "This woman, seen by him there, is extra-ordinary. Is she a *Kinnari* or a *Vidyadhari* (classess of demigods) ? She is lovely to the eyes, the best of women, fair coloured like *Campaka*, and brimmed with virtues.

16. The richness of her personal beauty is very splendid. The sun and the moon are, as it were, moving in the form of her nails. Longing for her beautiful body the plaintain tree is following her legs. Thinking its trunk no good the lord of elephants has, as it were, resorted to the high peak of *Meru*. The mountain of the gods *(Sumeru)* thought it to be harder and so has 5 followed the tender-bodied at her hips. The ampleness of her hips is attractive as if Cupid has made it so, thinking it to be his home. The depth of the navel has, as it were, been given to her by the ocean calling her his daughter, Her large, protruding breasts, with scratches, look like the frontal globes of an elephant with fresh wounds. How can I describe the shapeliness of her 10 creeperlike arms accompanied by the beauty of the leaf-like hands. The line of teeth is resplendent as if imitating the pomegranate seeds. Not tolerating the elevation of the nose, the lip has assumed redness. The pupils in the white and dark eyes look beautiful as if big bees were sitting on Ketaki leaves. The well curved line of eye-brows appears like the bow-stick taken up by 15 Cupid. The forehead, in its great elegance, appears like the half-moon sticking and shining there. The hair, with bee-black locks, shake like darkness gathered there for fear of the face-moon. If by her beauty, matching Cupid, my husband becomes perturbed in mind, then, with a quarrel, he would certainly leave me and honour her". 20

17. Thus, feeling jealous, she turned her out giving her a bad name. The latter, leaving her attachment, walked out of the house the very moment.

Proceeding on with great trouble, she saw the cemetery where kites were sitting on the pieces of the bodies of thieves and adulterers pierced with spikes; which was thick with the blood of the persons torn; where the 5 animals, greedy of flesh, had commenced a dance; where the bellies of beasts were split by bears with restless tongues; which was haunted by demons rapturously feasting on flesh; which was crowded with hundreds of thousands of birds sporting and hovering, and beset with multitudes of creatures being consumed in the flames of fire; where masses of hair on the heads were 10 fluttering in the air and where strips of rags, tied to each post, were shaking; which was sickening to people on account of the smell of human bodies and which at one place was overspread with skulls of the fractured. In that dreadful crematory, the terminus of corporeal existence, was born to her an excellent son, like gold or god in appearance, endowed with good signs 15 and delighter of the eyes and minds of people.

Here ends, in the life of the great king *Karakanda* composed by Sage *Kanakamara* which is an ornament to the ears of the holy and which presents the richness of the fruit of the desire-giving tree of the five auspicious rites, the first chapter, describing the birth of Karakanda.

SECTION 1

CHAPTER II

1. On the bright day the child was born, there occurred many auspicious signs as if the sun had dawned, and the faces of the directions had visbily brightened up. By his birth her misery was forgotten, as if the desire-giving tree had sprung up in the forest; as if the lords of the mountains had shot forth tearing the earth; as if the full moon had risen in the sky of 5 its family. No sooner did she take up the born child than she saw a *Matanga* (a man of the lowest caste) in front of her. He was of a dark complexion and his eyes were red. He came close to the child and took it up in his hand like a golden jar lifted up by an excellent elephant. Lying in his hand it exhibited the beauty of the jewel shining on the crest of the 10 serpent-king. When he started for home, taking it away, she raised a cry "Oh sinful vagabond, whence have you come to take away my son. Not one calamity was crossed over when another, greater than the first, has cropped up." Then the *Khecara*, in the garb of a *Matanga*, with folded

hands, said to *Padmavati* "Do not weep, my lovely sister; listen to my account. 15

2. Here in this *Bharata* country is the famous and immeasurable *Vijayardha*, the foremost of the mountains. It touches the eastern and the western seas, thus looking very beautiful like the beam of a balance. It is the meeting place of the *Suras*, the *Kinnaras* and the *Khecaras* established entirely by *Tara*. On its southern range is a town where various travellers go about 5 in conveyances. It is known by the name of *Vidyutprabha*. It is prosperous and famous for its excellent qualities. There was the renowned king *Vidyutprabha* profusely endowed with multitudinous lores (*Vidyas*). His wife was the good Vidyullata like *Gauri* of *Mahesa* assuming beauty as desired. Of her was born a son, an abode of virtues, who became known on earth as 10 Baladeva; I am he. *Hemamala* became my wife ever devoted with affection to me. In her company I went through air to the southern side for amusement. The *Vindhya* mountain stood before me between *Andhra* and *Kalinga*.

3. Moving and jolting with jingling bells, surpassing in splendour a multitude of suns, my divine car went on through the sky till it would proceed no further. Seeing it standing still, through wrath, I drew forth my long, sharp sword. I stood looking in all directions for a moment; my pleasure was gone and I became dispirited in an instant. When I looked downwards, I saw 5 the great sage, *Suvrata*, whose fame had grown and who was praised by people. He had his eyes fixed on his nose. His arm was extra-long like (the trunk of) a mighty elephant, a visible, irresistible stick for the chastisement of the senses. He was unshakable like the *Meru*, pure, all-knowing and absorbed in formless, steadfast meditation. Seeing him, angry as I was, oh sister, 10 I look the sword in my hand and wrathfully got up to kill him where he stood meditating.

4. "He frustrated my purpose as I was going" thinking so, I disturbed him. Getting angry he then pronounced a curse on me "Oh vagabond, you will no more possess your lores. By that curse the lores were gone instantly. I then thought in my mind, oh sister, "This sage is not ordinary; in half a moment it happens as he says". Thinking so I clung to his 5 feet (saying) "Oh holy sage, why have you destroyed my lores. I am your servant, oh lord of lords; I would never leave your service even in the next birth. Pacify this fire of wrath, my lord; let it not prevail in this forest of grasslike body for ever". By these words the best of the sages became pacified like the lord of serpents by the might of incantations. Knowing the sage to be 10 pleased at heart, I bowed to his lotus-like feet and said, "Oh gracious sage, kindly tell me when the pleasant lores shall be mine again ?".

5. *Hearing that, the best sage possessing the highest knowledge*, made a divine speech in front of me—"Oh *Khecara*, of the handsome king of *Campa*, the gracious Dhadivahana, the wife *Padmavati* would be carried away by a vicious elephant. She would then be found by a gardener who would instantly take her to *Dantipura*. Being turned out by his wife, with a 5 quarrel, she would come here and a son of exceeding lustre would be born to

her, and you, an abode of virtues, shall bring him up. He shall obtain the kingship of that extensive city and at that time the lores shall be yours again". Bearing this in mind, I have been residing at this crematory. I shall keep him till he attains majority. With this idea I have caught hold of your son. 10 Do not weep; make your heart easy. As has been earned in the previous birth so you have to experience these days, oh highly virtuous lady !"

6. Considering what was said in his speech by the master of lores. *Padmavati*, gave him her son rather painfully (saying) "You shall keep him with wise consideration". "I shall do all that you say, sister. I shall bring him up graceful in all his person". Saying this to her, that *Khecara* went to his home taking the small baby with him. Giving it over to his wife he spoke 5 these words—"Take it, oh Hemamala, it is your son". She took him instantly and kept him addressing him as son. In the meanwhile, Padmavati, afflicted in her mind, went at the very moment, to the town nearby. Residing there, she took religious practices from an *Arjika* (a Jaina nun) who was devoted to peace. Seeing there the emaciated but exalted and noble sage, *Samadhigupta* by 10 name, she instantly took a vow by the side of the great sage, thus relieving herself of all vexations.

7. Through her attachment for the son, she would frequently secure balls of molasses and sugar and send them to the house of the *Khecara* who was bringing up her son, the terror of his enemies, Seeing a big scar on his hand he gave him the name 'Karakanda', which became wellknown all over the earth. He, the abode of all fine arts, was growing up day 5 by day like the moon with its digits gradually shining forth. At this juncture, there arrived the great sages *Yasobhadra* and *Virabhadra,* the ocean of scriptures. They were lean with the unbearable weight of penances and were accompanied by the excellent fourfold order. Some of them were absorbed in meditation and were very learned, while others had their bodies 10 covered over with a mass of dirt. When they arrived at the dreadful crematory, one of thəm saw a miracle there. A bamboo-clump had grown from the eyes on the face of a human skull. He then asked "Tell me the cause of this, oh great sage; how has all this happened ?"

8. Hearing those words the matter was revealed by *Yasobhadra* to the younger ascetic. "These three mighty bamboos shall become the staffs of banner, goading hook and umbrella. In whose so-ever hands these bamboos would fall, he shall obtain the entire earth." This was heard by a Brahmana *Sanmati*, who was standing close to the sage. At the close of the 5 day he counselled in his own heart "The words of the sage would never go false". So, one day he got all the three bamboos cut quickly. But when he was going home with them, *Karakanda* came up to him and wrested them from the Brahmana. The Brahmana, through fear allowed him to have them, not being able to withstand his might. But being disappointed 10 he said "Whenever you obtain the kingdom, make me your minister, oh beautiful friend". *Karakanda* acceded to all that was said by the loʌely Brahmana, and himself went home with those bamboos and reported the matter to his guardian in sweet tones.

9. For Karakanda, the affection of the *Khecara* increased very much. He was taught, along with politics, grammar, logic, hundreds of dramas, poetic compositions abounding in various sentiments, Vatsayana (erotics). mathematics, the nine sentiments, the *Mantras* and all the *Tantras*, the art of winning the hearts of people and of making good machines, 5
good use of swords, disks, spears and daggers,the science of bows, missiles and strong javelins, wrestling, acrobatic feats, jumping, turning and rolling of the body, and the cutting of various kinds of fruits, flowers and leaves. He was made to know all these pleasent arts and he also acquired dexterity in playing upon drums, tabors, lutes and flutes. Thus, every art that was 10
renowned in the world was taught by the *Khecara* to him who had a good liking. When any man is vexed by desire, tell me what wonders he may not perform.

10. Feeling very grateful at heart, the *Khecara* then says to Karakanda "Make company with a master of *Vidyas*. Go to his house and follow him up regularly." Karakanda says "what is, oh father, the use of that master of *Vidyas* ?". Then the *Khecara* says "Listen, oh innocent-minded. There were two friends living in the city of *Kanyakubja*, 5
a merchant and a Brahmana, endowed with *Vidya*. The good men went to the *Coda* country desirous of wealth. Having acquired some money, they turned back for home. On the way, they met thə father-in-law of the Brahmana. The father-in-law saw them and immediately took them home. Being honoured as they lived there, a sounding-drum went 10
round. Hearing the harsh, unmusical drum they instantly inquired of the father-in-law "For what purpose is this being beaten so harshly in public, oh maternal uncle ?"

11. He said "Here, the beautiful daughter of the king has forcibly been eloped by a *Rakshasa*. No body can rescue the poor one; companies of people and kings have been obercome by the *Rakshasa*. He lives in a deserted town beyond the river. No one can breathe there for his fear, (The king) is looking for a new-comer preeminent in *Vidya*; for this purpose 5
this (proclamation) goes round daily." Hearing those words, with smiling faces, they held up the drum as it was being sounded. Immediately, the drum-man returned and reported to the king— "Two men have arrived here, my lord, like pure praiseworthy heaps of virtue. They assert, Your Majesty, with confidence in their mind "We would do all that the king 10
would say." Then the king went and brought the two persons to his pəlace with honour, and immediately despatched them to the vicinity of that invincible *Rakshasa*.

12. They both went to the abode of the *Rakshasa* whom no body else would approach. There they saw the maiden with large breasts, a river of beauty, of golden hue. Then they saw the tawny-haired *Rakshasa*. By the repetition of the incantations he lost his malignity. Incapable of bearing the power of the incantations he said "I, *Pavana-vega*, am your 5
servant." Knowing the *Rakshasa* to be subdued, they went into the

presence of the king along with the maiden. Accompanied by the *Rakshasa* and the maiden they were seen by people coming. The people said, "Today peace has been establishgd here when such conjurers arrived." "Seeing them, the king became pleased at heart and gave them ample wealth. Addressing 10 the maid as sister, they restored her to the king and then they, with stout and long arms like elephant-trunks, went joyfully to their own town."

13. "Whoever made company with a man of *Vidyas* obtains happiness and wealth. Therefore, the company of the man of *Vidyas* should be courted so that it may be unbreakable. Do not make friends with a man devoid of learning, for, he would change his mind in time of calamity." What fault has been seen in a man devoid of *Vidya*, the *Khecara*, with pleasure, 5 narrated thus—

"Two friends, belonging to the town of *Benares*, went to another country, ignorant as they were. Having acquired wealth, while returning, they encountered a *Rakshasa* on their way. Seeing him they fled away terror-stricken like the sinful, swerved from austerities. The fools did not know anything in their mind. They were overtaken by him as they fled. Then, 10 being arrested, the two friends were released by another traveller after an open fight with him. Thus, they subsisted by the help of a stranger."

14. "Similarly, never form company with the mean, oh courageous handsome hero. Whoever fell in the company of the mean, reaped a woeful doom. Listen, I tell you the story of the mean; know this moral in your heart, oh lucky one. There was a merchant by name *Sudarsana*. He was casually told by a mean king "If you can recite a verse without joining 5 the lips, I would grant you lands without encumbrance." Then the merchant recited a verse of some beauty without allowing his lips to touch each othgr "The earth, set ablaze in the whole forest by the flames of fire of the enemies' might, has been restored to pacification by being sprinkled over with a current of water in the form of the sharp edge of the sword." The king, being pleased, 10 gave lands to the good merchant, though with reluctance. Then one day, the good merchant, the ocean of virtues, satisfiied the miserables (by his largess). But then the crooked merchant formed connections with a slave girl who soon became pregnant and entertained all sorts of longings.

15. Then, instantly, she told the merchant "You must carry out this one word of mine. Give me the flesh of this peacock of the king so that I might live without doubt." Then the foremost of the merchants went out and found the place of the peacock, in front of him. He hid the peacock and going to her house, gave her another creature. She instantly blessed the 5 merchant and ate it calling it a peacock. Then, not finding the peacock in the whole town the king ordered a proclamation with a drum. Hearing that, the slave girl narrated the whole account of the peacock to the king. The king became very angry with the merchant and handed him over to the executioners for slaying. Thus, having experienced the fruit of the association 10 with the mean, the merchant, through fear, quickly went home and instantly restored to the mean king that trifle of a peacock.

16. Now listen, oh son, to the story of the noble by which wonderful prosperity is achieved. Being aware in mind of the company of the mean, one man courted the company of a noble man. In the town of Benares, there was a delightful king, Arabinda by name. Being content at heart, he once went out ahunting. He fell into a waterless tract and became afflicted 5 with hunger and thirst. A merchant, however, gave him three fruits very represhing (as if) made of nector. The king became pleased with the merchant and showed his favour to him on reaching home. Realising his great service, he appointed him to the office of ministership. Both of them lived there with affection, lustrous like the sun and the moon, the virtuous 10 abode of numerous gems of good qualities like ocean in depth.

17. Then, one day, the great minister, abducting the son of the king and removing his ornaments, went to the delightful house of a harlot. There the merchant presented those invaluable ornaments, pleasant to the eyes of people, to her. He then told the harlot whose face was like moon at the advent of the autumn 'I have killed the son of the king.' All this he told 5 her whose love was unshakable. Hearing that, she said affectionately, 'Do not make this known to any body.' In the meanwhile, not finding his son, the king ordered a proclamation with the beating of a drum in the town— "Whoever would give information about the king's son, would be rewarded lands along with money." Then some rash fellow instantly said in the presence 10 of the king 'I have noticed your son, oh lord; he has been murdered by the new minister.'

18. Hearing those words the lord of the earth, possessing shapely arms, became pleased with the minister (and said) 'I have paid off the debt of one fruit out of the three to the noble-minded; I should be excused for the other two that remain still outstanding.' In a moment, the lord of the earth became pleased. Having known the affection of the king, the minister 5 restored the son who had a heavenly body, (saying) 'You are a great friend of mine, oh lord of men; I had simply tested your mind, my lord.' Hearing the words of the minister, the king conferred great favour upon him. Whichever person keeps company of the great, obtains fortune after the desire of his heart. I have narrated to you this story of the noble; bear it in mind, 10 my son, as a channel of virtues." Karakanda was taught by the *Khecara* all the arts by the wisdom of his heart. "Whoever person would conduct according to this moral, would certainly rule over the entire globe."

19. Hearing that speech of the *Khecara*, *Karakanda* would not leave his side. When out of home for play, *Karakanda* would not leave that crematory. While he was amusing playfully like this, one day, in *Dantipura*, there occurred the death of the king who had shattered the enemies that were roaming about, who had destroyed the forest-fire of immorality, passion 5 and fear, and whose orders people dared not transgress. Cries of woe arose all over the great town; a very great calamity befell the people who said,

"There is no prince who, being pre-eminent, might rule here." At this time an idea flashed forth in the mind of the minister and he looked at a great elephant with beautiful tusks. Having worshipped the rutting elephant, the wise one entrusted to him a brimful jar having presumed in his mind that he would empty it over one who may be destined to rule. 10

20. The best of the twice-born recited the *Samas* with proper accent and groups of gods were assembled by the excellent (minister). The drum resounded along with the conch, the tabor, the *Kahala* and the trumpet that filled the earth. The mighty elephant started from the palace like a paramour from the house of a harlot, shaking its trunk and moving its ears, with eyes rolling, and white in appearance. Holding the brimful jar with its trunk, like the moon following up the peak of a mountain, passing from house to house in the town and still maintaining all its dignity, the elephant, having wandered through the town sportively, went far outside in its wanderings. In the midst of the crematory the elephant quickly perceived the prince, an extraordinary Cupid. Bending its head, the elephant emptied the beautijul jar over his head. Observing that, the people beat their foreheads and raised loud cries of sorrow (saying) "What has this elephant done ? It has placed the jar on a low born." 5 10

21. So thinking, the feudatories and the ministers would neither walk forward nor look up. While they stood thus perplexed in mind, the *Vidyas* that had vanished by the curse of the sage, returned to the *Khecara* at the very moment. Then, thrilled with joy, the gracious *Khecara* told the people "He is not the son of a *Matanga*; he is the son of a king and has a splendid body. Do not hesitate because he would go and move in the first rank; you put your hand on the forepart of the elephant's trunk." Then he gave in to the hand of Karakanda the *Vidya* which people look for in battle. Having done all this, the *Khecara*, by the power of his *Vidyas*, went to his home by the aerial path. The proclamation of victory spread through the sky, the immortals made celebrations, and men, like gold and gods in appearance, placed Karakanda on the throne. 5 10

Here ends, in the life of the great king *Karakanda*, composed by Sage *Kanakamara*, which is an ornament to the ears of the holy and which presents the richness of the fruit of the desire-giving tree of the five auspicious rites, the second chapter, describing the acquisition of the throne by Karakanda.

SECTION II

CHAPTER III

1. Then the new king was thus addressed by the ministers "Get, oh gracious one, on the back of the elephant, come quick and bear the burden of the kingdom of Dantipur." Then Karakanda got on the mighty elephant whose temples were wet with an incessant flow of ichor. He exhibited a very charming grace, as if the lord of gods was adorning the back of *Airavata*. He proceeded alongwith the prominent persons, being fanned by the moving chowries, being entertained with music by excellent women who were mistresses of sport, elegance and pleasure, being eulogised by bards who threw in to shade the notes of a cuckoo, being attended by the citizens who had set their minds upon him on account of their attachment for noble qualities and being praised by the well-disposed who had bent their footsteps for the world to come. Being served by other people also, the charming hero went into the town along with all the persons. That repository of virtues was seen entering by the women of the city, like the son of Dasharatha, the store-house of lustre, by the heavenly women in *Ayodhya*. 5 10 15

2. There in the town, the beautiful women that would overpower the minds of sages absorbed in meditation, felt perturbed. One woman pushed on speedily feeling agitated, while another stood at the door being dumbfounded. Another ran being greedy of the affection of the new king, unmindful of her dress got loose. Some one applied collyrium profusely to her lips and lac paste to her eyes. One followed the manner of the dressless and another took her baby upside down on her hips. One young woman put the anklet on her wrist and bore the garland on her waist leaving the head. Another simple woman would not let off a cat thinking it to be her baby. Yet another ran up full of the new king in her mind, but fell on the ground overtaken by the illusion of love, while one, rich in pride but overladen with love, with hard and ample breasts, fawn-eyed, bright and lustrous like heated gold, walked straight towards Karakanda. 5 10

3. With his heart delighted by the acquisition of the new kingdom, Karakanda, entering the town riding on an elephant, arrived sportively at the palace. He saw the high, royal mansion, very attractive like a Himalayan peak. With arches of pearl-strings, it was, as if, smiling with its close, bright teeth. It was jingling with small bells and flourishing with banners as if a lovely woman was dancing with the strokes of her palms. It was inlaid with gold, gems and jewels as if a celestial car had dropped from heaven. There the pure-hearted new king entered being preceded by the elder people pure in mind. Then came out a woman with an auspicious golden jar in her hand. The auspicious rites were performed with excellent lamps and he was hailed with words of victory by hundreds of women. With his coronation performed 5 10

with golden jars, he was made to enter the palace. He, the mine of all virtues and store of good character, endowed with the feeling of modesty, lived in the town and carried on the government, attended by the feudatories and ministers. 15

4. While ruling there, he ordered to be brought immediately those bamboos which were kept on account of the prophecy, and they were turned in to the staffs of his banner, goading hook and umbrella. He then called the good Brahmana who was waiting there on account of hope, and made him his minister. Then, one day, while roaming through the town for sport, 5 Karakanda saw a man of graceful features who had arrived, in his wanderings, into a foreign country. He also saw in his hand a wonderful portrait which attracted the minds of the people. King Karakanda asked him "Give me the portrait, I shall see it with all my heart." He handed over to the king the portrait to which people had been attracted through affection. Karakanda 10 saw the grand portrait five-coloured and shining with manifold qualities. There he saw the seemly beauty painted as if the arrow of Cupid was lodged into his heart. Hot and long sighs proceeded from his lotus-like face and he felt a burning fever that made him uneasy. Karakanda saw the most excellent portrait and stood bewildered for a moment. By his horripilation he told the 15 man about the separation; by it the new king closed his eyes with a depressed heart.

5. The man, holding the portrait, knew the heart of the king "Probably, he will be the husband of the maid." Thinking so, he said, "Oh brother, give me my portrait so that I may go, oh king." But the latter, feeling excited, would not leave it. With sighs, the king then said, "My friend, tell me confidently for what purpose you are wandering about with this 5 portrait ?". Hearing that, he, obeying the words, gave to the king an account of the portrait. "There is, my lord, the *Saurastra* country which fully imitates the world of the gods. There is the town called *Girinagara* pleasant to the eyes of the *Suras*, *Khecaras* and men. There rules king *Ajavarma*, the splitter of the heads of his enemies, with his wife *Ajitangi*. From the latter, the 10 attractive king got a daughter named *Madanavali*, a basket of beauty, of sweet voice, pleasant to the eyes of good men and a store-house of lustre.

6. Madanavali, one day, went to the pleasure-garden in the company of her friends. There she saw some *Khecaras* pleasant to the eyes and mind of men, riding on swings and singing pleasing songs about *Karakanda* to the accompaniment of a low-tuned lute. Listening to the heart-winning songs, she fell on the ground, shaking her body. Perplexed, unconscious, 5 emaciated in body like the digit of the moon in the dark fortnight, and trembling like a plaintain tree struck by the wind, she was brought home, along with sorrow, by her comrades. She was then asked meekly by her friends agreeable in nature and removers of the mental agonies of men, "Why have you become distressed, friend; tell us, oh dear sister !" Through her affec- 10

tion for her companions, the young girl, in her simplicity, told them about the fire of separation "That song which the *Khecaras* sang with reference to *Karakanda* was heard by me. My heart got excited by it and then all the four quarters became full of uneasiness.

7. I have told you, friend, the circumstances; satisfy me if you can, before my life which is being consumed in the flames of separation, dies out, oh friend" ! Then with sorrow, the latter reported the matter, in brief, to the king "*Madanavali* has become lovesick by listening to the songs about Kara- kanda." Hearing that about the maid, the king got the portrait of the deer- 5 eyed one painted, and handed it over to me, oh lord of men, adorned with victory and the moon in the sky of your family. I then came to your town with the portrait, oh vanquisher of irresistible foes and endowed with the spirit of a warrior. Whoever becomes struck with attachment at its sight, he is going to become her husband, oh lord of men ! I have told it all to you, 10 oh king, agree to it now. Let the maid with eyes like a lotus-leaf and face like the moon, hold your palm of the hand in her tender hand."

8. Listening to the words of the man who was holding the picture, the king agreed to it all. The excellent king, the moon in the sky of his family, sent suitable persons from his side. On an auspicious day, well attended, they returned, bringing with them *Madanavali*. The market places were decorated, arches were flung at every house and a wristlet was fastened 5 on to him. Various kinds of musical instruments were sounded and senti- mental songs were sung. Highly emotional dances were performed and lines of horses and elephants were drawn up. The veil on the face of both the persons was opened up like the mass of affection of their hearts. They were made to go round the butterfed fire, seven times, by the priests who recited 10 the sacred formulae. The bridegroom offered his hand to the bride and performed the sacred rites by his right hand. A close 'union of the stars' took place, so that the affection may not be split even in the next birth. The union of the hearts had taken place before hand; the formalities were gone through merely for the satisfaction of the people. Thus, on an auspicious 15 day, the courtiers performed the marriage of the two whose hearts were steeped in love. The marriage of the king took place seeing which even the *Suras* and the *Khecaras* became excited and feeling discontented with their own pleasures, became envious of his fortune in their minds.

9. On that occasion, his mother *Padmavati* also came hurrying to see her son. King *Karakanda* saw her and bowed to her feelingly. Being delighted by the marriage of her son, she instantly pronounced her blessings "Live long, my son, the lord of the earth, as long as the current of the *Jumna* and the *Ganges* lasts." With obeisance and respect, she was brought 5 in with the words "This day is very auspicious to me." She was honoured with sweet words and was made to dress herself in bright clothes. Pronouncing her blessing, she soon went out like the brilliant fame of Karakanda. In the meanwhile, the gatekeeper, arousing affection in the hearts of men, came into the presence of Karakanda. Placing his lotus hands on his lotus-head, the 10

gatekeeper said in a loud voice "The good ambassador from the king of *Campa* is waiting at the porch, oh lord !"

10. Hearing those words, Karakanda instantly ordered the gate-keeper to go quickly and bring in his presence the ambassador of the king of *Campa*. Hearing the words of the king, the gate-keeper brought him in instantly. Seeing him, the king honoured the ambassador with presents and a seat, (and asked) "Oh ambassador, tell me about the wel- 5 fare of the king of *Campa*, all of whose dominions are well settled." The ambassador said "Happy is he, oh king, who has persons like you for friends. Being ever served by lords of men, he remembers you, oh lord of lords. As coolness is not separate from water, so are you to the king of *Campa*, undoubtedly. Accept, oh king Karakanda, the excellent service of 10 the lord of *Campa*. Thus getting united, may you both enjoy all the pleasures and the earth.

11. "Without service, oh friend, even a cubit of earth can not be obtained for enjoyment. If you do not accept his service, then doom will somehow make room for itself." Hearing those words, Karakanda, becoming wrathful in his heart, and stretching his red eyes towards his forehead, as if the sun and the moon stood in the sky, (said) "Go away, you ambassador, 5 go where your master is; do not stay here even for a moment. Tell the king of *Campa*, in brief that I was quickly coming to him. If he has the warrior's pride for battle, let him offer me battle immediately." Hearing this, the ambassador went where *Dhadivahana* was (and reported) "The king of *Dantipura* has said, my lord, that he would not bow to you, but would rather 10 fight with you on the battle field. This is what the courageous one has said."

12. Hearing those words, the king of *Campa* made his preparation seriously setting his mind upon it. In the meanwhile, the king of *Dantipura* caused the earth to shake along with the *Mandara* mountain. The destroyer of the lives of his foes caused dust to rise up in all the ten directions by his marching. The sky was covered up and the sun began to fluctuate by the 5 hurry. In wrath, he ordered a quick march. He came to the region of the *Ganges* and saw the river *Ganges* as he proceeded. It looked beautiful with its white and zigzag stream as if the wife of the white serpent was moving. As it flowed from a distance it looked very pretty like the glory of the great mountain *Himalaya*. By means of the people bathing on both its sides and 10 offering water to the sun with their hands holding *darbha* grass and raised up, the river was, as it were, under these guises, declaring, "I am pure and go my own way; do not get angry with me, my lord !" Having observed the river, the king named *Karakanda* went to the town of his father, the abode of numerous excellences. He who caused fear to the great gods and the 15 *Khecaras* by means of the arrows discharged from his bow, besieged the town on all the four sides with his irresistible elephants, horses and commanders of men.

13. When the siege was laid by the king. the people of the town became immediately pertubed. A certain person informed the king "Oh lord

of men who has subdued all the forces of the enemy, the very fire to the forest of the opponent's army, who has satisfied the desires of the panegyrists and good men, elephants having formidable trunks are groaning; excellent 5 horses with curved mouths are neighing; chariots are moving with a rumbling noise and fluttering with shining banners, the lustre of the swords surpasses the rays of the sun; hooked spears are quivering; lances are shining with daggers and are speadily active like wind. Thus the forces of the enemy, very mighty and irresistible like lion, have made an attack on you." Hearing that, 10 the lotus-face of the lord of men came to resemble a red lotus. He bit his lips; his eyes had frowning eyebrows, the fire of wrath increased and delight was at an end.

14. He then got up. His servants, dreadful even to the gods in battle, ran up. Horses, swift like wind, and elephants, were got ready. Excellent chariots moved on with rattling wheels. Some rushed forth bearing lances, uttering various notes of challenge, while other excellent persons regardful of the honours received from their master and loyal to the lotus-feet 5 of the king, praiseworthy and irresistible in battle, advanced bow-in-hand and delighted at heart. Some marched forth trembling with rage and others shining with drawn swords. Some were thrilled with horripilation; others put on their bodies their armours. Some, being steeped in the sentiment of the battle-field, went by the path pleasing to the heavenly damsels.* The king 10 of *Campa* marched out of the town attended by horses, elephants and excellent chariots. Tell me, by whom with formidable, mighty and stout arms, was he not followed ?

15. The trumpets were blown that filled the entire earth. All musical instruments are sounding, the armies are preparing. At the command, they draw up in ranks and fall upon the forces of the enemy. Lances are breaking; elephants are thundering. They gallop with speed; they cling to the tusks of elephants. Bodies break; skulls crack, headless trunks run about 5 and rush into the enemy's lines; entrails get dislocated and drop out along with blood; bones are twisted and necks are being broken. Cowardly people fled away, others fought the enemy at close quarters, while yet others, drawing up their swords, stood firmly engaged in fight.

16. Then, with anger, the lord of *Campa*, riding in a chariot, rushed forth like the lord of gods. He quickly went into the ranks of the enemy's forces and encountered king *Karakanda*. There was then an uproar in both the armies which covered the sky with showers of arrows. *Karakanda* who had long arms like the trunk of *Airavata*, through wrath, suddenly flung a 5 *sakti* (a kind of missile) at the king of *Campa*. The chariot with the banner-ensign was, in a moment, shattered and then the charioteer was quickly laid low by him. Angrily, the king of *Campa* discharged his arrows very quickly. When the arrows were shot by the king of *Campa* the forces of *Karakanda* took to their heels in a moment. *Karakanda* saw his army routed and extreme 10

* This also indicates that the metre of the *Kadavaka* is *Sragvini*.

anger flashed forth in his mind. So, he immediately commissioned the *Vidya* which was given to him by the *Khecara*.

17. Then with irresistible anger, he discharged the *Vidya*. In an instant, the bold *Vidya* was seen rushing forth quickly, producing hushing and humming sounds, matching the wind in speed, acting like a demoness, touching the sky with its brilliance, crushing the temples of the elephants and shattering the chariots against one another. Whoever were seen on the battle-field, fled away at her sight, Some were made to fall into a swoon while others were forced to fight. Some were split with strokes and others were deprived of their lives. Then the king of *Campa*, getting enraged, quickly grasped the sword in his hand and in half a moment, shook off the power and energy of the *Vidya* which was devouring hundreds of men.

18. *Karakanda* saw his *Vidya* gone, and getting rageful, he took the bow in his hand. He put the string on the bow seeing which people became alarmed. At this time, the gods in heaven who follow virtues, became perturbed. By the terrific and dreadful twang, the globe of the earth tottered and its very base (Kurma) crashed, the surface of the earth was ruffled and the biggest mountain was shaken, the abode of sharks (i. e. the ocean) became unsteady. the god presiding over the earth *(Dharanindra)* trembled, the god of the aerial beings whirled and the king of gods was thrilled. Hearing that twang of the bowstring, chariots broke, the mightiest elephants fled away, the arrogance of the king of *Campa* melted off and the *Khecaras*, being horror-striken, could not move.

19. Then the hearts of the gods were rent and the enemy's forces stood dumbfounded through terror. He took the shooting position, the pride of the king of *Campa* was broken, the bow was got ready in a moment and the string was bathed in the water of perspiration. *Karakanda* fixed the mighty arrow to his bow and the king of *Campa* discharged another. When that arrow also went fruitless, *Padmavati* arrived on the battle-field. She was seen by the king and was saluted with the bending of the head from a distance. "Oh, mother, mother, why have you come to this uncontrolled battle in the midst of the multitudes of warriors ?" She replied "Hold back your bow, my son; this *Dhadivahana* is your father." "Tell me, noble mother how this king, the home of virtues, is my father ?" Then she instantly told him "Listen, oh powerful lord of the earth, my son—

20. I was the wife in the home of the king of the town of *Campa*, subduing the hearts of people. When you came into my womb, a calamity befell me. I was taken away to the outskirts of the town of *Dantipura* by an uncontrollable elephant. There you were born at the dreadful crematory. I was delighted to see you." Hearing those words, king *Karakanda*, for a moment, stood bewildered. Having said this to her son, she fearlessly went with quickness to her husband. She was seen by the king of *Campa* like the river *Ganges* by the ocean. Though he recognised her to be *Padmavati*, still,

through his good nature, he saluted her. Since she bore the weight of the vow, the king praised his wife. She was questioned by the king as to how she escaped from that elephant. The latter told him immediately "Oh king I got free from the elephant on the bank of a lake. 10

21. Close to it in the crematory was born this son, the ornament of the family. He was brought up by a certain *Khecara* and I took a vow then and there through heaviness (of heart). Then rhe king of *Dantipura* died and he was made the king. Know this who is fighting against you, to be the same; you have been vexed by the monster wrath. Do not be silly, give up this tenacity; oh king, this king is your own son." Hearing those words, the king of *Campa* became pleased at heart instantly "Blessed am I who has such a son long-armed and steadfast in battle." Leaving aside his bow with the arrow dropped,t he great king went near *Karakanda*. Then *Dhadivahana*, advancing instantly, embraced his son as prince *Pradyumna*, the repository of lustre, was embraced by *Damodara* going to the battle field. 5 10

22. *Karakanda* then addressed his father "I declared a war on you, do not mind this mischief of mine, oh lord; forgive it all, my sire." On hearing those words, the king of *Campa* felt instantly thrilled at heart. He took him to the capital along with all other kings and conducted him in with celebrations. That town looked so beautiful with *Karakanda* that the city of gods fought shy of it. People, taking jewels, came affectionately to the palace for offering their felicitations. Then the royal fillet was fastened on *Karakanda* who was a millstone to recalcitrant kings. For his part, the king soon adorned his body with the beautiful ornament of penance. Having practised very difficult, passion-killing austerities that had the power to break the tie of the eight *Karmas*, he, abandoning his body and cutting off the knot of the heart, became attached to the neck of the damsel salvation. *Dhadivahana* of goldly and godly appearance and abode of virtues, went to the house of salvation, while *Karakanda* lived on in the town looking after the government and winning the hearts of proud women. 5 10 15

Here ends, in the life of the great king *Karakanda*, composed by Sage *Kanakamara*, which is an ornament to the ears of the holy and which presents the richness of the fruit of the desire-giving tree of the five auspicious rites, the third chapter, describing the arrival of Karakanda in the town of Campa.

SECTION III

CHAPTER IV

1. Having consolidated all his dominions *Karakanda* questioned *Mativara* of pure intellect "Tell me your opinion, oh *Mativara*; is there any man who, being insolent, does not bend to me even now?" Then *Mativara* said "Oh lord of lords, the whole earth serves you. But in the *Dravida* country there are kings who, being bold and haughty in their heart, do not bow to any one. The kings of the prosperous *Cola*, *Pandya* and *Cera* do not accept your service, oh lord!" Hearing this, the king of *Campa* instantly despatched an ambassador to them. He went and told the *Cola* and other kings "Pay homage to the feet of *Karakanda*." But they rebuked the ambassador saying "We do not bend to any one except the *Jina*." He returned and told *Karakanda* "In brief, they will not serve you." Hearing those words, king *Karakanda* took a vow "If I do not place my foot upon their heads then I shall have no concern with any wordly possessions such as territories, children and the pleasures of the senses." Taking this vow, *Karakanda* immediately ordered a march in wrath. The king of *Campa* marched against them. Mounting an elephant he passed out of the town accompanied by the fourfold army, thus exhibiting the grace of the lord of gods."

2. As he marched, the earth was rent by the hoofs of the horses and smoky dust rose to the sky and enveloped the directions as if a veil was cast on the faces of the quarter-elephants. The earth trempled, the mightiest mountains shook and the lords of gods in the sky fled away quivering. Bending his way to the South, he came to *Terapura*. On its southern side in the great forest, he encamped his fourfold army. In a moment, the lions and the *Pulin*das were disturbed. Five-coloured tents were pitched up as if the houses of gods had alightad on earth. The elephant-drivers took the elephants to a watery place and the excited donkeys ran after their mates. The officers of the king unfurled the banners as if the earth began to dance with her hands up. While kind *Karakanda* was halting in camp there with all his mighty forces, the guileless door-keeper came in to his presence and paid his salute from a distance.

3. Your Majesty, there is in *Terapura* a king who is known over the globe of the earth by the name of *Siva*. He has come here to visit you; shall he come in or shall he go back?" Hearing these words of him, *Karakanda* ordered the gate-keeper "Allow admission to the king of *Tera* in half a moment; you yourself go and bring him in." The king was brought in by the gate-keeper and was honoured by *Karakanda*. After doing the formalities the latter asked "You are ever happy, I hope, oh lord of men?" He replied "I am happy in as much as I have been sprinkled over by the water of your kindness." By his words the affection of *Karakanda* was roused for him. He then favoured him immensely and pleased him by presents and by

speech. *Siva* was then asked by *Karakanda* "My brother ! tell me, particularly about some striking wonder that you may have observed during your excursions."

4. Hearing those words, *Siva* the king of *Terapura* told *Karakanda* "My lord, to the west of this place, close by, there is a cave attractive to the eyes, which is supported by a thousand pillars. Above the cave, on the great hill, like a crest-gem on the crown of its head, there is a large and beautiful ant-hill whose extent no body has found out. A white elephant comes there with water and lotuses and worships it. This the elephant has been doing for a long time. This is all that I have to say, my good master !" Hearing this, king *Karakanda*, accompanied by *Siva*, went towards the hill. That hill which was beautiful like the breast of the lady earth and which was, verily, the house of sport for gods, was seen by *Karakanda* in an instant like *Kailasa* by the emperor *Bharata*.

5. Here, lions wander about having torn the frontal globes of elephants, and drop the pearls from their paws. At places, lions are indulging in roars and elephants do not shed the rut. Here, antelopes always graze and at places monkeys hoop. At places are wandering boars with terrible tusks, offering a front even to lions. Proceeding for some distance over the hill, *Karakanda* saw the cave as if *Indra* had found his celestial car. King *Karakanda* entered it (saying) "Blessed is he, lucky and deceitless, who has built this cave of a thousand pillars." He, then, saw the Jina free from attachment, and began to sing a hymn with devotion "Be Victorious, oh destroyer of the four forms of existence, remover of impurities. Be victorious, oh thunderbolt to the mighty mountain of pride. You are my shelter, oh lord, stainless, oh sun to vanquish the darkness of ignorance."

6. Having worshipped Lord Jina, both the kings quickly mounted over the hill. They looked in all directions and the kings became happy in their mind. While they stood in the forest looking around, the very instant the good elephant arrived. The lord of the elephants came into the lake to get lotuses, like a mountain going to the sea. It moved on with the sound of its fanning ears and giving out rut flowing from the temples, having beautiful, tawny eyes, admirable by its tusks, having a prominent backbone like a stringed bow, driving away the swarms of bees and filling the faces of the directions with water from its trunk, plucking lotuses by hundreds with its trunk and bearing a string of good pearls on its head*. The elephant took the lotuses, quickly filled its trunk with water and circumambulating the ant-hill he bathed it and worshipped it devoutly.

7. The devout elephant went away having worshipped the ant-hill. Then king *Karakanda* went to the lake. He saw the lake full of water producing confidence in him as he approached it, and uttering 'come', as it were, through the chattering of the birds; holding jars of water in the form

* Here is again a reference to the *Mouktikadama* metre of the Kadavaka.

of the frontal globes of water-elephants; giving satisfaction to beings afflicted 5
with thirst; flourishing through its lotus plants with uprising stalks; proclaiming its mind through the flying up fish; laughing with its teeth in the form of foamy bubbles; going with very pure and numerous qualities; joyful through blossomed lotuses; dancing through the various kinds of birds; singing through the humming of the bees and running through the water agitated by the wind, 10
as if it was a noble person, agreeable and worthy of a visit. Taking out water, both the kings washed their feet and cleansed their mouths, and then they examined the ant-hill which had been worshipped by the elephant with lotuses.

8. *Karakanda* thought in his mind "This beautiful ant-hill is certainly worshipful. Some great deity is residing here on account of which the elephant has worshipped it and gone away speedily. Surely, it is because of its worshipping this ant-hill that the elephant has become white in colour." Thinking so in his mind, king *Karakanda* devoutly stayed there observing a fast. 5
On the next day, Karakanda got the ant-hill excavated quickly. They levelled up the ground as if a mass of sin had been carried to utter destruction, When they dug a little further, the lustre of the rays of gems flashed forth. That very profuse and bright lustre pervaded the expanse of the sky and roamed in all the four directions, as if the brilliant fame of Karakanda was advancing to 10
see the lord of the immortals.

9. As they dug on, getting thrilled, a *Jina* image was discovered there. A serpent, made of gems and jewels, with a large hood, shone over it like an umbrella. The kettle-drum, the halo of light and the two *Chowries* furnished delight to the ears and eyes of all, The lion-seat was inlaid with various jewels as if the king of gods had worked it out himself. When it was brought out, it 5
shone forth like a mass of virtues (come up) rending the earth. The immortals then beat their kettle-drum in the sky and a dense shower of flowers fell from heaven. All the directions became clear, and sweet wind blew forth. All the ambitions of the king, who was a repository of all gems of virtues, became fulfilled. Through devotion, his body became horripilated, and through 10
delight the lotus of his face became full-blown. Fetching water from the lake, he bathed the *Jina* who was free of all impurities and worshipped it with many lotuses.

10. With his head bending low by the weight of excessive devotion, the virtuous king began to sing a hymn. "Be victorious, oh lord, having your feet scratched by the jewels of the crowns of gods, excellent king to protect the entire world like one town, an axe to cut down the tree of *Karmas*, the best means to cross the ocean of the four forms of existence, the sun to remove 5
the darkness of sin, the utter vanquisher of the warrior-infatuation, a secret charm to subdue the snake of attachment, a good machine to crush the sugarcane of Cupid, shining with the rays of supreme knowledge, the stopper of the flow of *Karmas*, the ear-ornament of the young goddess of victory, the

swan in the lake of the minds of the faithful, eternal, stainless, free from 10
the elements of a physical body and attached to the face of the lady salvation. Be victorious, Oh god *Jinendra*, my lord; I have meditated upon thee in my mind day and night, but to-day my eyes have become cool in a moment by your sight."

11. The *Jina* was lifted up by the good king, like the *Kailasa* by the Lord of *Lanka*. Held up on his head with both the hands, it shone forth like the *Govardhana* wielded by *Hari*. On that occasion, the gods sent a shower of flowers, and delight was caused in his mind. Some of the immortals held up the umbrella, while others annointed the body with saffron. Some waved 5
big *Chowries*, and others beat the loud kettle-drum. Some devoutly performed the *Tandava* dance, while others paid homage to the feet of the *Jina* from a distance. As the lord Jina, of fading passions, was bathed by the immortals and was brought back home from the *Mandara* (mountain), in the same way, the god, the mansion of virtues, was brought to the cave by *Karakanda*. 10
The king installed the *Jina* in the cave and having worshipped and anointed it with sandal, he observed, once again, the first image, bearing devotion in his mind.

12. Then at the moment when his sight fell on the Jina, he observed a protuberance on the lion-seat, as if a green-jewel was shining on a crystal slab, or the deer was clinging to the lord of the stars (the moon). Seeing it, the king began to think in mind that the protuberance was marring the beauty of the Jina image. He called an artisan who was clever in executing all 5
artistic work. "Oh great friend ! tell me, since you know all the best canons of fine arts," asked the king speaking sweet words, "Why do we see this protuberance on the *Jina* image ?" Hearing this, the remover of evils, who used to make images of different shapes, said, "Whatever you have asked, my lord, I shall tell you, pleasant and pain-removing as the account is. When 10
the *Jina* image was carved, oh king, a stream of water flowed forth the very moment; for this reason the protruding patch was put up. This is what I have heard and seen by tradition."

13. Then the lord of men said "My great friend ! how can I see the wonderful stream ?" Hearing that he said "Oh my gracious lord ! if it flows forth some how, it will cause many diseases in the country, oh admirable one, and those who would drink the water, will, for ever, be incapacitated; the stream is so woeful. Knowing this, why should you cause it 5
to be brought forth ?" Hearing this, the king said, "I shall check the water, my friend, and shall also rebuild the cave; but you must show me the wonder." The artisan, hearing it, said again "If I scrape off this protuberance, oh lord, how shall I get away from the consequent flood ?" At those words, the king immediately caused a mound (*Dardura*) to be raised instantly. Repairing 10
the cave carefully with various kinds of stones with sewers, the king and that artisan, only the two persons, went in front of the image.

14. That which was considered ugly by the king was struck with

his chisel by the artisan. As the hard strokes fell, sparks of fire were emitted like the marks of the fire of wrath that was about to burst forth. Then, from the mouth of that protuberance rushed forth a profuse and strong current of water. First it came out bubbling, as if the earth was vomitting through fear. 5 Coming out, it shone forth like the wife of the lord of serpents come up tearing the earth. Meeting the earth, it looked beautiful like the gurgling *Ganges*. Spreading about, it instantly filled with water the whole of the beautiful cave like a pool of nector with the liquid of different kinds of juice, or, as if, the essence of religion stood in the form of water, and as if the hill 10 had made its mind manifest "I am gentle and attractive to the heart," and as if, getting pleased, it gave to the king the store of nector in a nut-shell.

15. Seeing that, they, becoming fearful in their minds, moved off from the place. The king went over the mound and stayed there careworn and depressed. Like the lord of the mountains by a stroke of the thunderbolt, or the lord of gods with his army fled away, or an elephant torn by the nails of a lion, did the king stand there misery-stricken. He trembled, whirled, 5 shook, constantly rubbed his hands in grief, beat his brow, breathed heavily and said again and again in hoarse voice "Alas ! what have I done this, wicked and mischievous as I am ? Alas ! I shall acquire sin as fruit of this. Alas ! due to what action of mine have I been so misled ?" The king stood there covering his face with his hand (and saying) "Who was worshipped by 10 hosts of immortals, of adorable might and the home of righteousness, that same god, the most prominent in the world, alas, alas, where have I brought and abandoned through my sin ?"

16. As the king, rent by sorrow, stood there in distress, some blessed Sura arrived from the sky. Abode of virtues, destroyer of sorrows, removing depression and creating interest, endowed with a crown, with heart set on *Jina*, greatly lustrous, flying through the sky, beautiful in form, following up the best of the mountains, a *Bhujanga* prince alighted on earth and bowing 5 with a nod and speaking pure, perfect in all his limbs, came up there. He was seen by the king as delighted in mind, delighter of the king, delighter of men. He said "Oh lord of men ! give up your grief; do not leave off the undertaking through sorrow. Whatever I had thought in my mind, you have done, and much more shall you do. 10

17. Oh lord of men ! I have been living here for long, and am able to check this current of water. If I get enraged, I would knock down the cluster of stars, break the hood of the serpent at the bottom of the earth, crush the eminent mountains and stop the gods advancing in battle. Even a god cannot move about through fear of me, what to say of any man who may be perverse ? 5 I have been staying here as the guard of the image. A great adverse period of time is going to come. Being expected for a very long time, oh sincere hearted, you have come now, my friend. I have guarded it for such a long time, good sir; sixty thousand years have come and gone. You have done well, oh gracious one, that you have installed the great god in the water-cave. 10

Bringing the *Jina* inlaid with jewels, you have placed him in this splendid, golden and immortal cave. You have accomplished this. I am now free to trip it over the globe of the earth merrily.

Here ends, in the life of the great king *Karakanda*, composed by Sage *Kanakamara*. which is an ornament to the ears of the holy, and which presents the richness of the fruit of the desire-giving tree of the five auspicious rites, the fourth chapter describing the discovery of the Jina image by *Karakanda*.

SECTION IV.

CHAPTER V

1. *Karakanda* asked that immortal "Tell me, who caused this cave to be constructed and who made this exquisitely jewelled image which has pleased my mind ?" Hearing that, *Vayuvega*, the Naga prince, told instantly what the king had asked "In this *Jambudvipa* and *Bharat* country, there is the beautiful, measureless *Vijayardha* where *Khecaras* rejoice and elephants 5 trumpet. It has two high peaks that stretch up to the ocean. Their circumference is twice twentyfive *Yojanas*. Their height is twentyfive *Yojanas*. At a height of ten *Yojanas*, there is the excellent Southern Range which is inhabited by the *Vidyadharas*, and seeing which even the *Suras* feel covetous.

2. There is a town abounding in *Khecaras*, by name *Rathancpura* the circular. There were two *Khecara* brothers by name *Nila* and *Mahanila*. As they lived there ruling, they both were pressed by the enemies. Their *Vidyas* were done away with, and they were cast out of the town. This was during the period of *Tirthamkara Parsva* when the din of the *Suras*, *Khecaras* and 5 *Kinnaras* rebounded. Being sorely troubled at heart, the brothers, traversing the earth, came to *Teranagara*. Staying there, they established a good kingdom and acquired all the territory. One day, they heard from a sage, the sin-destroying story of *Parsva Jinendra*. Hearing it charming and refreshing (lit. misery-removing) they were thrilled with delight and became 10 steadfast in religion, with compassion. With concentrated mind they devoutly thought of the *Jina*.

3. Out of devotion, this cave was constructed by the *Khecara* brothers. They built it with a thousand pillars and made the inside so beautiful. For the *Jina* images made of gems, they built this shrine with gems and jewels. Constantly bathing and worshipping, they lived for a long time, following the Jina. There developed, day by day, the pleasing and multifarious power of 5 the *Khecaras*. This mountain was surrounded by *Khecaras*, like the great mountain *Meru* by the excellent *Suras*. Observing that beauty, the lords of the *Sura* groups stood thoroughly wonder-struck. At this time, oh ye sincere minded, there arrived the great friends of Nila. In the Northern Range of that *Vijayardha* there is the lovely town *Gaganatala* dear to the *Suras*, 10

Khecaras, and *Kinnaras*, as if the city of gods had come and stood there.

4. There dwelt two *Khecara* brothers who had a deep affection for each other. Pleasant like the moon, and immensely powerful like the sun, they were called *Amitavega* and *Suvega*. Pure in conduct and unconquerable in battle, they had their bodies adorned by the jewel of Right Faith. On one holy day, the mighty ones started for worship. Advancing south wards 5 towards *Lanka*, in the *Malaya* country they saw the great and auspicious *Pudi* mountain where the lord of gods would come for amusement. They descended upon it as if the lords of gods had alighted from heaven. Seeing there a temple of the twenty-four Jinas, white with lime and touching the sky, they went there to see those who had far driven away Cupid. 10

5. With pure thoughts, the king of Lanka, born in the family of *Ravana*, renowned by the name of *Suraprbaha*, husband of *Srisena*. while on a pleasure trip, one day, arrived at the *Pudi* mountain. As he wandered in the Malaya country, he saw that most beautiful site, like *Bharata* on the *Kailasa*. He got the twenty-four images made, out of devotion, and also 5 the temple of the twenty-four *Jinas* the givers of happiness, bright being made of gems and jewels, and destroying sin in the minds of their devotees. He who was ever adored by the *Suras*, was worshipped and meditated upon with reverence. They gave pleasure to the eyes of those who looked upon them, removed the dirt of sin of those who meditated upon them, stopped 10 in an instant the worldly cycle of existence and gave all that one might desire.

6. They who had removed the great darkness of wrong belief, saw the images of the *Jinas*. With body, speech and pure mind, they eulogized the excellent god, the unblemished *Jinendra*. "There is not, in the three worlds, as much speech as would suffice to praise adequately the omniscient. Oh Ye, who has fathomed the mystery of the three worlds, bow to you, lord of 5 victory, unfathomable, immeasurable. Bow, oh god, the great master of Cupid; bow, oh lord, formless, stainless.Bow, oh passion-less destroyer of the enemy of infatuation; bow, oh lord of men who has done away with the desire for pleasures. Bow, oh partless, absorbed in final beatitude; bow oh conqueror of Cupid, wrapt in meditation. Bow, oh remover of *Karmas* by pure meditation in 10 a moment; I bow, with my mind, to your feet. Victory, oh *Jina*, the sun of omniscience destroying utterly the darkness of wrong faith." Thus having adored, worshipped and eulogized, the *Khecaras* looked at each other.

7. Seeing the images so beautiful they felt a great liking in their mind. They then said "In *Vijayardha* which has become the sporting ground of the *Suras*, we shall devoutly make images after these patterns." Thinking so, with great devotion, they seized with both hands, this image of *Parsva Jina*, made up of many jewels. Lifting it up, they started off. In the sky it shone 5 forth as if the digit of the moon was moving along, as if the lightning was flashing forth. They went northwards as if escaping the god of death. With their devotion aroused in the *Jina*, the two brothers, of muscular bodies, arrived here. Leaving the jewel-made image on the excellent mountain, they, the

storehouses of virtues, who had removed the shadow of worldly fear, went in 10
front of the cave.

8. There, having finished their devout adoration, both of them came back to their own image. Having reached there, when they attempted to take it up, the image would not move from its place, as if it was arrested by some *Khecara*, as if it had stopped there finding the place so beautiful. Finding it immovable, they felt afflicted with sorrow in their mind at the moment. "Out 5
of enthusiasm for the next world, alas, what have we done this, sinful as we are ? The image of the *Jina* that we removed from its place, is going to be the symptom of our falling into hell. Out of the two places, not one could be secured." Pure knowledge developed in them. Having made a box, they fear-stricken, put it into it having dug the ground. Leaving it there, they, reduced 10
in their bodies, went hastily to the temple of a thousand summits, having adored which, they saw sage *Yasodhara* who had conquered his mind and was absorbed in meditation.

9. Having adored him, they asked the ascetic. Oh excellent sage ! listen to us, pure-minded as you are. While wandering about, we obtained a *Jina* image which possessed multifold powers. While proceeding with it to our own town, we placed it on this mountain-peak. But when, after worshipping in the cave, we went back to fetch it, it would not move from the place. What 5
shall we do ? Shall we live or shall we die, oh lord ?" Hearing that, the great sage told them "This shall be a great sacred place. Your brother, in his next birth, shall obtain the Right Faith of manifold virtues." Hearing this, both the brothers, in half a moment, devoutly betook themselves to penances. *Amitavega*, haviug multitudinous *Vidyas*, abandoning his handsome body, went 10
to heaven, having practised penances, and there became a pleasing god.

10. In the mean while, the younger brother, honoured amongst people, took, for a period of twelve years, in the presence of his preceptor and in a great hurry, the famous vow of eating on alternate days. Then one day, he felt very uneasy under the pressure of the twenty-two penitential hardships. Being afflicted by hunger and thirst, what he did was that he thought of going to 5
another village. Going there, he ate and drank water, but declared to the people that he had kept a fast. In another village, the next day, he declared a fast openly to the people. In this manner, he lived on for many days deceiving people by sweet words. Fraudulently did *Suvega* practise penance and having died, he became an elephant in the forest. Whoever observes religion with 10
hypocrisy controlling his body after the manner of a crane, he, the hoarse yelling vagabond, foolish-minded, obtains the greatest miseries.

11. Then. *Amitavega* who had become an immortal, dwelling in heaven, thought in his mind "Where could my younger brother be born ?". Then by clairvoyance it became known to him. Out of kindness for him, he started swiftly, and in a moment came to the forest in which the elephant dwelt. Assuming the garb of an ascetie he approached the elephant, and in 5
very sweet words he spoke to the elephant "Oh listen *Suvega*; you have had troubles of many kinds. You practised penance with hypocrisy which has false

belief for its root. By that powerful sin you have become an elephant". Hearing those words of his, the elephant came to the feet of the sage, recollecting his previous life, turning his eyes up to his head, rolling with distress and trumpetting loudly. The god then knew the heart of the elephant and spoke soft words "Do not abandon the gem of Right Faith by means of which you would obtain pure knowledge."

12. Then were given to him the *Anuvratas* and the *Gunavratas* as well as the *Sikshavratas* that give happiness to people, the highly meritorious abstention from taking food in the night, and the avoidance of the five *Udumbaras* for all time. The fruit of worship was also preached to the excellent elephant which was trembling on account of the dangers experienced in past lives. Then he was informed about the beautiful image which they had long ago placed in the anthill. Whatever was preached by the excellent *Sura*, all that was accepted by the good elephant. Having. so preached, the *Sura* went home, and the elephant is living here in the forest." On another day, having taken water and lotuses, as it returned to the anthill it did not see there the passionless *Jina*. Having dropped the water and the lotuses, the good elephant betook himself to the Right Faith with determination; and with complete renunciation having concentrated himself upon Lord *Jina* with pure thoughts, that *Khecara*, the elephant, became a *Sura* in the third heaven.

13. "Oh king, whatever you inquired of me, I have told it all to you. You have done well after the wish of my heart that you renewed the cave, oh lord of men ! So now, you do this; make another cave above this cave." Having said so carefully to the king, the good *Sura* sportively went home. Above the cave was built by *Karakanda* another cave, an excellent abode for *Jinavara*. Above it, again, he caused to be built a small cave exceedingly beautiful and removing lust. How beautiful the three caves looked ? They matched the mansions of the lord of *Suras*. The king, having made those *Jina* temples and having himself worshiped the beautiful ones, being exceedingly delighted at heart, went to his camp. As king *Karakanda*, the destroyer of his enemies, stood in his camp, there came an elephant with strong and stout trunk and profusely rutting, in order to drink water in that lake.

14. As it stood on the bank of the lake, the smell of the army reached it. Raising up its trunk and shaking its head, the elephant, turning round its face, saw the army. Seeing it, the great elephant became hostile and ran up greedy of the smell of ichor, taking its trunk in its mouth, trumpetting and crushing the earth by the weight of its steps. Seeing it so determined, the people made up their mind to arrest it. They got up and instantly fell upon the elephant. But they all fled away for fear of the strokes of the elephant. Then the king ran, sword in hand, and the fighting elephant was checked. As he was going to strike it with his arms, the elephant became invisible. When the elephant disappeared, he became startled in his eyes for a moment. The elephant disappeared under his very eyes. The king

stood astonished in his mind.

15. When the king returned to his camp, he did not find *Madanavali*. He looked into the four directions absent-minded, and pitiably wandered about the land. Then the king became apprehensive with his pride gone. "Where has my wife gone, gracious in all her limbs ? How could *Madanavali* who was the delight of my heart, become so perverse now ?" Then good 5 servants were sent out by the king "Look for your mistress in the directions." Having looked in the directions, they came back crying, with their hands stretched upwards. Then the king, seeing them crying, instantly shed tears from his eyes. "Oh virtuous lady ! speak to me about the tie of love pleasing to the ear. (or, according to the alternative reading, oh tree ! you 10 are the friend of birds; tell me about the beautiful lady, the object of my love). Oh innocent lady, by whom have you been taken away ? Are you hiding yourself somewhere ? Oh elephant, were you the messenger of Death ? Why did you become angrily perverse to me ?" Then a certain *Vidyadhara* who had crossed the ocean of learning and was fair-looking, bearing in his 15 heart old attachment, presented himself before him.

16. The good *Khecara* called out "Oh king ! why are you weeping bitterly ? Why do you cause your body to decay for the sake of a woman ? Woman is the house of a volume of woes to people. Woman brings about residence in hell; why should one live with a woman ? She causes fever in a throbbing mind; who would foelow her the cause of misery ? The creeper 5 of worldly existence grows by her company. A woman brings troubles to the person of man. Powerful persons are rendered powerless by her; wretched are they who serve a woman." Hearing such words and heaving a sigh, he looked about, uttering '*Madanavali !*'. Then he saw the *Khecara* and became downcast through shame in a moment. He was addressed over and over 10 again by the *Khecara* "Why are you here, bereft of your attendants ?" With tender expressions was the king, who was distracted in mind, consoled.

17. Hearing that speech, the heroic *Karakanda*, courageous in battle, became comforted in mind. He asked the *Khecara* "Where did you acquire such charming, sweet speech, inspiring religion ? Did you serve some great sage free from all faults, who had left joy and sorrow far behind ? My eyes have become attached to your sight; seeing you, they do not go elsewhere. 5 Are you some relative of mine of another birth, delightful like the moon in the sky of family ? I ask you hesitatingly; are you some god ? Tell me definitely ?" Hearing those words, the courageous and deeply wise *Khecara* said to the king "Formerly, being born in the species of a dove, I became an object of amusement to your eyes. Once, as I stood in the cage dallying 10 with my mate, a serpent, hissing sharply, advanced towards me.

18. Seeing me, it caught hold of my leg. Then you, gentle by nature, ran up in order to save me, kindly, from the serpent. I was delivered by you from it. From its terror, I became senseless; you kindly gave me the *Navakara*. As a result of that, I was born a son to a *Vidyadhara*, an abode of multitudinous virtues. Seeing you fighting against the elephant 5

at great risk, I recognised you. Bearing (in mind) your great obligation, as I was playing with *Yidyadhara* princes, I came here hastily, thinking that I shall certainly be of some help to you. That serpent, on account of the *Navakara* given by a sage, had soon become a *Khecara*. On that occasion, that *Khecara* felt humiliated; so he has now carried away your beautiful wife 10 *Madanavali* of large breasts, under the disguise of an elephant.

19. Seeing you weeping, with your face turned up, beating the chest with the hand and crying, 'Oh darling, oh darling', I have come here. Do not weep; abandon the grief of your mind. When you will return, having defeated the great and the mighty, and having conquered the earth, then this *Khecara*, realising that you were illustrious in virtues, would bow to you as his master 5 and you will then regain your wife whose face is like the full moon." Listening to his sweet speech, *Karakanda*, of long arms, said in return, "Oh graceful and virtuous *Khecara*, can women that have been abducted, ever return ?" Then the *Khecara* said in sweet tones "What of the rest, I tell you how the beloved of *Naravahanadatta*, pure and endowed with golden and 10 imperishable excellences, was soon reunited to him accompanied by numerous *Vidyas*.

Here ends, in the life of the great king *Karakanda*, composed by Sage *Kanakamara*, which is an ornament to the ears of the holy and which presents the richness of the fruit of the desire-giving tree of the five auspicious rites, the fifth chapter, called listening about *Nila* and *Mahanila*

SECTION V.

CHAPTER VI

1. Being asked by *Karakanda*, he narrated the story of *Naravahanadatta* "You listen, with one mind, to what gave delight even to the assembly of the execellent *Suras*. Here, in *Bharata*, in the country of the *Vatsas*, there is the praiseworthy town of *Kausambi*. There was the king *Vatsaraja* who, day after day, had a pure attachment for religion. His wife was *Suvina* 5 who remembered the feet of the excellent *Jina* in her heart. He got a son *Naravahana* great in excellent virtues and pre-eminent in fame. He was the residence of all arts, and possessed a great splendour. By his beauty he ridiculed Cupid. Seeing him intelligent, his father, the king, soon coronated him, and himself, taking to ascetic-life, spread his fame in the three worlds. 10 Having performed hard austerities which banished Cupid, he reached the portals of the damsel Salvation. Feeling depressed by the bereavement of his father, *Naravahanadatta* would not feel amused any where. Having his lotus face wet with the water of tears, he wandered about distressed with his face turned up. 15

2. The unbounded fortune of royalty, bestowed upon *Naravahanadatta,* gave him no pleasure. Bearing in his heart the grief of his father, the handsome one did not like any bodily enjoyments. Being struck with sorrow for his father in mind, the king, one day, casually came to the *Kalinjara* mountain pleasant to the hearts of *Suras*, *Khecaras*, and good men. Agreeable to the 5 eyes of *Vidyadharas* and *Kinnaras*, he entered a pleasant flower-garden. There he saw a great ascetic who created love for piety in the minds of people, inspired mutual confidence in born enemies, attracted even the minds of persons holding false beliefs, meditated upon the words of the supreme self, and had banished far away all defilement and anger. He instantly set his mind upon 10 the lotus-feet of the sage and then adored, with great devotion, tbe teacher who had made all people bow to his feet.

3. " Oh foremost of the excellent sages, who has caused the lords of serpents, gods and men to fall at his feet, have compassion on me, and tell me the pure essence of religion by which I might cross over the cycle of existence." Then the worshipful one who was free from attachment and had firmly set his affection on the way to salvation, said "What is the good of talking much ? 5 Bear in your heart the excellent *Jina.* Have always a charitable disposition, oh king, and make your mind absolutely pure. Having the five small vows on the top of his head, and bearing the heavenly *Siksha vratas* and *Guna vratas*, whoever gives the fourfold alms namely medicine, food, safety and knowledge, obtains, oh king, ample fortune abounding in all the fruits after the wish of 10 his heart. Whoever, oh king, avoids eating by night and takes food observing silence, lives sportively in the heavenly mansions waited upon by hosts of nymphs.

4. Laughing, by your comeliness, at the lords of men and gods, you should not feel sorrowful in your mind, oh king. By sorrow a great *Karm*a is contracted and one does not obtain human birth. By enmity come a heart-attracting, affectionate wife dear to the eyes, pleasant children and dear brothers. All these come by one's enemical desires. Not being able to trouble 5 in one birth, they entertain a desire, with a feeling of humiliation, "May I be born in the next birth so that I might cause pain to him". Listen, oh king, with steady mind, the story that was of old revealed by numerons sages. There is the famous and delightful-to-the-eyes city of *Mathura* where there are mansions decorated with pictures executed in precious stones. There were two 10 Brahmana brothers like elephants, named *Madhava* and *Madhusudana.* They bore great enmity in their minds and would not tolerate the manifold virtues of each other. As days passed by, the riches of *Madhava* soon turned their face away from him. He could not even secure clothes for his wife and all his strength and power had also melted away. 15

5. One day, his wife, in her misery, thought out some thing (and said) "Oh my dearest, listen to my words. Let us instantly go to *Madhusudana.* He will certainly provide food for us both, hungry and poverty-stricken as we are." Hearing her words, *Madhava* made a reply in faltering tones "Setting aside the grandeur of self-respect, how shall I enter the house of another who 5 is so disagreeable to me ? Better to eat morsels of poison and die, than to be a

servant in the house of a wicked person". Then *Madhava* was again addressed by his wife "What is the good of this voluminous grandeur of self respect ?" Hearing her words, *Madhava* went to the house of the good *Madhusudana*. Seeing *Madhava* come to his house with his wife, misery-stricken and distressed 10 in mind, *Madhusudana*, with folded hands and one mind, stood before him.

6. Modestly bending his head, *Madhusudana* spoke to them "Oh my parents ! what anxiety have you ? I eat the food given by you. How is not a gentleman, kind and very honourable, adorable in this world ?" But they, bearing jealousy in their heart, could not put up with his fortune. One day, *Madhava*, out of wrath, made a sudden exit for *Prayaga*. There he saw an 5 emaciated ascetic and stood at his feet for a moment. With his permission, *Madhava*, cruel at heart, took to austerities. He wasted his body by abstinence and soon died with the desire "I should be born a dear son to *Madhusudana*, the *Brahmana* of the town of Mathura, and having given him much pleasure, I should afterwards die". 10

7. That *Madhava* was, in course of time, born in the beautiful house of *Madhusudana*. Favourite of all people and repository of all arts, he, while yet young, became pre-eminent amongst the people. Then, one day, the young son of the Brahmana was suddenly carried away by the messengers of Death. *Madhusudana*, following the body of his son, fell on the earth beating his head. 5 He would not leave his neck, but would go to death, He would not stop even for a moment in his lamentations. He would not be consoled by any consolations; poor soul, he had so set his feelings upon his son. The Brahmana, out of sorrow for his son, went to *Prayaga* for dieing with his mind set on him. When about to die, being scorched by the flames of grief, he was held back by a 10 certain *Khecara*. The latter gave him an account of *Madhava* who had died by entertaining a desire as a reward for his austerities. He was born your dear son in the town of *Mathura*, oh *Madhusudana* !"

8. Hearing the words of the *Vidyadhara*, he returned home abandoning sorrow. By sorrow have been bothered lords of men and gods. Therefore, do not give place to sorrow, oh king ". Then, getting an opportunity, a *Khecara* who was there, inquired of the king, "Oh lord of men of super-human personality ! how have the vast dominions been acquired by you ?" Then 5 the king told the *Khecara* whose head was adorned with a diadem of gems and jewels, "In youth I was strong-bodied. What proud woman would not have love for me ? Enemies trembled at my name and resorted to jungles being terror-struck in mind. As I lived with my people, my wife was carried away by a *Khecara*. In her separation, I felt despondent and distressed and could 10 not be amused in any way. (I thought) shall I leave the country, or, going some where, shall I die ?

9. Thus brooding in all sorts, I left my home and came to the bank of the Ganges liked by hosts of *Suras*. Near *Paithan* I saw the excellent *Jina*, the abode of happiness and destroyer of sorrow. Having bowed to the *Jina* I rested there where the shaft of the flower-weaponed would not enter. As I closed my eyes with heaviness of sleep, I heard a sound "Why do you sleep, 5

oh prince, with indifferent mind ? You are soon to meet your wife." Then love flashed forth on my face and I went out of the *Jina* temple. I looked in the four directions for the love of my heart but the beautiful one could not be seen. As I went out of the garden, I saw a certain beautiful woman with her lotus-face resting on her lovely hand and scratching the ground with her finger. 10
With tender expressions I inquired of her all about it.

10. "Why are you in this forest, oh beautiful lady ? What are you thinking about in your mind with steadfast eyes ?" Oh *Khagendra*, the hot sun for the lotus of knowledge, she then revealed to me (as follows) "In the southern part of the *Vidyadhara* mountain there is a town *Jayanti* at the top of the *Sindhu*. There lives *Dhumaketu* the supreme lord of 5
the Vidyas, He has in his home *Sunanda* for his wife. Of the two who love each other, 1 was born a daughter. One day, I came down here for sport in company of my friends. I played with my beantiful companions who indulged in all sorts of games. After the play, as we stood at ease, there arrived the *Khecara Madanamara*. Seeing him I was shaken like a plaintain 10
tree struck by the wind. My companion, knowing my heart, approached the friend of the youth.

11. He was asked by the highly virtuous *Nirmalamati* "Tell me who he is." He said "Here, in the beautiful *Vijayardha*, in the pleasant *Utpala-khedi*, lives the Khecara *Padma-deva*. He is his son *Madanavega*. In the Northern Vijayardha lives *Pavana-vega* the house of all virtues and son of *Manovega*. He was going there out of affection for him when he has been seen 5
by you." Then inquiring about my high family and taking away my loving heart, both the *Khecaras*, having told her so, went away. But *Madanamara* came back again. Through shyness, I found no words in my mouth. I felt abashed even to talk to him. Then instantly my companion said to him "Oh handsome one; live with your beloved." Then taking the beautiful pearl- 10
garland off his neck with his own hand, as he put it on my neck, a companion came to call me.

12. Then I was taken home by *Ketumati*. Distracted in mind. I remained sorrowfully at home. When once more I came back by the same way, I did not see *Madanamara*. His (pang of) separation was narrated to me by a *Vidyadhari* the dispeller of woes. "Talking, over and over again, incoherent words, wandering distressed with his face turned up, afflicted with the fire 5
of separation and remembering you, he soon clung himself to an ascetic-girl. Instantly feeling disconcerted, she turned *Madanamara* into a parrot. Her companion, being stirred by piety and feeling compassionate, told her 'Be pleased, oh goddess ! Do it so that he may sport with his wife'. Then the highly virtuous lady said "On the day on which *Naravahanadatta* marries 10
the beautiful and renowned person named *Rati-vibhrama*,

13. On that day, oh friend, he would become a tender-bodied, handsome man again." Oh handsome one, this is what she told me. Knowing this I took my residence in the forest." Hearing this, as I stood there, *Lilavati* arrived there. She held in her hand a portrait which infatuated the minds of

on-lookers. I readily inquired of her "For what purpose have you come here ?" Then she told me "Listen, oh great hero, dear to all people, good looking and firm like *Meru !* On the southern side of *Sindhu* in *Vijayardha* where blows the wind excellently fragrant on account of the *Suras* and the *Khecaras*, there is the town of *Kanakapura* a mine of jewels and delightful to the eyes. There rules king *Hamsaratha* served by hosts of *Vidyadharas*. He is accompanied by *Vimaladevi* as a charming swan is by a female swan. 5 10

14. He has brought, by abduction, some woman who has no liking for him. She lives in his palace observing religion, a basket of love and delightful to the eyes. She would not talk to any body. With concentrated mind, she drew the picture of her husband. While she was feeling happy in her mind looking at it, the good *Khecari Vegavati* arrived there. *Madanamanjusa* was questioned by her "Who has been drawn by you in this picture ? Tell me, oh mother ! Is he a *Khecara*, a *Kinnara*, a god or a man, or is he Cupid with his shaft fixed to the bowstring ?" To *Vegavati* she told the truth "He is *Naravahana* my beloved husband. " When she looked at it taking the portrait, she fell to the ground shaking her body. Knowing her to be *Vegavati*, *Kanakavati* cracked a joke with her "She did not use to like any suitor, but has now fallen to the earth at the mere sight of a figure." 5 10

15. Then *Kanakamati* took the portrait in her lap in order to see the praise-worthy picture. As she thought about it in her mind, she also, in a moment, fell upon the ground. Some how with difficulty, she came to her senses and the shapely-armed one was asked by her friends "Why did you go into a swoon, oh friend ? Tell us the pangs of your heart. " She said "Oh sister, here is this picture on the board. It has baffled my mind. Is he a god or is he Cupid, oh mother ? Just think of his name ?" By the two distracted in their minds in his separation, I have been sent. What a wandering sage had once declared they considered in their minds "Whoever lucky one would marry *Rativibhrama*, would become our husband." She was then immediately caused to be painted on a canvas in beautiful colours. I have come here taking that portait." When, taking that portrait in my hand, I observed the beautiful form, my heart was stunned, oh *Khecare*, and could not think of any thing. 5 10

16. Then I was taken there in the midst of those friends by the pure-minded *Lilavati*. Reaching there, I married *Rativibhrama* with great cedlebrations as king. Along with *Vegavati* I also married *Kanakamati* as also *Lilavati*. Another five hundred (maidens) also I married there where the very Cupid was residing. My beautiful wife who had been carried away by that *Khecara*, also joined me. I subdued hundreds of *Khecaras*, and struck terror in the hearts of my enemies. The earth, right up to the ocean, where-in stood thickly populated big villages, came under my control. Then all the country-people were called together, oh *Deva* served by men; and the coronation was performed. This was the account given to the *Khecara* as you asked it all of 5 10

me. People were establishd with lasting gifts of gold and I worshipped the pair of feet of the *Jina*.

Here ends, in the life of the great king *Karakanda* composed by Sage *Kanakamara* which is an ornament to the ears of the holy and which presents the richness of the fruit of the desire-giving tree of the five auspicious rites, the sixth chapter, called listening to the story of *Naravahanadatta*.

SECTION VI

CHAPTER VII

1. My good friend *Karakanda*, I tell you, Make a start immediately. A good and auspicious omen (forebodes) that you will obtain the happiness of wife along with many acquisitions. "Tell me, oh courageous *Khecara* warrior, as a result of what omen shall I obtain a wife ?" The *Khecara* told him "See the sage in front of you; the divine-eyed one is sure to give you the 5 fruit." "Tell me who has obtained the fruit of the omen." Then the *Khecara* told him who had obtained the fruit. A certain Brahmana, hungry and decaying in body, started from his country, leaving his home. He saw an ascetic in the forest and great satisfaction entered his mind. Holding in mind the auspicious omen, he began to dance, stretching up his arms. A certain prince 10 sporting in hunting soon reached there. He saw the Brahmana joyfully dancing alone in the forest. "Oh respectable Brahmana, I ask you. why are you dancing freely in the forest ? Have you obtained some thing beautiful, or have gone mad, my brother ?"

2. The Brahmana then told him "Oh simple-hearted, I am not seized by the wind, my friend. By the passing of one devoid of ornaments and clothes and enjoying the great relish of bliss, I have obtained the auspicious omen here where the mighty lion dwells. As a result of this, I shall gain royal fortune and enjoy the green-bowelled earth." Then the prince quickly said to 5 the Brahmana. "Oh master, I am your pupil. Give to me this omen, my respected sir, and take my ornaments and this divine-bodied horse." Taking the horse along with the ornaments, the Brahmana went home, giving to him the omen. The prince, tender-bodied like fresh lotus-fibre, went forth full of joy. Then the Jina-tutelary-goddess, abandoning the body that she had put on for- 10 merly by means of her *Vidya*, took up another by which the mind of the onlookers may be attracted.

3. The fawn-eyed one came before him like the loving wife of *Raghava*. "I am your attendant, oh prince, being the destroyer of your enemies." Along with her he went into the thicket inaccessible to men, *Khecaras*, *Kinnaras* and *Suras*. There they saw an old well; but no terror entered their heart. In it they saw a serpent fighting with a frog. Seeing them 5 fighting, he, with unkind hand, counting his body as straw, instantly cut off a piece of flesh with his sword and threw it between them. Knowing his

courage, both of them came before him becoming men. One of them was in the form of a cowherd and another boy. Adorned by the three persons, that prince looked as if some god had come down from heaven. 10

4. They were seen by some king who honoured them with felicitous words. Seeing the woman a box of beauty, he felt as if a destructive pestilence had set into his heart. Becoming desirous of that woman, he thought of murdering him (the prince). The king took the prince for hunting. There was a dry well in a secluded place. Having pushed the prince down into it, 5 the king came face to face with the woman. Being bitten by a serpent he died and the prince was then taken out by the frog. The royal fillet was then tied to the prince and a host of horses was presented to him by all. He enjoyed the royal fortune sportively. He then asked that *Cakora*-eyed lady "Oh beautiful one ! tell me who you are." Being honoured with overflowing affection, she 10 told him the old story and went to her home the very moment.

5. Oh handsome one, ocean of virtues, you have listened to this story of an omen told by me." Saying so, the Khecara went to his own home called *Satyalaksmipura*. Then one day, *Karakanda* ordered a quick march. King Karakanda, the foremost amongst men, halting on the way (or along with the princes), reached the *Simhala* island where young ruddy geese attracted 5 the mind, where *Suras*, *Khecaras* and *Kinnaras* indulged in sports, where women walked with the grace of an elephant and rendered ineffective the beauty of *Rati* by their own beauty, and where, seeing the luxury of the people. the gods lost the memory of the heavenly world. He encamped outside the city. The apprehension of an enemy arose in that locality. Leaving his camp 10 the immeasurable *Karakanda*, with his companions, went out for sport. There the king saw an extensive bunyan tree, big, full of hundreds of birds like the *Kalpa* tree protected by gods and laden with thick leaves. Seeing the large and very soft leaves of that Bunyan tree, *Karakanda*, taking up small balls and shooting them with his bow, pierced all the leaves. 15

6. As the Bunyan leaves were pierced with an arrow, the matter was reported by a messenger to the king "Who had been foretold by the excellent wandering sage, that suitor has come, oh king, with a retinue. I know not whether he is *Varuna* or the moon, a king or the lord of gods. Sporting in the forest in the company of princes, he, in a moment, pierced all the Bunyan 5 leaves". Then the king sent prominent persons who, being elderly, struggled their way to his military camp. The *Campa* king was told by them "Oh friend, frank-minded, the king is calling you. He has his affection fixed on you. You come to his house." Hearing this, king Karakanda said "If your king comes before me, then I go to your king's palace, beautiful being finished with jewels". 10 Hearing that, they returned home immediately and reported the matter to their king. "He would come to your home, Oh king, if you go forth to receive him". Hearing it the king went forth and presented himself before the king of *Campa*.

7. The king saw him of great lustre, as if he was Cupid incarnate, With attachment, the ocean of virtues took the king into the town with

honour. While entering, he was seen by people like god *Visnu* accompanied by cowherds. Causing affection in the minds of young women, king *Karakanda* reached the palace. He was shown to his daughter named *Rativega* of tender arms. The youth was seen by the maiden as if the flower-shaft had entered her heart. In her distraction she could not mind any thing. She did not see nor hear any thing. She did not fight shy of her father. She trembled and her words faltered by the thrill. Seeing the flow of perspiration of his daughter the king instantly began the marriage. A pandal was erected with arches of pearls, big chowries were made of gold and a very high, beautiful and bright altar executed with jewels, was made. 5 10

8. Soon her marriage was performed so that even the *Khecaras* felt enamoured. Big dowries were bestowed on her. Elephants with their temples wet with rut flowing incessantly, multitudes of excellent horses jingling with bells and garlands made of jewels, were given. Whatever else is pleasant to the eyes was given to her by the king calling out her name. With all these, being pleased in mind, he bestowed his daughter upon the son-in-law. Many jewels were soon given and the princes were dressed by the king. The foremost king was then sent off by the lord of men. The king got ready a boat. The doomsday of all vicious kings and protector of the earth got into the boat. It shone forth shaking with the fluttering banners. It sailed in water by the help of the wind. Thousands of other smaller boats were filled entirely with crowds of people. They moved like the celestial cars on earth, fulfilling the desire of moving in water. 5 10

9. As the boats sailed in water furnished with decorations and tents, the king saw a large fish as if he had come upon the essence of the sea, as if *Visnu* was sporting in that form, as if the sea was seeing the royal fortune. In height it was sixty *Yojanas* and in breadth half of this. Sixty-seven feet long, it stood covering the ocean. Like the *Mandara* in water, immeasurable it shone forth jumping up and dipping in. Moving on slowly (at first), the monster came up running through wrath. Seeing it running the kings instantly stopped the boats. The kings being terror-stricken, stopped all the boats, as if they were rendered motionless by the power of an incantation by some wicked deity. 5 10

10. Seeing that fish and setting aside his equanimity, irresistible and hostile, fastening the wrestling tie and drawing out the sword, leaving the boat and rushing forth with rage, the king in an instant furiously made a jump, and swimming, reached where the monster-bodied fish was. Placing himself inside its belly and killing the fish he cut off its protective parts and split its skin. Swimming on to clear water the hero became invisible. The king was taken away by an irresistible *Khecara* woman. Seeing him carried away and having thought about it, the good warriors instantly made a jump into the sea feeling distressed. The whole water was ruffled, the boats clashed against each other, piteous cries of woe went forth and all people were perturbed with sorrow on account of him. 5 10

11. When the lion amongst men, of blooming face fell in water, all people, with pervading sorrow, were very much alarmed. The good wife *Rativega*, resembling a *Naga* woman, feeling disconsolate, trembled in all her body, was stunned at heart and fell senseless. By the sweet fanning of the chowries and with the help of water the virtuous and charming lady was made 5 to rise up by lovely young women who could tame the mind of sages. She beat her bosom with tender and shapely, lotus-like hands and then with anxious eyes and faltering speech said, "Oh hostile fate, sullied with sin, what have you done? Why have you snatched away another's husband who had been made by me my own? Oh adverse ill-luck, you have been unjust and 10 evil-faced. Oh my lord, graceful and happily wise, where have you gone? Have pity on me, oh my master, the best of the best men. I am falling in the ocean of grief and heading towards doom, oh lord, save me. I am your wedded wife. Now fallen in misery, whom shall I look to? Being bereft of you shall I now live or die?" Thus did the virtuous lady, overwhelmed with grief, lament in her heart "I shall now speak only when I meet my husband." 15

The exeellent minister, feeling highly grieved but consoling all his people who were heavy at heart, went ashore with all his men there.

12. When the army was encamped there, *Rativega* celebrated her vow. Then feeling uneasy, she soon invoked the goddess in soft tones. She drew forth a beautiful circle like guileless faith propounded by *Jinendra*. In the middle of it she installed firmly the divine goddess named *Padmavati*. The goddess residing in the eastern quarter came as she was invoked. The goddess was 5 made of red sandal-wood besmeared with camphor. sandal and saffron, worshipped with fruits, flowers and eatables and honoured with a fast on the first day. The incantation with the seed, which she obtained by teaching, was muttered along with an offering of fresh saffron and flowers. Drawing with red materials, wearing red garments she, having concentrated herself with devotion, 10 thought of the goddess with a firm mind.

13. When thought of with worship and honour, the goddess *Padmavati* came up with slow, graceful and tender limbs, and putting on an indescribable, unprecedented look, being endowed with a richness of beauty, red in person and pure at heart, bearing in her four hands the meritorious book along with the gourd and the signet ring along with the lotus-fibre. Her cheeks were shining 5 with the earrings and she wore anklets, bells and a girdle. She held over her head the fivefold hood of a serpent and looked joyful and pure exercising a mysterious influence. Placing her lotus-like feet on the ground, speaking something in charming speech, shedding lustre in all directions and wearing on her bosom a pearl necklace, the virtuous goddess stood in front of *Rativega* in an 10 instant saying "I grant you a boon. Ask for what may be in your heart, oh lady of slender belly! For your sake I have descended upon the earth."

14. When she saw the lotus-face of the goddess, *Rativega* began to shed tears. "Oh worshipful goddess, all the dirt of my sins has vanished at oyur sight. Whoever spontaneously belauds you, does not experience a succe-

ssion of woes. Whoever thinks of your face day after day, him you serve as a boat, oh goddess ! Have mercy upon me helpless. Save me from falling in the ocean of calamity, I do not ask for anything, oh goddess ! I only implore you for one boon. If you really confer a boon on me, oh goddess, reply to one question of mine. My husband has gone into the ocean; is he alive or is he dead ?" Then the goddess of the gods says "Your husband who fell from the boat, occupied, the very moment, the heart of *Kanakaprabha* the daughter of a *Vidyadhara*.',

15. Under the influence of infatuation, he was instantly taken to *Tilakadvipa* by that *Kanakaprabha*. She showed him to her father "See, father, I have obtained this divine-eyed one in the sea. He has been ordained to be my lord by the sages, even as *Lakshmi* obtained god *Visnu*." Knowing her love the *Vidyadhara* married her with festivities. Then one day. *Karakanda* killed, in a moment, an enemy of his father-in-law. A gentle man who eats the food of another, does a good turn to him. What wonder is here indeed ? 'Whoever killed the enemy of K*anakaprabha* shall become our master, what else !' Thinking so, his service was immediately accepted by the *Vidyadharas* with a show of respect. Loyally folding their pair of hands and bending the head they followed him carefully. No *Vidyadhara* was there who did not hold his service.

16. Your husband has performed great feats. Who can describe them, oh sister ?He married *Anangalekha* the very streak of the bowman Cupid. Then he married sportively *Chandralekha* the veritable sister of Cupid, of divine body. He also married *Kusumavali* of agreeable conduct and mind as well as *Ratnavali* resplendent like gold. He married yet other seven hundred maidens; I tell you the truth. So, banishing sorrow, you observe piety. You would be united to *Karakanda* with the fraud vanished. Very quickly, taking ample wealth, constantly make holy gifts." Hearing this, *Rativega* said. "Does one who has gone into the ocean return ?" The worshipful one makes a reply to her "Why do you entertain a doubt in what I say. You cherish, day after day, the excellent *Jina* endowed with the immortal lustre of gold."

Here ends, in the life of the great king *Karakanda*, composed by Sage *Kanakamara*, which is an ornament to the ears of the holy and which presents the richness of the fruit of the desire-giving tree of the five auspicious rites, the seventh chapter, describing the acquisition of the hand of a *Vidyadhari* by *Karakanda*.

SECTION VII

CHAPTER VIII

1. *Rativega* says "Oh goddess, listen ! I have taken to heart your pleasant words. Be pleased to tell me whether any man having gone (into the sea) has ever returned." Hearing this the worshipful one tells her whose mind was not steeped in sin. "Listen, oh beautiful lady, innocent-minded and highly devoted to the feet of lord *Jina*. Out of regard I tell you some thing-the story of king *Aridamana*. There is a country by name *Avanti* as if a portion of heaven has broken and fallen down. There is a city, pleasant to the eyes, by name *Ujjaini* which wards off the rays of the sun. There was the famous king *Aridamana* of great might and abode of virtues. His wife was *Vimala* delightful to the eyes, virtuous and free from evil deeds. His minister was *Varadatta* who had created attachment in people and was liked by the king. That minister had a beautiful mare which went for grazing outside the town. Seeing her hot-blooded a horse mated her on the mountain.

2. She returned to the town and was marked by the minister as endowed with all good signs and pregnant. He protected her, kept her in his mansion and fed her on oily eatables. On a pleasant and sweet day, a beautiful colt, swift like the wind, was born to her. Sky-coloured, tall, curved-faced, slender in the middle and broad in chest, with long sneeze and terrific neighing, fit for the harness, copper-like in palate, fickle in eyes and having soft hair in ears, it grew up in a few days. It appealed very much to the mind of the minister. It could not be matched by the heat of the sun or the wind. As it lived kept in an earthly house, a free parrot was watching it. As long as the young one of the mouutain horse, mightily victorious, remained in the womb, a certain *Khecara*, assuming the form of a parrot, watched it day after day.

3. The *Khecara* became a parrot and established itself on the mountain-peak. With hundreds of pleasures as the wanderer of the sky, affectionately attached to its mate, as it lived happily and enjoyed pleasures for long, a good looking cowherd, virtuous, well-behaved, sportive like an infatuated elephant and having stout and long arms, came into the forest and sat there busy in amusement. He was seen by the parrot with its eyes possessing good qualities, and was wilfully addressed in soft words moving the heart, "You take me, oh cowherd, and carry me instantly to the town and going to the king give me to him for five hundred gold."

4. Hearing that speech and thinking over it the wise one, with the parrot which was humble, submissive and respectable in mind, came quickly to the town. Throwing his sight, in a moment he saw there a prosperous merchant caught by a brothel-keeper who was telling him in sweet words, "You are a prince; do not become ignorant. Your eldest son, in dream, has slept with my daughter as she slept at home, at ease, unattached and in

peaceful harmony. Give wealth to her setting aside your pride." The great noise of this spread through the market. No man was able to extricate the merchant as he stood being caught.

5. Then the good and courageous parrot spoke affectionately. "Oh merchant, tell it to me so that I might avoid the quarrel." Then the merchant told him the cause of the quarrel. Hearing that, the parrot who had reached the ocean of knowledge, said to the merchant "Give wealth to my well-dressed sister." Hearing the divine words, his mind was struck with leniency. Having brought wealth as he began to give it all to the bawd, he was told by the parrot well-versed in the ways of policy "Bring also a mirror, oh merchant; I would give some unique wealth." That also was brought by him. Instantly, the parrot threw the reflection (of the wealth) in the mirror (and said) "Take that wealth, oh sister !" Her depth of mind was known to him and she was similar to the self-willed one*. Then the bawd said "Oh mischievous, crooked parrot, can a reflection be caught ?" Hearing this a reply was given to her "Can one get ornaments in dream, oh fickle one ?"

6. When the bawd was defeated by the parrot, the merchant justly said to the parrot "Count this wealth of gold and taking it do what you like." Hearing this, the parrot spoke so that the merchant was astonished in mind. "What shall I do with gold ? I attract the minds of good people." Hearing that purity of feelings of the parrot, he made the large gift to the cowherd. The cowherd was then told by the parrot "Take me to the royal gate." In a moment he who was the home of rich wisdom was brought to the royal gate. The gatekeeper was addressed by the parrot "Friend, whose mind is broadened by a good pearl garland†, report me soon to your king, oh honest one ! I shall see his face delightful to the eyes and resembling the full moon."

7. The gatekeeper told the king thus "Oh lord of lords, a parrot is waiting outside." Hearing that, the king caused it to be brought in and with lotus-like face, accosted it. Then the parrot, lifting up its leg, greeted the king with a blessing "Oh king with arms long like the trunk of an elephant, live long, as long as the heavenly river flows." Pleased in mind the king asked of the parrot "Who are you and why have you come ? Tell me truly." The sky-wandering animal replied fabricating a false account. The parrot said "Oh king, there were five hundred parrots in a silk-cotton tree. As I lived there, they were told by me "Let us cut quickly this creeper." It was then eagerly bitten by them. While they had not completely cut it, as it had strongly mounted up the tree, a multitude of *Bhillas*, with eyes red like *Gunja* and dark in colour arrived there. Mounting upon the tree they soon entrapped in a net the nests of the parrots. Then we all parrots were caught. I then thought of some plan in my mind.

8. Then all the parrots were told by me "Remain for a moment feigning to be dead." Having mounted (the tree), a *Bhilla* saw them all and

---

* This line is more significant in the sense that the *Kadavaka* is composed in *Samanika* metre.

† The line suggests that the metre of the *Kadavaka* is *Mauktikadama*.

threw them down thinking them to be life-less. Then they flew away in all the ten directions. I turned my way to a hermitage. I learnt all the sciences and enjoyed life on the peak of the mountain. There I saw the horse of the mountain mating with the mare in heat. A very beautiful colt has been born of them. Its feet would not touch the earth-surface. I knew it, being a *Vidyadhara* and have told it to you being overpowered by affection. It is now grazing in the house of the minister." Hearing this the king immediately went there. Reaching the house of the minister, the king said to him "I have no purpose for gems and jewels; my desires will be satisfied by your horse."

9. Bearing sorrow at heart, the minister gave it to him. Taking the horse, he went to his palace and put the saddle on the beautiful one. The king mounted it along with the parrot. The long-armed one took it on a round. The parrot warned "Oh lord, do not give any stroke; it will lose its temper." Unnoticed by the parrot, the king gave a whip-stroke out of curiosity. Instantly, the horse flew through the sky and went far beyond the sea. The king, feeling fatigued, asked the parrot "Where can clean water be obtained, friend ?" Then the parrot, going into the sky, carefully looked for water. Returning, the parrot told him "Come quick to the sea." Going there, he saw a hundred maidens sporting in the sea. By the words of the parrot the king worshipped the god of that place.

10. After finishing their bath and worship of the gods, the party of maidens returned home. At that time the parrot took the king after them. Reaching the *Chohara* island and coming to the house of the maidens, bringing about the union of the hearts, the parrot said at that moment "Oh king, you marry instantly this *Ratnalekha* of golden and divine body. It has long been foretold by divine sages that she would be married by a person like you." Hearing that, the king told her of lotus-like large eyes, "Oh beautiful maid, do you grasp the words that the parrot is saying ?" Hearing that, the maid said, her words faltering on account of love, "I have accepted your service in my mind. How can the words of the parrot go false, oh lord of men ?"

11. Hearing those pleasing words, the king married her immediately. In love, they enjoyed a thousand pleasures. Then, one day, the wife said, showing excessive love "Oh lord of men, I would see your home." Hearing her pleasant words, the king prepared a boat. He filled it with attractive gems and decorated it with beautiful flags. Mounted on it with the parrot, the horse and his wife, the lord of men shone forth like the god of gods. That boat was drifted on by the wind to another island in the sea. When it touched a deserted island on another day, the king felt anxious in his mind. He then spoke to the parrot "How is the night to be passed here, oh friend ?" Hearing that the parrot replied "Oh king, do not sleep very forgetfully."

12. The horse, the woman, the parrot and the king, all the four, with firm mind, established four watches. During the watch of the king, the boat, along with the horse, was quickly carried away by thieves. At sunrise when the king sees, he does not find the boat and the horse. Then the king reported the fact to the parrot "I know not which way the boat

has gone." Bearing sorrow in mind, the parrot then told the king immediately "Cut logs of wood and tie them up soon so that you might easily cross the sea." Making that, the innocent king mounted upon it along with his wife and accompanied by the parrot. The ties of it were broken by the waves and the king wandered from land to land. Then the parrot flew to a 10 bunyan tree, the king was carried by the waves to *Kokana* while his beautiful wife, by dictates of fate, was carried to the town of *Khambhayacca*.

13. There she was seen by a clever bawd *Lambajhalamba*. She took *Ratnalekha* home and the tender one removed her watery smell. Then the innoeent one was told by *Lambajhalamba* "Harlots do not become perfect without ornaments." Hearing that, the beautiful one said "Whoever would win me here in gambling, oh mother, shall sleep with me." This she said. 5 Then men were defeated by the woman in gambling. Taking their wealth she gave it to the bawd and then put curds and boiled rice in the courtyard. The flock of parrots residing in the bunyan tree of the sea pecked at it and returned. Then that parrot inquired of them "Where had you gone whence you have returned with food, oh friends ?" To him the parrots told every- 10 thing. They were then again asked by him "Take me to that place where boiled rice has been offered by the young woman." Then he was immediately taken by them to the house of the harlot where he was seen by her.

14. The parrot, as it pecked, shed profuse tears, seeing its young mistress. She, knowing it to be the old parrot, called it to her, pronouncing its name "Oh parrot, my brother, come here. Where is your master living ?" "I know not, mistress, where the king has gone." Disappointment grew in her mind. She was dissuaded by the parrot "Oh mistress, purity of 5 heart is destroyed in those who give way to sorrow. My mind says, oh fawn-eyed lady, the master shall meet us having acquired prosperity." Listening to the affectionate words of the parrot, she felt consoled with pure feelings. Her fame advanced like the sea. Young men were wrapped in good pearl garlands.* Some-body told *Aridamana* "In the town of *Khambhayacca* no 10 man can play the game of dice; none can defeat the girl there."

15. Listening to that with concentrated mind, the king immediately went to *Khambhayacca*. Reaching there, he quickly went to the gambling house attracting the mind of all the gamblers. Sitting in their midst he shone as if bearing the beauty of the full moon. With honour, he won seven hundred gold from the kings. Giving wealth to jesters and loafers, he went 5 to the house of the harlot greedy of riches. He sent a challenge to her whose fame in gambling had gone wide. He then himself went there at night, where the young woman was sitting with the parrot. He told her "Let us play the game of dice which is a harbinger of love, oh beautiful one !" By the king she was defeated and she became perplexed. Then knowing him to be her 10 husband she embraced him limb to limb.

---

* The line is more significant in suggesting that the *Kadavaka* is composed in *Mauktikadama* metre.

16. As the king lived there with her, a *Takka* came with horses. The king looked amongst them and made bargain with the *Takka*. Tke king called out by name and the horse looked at him turning its face. Whatever minimum price was settled, he gave the gold and bought it. Of the woman, the parrot, the king and the horse, the miserables, the union took place. 5 Enjoying pleasures, they lived there, and then all the three (four ?) went to their own country. I have told you, friend, how that king, fallen into the sea, came back home. As he, great in multitudinous virtues, came back, even so your husband, oh innocent one shall be united to you." Having told all this to her, the worshipful goddess, matchlessly tender ln all her body, 10 went immediately to her home, and, having her face like the moon, joined the gods.

17. Then *Rativega*, depressed at heart, with face tender like lotus, followed instantly all that the goddess had recommended. Taking ample wealth, she, with body excellent like the fresh lotus-fibre, instantly divided it all amongst the poor, and gave good food to the hunger-stricken. As she lived there with devotion, meditating in mind upon the feet of Lord Jina, bending 5 with the weight of the observance of *Ratnavali* fast, bearing the pearl-garland in the form of the *Muktavali* fast, shining with the flowers of the *Kusumanjali*, observing the powerful *Palyopama* fast, going by the *Shastras* in the form of the fast of the four scriptures, and steadying her mind upon the ritual of the *Vasuhara*, one day, *Kanakaprabha* brought *Karakanda* there. Rativega 10 saw her husband; her tears grew through joy and the slenderbodied one flashed forth like lightning as if a cloud laden with water (had been seen) by the female peacock.

18. *Rativega* then accorded all great honour to *Kanakaprabha*. Satisfaction grew amongst all the attendants and amongst the feudatories and ministers who were astonished in their mind. Having lived there for some days with joy, king Karakanda started off. Touring upon tha land, he came to the *Dravida* country, bearing hostility. There, somebody reported, in an instant, to 5 the *Coda*, the *Cera* and the *Pandya* kings "An enemy has come upon you, oh lord. Let it be so arranged that he may go away from a distance." Hearing that thoy met in half a moment and going to Karakanda, fought with him. Elephants fell upon elephants, chariots upon chariots, horses upon horses and men upon men. Red with rage, they engaged in a fierce combat. Banner-posts, 10 umbrellas and heads fell down. Entrails shook, men stumbled and great warriors, greedy of fame, met. They put up such a great fight that even the gods in heaven were terrified. Karakanda caught them on the battlefield and rubbed their crests with his feet. But seeing *Jina* images on their crowns, Karakanda felt very remorseful. 15

19. "Alas, alas ! what have I, a fool, done ? I struck even a *Jina*-image with my foot. As a result of this sin, I know not in what evil form of life I shall have to live." Disturbed at heart, with eyes closed, he released the *Coda* kings. "That I vanquished you in battle, that I rubbed your crests with feet, forgive it all, my friends ! Reoccupy your hereditary kingdoms." Hearing 5

that, they made a reply "Our sons will serve you." Saying so to the *Campa* king they instantly made their residence in the forest. Counting their bodies as straw, the tender-limbed, having performed penances, attained the highest heaven. *Karvkanda* marched out thence towards, the city of *Tera*. He reached that region of the forest where the beautiful lady *Madanavali* was abducted. 10

20. As he lived there honourably, the *Khecara* restored *Madanavali* to him. The *Vidyadhara* then quickly narrated feelingly the events of past life. "I was a serpent in my previous birth. Wandering about, I crept into your house. Then I saw, in the cage, the pigeon accompanied by its mate. I caught it by the leg, struggling. You then arrived there casually walking. 5 It was released by you instantly and was kindly given the *Navakara*. It became a *Khecara* as a result of it. I glided away from there, escaping you. One day, I was crushed under the hoof of a horse. A sage recited the sacred formula in my ear. As a result of that, I became a *Khecara*, I saw you, having come here. On account of the old quarrel, I took away your wife. 10 I have told you this secret of mine. I am now fully your servant." He then bowed to his feet with bent head, "Whatever crime I have committed, oh lord ! forgive it; I shall not leave your service." Having honoured the *Khecara* with a gift, the king went to *Campa*, conquering the earth. He lived there, ruling the kingdom for many days, in the golden, divine palace. 15

Here ends, in the life of the great king *Karakanda*, composed by Sage *Kanakamara*, which is an ornament to the ears of the holy and which presents the richness of the fruit of the desire-giving tree of the five auspicious rites, the eighth chapter describing the conquest of the earth by *Karakanda* and his entry into *Campapuri*.

SECTION VIII.

CHAPTER IX

1. As the king of *Campa*, surrounded by wise people, lived there in happy enjoyment, the keeper of the garden came into the council-hall where the king was sitting. He was asked by king *Karakanda*, "Tell me for what purpose you have come." He said, "oh lord of men, whom people meditate upon and remember in their mind, at whose sight a lion resorts to peace 5 and would not pounce upon the frontal globes of the elephant, at whose sight those that bear mutual enmity assume tenderness in their mind, at whose sight some take *Anuvratas* and do not devote their mind to any body leaving the *Jina*, by some have been taken in their mind the *Gunavratas* and by

others the *Siksha vratas*, who appears to be the abode of righteousness and 10
home of restraint as if he were the excellent *Jina* in the guise of an ascetic,
such a good sage endowed with knowledge and fame, by the name of *Silagupta*,
has arrived in the garden." Hearing these words, *Karakanda* got up from
the throne the very moment and advanced seven steps, folding his hands and
recollecting in mind the feet of the excellent sage. 15

2. Then the drum of joy was immediately ordered to be beaten by
the king who was pleased. Hearing its sound, the faithful persons who were
enjoying happiness, met together in half a moment. Some proud, tender-
bodied woman started with her affection fixed upon the lotus-feet of the sage.
Some one walked forth producing a jingling sound by her anklets as if she 5
was singing the virtues of the sage. Some one did not care for her husband
going (by her side) but thought in her heart of the sight of the sage. Some
one, filling a plate with rice and frank-incense, walked with great haste
carrying her child. Some one walked along giving out profuse scent as if a
Vidyadhari was shining forth on the surface of the earth. A certain lady, 10
with face like the full moon, walked along, bearing lotuses in her hand.
Being delighted to hear the sound of the drum, all faithful persons met there
together very soon.

3. Attached to the *Jinendra Dharma*, devoted to the feet of the
great sage, splendid like the lustre of gold, having eyes like a lotus-leaf and
arms long and stout, knowing all the *Sastras*, having a body with faultless
joints, as he passed by the market, he saw there a miserable woman crying
"Alas, I am confounded", beating both the sides of her belly, weeping with 5
profuse tears, causing grief to people, making the mind bewildered, bearing
the dress of a mad person, rolling in a swoon and falling upon the ground.
The king heard that sound like the roar of the sea. *Karakanda* asked a certain
man. "Why does this poor woman cry producing pain in the heart by her
lamentations and herself dyng by delirium ?" 10

4. Then he told the facts to the king, "On account of which she
became so miserable, listen to that cause, my good lord ! As she enjoyed
incessant pleasures, a son was luckily born to her. But it was snatched away
from her by Death. For this, the woman laments woefully and throws herself
through affection. She does not leave the side of her son. She does not forget 5
him in mind. Hearing these words, the king of kings entertained feelings of
detachment from the world "Fie, fie upon this ugly mortal world. The
personal enjoyments of men are the causes of their woe. Like the ocean is
the extent of misery here, while the happiness of enjoyments is only compa-
rable to a drop of honey. Alas. where man dies with scorched body and 10
crying hoarse, who, except a shameless voluptuary, would feel attachment
there ?

5. Who is conceived in the womb through *Karma*, he is removed
by the god of death to his own abode. The child which is fondled by a
young woman, is marched off to his own town by Fate. Who attains fresh
youth, him also the powerful god of death walks away with. The old man

who is caught by a hundred diseases, is also mis-handled by the messengers of Death. Along with *Balabhadra* even *Hari* of matchless prowess, was stealthily taken away by Fate. Who conquered the earth divided into six parts, those emperors were led off by time. The *Vidyadharas*, the *Kinnaras* the *Khecaras* and the mighty *Suras* have all fallen into the mouth of Death. The lord of the immortals as well as the lord of the serpents, none are spared by Death in taking its toll. It does not forego a learned Brahmana, nor leave an ascetic devoted to penances. Neither the rich nor the poor escapes as when a conflagration is ablaze in the forest.

6. Whatever body fate creates, the beauty of man is not stable there. The charming youth that grows, is cast out, no body knows where, by destiny. Whatever other qualities dwell in the body, it is not known which way they go. If the qualities of the body were stable, sages would not practise detachment from the world. Not stopping anywhere like the ears of an elephant fortune vanishes under one's very eyes. As mercury held in the palm of the hand, oozes down, so a woman being dis-affected soon walks away. Whose eyebrows, eyes, words and gait are all crooked, who can make her upright ? She does not mind deserting her kinsmen and friends; she is fickle and mean like the friendship of the wicked. Whoever meditates upon this idea of fickleness entertaining a feeling of detachment, becomes the ornament of the house of gods, having a very graceful and charming body.

7. Resting at night and subduing the *Suras* in battle, when the calamity comes and the heart goes to sleep, nothing in him throbs, rises or sits. Let him enter a cave, follow heaven, climb the heavenly mountain, place his body in a cage, be fully guarded by his kinsmen, friends and children wielding lances in their hands, be protected by *Mantras* and be attended by a host of warriors, still he would not be saved by them all. *Baladeva*, the wielder of the disk, the leader of the gods, the *Khecara* in the sky, *Yama*, *Varuna*, the supporter of the earth, none can afford shelter. Whoever contemplates in his mind, day after day, this idea of helplessness, graceful in body and enjoying pleasures, is soon courted by the heavenly women.

8. What happiness is there for one revolving in the cycle of existence ? He gets various unpleasant woes. In hell he is tormented by many hellish beings with whom he contracted enmity of yore. There, he experiences great afflictions which can not be imagined by the mind. Being born amongst lower animals opposed to each other by birth, they have to undergo the gagging, piercing, beating, splitting of the body and the like. Even in humanity, a man being suppressed, pines uneasily in his heart. Born in the world of gods, he, being inconsiderate, feels woeful in his mind at the sight of others' prosperity. As the dancing girl assumes various forms, even so life takes various bodies. Whichever person studiously throws his sight on the world, tell me, what he did not obtain in the world being himself the mine of all high-class gems ?

9. There is no good helpmate of the soul, who could save it from falling into hell. Friends, relatives, sons and dear brothers, these render no help to the departing soul. One's mother and father weep but do not go even

a foot-step with the soul. Wealth does not go out of the house even a step; it alone experiences the fruit of piety and sin. The body falls in blazing fire; it 5 alone mounts to the home of death. Where no happiness is found even for the twinkling of an eye, there single-handed it suffers misery. Amongst serpents, ichneumons, lions and dwellers of the forest, the soul alone is born helplessly. In the beautiful towns of the *Suras, Khecaras* and *Kinnaras* it alone enjoys life as long as it lives. Whoever follows this view adorning his body with good- 10 ness, shines forth alone and free of the body, at the place of eternity which is the abode of happiness.

10. This is what the sage holding numerous virtues, declares. He declares it all alien to the soul. What is nourished with hundreds of drugs, even that body is separate from the soul. Eyes with beautiful pupils, large and pleasing, are no part of the soul. The tongue resembling the leaf of a tree, also stands apart from the soul. The richness of the body, touch, smell and 5 ears, and the excellence of beauty, is all quite separate from the soul. The other qualities that are found in the body, all of them, go detached from the soul. The excessive fatness and fineness of the body are far removed from the soul. The four, anger and others, as well as virtue and vice, which are *Karmic* entities, are alien to the self. Which ever person meditates in his mind 10 upon this idea with firmness, attains the highest status and becomes bright, absolved from body and excellent.

11. Tell me what quality shines forth in this body which has been given the ornament of impurity by nature ? The fickle eyes that become sportive, are defiled by lots of evils . Tell me what purity is there in the cavity of the nose whose excreta is visibly impure. How do people imagine innumerable qualities in the lip which is flooded with a current of saliva ? What 5 merit is seen in the breasts which, like wounds, are full of pus ? They are grown up balls of thick flesh; who would feel an attachment for them which are so defiled ? What do wise people say about the middle zone ? It sheds impurities at two points. Where fat, blood, flesh and bones are assembled, tell me, what cause of purity is there ? Tell me what man in the world would 10 feel attachment for it, if he observes inner and outer purity ? Whichever person would think of this as impure by nature being produced by semen and blood, him this matchless idea would bring on to the path of salvation.

12. As water is collected in the ocean, even so a multitude of *Karmas* flows in. The soul contracts *Karmas* as an invisible point of iron is caught by a magnet. By the loss of the right faith, *Karmas* are contracted owing to the false belief. The guileless lord *Jina* declares that *Karma* comes in as a result of non-abstinence. The inflow of the *Karmas* takes place by 5 falling into anger, pride, deceit and greed. If one forms the habit of controlling the mind, the enemy *Karma* can not be born. If one indulges in violent speech, who can prevent the *Karmas* meeting him ? Whoever uses his body for violence, makes love with *Karmas*. Having given rise to a slight cause for *Karmas*, if one contemplates in his heart upon this idea, he is blessed; that 10 man, without delay, relishes the juice of eternal bliss.

13. Whoever, being firm-minded, holds up right faith, checks the wicked false-sight. Whoever conducts himself with pure forgiveness, gets rid of the water of anger, the cause of misery. Whoever conducts himself with pure gentleness, his pillar of pride surely goes off. Whichever noble person sets his mind on straight-forwardness, becomes an antidote to the poison of fraud. Whoever is indifferent even towards a beautiful body, certainly vanquishes the lion of greed. Whichever good man shall follow religion with his heart, shall arrest the monkey mind. Whoever worships the passionless (Jina) with adoration, immediately destroys wicked desires. Whoever observes all the forms of religion, keeps pure at heart and practises meditation and concentration, escapes scandals. Whoever, being endowed with forgiveness and self-restraint and being an abode of virtues, visibly checks these (evil tendencies), he, having enjoyed the pleasures of heaven, bends his way towards perfection.

14. *Nirjara*, which destroys attachment, is considered to be of two kinds, fruitful and fruitless. The multifold *Karmas* that are collected in the past and are created now, have to be borne in experience. Who emaciates his body by the rays of the sun during summer, passes the rainy season under a tree and bears the frost on his head during winter, he confidently gets rid of the *Karmas*. Who bears the unbearable weight of penance, reduces his body to straw by fasts and checks irrelevent talk, he shatters all the *Karmas*. Who controls his mind from wandering outside, that man destroys the *Karma* in his mind immediately. Who regulates his meals according to the waning and waxing of the moon, who prefers sour gruel for food, who adopts various forms of physical austerities, who bears the twenty-two trials and who foregoes the two kinds of worldly possessions, that man performs fruitless *Nirjara*. Whose *Karmas* exhaust by themselves, in his case the *Nirjara* is fruitful. Whichever person, being pure in mind, shatters his *Karma* by mind speech and body, having enjoyed happiness amongst gods, does surely make his, abode in salvation.

15. This universe is divided into three parts. It is fourteen chains (*rajju*) in height. The first (part) is the abode of hell in the shape of an overturned, shallow cup. The second is the abode of animals, which is immeasurable, and is like a bell. It is the animal world. Where the immortals have no self-restraint but have enjoyments, that is the world of the immortals resembling a drum. Above it is the well-known region of perfection where misery is not to be found even for the twinkling of an eye. It is described by the many highly qualified sages as held fast by three circles of winds. As the sun is poised in the sky, even so, this world is not supported by any thing. The sky is inactive, what else ? Even so, no person has created the world. Having observed the five great vows, who applies his mind to this idea of the universe, that man, blessed and lucky, enjoys numerous heavenly pleasures.

16. May there arise devotion to the lotus-like feet of lord *Jina*. May I be born in the family of the faithful endowed with right faith, knowledge and conduct. In every life, may the five vows of the two kinds be mine. May

the beautiful teachings of *Jina* by means of which the essence of existence is known, be available to me. May I have devotion for the ocean-like sages who hold peace, restraint, religious practices and observances in high esteem. May I have devotion for the beautiful tenfold piety which brings about the happiness of salvation. May the fourteen 'search-lights' that remove old age, birth and death, flash forth in my mind. May the fourteen 'states of qualities' be clear to me and may the qualities of the perfected be firmly fixed in my mind. Who brought into his heart, soon, this idea, having followed it with wisdom, he profusely adorned, in half an instant, the face of the lady salvation. 5 10

17. *Dharma* is characterised by the ten qualities. Fruitful is the birth of him who observes it. By *dharma* horses are obtained and excellent *chowries* are sportively waved over him. By *dharma* one would sport in celestial cars and move about in chariots, on elephants or by other conveyances. By *dharma* one would get ample riches which is the essence of the jewels obtainable from the great ocean–the world. By *dharma* various enjoyments become available and people do not transgress his orders. By *dharma* the goddess of speech stays at the tongue and one obtains the beautiful desires of his heart, Oh brother ! By *dharma* seven-storeyed buildings and excellent gems giving various pleasures (are obtained). By *dharma* the gods worship the excellent *Jinas*; by *dharma* all may become great gods or lords of men. By *dharma* an accomplished woman, the doom of the infatuated young men, becomes yours. By *dharma* are born *Damodaras*, the excellent *Jinas*, *Prati-Kesavas*, *Sankaras*, and the *Suras* in heaven. By *dharma* all those good fortunes are born as also *Haladharas* and *Cakradharas*. 5 10 15

18. Reflecting upon these ideas in his mind and making himself averse to sensual pleasures, counting a host of women as straw and speaking words pleasant to the ears, steadying the fickle mind, he (i. e. the king) reached the pleasure-garden. He saw the extensive pleasure-garden resounding with the noise of the *Kinnaras* and *Khecaras*. In that garden he saw the repository of goodness, who was a shower for suppressing the fire of anger and the like, whose body was resplendent with the rays of knowledge, who was a dart in the heart of the huntsman Cupid, a wrestler to vanquish the warrior-infatuation, the residence of the tenfold *dharma*, the fire to consume the fuel of antagonistic philosophies, who was attached to the face of the lady in the form of severe penance, and was free from the shackles of *Karma*, who was destructive to birth and death, the home of the twofold austerities, and who was the excellent forehead mark on the face of the lady salvation. 5 10

19. At his sight, he was thrilled in all his limbs like lotuses at the touch of the sun-rays. Having gone round thrice and bowing to his lotus-like feet, he sang a hymn "Be victorious, oh hot sun to destroy the darkness ! You have brought the lords of gods, men and serpents to your feet. Be victorious, oh thunderbolt to the great mountain of pride; be victorious, oh incomparable, full tank of salvation. Be victorious, oh axe to cut the tree of delusion; be victorious, oh boatsman in the ocean of the four forms of life. 5

You remove the sin of those who bow even from a distance, as the sun is, by nature, the dispeller of darkness. Whoever recalls you to mind every day, soon attains to the town of salvation." Having adored the lotus-feet of the 10 excellent sage, he sat down in front of the home of penances. He then said, "Oh master, reveal to me the highest religiou which is free from deception. Tell me that, kindly, oh master, by practising which the multitude of woes be destroyed, the incomparable happiness of salvation may increase and which may give a right lead to well-meaning, faithful people. 15

20. Hearing those words of him the sage who had shaken off Cupid spoke. He told him the excellent *dharma* which leads to good birth, "The tree of religion, oh king. is divided into two parts. Being sprinkled over with the water of holy observances, it grows steadily. Having obtained a human birth, one should, with pure heart, worship the Jina and hold the feet of 5 sages in his mind. He should read the scriptures and observe the forms of restraint. He should pass the days in bearing the useful burden of rules and austerities. He should bestow the four kinds of charity upon the three kinds of deserving, holy recipients either going to the temple of the *Jina* and bringing him with devotion or receiving him in the home as he happens to come to the 10 house during his tour at the proper time. If a sage arrives at his house at noon. being devoted to the sages with pure miud, he should say 'Stay' and receive him. Then offering him a wooden seat he should wash his lotus-feet and honour even that water (used for washing). He should then worship him with sandal rice, flowers, eatables, lamp, frank-incense and nuts. He should adore his feet 15 with a handful of water. Whichever person conducts himself by the six professional duties and whose body is covered with the six religious duties, he ridding himself of the inauspicious humours, applies his mind to the *Jina* image.

21. Why talk much, oh best of men ! Whoever holds right faith in his heart, the right faith which comes from the belief in the excellent Jina and which is spoiled by a false belief, the right faith which comes from a confidence in the realities and the remedying of the faults of doubt and the like, whoever, again, abstains from liquor, flesh, honey, butter, bunyan, fig, *pilli*, 5 *khinni*, *phenphari* and *umbari*, and the five *udumbaris*, whoever neither gambles nor drinks wine and has no desire for flesh, who shuns harlots charming to the eyes, and does not indulge in the sinful hunting, who does never steal other's wealth and avoids, from a distance, the women of others, who eschews the seven vices with all consideration like a large poison-tree; he enjoys unbroken 10 happiness and is not feasted upon by the demon-misery.

22. Nobody becomes great, oh king, without religious observances; with sacred vows, even a poor man becomes respectable. These are summarised into two classes-vows for the householders and those for ascetics. The *anuvratas* are said to be less rigorous while the same, observed very minutely, become *Mahavratas*. Who protects the lives of the mobile animals, that man 5 holds the first vow. Who does not speak false in a broad sense, that wise man

wields the second vow. Who does not acquire wealth by stealing, he observes the third vow. Who regards the wife of another as mother, he maintains the fourth vow, oh king. Who sets a limit to his worldly prossessions, he, oh king, keeps the fifth vow. Who abstains from eating at night as well as going into 10 the directions (beyond a set limit) and shuns tying cattle with ropes, he, lessening the volume of his enjoyments and pleasures, easily gets delight in the heavenly home.

23. Who looks upon all creatures with equanimity, who reflects upon the religious observances in his heart, and who eschews distressful and violent feelings, that good man maintains the customary vow. Who observes the four grief-removing fasts in a month on the two eighth and fourteenth days, whichever good man gives alms of the four kinds, who bestows upon creatures com- 5 passion as well as knowledge and who affords medical treatment to the diseased, he surely follows heaven. Who at the meal-time, gives to the deserving, food and drink with affection, or gives food to the poor and hungry through compassion, and who, at last, gives up his breath in penance with a steady mind, who observes all these difficult *Anuvratas*, *Gunavratas* and *Siksa-* 10 *vratas*, he, being covetous of the face of the bride eternity, shall obtain a succession of happiness.

24. The religion of the householders is like this, oh king ! This is what the great sages of yore have declared. Listen, oh king, to the five vows of the ascetics where not a single fault is admissible. Who gives protection to the mobile and the immobile creatures, he enjoys pleasures by innumerable *lakhs*. Who does not tell a false story even for amusement, he out-wits the 5 preceptor of gods in oratory. Who never misappropriates the wealth of others, he makes the mind of the lord of gods anxious. Who observes the ninefold celibacy, he attains the boundless happiness of salvation. Who avoids the two-fold worldly possessions, he crosses the great ocean of metempsychosis. Whoever holds the basic qualities, oh king, is embraced by the bride salvation. 10 The secondary qualities of the sages are so many that no one is able to survey them, oh king. I have told you, oh lord of men, the *dharma*, pleasant to the ears, which stands two-fold. Whichever person observes, according to his ability, these five vows, oh king, courts the golden and immortal, proud maid salvation, and he without doubt, becomes her lord.

Here ends, in the life of the great king *Karakanda*, composed by Sage *Kanakamara*, which is an ornament to the ears of the holy and which presents the richness of the fruit of the desire-giving tree of the five auspicious rites, the ninth chapter called the listening to a religious discourse by *Karakanda*

SECTION IX.

CHAPTER X

1. Hearing that, the lord of *Campa* again asked the sage with bending head "Tell me, kindly, oh best of sages, what I ask you in a meek tone. If my body was so lovely, why this scab on my hand ? Tell me quickly. The husband of my mother was so much attached to her ; by what *Karma* the separation took place, tell me ? By what *Karma* she was carried away by the elephant ? 5
Why my wife was abducted by the *Khecara* ?" Hearing that, the sage revealed to him "Listen to what I say, oh king ! Here, in the *Bharata* country, is the *Vaitadhya* mountain. On the southern side of it is the prosperous town of *Rathanepura* the circular. There, the *Khecara Nila* was the king. He was hard pressed by his coparceners; so he fled away to *Tera-pattana*. Residing there, he 10
acquired a territory and built several *Jina* temples. There was a merchant named *Dhanamitra* who daily waited upon all learned men. A mine for the jewel of right faith, he had in his home for wife *Dhanawati*. He had a good cowherd *Dhanadatta* who did all that he was told to do; who, being virtuous, delighted her mind also, and whose body was adorned with gentle nature. 15

2. He, one day, at night, released the buffaloes and went towards the south with them. There, he saw a beautiful lake flowered with excellent lotuses like *Dharma*. The lotus-lake shone forth very brightly as if the sky with the stars had descended on earth. The white lotuses on the lotus-leaves looked like the royal parasols on the green earth. Or, being fully blossomed, they shone 5
like rubies in a green receptacle. In the midst of it stood one lotus which looked like the moon adorned by the clusters of stars. Seeing it, a desire flashed forth in his mind and he entered the lake inorder to fetch it joyfully. Entering into the water, he took the lotus as if he had, in a moment, plucked off the head of the lake. Taking it, as he came out, with his body excited with joy, his pure 10
mind bloomed up by the possession of the full-blown flower.

3. As he walked away with that lotus, *Nagakumara*, the *Sura*, came there. The good *Sura* told the cowherd "I have been protecting this lake with great care. The flower which no body could take, not even a *Khecara*, a serpent or a *Sura*, has been taken away by you a man, oh fine fellow, I tell you with all respect. Now you shall obey these words of mine. Whoever be great, with 5
his feet worshipped in the three worlds; and at whose sight sin quickly flies off, at his feet you shall offer this flower. If you do not obey my words, oh friend, I shall certainly kill you, oh innocent-minded !" *Dhanadatta* went away having accepted the words uttered by the lord of serpents. He thought "My merchant is great as he is saluted by all good men. I shall worship his feet with this 10
flower which has been guarded by the serpent-gods."

4. So thinking, he went near the merchant and stood up humbly before him. The merchant then asked him "Why are you standing before me with folded hands ?" *Dhanadatta* said "Oh merchant, my father, I shall worship your feet with this lotus." "Tell me the reason ?" Being so questioned he said "I

plucked this flower from a lake and a *Sura* has told me "Whoever is great in the three worlds, worship him. If you do not worship, I shall kill you." Hearing this, I have come, thinking, oh father, that I shall worship your feet. You are great and adorable by the people and so deserve to be worshipped with this flower." Hearing this, the merchant said "Oh son, the king is greater than myself, oh good minded !" The merchant then took him to the king's palace and saw the king in the *Jina* temple. Having repeated to him as before (he said) "You are great, as people bow to you. Therefore, I shall worship your feet with this flower obtained by me in the lake." Hearing this, the king replied "Greater than myself is the sage, surely."

5. All of them went in front of the good sage *Yasodhara* inorder to offer that flower to him. You are great, oh passionless, excellent sage ! I shall worship your feet with the lotus." "I am not great" said the sage; "People esteem the famous god of gods, *Jinavara* as the greatest of all, who has become purified having destroyed the enemies-*Karmas*, who is bright with knowledge, and has achieved perfection. Worship Him, steeped in devotion." Hearing his words, *Dhanadatta,* without washing his hands and feet, worshipped the *Jina* with that excellent lotus, as *Indra* did on the *Meru* of yore. People offered felicitations to him whose mind was bursting with the flood of devotion. As a result of that single flower, he was born as the son of the king of *Campa* in you. Who glorifies the *Jina* with purity, he takes the lady Salvation by the palm of his hand. The excellent *Jina*, the forehead-mark of the world, was worshipped with hands and feet splashed in mud. Therefore, this scab has come on to your hands and feet. I have told you this pleasant story."

6. "Oh king, endowed with numerous virtues, friend, listen now to the story of your father. Here, in the *Bharata* country, is the town of *Sravasti* where *Khecara* women mostly sport for long, there was a famous, sweet-tongued merchant by name *Nagadatta*. His wife was named *Nagadatta*. She was an *arani* stick for producing the fire of anxiety. The great merchant would not leave her side and would not sleep any where else day or night. The merchant adopted a son who was fondled by the tender hands of his wife. This son of the merchant, oh king, grew up and became very gentle with his virtues. One day, this Brahmana boy whose arms were long and stout like the elephant-trunk, was seen by the lotus-eyed *Nagadatta* who felt attracted towards him and the lovely-bodied one began to think in her mind.

7. She looked again and again at the youth as if he was visible Cupid incarnate. Like new gold in appearance, with eyes like those of a fawn, she soon became perverted in her mind. Being shot with the sharp arrow of Cupid in all her body, nothing appeared pleasant to her heart. She would shake her hands, bear horripilation, exhibit her line of hair to him, show her breasts and loosen the tie of skirt. Say, what a person, blinded by love, may not do. Being overpowered by the bunch of the arrows of the flower-armed, the wayward one did not feel apprehensive of any body, not even of the elderly gentlemen whose minds were prepared for the welfare of the next world. She did not

fear her son or relatives, nor fight shy of her dearest mother. Was not that 10
mine of all virtues, clever-minded and modest youth addressed by her in tender terms ?

8. Hearing those words, he shut his ears with his upraised, tender hands; and broadening his eyes and shaking his head, he, thinking her to be wicked, said "Alas, mother, oh mother ! what do you say this, as if you have been thoroughly intoxicated by wine ? I am your son and you are my mother. What grace is there in your telling me this ? Do you not remember your high 5
parentage which bears the excellence of the sky ? Respected as you are with honours and gifts, why have you resorted to this rashness, oh mother ? How is it that your intellect, which was the delight to the eyes and ears of people, has become so perverted ?" Interrupting his speech and grasping him by the hand, the love-stricken woman made him quiet. A woman attracts the mind 10
of even gods like *Hari*, *Hara*, *Brahma*, and *Indra*; what can a poor, stupid man, fallen in to her clutches, do ?

9. By nature, every one has the feeling of love and thinks of woman in his heart with one mind. If he gets her consent, then, tell me, is the woman to be disregarded ? Whose mind does not shake in her company, he obtains the way to perfection, oh lord of men. So, in the mean while, the sun set. After many hours, even the sun went to sleep, as it were. The multicoloured evening 5
pervaded the sky; she was, as it were, the bride of the sky, dressed red. Thick darkness spread about where an adulteress can follow many men. *Nagadatta*, infatuated with love, thought of the darkness in her heart and embraced that *Brahmana* who bit her lip. But, in the meantime, the moon rose up in a moment, arousing sorrow in the mind of the unchaste woman. Then the mer- 10
chant observed her conduct and instantly retired to forest. Having practised penance, he broke all ties and went to heaven, where, having enjoyed happiness, he died again, and, in course of days, came into the womb of *Vasumati* as the son of king *Vasupala* in the town of *Campa*. That gracious *Dhadivahana*, beloved of the people and foremost in the world, having stout arms, medita- 15
ted upon the Five Teachers on the mountain, occupied the topmost heaven, and became immortal.

10. That *Brahmana*, as a result of adultery, wandered into the cycle of existence. Having experienced misery in an inaccessible thicket of the forest, he was born an elephant in the country of *Kalinga*. Under the arrangement of some *Karma*, it became the best elephant of the king of *Campa*. Having cohabited with a stranger, *Nagadatta* experienced misery in the great 5
ocean of transmigration. Here, in the *Bharat* country, is the town *Tamralipti*, seeing which the lord of the gods does not feel satiated. There was the good merchant *Vasumitra*, who came to have *Nagadatta* for his wife. As they lived in enjoyment, one day, two daughters were born to them. The first was named *Dhanavati* and the second *Dhanasri*. In the town of *Nalanda*, there 10
was the merchant *Dhanadatta* whose wife was *Dhanamitra*. His son named *Dhanapala*, a patron of panegyrists, became first the husband of *Dhanavati*.

11. In the town of *Kausambi* there was the merchant *Vasupala*

whose wife was *Vasumati* a source of pleasure. He got a son named *Vasudatta*, the vanquisher of his foes and devoted to the lotus-feet of Jina. *Dhanasri*, the basket of virtues, was given to him as *Candi* was given to *Isa* the lord of men. She passed many days in the enjoyment of pleasures and 5 sports. Then, one day, *Vasumitra* was snatched away by the cruel-handed messengers of Death. Out of sorrow, *Nagadatta* left *Kausambi* and went to the house of her daughter. Knowing her mother to be without any religious vows, the lotus-eyed *Dhanasri*, devoted to the lotus-feet of the sages, took her instantly to the Jina temple and gave her the vow of abstaining from 10 food at night, (saying) "Do not take your food at night, oh mother." Hearing that, the mother replied, "Wonderful is this system of religious vows and practices." Having bowed to the feet of the sage with bending head, the excessively good woman took the vow in her mind. Knowing it to be a means of getting over the cycle of existence, destroyer of all ills and 15 giver of many excellences, the mother of *Dhanasri* took the vow of abstaining from food at night as it was revealed to her.

12. Then, *Nagadatta*, one day, went to the house of *Dhanavati*. As she lived there for many days, her elder daughter violated her vow of night. As it was violated once, so it was successively violated thrice. Then for the fourth time, *Nagadatta* went to the house of *Dhanasri* with pure mind. Here *Nagadatta* was, in course of time, carried away by the hurrying messen- 5 gers of Death. In *Kausambi* there was *Vasumati* the agreeable wife of king *Vasupala*. *Nagadatta* was born her daughter exceedingly beautiful. At her birth, the mother *Vasumati*, by the ripeness of *Karma*, was overtaken by a serious desease. So, the king placed her in a box and threw it in the current of the Jumna. Being made of precious stones, it shone forth brightly on the 10 dark waters of the Jumna, like the brilliant jewel on the crest of the female serpent. It moved on from its place.

13. There was another (box) made of wood in which the first one was concealed. As it was beautifully made without any leak, it fell into the Ganges being carried by the current. At places, it wavered by the waves, at places, it fell into a whirl-pool and at places it floated on very smoothly, thus exhibiting the beauty of a boat on the wide sea. After some days, it reached 5 *Kusumapura* where lived the gardener's wife *Kusumadatta*. She went to the Ganges for water and saw the box floating on. Taking it out, she went home with it. Both of them stood delighted with great expectations. As they opened it and looked in, they saw a female child wrapped in a jewelled shawl. In course of days, she attained youth and fell into the sight of your father. 10 She, who had become known amongst people by the name of *Padmavati*, charming by the lustre of her body and very smooth, was married by your father, and, in time, you came into her womb. On that occasion, she mounted on the great elephant and rode about the town. The elephant, bearing the old infatuation, carried her off trembling with fear. 15

14. She escaped from it some how and went to the dreadful garden. A certain gardener took her home, but his wife soon quarrelled with her.

Afflicted with grief, she went to the cemetery where you were born. I have told you the facts. Listen now to the account of *Madanavali*; mysterious is the destiny of creatures. Having obtained birth in the species of dove, she became a female-pigeon pleasing to the eyes. Feedings on curds and boiled rice in the cage, as she lived sporting with her mate, there came a snake gliding, as if the dreadful god of death had arrived. Both of them were caught by the legs by it, but you kindly rushed and saved them. By the *Navakara*, she has been born in her who has her affections fastened on you. The pigeon and the snake bacame *Khecaras* on account of the Navakara obtained from a sage. Out of jealousy did the snake *Khecara* carry away your wife to his own home.

15. Whatever you asked me, oh king, I have told you to my ability." Hearing that, the king was wonderstruck and thought in mind of practising austerities. In the mean while, *Padmavati* arrived where the sage was revealing the charming religion. She adored the sage devoutly bending her head and called out her son in sweet tone. Then she asked the sage who was the embodiment of knowledge "Tell me oh master, of some religious practice which may serve as a strong bolt to the house of misery and hell and by means of which my female sex may be changed." To her who was afraid of the great ocean of existence, who had abandoned all pleasures and numerous comforts, and who was feeling miserable, the great ascetic compassionately preached the religious practice that may lead to happiness and prosperity. "Beginning with the first (of the month) whoever would observe fast always, oh daughter, would realise the happiness desired in his heart and enjoy sportively on the heavenly couch.

16. By fasting on the first (of the month) the first heaven is attained; by fasting on the second the second class of gods is achieved. By a fast on the third, residence in the third heaven is secured and by the fourth a happy abode in the fourth is obtained. The fifth gives happiness in the fifth, and the fast on the sixth leads to the sixth heaven. One goes to the seventh heaven by a fast on the seventh and to the eighth by one on the eighth. Then, by a fast on the ninth. the ninth, world of the gods is obtained and by one on the tenth, one gets enjoyment in the tenth. By a fast on the eleventh one goes to the eleventh heaven and by one on the twelfth to the twelfth. The thirteenth brings one into the thirteenth and the fourteenth secures the fourteenth. The fifteenth shows the fifteenth and the sixteenth fast brings it to a conclusion. He, who takes his food and drink after this, having performed the pleasant worship of the Jina, he, having climbled by these steps, certainly follows up the lady salvation.

17. This ceremony should be completed devoutly with a pleased mind, dressed in a fine, red and bright garment. Having worshipped the path to happiness, and placing a jar in front, covering it also with a new and beautiful cloth, it should be worshipped with all the materials of worship by offering them into it. Then, placing a religious book there and observing sleeplessness by the trumpet, bestowing the four kinds of gifts on the deserving recipients, the book, should be worshipped and the Jina bathed. You should honour this (ceremonial). Sixteen canopies and flags jingling with small bells, should

be presented to a Jina temple. By the fast of this beautiful vow you shall obtain all your desired happiness." 10

18. Again, she asked the great sage who had brought the lord of gods to his lotus-feet "Oh excellent sage, has any one observed this any where and obtained the fruit of the vow ?" Hearing that, the lord of sages spoke so that the doubt of her mind might be removed "*Sumitra* the young daughter of the king of *Ujjaini* took this vow in her mind. At the first fast she died and was 5 born in the home of a Brahmana in *Ujjaini*. By observing the fast for two *Ghatikas* only, she changed her miserable female sex. While the child was yet in wômb, the father died. The mother looked after all his happiness. One day, the mother quarrelled and expelled her son from home, Feeling angry, he went out of the town and lodged in an old temple at night. There came a 10 multitude of *Vidyadhara* women, seeing whom he felt excited.

19. He caught the border of the garment of one of them. All of them fled away by his fear. But the garment fell into his hand. The hero then returned home. The mother welcomed him and took the cloth to a big merchant. The merchant purchased it for money and presented the excellent cloth to the king. The king asked him "Have you got another ? If you bring one more 5 I shall give you an elephant." He said "The son of the Brahmana might bring another such cloth, oh lord !" The king sent him out with money. The Brahmana went back to the forest. There he saw a *Rakshasa* woman sharpening a cutter with her hand. Knowing her to be a *Rakshasa* woman, the Brahmana stretched his stick over her head. The *Rakshasa* woman, then, folding her 10 hands, stood in front of the Brahmana, shaking with fear, and said—

20. "I have committed no crime; why have you got enraged with me ?" The Brahmana spoke unpleasant words to her "This stick devours hundreds of *Rakshasa*." With scared eyes and trembling with fear, she clung to his feet atonce, "Do not beat me, lord; hold back. I shall do all that you say." He then made her assume a beautiful appearance and brought her 5 home. Having secured the cloth from her, he presented it instantly to the king. Seeing that, the king was pleased with him and bestowed a great favour upon him. Observing that, the minister—Brahmana thought of destroying his life. The minister went to the dear wife of the king and told her "Ask for tiger-milk." Then she instantly took her bed. 10

21. Hearing about the condition of the queen, the king immediately went to her. She told that to the king who commissioned the good Brahmana for it. The Brahmana went home and instantly turned the *Rakshasa* woman into a tigress with a rope fastened to her neck. He brought her to the palace and presented her to the king instantly. At her sight, all people fled away. 5 (The Brahmana said) "Your minister shall milk her well." The minister, being terrified, told the king "There is no purpose of the milk; let it go away." Then the minister, in secret consultation, told the queen soon again. "You ask for speaking water to be brought. Do it so, that, being gone, he may never return." Then she said "Listen, oh king; get soon speaking water." Hearing 10

that the king told the Brahmana "It is for you to devise means for the accomplishment of this mission."

22. He brought the *Rakshasa* woman turning her into water and made it to speak in front of the king. It said "I would eat away both persons, the minister and the queen, oh king!" Hearing this, the king felt wonder-struck and asked the Brahmana about it all. He told the doings of the minister, and the king turned out the wicked one. The king then made the Brahmana his minister and the people of the town were satisfied with it. On a subsequent day, the good Brahmana retired for austerities and entered the portals of heaven. He was reborn as *Arjuna*. This is the fruit of the ceremonial, oh daughter!" She then accepted it immediately and observed it with devotion to lord Jina. As an inviolable fruit of the vow, the lovely lady set aside her female sex, and then renouncing the world, died and soon entered heaven. 5 10

23. In the meanwhile, Karakanda, when he heard of this, felt highly grieved. He clung to the feet of the Jina, became afraid of the afflictions and felt detached from the world. "I have, for long, been devoured by the succession of sorrow, birth and death, the home of sin." Then he said to the worshipful, compassionate sage "My foot has touched the Jina image. Prescribe some expiation for the sin and nullify the crime quickly. Release me, oh holy sir, so that I may practise penance and vanquish the great warriors, anger and others. The sage kindly accepted (his prayer). Karakanda transferred the kingdom to *Vasupala*, and, being weary of the great miseries of the world, took to the practice of austerities. He plucked off his curly hair as if they were the gliding serpents the *Karmas*. Counting all the inmates of the harem as straw, he removed the clothes from his body. When he took the vow of austerities leaving aside the feudatories, ministers and the earth, the fact was reported into the town by some one who came in heavy with sorrow. 5 10

24. Then *Madanavali* got up restraining herself and abandoning the necklace. *Rativega* ran beating her breasts and regarding her camphorbox as straw. *Kusumavali* threw away the flowers, and *Ratnavali* ceased to wear the pearls. *Anangalekha* left aside her jewels and walked away, while *Candralekha* lost the lustre of her body in a moment. All the queens ran up and stood before the sage, being attached to the king. But seeing the king, they became peaceful and stood there folding their hands. They requested the sage "Recommend hard vows to us, oh master! we shall practise austeries." The sage gave them the liberty and they who had suppressed Cupid, accepted the vow. Having practised hard penance, they all went to heaven; while Karakanda, thinking of the Jina in his heart, toured from country to country. 5 10

25. Then, he, who was disgusted with the pleasures of the senses and was weary of the ocean of metem-psychosis (practised the vow) famous in the world by the name of *Panca-kalyana-vidhana* in the presence of which ignorance, vanishes, by practising which the mind becomes steady, by which people become mighty and religious like *Baladeva* and *Narayana*, by performing which people become lords of gods, serpents and men and even passionless *Jina*, 5

through which all good fortunes are attained, by means of which one advances to the stage of supreme knowledge, by which people become heart-winning *Kamadevas* and cross over the entire ocean of virtues, by which unblemished faith is held and the damsel salvation is easily achieved, which is a sheath 10 (i. e. remedy) against the abode of miserable hell, by obtaining which one can obtain supreme knowledge, and which has been declared by the great sages enjoying supreme knowledge as the foremost of all forms and ceremonies.

26. He performed what the sole emperor had performed with bent head i. e. five baths to the Jina with hundreds of jars full of boiled butter, curds and milk, giving three baths during the day and two at night, along with the sound of trumpets and shouts of victory that filled the earth. He performed the auspicious rite of 'Coming into the womb' with joy, on the first of the 5 dark fortnight of the month of *Bhadrapada*. He, of gentle conduct, observed a fast on that day for the sake of perfection. During night, the form called 'Devotion to the perfected' was observed as well as the 'Devotion to right conduct.' After that, he performed the 'Devotion to the Scriptures' destructive of future worldly existence. Then the good form of the 'Renunciation of the 10 body' was observed by the repetition of the sacred formula two hundred times. Then, on the fifth day, he observed the potent vow of the 'Holy Birth.' The aforesaid, pleasant and virtuous ceremony was rehearsed. Having observed a fast on the misery-removing eighth day, the bright ceremony of 'Renunciation' was performed accompanied by the 'Devotion to Self-concentration.' Again, 15 on the tenth day, he performed the ceremony of 'Supreme knowledge' as said above, together with the 'Devotion to Scriptures' which is the abode of all happiness. Having devoutly observed a fast on the fourteenth, the ocean of virtues performed the ceremony of the fifth auspicious rite which is resplendent with the eight foremost qualities and which holds numerous merits. The last 20 muttering of the prayers was done two hundred and eight times. This foremost vow was observed by him bearing great delight in his heart. Whichever other wise man does the same, causes his fame to go round the earth.

27. Performing severe penance, the meritorious religious meditation was observed three times a day under different trees. Breaking off dishonesty, pride and attachment, he cast, at a distance, greed. Restraining the actions of the five senses, considering mind, speech and body as straw, observing self-restraint of the two kinds, setting his heart upon the highest status, consuming 5 the tree of *Karma* in the fire of meditation so that misery may not become visible even in dream, valuing gold as a heap of grass and sandal as mud, he warded off his eyes that arouse passion by fixing them on his nose. Uniting himself to supreme knowledge which is devoid of parts like the clear sky, he found his self in himself, and, breaking the ties of *Karmas*, he soon attained to 10 the region of 'All desires fulfilled', by the fruit of the vow now recommeneded by Sage Kanakamara.

28. By me born in an old Brahmana family, of the *gotra* of the sage *Candra*, pure, become skyclad through the growth of ascetic spirit, whose name

has become well-known as Kanakamara, the pupil of ***Budhamangaladeva***, and who has caused satisfaction to the minds of people, has this life been published on earth for the training and pleasure of the faithful, out of devotion 5 to the lotus-feet of the *Jina*, having arrived in the town of *Asai* and living there. Whatever has been said by me, ignorant of the sacred books, wise people might proclaim with more beauty. I have expressed myself to those gentlemen whose mind is ever ready to help others. I ask with folded hands. Let all forgive me for my (boldness in) composing this work. Whoever reads, listens 10 to, reflects upon in mind and popularises among people, this life, that man, the ornament of the world, shall obtain the glorification of his own virtues.

29. Who, in course of days, attained fresh youth as if a god had dropped down from a celestial car, who was golden in appearance and had charming limbs, to whom king *Vijavala* was attached, who had nourished in himself the great tree of righteousness, who was, as if, the mouth-piece of *Vijavala*, who vanquished invincible foes easily, who. used to divert his mind with 5 elephant-sport, who was the supporter of his relations, dear ones and friends, who was a charm to the mind of king *Bhuvala*, who removed the miseries of the poor and helpless, who amused the mind of king *Karna*, who perturbed the king's assembly by his speech, who charmed the king by his business-ability, who was extremely courageous in a great fight, who was well known to people 10 as in no way a coward and dullard, who was a shower of gold-bracelets, who fulfilled the desires of the panegyrists, who was a bee on the lotus-feet of *Jina*, who was beautiful to the eyes in his whole person, who was never forgotten by the minds of sportive women, who was addressed by people as a stream of good nature whose fame was never tired of wandering about, and in recounting 15 whose virtues the goddess of speech felt diffident, he had as his sons, Ahula, Ralho and Rahula who were eager for the feet of sage Kanakamara. Out of regard for him I published this pleasant life amongst people. May he, along with his kinsmen, children and wife, enjoy long, as long as the sun and the moon subsist. 20

Here ends, in the life of the great king *Karakanda*, composed by Sage *Kanakamara*, which is an ornament to the ears of the holy and which presents the richness of the fruit of the desire-giving tree of the five auspicious rites, the tenth chapter describing the achievement of *Sarvarthasiddhi* by Karakanda.

SECTION X.
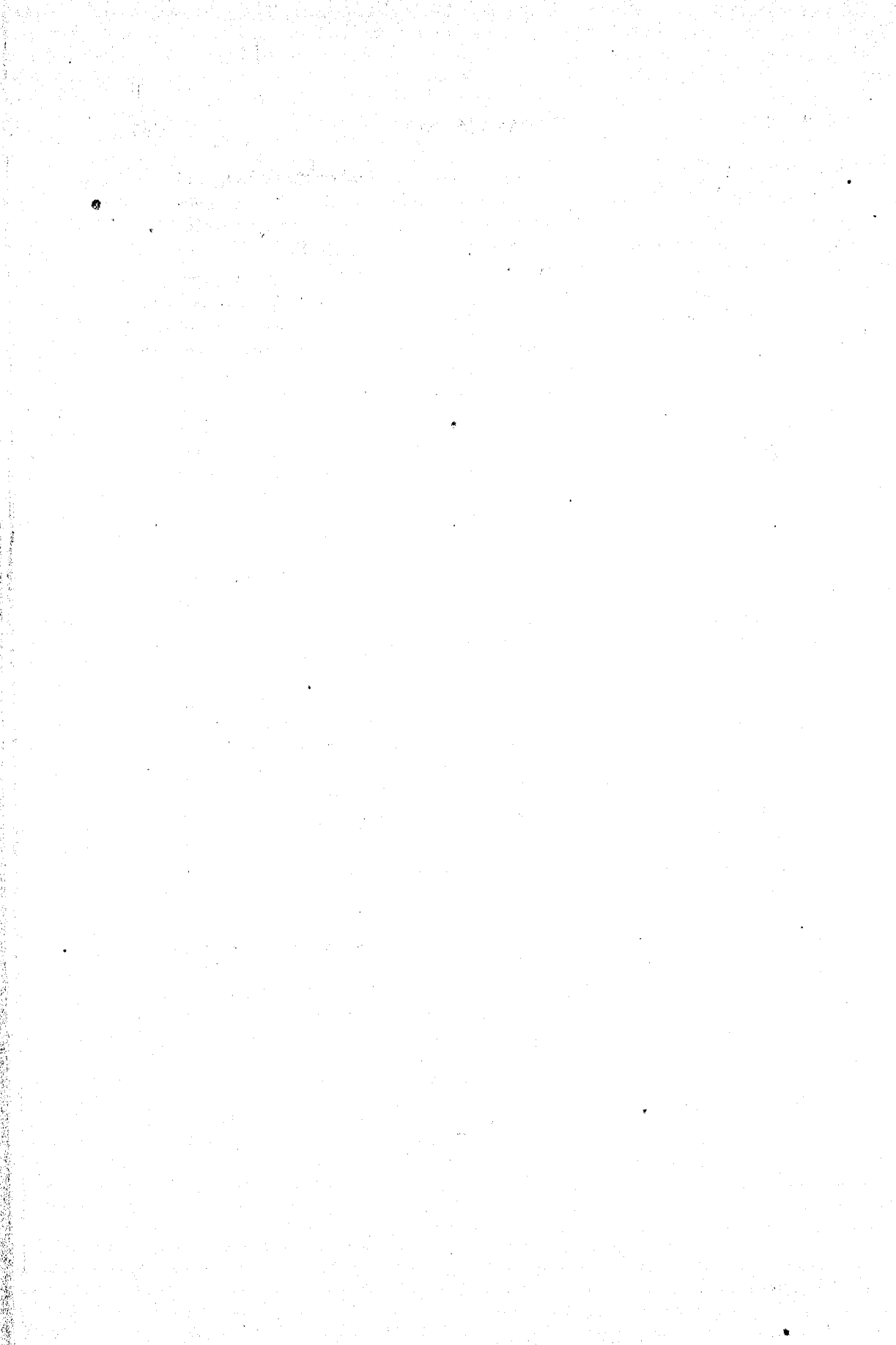
APPENDIX A.

करण्डू राजा

[Extract from कुम्भकार–जातक in Jataka Vol. III]

अतीते बाराणसियं ब्रह्मदत्ते रज्जं कारेन्ते बोधिसत्तो बाराणसिनगरस्स द्वारगामे कुम्भकारकुले निब्बत्तित्वा वयप्पत्तो कुटुम्बं सण्ठपेत्वा एकं पुत्तञ्च धीतरञ्च लभित्वा कुम्भकारकम्मं[1] निस्साय पुत्तदारं[2] पोसेसि[3]। तदा कालिङ्गरट्ठे दन्तपुरनगरे[4] करण्डु[5] नाम राजा महन्तेन परिवारेन उय्यानं गच्छन्तो उय्यानद्वारे फलभारभरितं मधुरफलं अम्बरुक्खं दिस्वा हत्थिक्खन्धगतो[6] येव हत्थं पसोरत्वा एकं अम्बपिण्डं गहेत्वा उय्यानं पविसित्वा मङ्गलसिलाय निसिन्नो दातब्बयुत्तकानं दत्वा अम्बं परिभुञ्जि। रञ्ञा गहितकालतो पट्ठाय सेसेहि नाम गहेतब्बमेवा ति अमच्चापि ब्राह्मणगहपतिकादयो पि अम्बानि पातेत्वा खादिंसु। पच्छा पच्छा[7] आगता रुक्खं आरुय्ह मुग्गरेहि पोथेत्वा ओभग्गवि-भग्गसाखं कत्वा आमकफलं[8] पि असेसेत्वा खादिंसु। राजा दिवसं उय्याने[9] कीळित्वा सायण्हसमये अलंकतहत्थिक्खन्धे[10] निसीदित्वा गच्छन्तो तं रुक्खं दिस्वा हत्थितो ओतरित्वा रुक्खमूलं गन्त्वा रुक्खं ओलोकेत्वा "अयं पातो व पस्सन्तानं अतितित्तिकरो फलभारभरितो सोभमानो अट्ठासि, इदानि गहितफलो ओभग्गविभग्गो असोभमानो ठितो" ति चिन्तेत्वा पुन अञ्ञतो ओलोकेन्तो अपरं निप्फलं अम्बरुक्खं दिस्वा "एस रुक्खो अत्तनो निप्फलभावेन मुण्डमणिपब्बतो विय सोभमानो ठितो, अयं पन फलितभावेन[11] इमं व्यसनं पत्तो, इदं अगारमज्झम् पि फलितरुक्खसदिसं पब्बज्जा निप्फलरुक्खसदिसा सधनस्सेव भयं अत्थि[12] निधनस्स भयं नत्थि, मयापि निप्फलरुक्खेन विय भवितब्बं" ति फलरुक्खं आरम्मणं कत्वा रुक्खमूले ठितको व तीणि लक्खणानि सल्लक्खेत्वा विपस्सनं वड्ढेत्वा पच्चेकबोधिञाणं निब्बत्तेत्वा "विद्धंसिता[13] दानि मे मातुकुच्छिकुटिका छिन्ना तीसु भवेसु पटिसन्धि, सोधिता संसारुक्कारभूमि, सोसितो[14] अस्सुसमुद्दो, भिन्नो[15] अट्ठिपाकारो[16], नत्थि मे पुन पटिसन्धी" ति आवज्जन्तो[17] सब्बालंकारपटिमण्डितो[18] व अट्ठासि। अथ नं अमच्चा आहंसु "अतिबहुं ठित अत्थ महाराज" ति। "न मयं राजानो[19] पच्चेकबुद्धा नाम मयं" ति। "पच्चेक-बुद्धा[20] नं तुम्हादिसा होन्ति देवा" ति। "अथ कीदिसा होन्ती" ति। ओरोपितकेसमस्सुकासाव-वत्थपटिच्छन्ना कुले वा गणे वा अलग्गा वातच्छिन्नवलाहकराहुमुत्तचन्दमण्डलपटिभागा[21] हिमवति नन्दमूलपब्भारे वसन्ति, एवरूपा देव पच्चेकबुद्धा" ति। तस्मिं खणे राजा हत्थं उक्खिपित्वा सीसं परामसि तावदेवस्स गिहिलिङ्गं अन्तरधायि समणलिङ्गं पातुरहोसि—

तिचीवरञ्च पत्तो च वासि सूचि च बन्धनं।
परिस्सावनेन अट्ठेते युत्तयोगस्स भिक्खुनो ति ॥

---

१ °रकुलं २ °दानं. ३ पे°. ४ नन्द°. ५ करण्डको. ६ °क्खन्धवरगतो. ७ only one पच्छा. ८ आमफलं. ९ °नं. १० °न्धवरे. ११ सफलभा°. १२ omit अत्थि. १३ विध°. १४ सोधिता. १५ छिन्दो. १६ अस्सा°. १७ °ज्जेन्तो. १८ पटि°. १९ महारा°. २० नाम. २१ °लाहका°; लाहतराहुमुखामु°.

एवंवुत्ते[1] समणपरिक्खारा कायपटिबद्धा[2] व अहेसुं। सो आकासे ठत्वा महाजनस्स ओवादं दत्वा अनिलपथेन उत्तरहिमवन्ते नन्दमूलपब्भारमेव अगमासि।

× × ×

करण्डु[1] नाम कलिंगानं गन्धारानं च नग्गइ।
निमिराजा विदेहानं पंचालानं च दुम्मुखो।
एते रट्ठानि हित्वान पब्बजिंसु अकिंचना॥
सब्बेपिमे[2] देवसमा[3] समागता। अग्गी[4] यथा पज्जलितो तथेविमे[5]॥
अहं पि एको[6] चरिस्सामि भग्गवि[7]। हित्वान कामानि यथोधिकानी ति[8]॥

[तासं अत्थो। भद्दे एस संघत्थेरपच्चेकबुद्धो दन्तपुरे नाम नगरे करण्डु[9] नाम कलिंगानं जनपदस्स राजा···।]

TRANSLATION.

Once upon a time when Brahmadatta was reigning in Benares, the Bodhisatta was born in a potter's family in a suburb of Benares: when he grew up he became a householder, had a son and daughter, and supported his wife and children by his potter's handicraft. At that time in the Kalinga kingdom, in the city of Dantapura, the king named Karandu, going to his garden with a great retinue, saw at the garden-gate a mango tree laden with sweet fruit: he stretched out his hand from his seat on the elephant and seized a bunch of mangoes: then entering the garden he sat on the royal seat and ate a mango, giving some to those worthy of favours. From the time when the king took one, ministers, brahmins and householders, thinking that others should also do so, took down and ate mangoes from that tree. Coming again and again they climbed the tree, and beating it with clubs and breaking the branches down and off, they ate the fruit, not leaving even the unripe. The king amused himself in the garden for the day, and at evening as he came by on the royal elephant he dismounted on seeing the tree, and going to its root he looked up and thought, " In the morning this tree stood beautiful with its burden of fruit and the grazers could not be satisfied: now it stands not beautiful with its fruit broken down and off." Again looking from another place he saw another mango tree barren, and thought, " This mango tree stands beautiful in its barrenness like a bare mountain of

---

१ वुत्ता°. २ काये.

१ करकण्ड. २ °वमे; °पिमे. ३ omit समा. ४ all four MSS °ग्गि. ५ °पिमे. ६ एको व; एको वि; एको वस्सा. ७ अग्गवि; अग्गिवं. ८ यतोठितानि; सतोचदितानीति; ९ करकण्डको.

jewels; the other from its fruitfulness fell into that misfortune: the householder's life is like a fruitful tree, the religious life like a barren tree: I too would be like the barren tree." So taking the fruit-tree as his subject, he stood at the root; and considering the three (impermanence, suffering, unreality) properties and perfecting spiritual insight, he attained pacceka-buddha-hood, and reflecting "the envelope of womb is now fallen from me, rebirth in the three existences is ended, the filth of transmigration is cleansed, the ocean of tears dried up, the wall of bones broken down, there is no more rebirth for me," he stood as if adorned with every ornament. Then his ministers said, " You stand too long, O Great King !" " I am not a King, I am a pacceka-buddha. " " Pacceka-buddhas are not like you, O king. " " Then what are they like ?" "Their hair and beards are shaved, they are dressed in yellow robes, they are not attached to family or tribe, they are like clouds torn by wind or the moon's orb freed from Rahu, and they dwell on Himalaya in the Nandamula cave: such, O king, are the pacceka-buddhas.' At that moment the king threw up his hand and touched his head, and instantly the marks of a householder disappeared, and the marks of a priest came into view:—

Three robes, bowl, razor, needles, strainer, zone,
A pious brother those eight marks should own.

The requisites, as they are called, of a priest became attached to his body. Standing in the air he preached to the multitude, and then went through the sky to the mountain cave Nandamula in the upper Himalaya.

× × ×

Kalinga's king Karandu, Gandhara's Naggai,
Pancala's ruler Durmukha, Videha's great Nimi,
Have left thrones and lived the life of Brothers sinlessly.

Here the godlike forms they show.
Each one like a blazing fire:
Bhaggavi, I too will go.
Leaving all that men desire.

APPENDIX B.

क र क ण्डू रा या

[The story occurs in Devendra's commentary on Uttaradhyayana Sutra. It is reproduced here from Jacobi's Ausgewahlte Erzahlungen in Maharashtri. The translation is reproduced from J. J. Meyer's Hindu Tales.]

तत्थ करकण्डू। चम्पाए नयरीए दहिवाहणो राया। तस्स चेडग–धूया पउमावई देवी। अन्नया य तीसे दोहलो जाओ। किहाहं[1] रायनेवच्छेनं[2] नेवच्छियों महारायधरियछत्ता उज्जाणकाणणानि[3] हत्थिखन्धवरगया विहरेज्जा। सा उ लुग्गा जाया, राइणा पुच्छिया, कहिओ सब्भावो ताहे, राया सा य जयहत्थिमि आरूढाइं[4] राया छत्तं धरेइ गया उज्जाणं। पढमपाउसो य तया वट्टइ। सीयलएणं[5] सुरहि-गन्ध-मट्टिया-गन्धेणं हत्थी[6] अज्झाहओ वणं संभरेइ। करी वि पयत्तो वणाभिमुहो पयाओ पहाओ जणो न तरइ पिट्ठओ[7] ओलग्गिउं। दो वि अडविं पवेसियाइं[8] राया वडरुक्खं पेच्छइ[9] देविं भणइ। एयस्स वडस्स हेट्ठेण[10] जाहिइ तओ तुमं साहं गेण्हेज्जासि। ताए पडिसुयं। न तरइ गेण्हिउं। राया दक्खो तेण साहा गहिया। सो उत्तिण्णो निराणन्दो किंकायव्वयामूढो गओ चम्पं।

सा य पउमावई नीया निम्माणुसिं अडविं। जाव तिसाइओ ताव पेच्छइ तलागं महइ-महालयं हत्थी। तओ तत्थ ओइण्णो अभिरमइ। इमा वि सणियं सणियं ओइण्णा करिणो उत्तिण्णा[11] तलागाओ। दिसाओ न जाणइ। भयभीया समन्तओ तं वणं पलोएइ। तओ अहो कम्माण परिणई जेण अतक्कियमेव एरिसं वसणमहं पत्ता। ता किं करेमि[12] का मे गइ त्ति सोयं[13] परव्वसा रोविउँ पयत्ता। खणमेत्तेण काऊण धीरयं चिन्तियं तीए। न नज्जइ, बहुदुट्ठसावयसंकुले एयंमि भीसणे वणे किं पि हवइ। ता अप्पमत्ता हवामि। तओ कयं चउसरणं गमणं गरहियाइं दुच्चरियाइं खामिओ सयलजीवरासी, कयं सागारं भत्तपच्चक्खाणं।

जइ मे होज्ज पमाओ इमस्स देहस्सिमाए वेलाए।
आहारमुवहिदेहं चरिमे समयंमि वोसिरियं[14] ॥

तओ पंचनमोक्कारो मे सरणं, जओ सो चेव इहलोग-परलोगेसु कल्लाणावहो। भणियं च—

वाहि-जल-जलण-तक्कर-हरि-करि-संगाम-विसहर-भयाइं।
नासन्ति तक्खणेणं नवकार-पहाण-मन्तेणं ॥
न य तस्स किंचि पहवइ डाइणि-वेयाल-रक्खस-मारि-भयं।
नवकार-पहावेणं नासन्ति य सयल दुरियाइं ॥

---

१ किला°. २ °त्थ°. ३ °णे. ४ °आ. ५ सीया°. ६ ओं.°७ °आ. ८ °आ. ९ °वख°. १० हेट्ठ°. ११ ओइण्णा. १२ add कत्थ गच्छामि. १३ mss. साय. १४ add सव्वं तिविहेण वोसिरियं.

तहा:—

हिययगुहाए नवकारकेसरी जाण संठिओ निच्चं।
कम्मट्ठगण्ठि दोघट्टघट्टयं ताण परिनट्ठं॥

तओ नवकारमणुसरन्ती पविट्ठा एगदिसाए। जाव दूरं गया ताव दिट्ठो एगो तावसो। तस्स मूलं गया अभिवाइओ सो। पुच्छिया तेण कओ सि, अम्मो, इहागया। ताहे कहेइ अहं चेडगस्स धूया, जाव हत्थिणा आणीया। सो य तावसो चेडगस्स नियल्लओ। तेण आसाइया मा बिहेहि[1] त्ति। भणिया य मा सोयं करेहि ईइसो[2] चेव संजोगविओगहेऊ जम्म-मरण-रोग-सोग-पउरो असारो संसारो। वणफलेहिं अणिच्छन्ती वि काराविया पाणवित्तिं[3] नीया वसिमं[4] भणिया य एत्तो परेण हलकिट्ठा भूमि तं न अक्कमामो अम्हे। एसो दन्तपुरस्स विसओ दन्तवक्को य एत्थ राया। ता तुमं निब्भया गच्छ एयम्मि नयरे। पुणो सुसत्थेण गच्छसु[5] चम्पं ति। नियत्तो तावसो। इयरा पविट्ठा दन्तपुरं, गया पुच्छन्ती साहुणीमूलं। वन्दिया पवत्तिणी। पुच्छिया कओ[6] साविगा। कहियं तीए जहट्ठियं। परुण्णा मणागं संठविया पवत्तिणीए महाणुभावे, मा कुणसु चित्तखेयं अलंघणिओ हु विहिपरिणामो। जओ:—

विहाडवइ घडियं पि हु विहडियमवि किंचि संघडावेइ।
अइनिउणो एस विही सत्ताण सुहासुहक्क[7]रणे॥

किं च—

खणदिट्ठनट्ठविहवे खणपरियट्टन्तविविहसुहदुक्खे।
खणसंजोगविओगे संसारे नत्थि किं पि सुहं॥
जेणं चिय संसारो बहुविहदुक्खाण एस भण्डारो।
तेणं चिय इह धीरा अपवग्गपहं पवज्जन्ति॥

एवमाई[8] अणुसासिया संवेगमुवगया ताणं चेव मूले पव्वइया। पुच्छियाए वि दिक्खाए अदाणभएण गब्भो न अक्खाओ। पच्छा णाए[9] मयहरियाए सब्भाओ कहिओ। पच्छन्नं धरियो[10] पसूया समाणी सह नाममुद्दाए कम्बलरयणेण य सुसाणे छड्डेइ। पच्छा मसाणपालेण गहिओ भज्जाए अप्पिओ। अवकिण्णओ[11] त्ति नामं कयं। सा य अज्जा तीए पाणीए समं मेत्तिं करेइ त्ति। सा अज्जा ताहिं संजईहिं पुच्छिया कहिं गब्भो। भणइ मयगो जाओ, ता मे उज्झिओ। सो तत्थ संवड्ढइ। ताहे दारगरूवेहिं समं रमइ। सो ताणि[12]डिम्भरूवाणि भणइ अहं तुब्भं राया, मम करं देह। लुक्खकच्छूए गहिओ। ताणि भणइ ममं[13] कण्डूयह। ताहे से करकण्डु त्ति नामं कयं। सो य ताए संजईए अणुरत्तो। सा य से मोयए देइ, जं वा भिक्खं लद्धं लहेइ[14]।

संवड्ढिओ सो सुसाणं रक्खइ। तत्थ दो संजया केणइ कारणेण अइगया; जाव एगत्थ कुडंगे दण्डगं[15] पेच्छन्ति। तत्थ एगो दण्डलक्खणं जाणइ, जहा:—

---

१ °हे. २ ईएसो, ३ mss. °वित्ती. ४ तापसाश्रमं. ५ गच्छेज्जासु. ६ कुओ. ७ °हं क°. ८ पमाइ. ९ mss. नाए, verb. महयरियाए. १० पच्छण्णा. ११ अवकण्णिओ. १२ डिक्क, दिव्व. १३ मम. १४ °भ°. १५ दण्डं.

एगपव्वं पसंसन्ति दुपव्वा कलहकारिया । तिपव्वा लाभसंपन्ना चउपव्वा मारणन्तिया ॥१॥
पंचपव्वा उ जा लट्ठी पन्थे कलहनिवारिणी । छपव्वा य आयंको सत्तपव्वा अरोगिया ॥२॥
चउरंगुलपइट्ठाणा अड्ढंगुलसमूसिया । सत्तपव्वा उ जा लट्ठी मत्तगयनिवारिणी ॥३॥
अट्ठपव्वा असंपत्ती नवपव्वा जसकारिया । दसपव्वा उ जा लट्ठी तहियं सव्वसंपया ॥४॥
वंका कीडक्खइया चित्तलया पोलया[1] य दड्ढाय । लट्ठी य उब्भसुक्का[2] वज्जेयव्वा पयत्तेण ॥५॥
घणवड्ढमाणपव्वा निद्धा वण्णेण एगवण्णा य । एमाइ लक्खणजुया पसत्थ लट्ठी मुणेयव्वा ॥६॥

तओ तेण भणियं जो[3] एयं दण्डगं[4] गेण्हिस्सइ सो राया होहिइ; किंतु पडिच्छियव्वो[5] जाव अन्नाणि चत्तारि अंगुलाणि वड्ढेइ ताहे जोग्गो त्ति । तं तेन मायंगचेडगेणं[6] सुयं एक्केण य धिज्जाइएण । ताहे सो धिज्जाइओ अप्पसारियं तस्स चउरंगुलं खणिऊणं छिन्देइ । तेण य चेडगेणं दिट्ठो सो उद्दालिओ । सो तेण धिज्जाइएण करणं नीओ । भणइ, देहि दण्डगं । सो भणइ, मम मसाणे एस वड्ढिओ अओ न देमि । धिज्जाइओ भणइ, अन्नं गेण्ह । सो नेच्छइ । सो दारगो न देइ । तेहि सो दारगो पुच्छिओ किं न देसि । भणइ यः अहं एयस्स दण्डगस्स पहावेण राया होहामि त्ति । ताहे कारणिया हसिऊण भणन्ति, जया तुमं राया होज्जासि तया तुमं एयस्स गामं देज्जासि । पडिवन्नं तेण । धिज्जाइएण वि अन्ने धिज्जाइया भणिया, जहा एवं मारेत्ता दण्डगं हरामो । तं तस्स पिउणा सुयं । ताणि तिण्णि वि नट्ठाणि जाव कंचणपुरं गयाणि । तत्थ राया अपुत्तो मओ । आसो अहियासिओ तस्स बाहिं[7] सुयन्तस्स मूलमागओ पयाहिणी काऊण ठिओ । जाव आयरेणं नायरा पेच्छन्ति लक्खणजुत्तं जयसद्दो कओ नन्दीतूरमाहयं । इयो वि जम्भन्तो उट्ठिओ । वीसत्थो आसे विलग्गो पवेसिज्जइ । मायंगो त्ति धिज्जाइया न देन्ति पवेसं । ताहे तेण दण्डरयणं गहियं । तं जलिउमाढत्तं । ते भीया ठिया । ताहे तेण वाडहाणगा हरिएसा धिज्जाइया कया । उक्तं च—

दधिवाहनपुत्रेण राज्ञा च करकण्डुना ।
वाटधानकवास्तव्याश्चाण्डाला ब्राह्मणीकृताः ॥

तस्स य घरनामं अवकिण्णगो[8] त्ति अवहीरिऊण तेहिं चेव चेडगकयं पइट्ठियं करकण्डु त्ति । ताहे सो धिज्जाइओ आगओ देहि मम गामं । भणइ : जो ते रुच्चइ ते गेण्हह । सो भणइ : ममं चम्पाए घरं ता तीए विसए देहि । ताहे दहिवाहणस्स लेहं देइ : एयस्स बम्भणस्स दिज्जे एगं गामं[10] । अहं तुज्झ, जं रुच्चइ, गामं वा नगरं वा देमि । सो रुट्ठो : दुट्ठमायंगो अप्पाणं न याणइ त्ति । दूएण पडियागएण कहियं । करकण्डू कुविओ । चम्पा रोहिया जुद्धं वट्टइ । ताहे[11] संजाईए सुयं । मा जनक्खओ होहि त्ति मयहरियं[12] आपुच्छिऊण गया तं नयरं । करकण्डुं उस्सारित्ता[13] रहस्सं भिन्देइ[14] एस तव पिय त्ति । तेण ताणि अम्मापियरो पुच्छियाणि । तेहिं सब्भावो कहिओ माणेणं न ओसरइ । ताहे सा चम्पं अइगया रन्नो घरं अईइ, नाया पायवडियाओ दासीओ परुण्णाओ[15] । राइणो[16] विसुयं । सो वि आगओ । वन्दित्ता आसणं दाऊण तं गब्भं पुच्छइ । सा भणइ एसो जेण रोहियं नगरं । तुट्ठो निग्गओ मिलिओ । दो वि रज्जाणि तस्स दाऊण दहिवाहणो पव्वइओ ।

---

१ पोल्लरा, २ उज्झ. ३ ओमेयं. ४ दण्डं. ५ परिच्छियव्वओ. ६ दारगेण, add भण्णमाणं. ७ बाहिं. ८ णो. ९ कण्णिगो. कन्नगो. १० देहि मम एगं गामं. ११ ताए. १२ °हरि. १३ दूसारित्ता. १४ देइ. १५ रु°. १६ mss. रायणा.

करकण्डु य महासासणो जाओ। सो[1] किल गोउलप्पिओ अणेगाणि तस्स गोउलाणि जायाणि। जाव सरयकाले एगं गोवच्छं थोरगत्तं सेयं पेच्छइ। भणइ : एयस्स मायरं मा दुहेज्जह। जहा[2] वड्ढिओ होज्जा। तया अन्नाणं गावीणं दुद्धं पाएज्जाह। ते गावा पडिसुणन्ति। सो उव्वत्त[3]-विसाणो खन्धवसभो[4] जाओ राइणा दिट्ठो। सो जुद्धिक्कओ जाओ। पुणो कालेण राया आगओ पेच्छइ महाकायं जुण्णवसभं पड्डुएहिं परिघट्टिज्जन्तं। गोवे पुच्छइ : कहिं सो वसभो त्ति। तेहिं सो दाइओ तयवत्थो। भणियं च:—

गोट्ठंगणस्स मज्झे ढिक्कियसद्देण[5] जस्स भज्जन्ति।
दित्ता वि दरिय वसभा सुतिक्खसिंगा समत्था वि ॥१॥
पोराणयगयदप्पो गलन्तनयणो चलन्तविसमोट्ठो।
सो चेव इमो वसभो पड्डुयपरिघट्टणं सहइ ॥२॥

तं तारिसं पेच्छिय गओ विसायं। चिन्तेइ अणिच्चत्तं अहो तारिसो होउण संपइ एयारिसो जाओ एस वसभो। ता सव्वे अथिरा संसारे पयत्था। तहा हि : जो ताव भोगनिबन्धनं महामोहहेऊ य अत्थो सो अधुवो। भणियं च—

चवलं सुरचावं व विज्जुलेह व्व[6] चञ्चलं। पाआ वलग्गं पंसु व्व[7] धणं अथिरधम्मयं ॥१॥
अत्थं चोरा विलुम्पन्ति उद्दालन्ति नरेसरा। वन्तरा य निगूहन्ति गेण्हन्ति अह दाइया ॥२॥
हुयासणो डहे सव्वं जलुप्पीलो[8] विनासए। सव्वस्स हरणं चावि करेइ कुविओ जमो ॥३॥

तहा परमाणन्दहेऊ इट्ठजनसंगमो वि अणिच्चो, कहं:—

जहा संझाए रुक्खंमि मिलन्ति विहगा बहू। पन्थिया पहियावासे जहा देसंतरागया ॥१॥
पहाए जन्ति सव्वे वि अन्नमन्नं दिसन्तरं। एवं कुडु[9]म्बवासे वि संगया बहवो जिया ॥२॥
नरामरतिरिक्खाइ-जोणीसु कम्मसंजुया[10]। मच्चुप्पहाय कालंमि सव्वे जन्ति दिसो दिसि ॥३॥
जणु मत्तपमत्तउ[11] हिण्डइ पुरपहेहि[12]। मोडाउ[13] डि करन्तउ वेढिउ बहुनरेहि ॥४॥
तं जोयणु अइरेण[14] जणक्खयभंगुरं। जररोगेहिं सोसिज्जइ[15] रुक्खं तह खरउ[16] ॥५॥

तहा—

गब्भे जम्मे बालत्तणम्मि तरुणत्तणंमि थेरत्ते।
मट्टियभण्डं व जीया[17] सव्वावट्ठासु विहडन्ति ॥६॥

एमाइ चिन्तन्तो पडिबुद्धो, पत्तेयबुद्धो[18] जाओ। काउण पञ्चमुट्ठियं लोयं देवया विइण्णलिंगो विहरइ। भणियं च—

सेयं सुजायं सुविभत्तसिंगं जो पासिया वस[19]भं गोट्ठमज्झे।
रिद्धिं अरिद्धिं समुपेहियाणं कलिंगराया वि समिक्ख धम्मं ॥

---

१ abb वि. २ जया. ३ अच्चंत; उच्चित. ४ °हो. ५ ढक्किय, ढंकिय (बलवंत). ६ लेहं व. ७ पाउलग्गं पंसु, पोआव°. ८ जजु° (जलप्रवाह). ९ °डु°. १० संगया. ११ नुमत्तउ. १२ add पसण. १३ मोडातोडि. १४ अयरेण वि. १५ सिज्झइ. १६ खरं. १७ जिअया. १८ °द्धो. १९ °हं.

TRANSLATION.

Here Karakandu. In the city of Campa there reigned a king, Dahivahana. His queen was Paumavai, the daughter of Cedaga. One day this longing of a pregnant woman came upon her: "How can I divert myself riding through the parks and groves on the most excellent back of an elephant, attired in the costume of the king, having the royal parasol held over me by the great king ?" She became sick and was questioned by the king. She told him matters as they were. Then the king and she mounted his elephant of victory, the king held the royal parasol, she went to the park. It was then the beginning of the rainy season. When the elephant was touched by the odour of the fragrant-smelling earth he remembered the woods. And the elephant started towards the woods and went out of the path. The people could not keep up with him. The two entered the woods. The king saw a fig tree. He said to the queen: " He will pass under that fig tree; then you are to take hold of a bough." She promised but could not take hold. The king was prompt: he seized the bough. Joyless he descended, and perplexed as to what to do he went to Campa.

And this Paumavai was carried into a desolate wood. When the elephant was thirsty he saw a lake which had a very great basin. Then he descended to it and amused himself. But she softly dismounted from the elephant and ascended from the pond. She did not know the directions, affrighted with fear she looked at the wood on all sides. Then overpowered with distress, she began to weep: " Alas for the issue of one's acts (in a former existence), since all unexpected I have fallen into such a disaster ? Now what shall I do ? What refuge is there for me ?" In a moment she gathered strength of mind and reflected: "One does'nt know something might happen in this dreadful wood swarming with many, many, vicious, wild beasts. Therefore I shall be careful." Thereupon she made the fourfold refuge her protection, repented of her sins, asked the forgiveness of the whole host of living beings, and engaged in abstinence from delicate food.

"If any carelessness be mine with regard to this body and this time, I have now renounced food, the clinging to the world, and the body. Then the fivefold formula of worship is my refuge, for that brings welfare in this world and the next. And it is said :

"Dangers from desease, water, fire, robbers, lions, elephants, fights, and poisonous snakes vanish instantly by the supreme charm which consists of the formula of worship. And no danger from female imp, vampire, goblin, or Lamia prevails against it. And by the power of the formula of worship all calamities vanish. Thus it is said : "The assault of the elephant, the eight fetters of *karma* on those in whose innermost hearts continually abides the lion 'formula of worship', is frustrated."

Then remembering the formula of worship she pushed ahead in one direction. When she had gone far, she saw an ascetic. To hisf eet she went. She saluted him. He asked her : "Whence have you come here, good lady ?" Then she related: " I am the daughter of Cedaga and have just now been brought here by an elephant. " And that ascetic was one of Cedaga's own subjects. He comforted her : "Do not

grieve. Just such is this unsubstantial *samsara*, the cause of union and separation, full of birth, death, desease, and sorrow." With the fruits of the forest he made her sustain life against her own will, took her to his hermitage, and said to her : "From here on, the ground is tilled with the plough; we do not set foot on it. This is the territory of Dantapur; and Dantavakkha is king here. Therefore go you fearless into this town; from here again set forth most cheerfully to Campa." The ascetic returned. The other entered Dantapura. She went enquiring for a Jaina convent of nuns. She saluted the lady superior. She was questioned: " Whence comes the lady disciple ?" She told how matters stood. Crying bitterly, she was comforted a little by the superioress. 'Illustrious lady, do not give way to distress of mind. The development of one's fate can not be averted. For :

" As we know, it tears apart even what is united, and some things it unites although they are separated. Extremely dexterous is this fate in working weal and woe for beings. And, there is no happiness in the *samsara*, where greatness is seen one moment and disappears the next, where various pleasures and sorrows change in a moment, where union and separation are only matters of a moment. Because this *samsara* is a storehouse of manifold sorrows, just for that reasonwise men here betake themselves to the path of final beatitude."

Being comforted in such and similar manner she was stirred to the depths of her soul and renounced the world on the spot in their convent. And although she was asked at her consecration, she did not tell of her pregnancy, for fear they might not grant (her ordination). Later, when the matter was found out she told the truth to the abbess. Being kept in concealment she gave birth to a child and exposed it in the cemetery, together with a ring bearing a name and a jewel of a blanket. And afterwards the child was taken by the guardian of the cemetery and handed over to his wife. They named the boy Avakinnaya (Castaway). And this noble lady became a friend of this Candala woman. And this noble lady was questioned by the nuns : "Where is your child ?" She said : " It was stillborn and therefore left (in the cemetery) by me." The boy grew up there. He played with the boys. He said to the children there: "I am your king: pay me taxes." He was seized with the dry scab. He said to them : "Scratch me." They gave him the name of Karakandu. And he was very fond of this nun. And she gave him sweetmeats or whatever delicate alms she obtained.

When he had grown up he guarded the cemetery. For some reason two ascetics passed by there. At once they saw at one place a stick in a coppice. One of them knew the signs of sticks as follows: A stick with one joint they praise; those with two joints cause quarrel; those with three joints are fraught with profit; those with four joints entail death. A staff that is five-jointed wards off quarrel on the way: a six-jointed one is desease; a seven-jointed health. A stick that has a base of four finger's breadth and rises half a finger's breadth and has seven joints wards off mad elephants. A staff of eight joints is failure, one of nine productive of fame, but one of ten joints truly is all prosperity. A stick that is crooked, worm-eaten and spotted and bunchy and burned and dried up at the top is to be carefully avoided. Having massive joints, shining with colour, and of one colour, a staff provided with such marks is to be considered an excellent staff."

Thereupon he said : "He who will take this staff will be king. But one must wait for it till it grows four inches more: then it is serviceable. " This was heard by that Candala lad and by a Brahman. Then that Brahman dug out the four inches of the staff that had not yet shot up (out of the ground) and cut the staff. And that lad saw him and snatched it away from him. He was taken before the Court by that Brahman. He said: " Give me my stick. " He answered: " It has grown on my cemetery; therefore I will not give it. " The Brahman said: " Take another. " He did not want to. The boy did not give it. The boy was asked by them: "Why do you not give it ?" And he said: "By the power of this stick I shall be king. " Then the people of the Court laughed and said: "When you do come to be king, then you shall give this Brahman a village. " He agreed. The Brahman spoke to other Brahmans as follows: " Let us kill him and take the stick. " That was heard by his father. The three fled and staightway went to Kancanapura. There the king had died sonless. The deputed horse came to Karakandu's feet while he slept outside (of the city), circumambulated him with its right side turned towards him, and stood still. In the meanwhile the people of the city saw with great respect that he was endowed with the marks (of a king), the cry of " Victory " was raised and the drum of rejoicing beaten. But he got up yawning. With perfect composure he sat on the horse and was taken into the city. " He is a Candala ," said the Brahmans and would not grant him entrance. Then he seized the jewel of a staff. It began to blaze. They were terrified. Then he made the Candalas of Vadahana Brahmans. And the saying arose: By king Karakandu, the son of Dahivahana, the Candalas who lived in Vatadhana were made Brahmans. And they too disregarded the name given him at home, Avakinnaga, and established the name given him by the Candala boys, Karakandu.

Then that Brahman came: " Give me the village." " Take the one that pleases you." He said: "My home is in Campa; therefore give it to me in her territory." Then he gave him a letter to Dahivahana: "Give this Brahman a village. I shall give you any village or city that pleases you." He was enraged: "The wicked Candala does not know his own self.". The messenger returned and reported this. Karakandu was incensed. He besieged Campa; fighting was going on. Then the nun heard of it. Saying: "Let there be no destruction of people ", she took leave of the abbess and went to the city. She took Karakandu aside and disclosed the secret to him: "He is your father." He questioned his mother and his father. They told him the real state of affairs. From pride he did not march away. Then she repaired to Campa, went into the king's house, she was recognized, the female servants fell down at her feet and wept. The king too heard of it; he too came, greeted her respectfully, gave her a seat, and enquired about her child. She said : "It is he by whom the city is besieged." Delighted, he went out and had a meeting with him. Giving him both the kingdoms Dahivahana renounced the world. And Karakandu became a mighty monarch.

Now he was very fond of herds of cattle. In the meanwhile, at the time of autumn, he saw a bull calf, strong-limbed and white. He said: "Do not milk the mother of this one. When he has grown, then let him drink the milk of other cows." The cowherds promised. When his horns had come out and he had become a powerful bull, the king saw him. He became solely intent on fighting. Again in the course of time the king came and saw a big-bodied, old, bull that was being harassed on all

sides by the young bulls. He asked the cowherds: "Where is that bull ?" They pointed him out in such a condition. And they said: "This very same bull here, by the sound of whose lowing in the middle of the yard of the cowpen even all the proud, overbearing bulls with very sharp horns were subdued, now suffers being harassed on all sides by the young bulls as his pride has departed on account of old age, his eyes drip and his distorted lip quivers."

When the king saw him in such a plight he fell into despondency. He pondered on transitoriness: " Alas, this bull who was such a splendid fellow has now come to this ? So all subjects in the *Samsara* are short-lived. For thus it is "Wealth, which is indeed the basis of enjoyment and the cause of great delusion, is impermanent." And it has been said: " Perishable by its very nature is wealth, evanescent as the rainbow, unstable as the streak of lightning, like unto dust that clings to the feet. Riches the thieves rob, the princes snatch away, the Vyantara demons hide, the kinsmen seize. Fire burns every thing, a deluge of water destroys it and angry Yama (the god of Death) is engaged in carrying off all. Likewise union with beloved people, the cause of supreme joy, is transitory. How so ? As many birds meet in the evening on a tree, as travellers who come from other countries (meet) in a traveller's lodging house and in the morning all go away, every one in a different direction, so also the many beings that have come together in one family home, at the time of the blow of death, all go in different directions, accompanied by their *karma*, to births as men, gods, animals and other beings. A man strolls along the streets of the city, wanton and heedless, engaged in crushing and pushing, surrounded by many men. That same resplendent man, who perishes in a moment, is soon, dried up by old age and desease, that thus make him a goblin. Likewise, in the womb, during birth, in childhood, in youth, in old age, in all states, living beings go to pieces like earthernware vessels."

Reflecting in such and similar manner he experienced the spiritual awakening; he became a *pratyekabuddha*. Having torn out his hair in five handfuls, and having been presented by a deity with the distinguishing tokens of a monk, he wandered about. And the saying arose: Having seen the white, noble bull with wellformed horns, in the middle of the cowpen, the king of Kalinga saw prosperity and ruin and perceived the true religion.
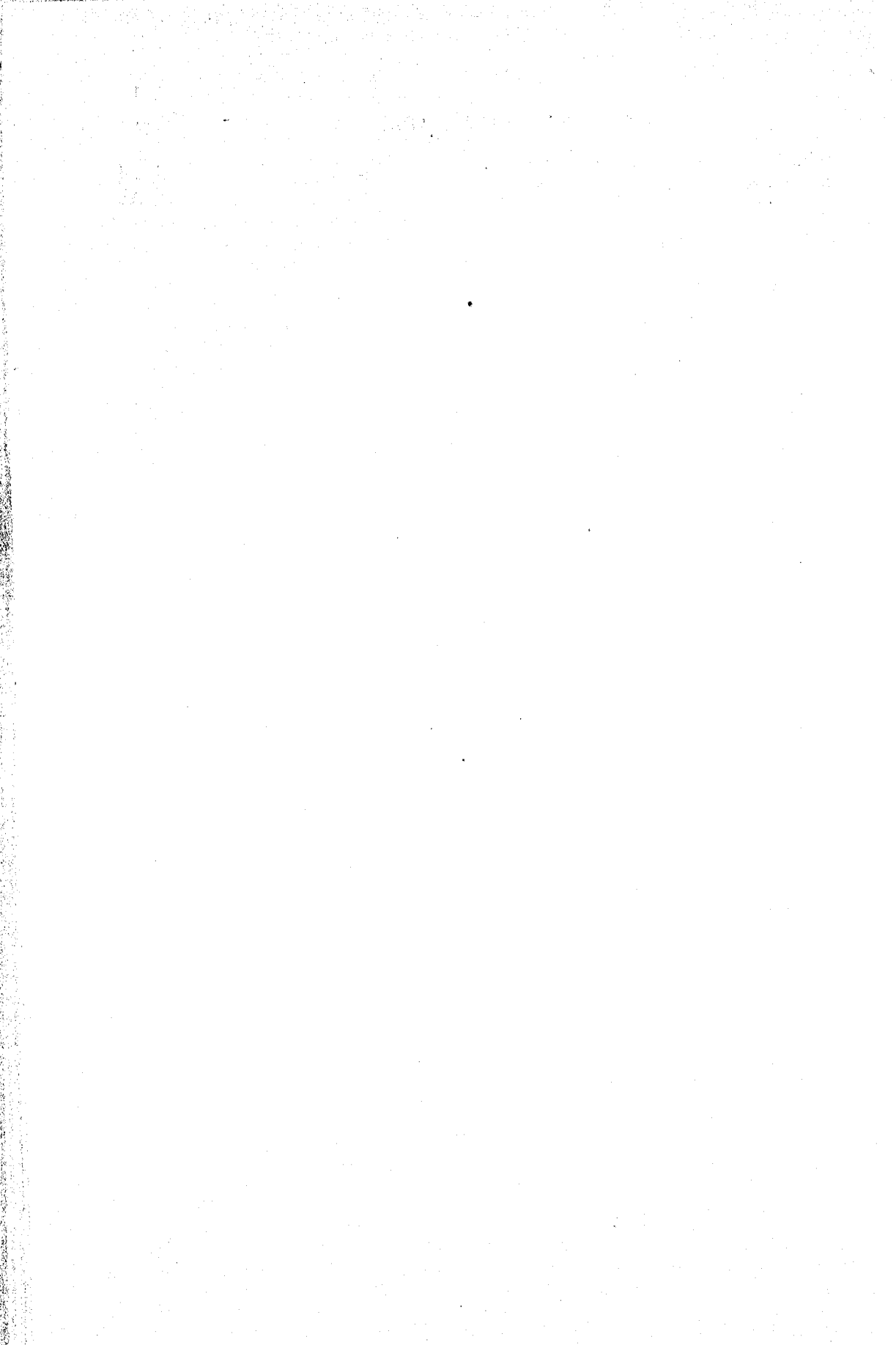
NOTES

After a complete translation and glossary together with indices of personal and geographical names with notes, as well as the material reserved for the Introduction, what remains to be given under this head is elucidation of technical terms of Jaina religion and a discussion of the few difficult and obscure expressions. The necessity of lengthy explanations of technical terms has been avoided by giving full references to standard works.

I.

I, 2, 8. For सिद्धसेन and others mentioned here see Introduction.

I, 2, 5. त रे व्व इं—तरितुम्. See also 1,5,5 देवएं–दातुम्, and वहेव्वइं–वधितुम् (हन्तुम्).

I, 3, 7. जहिं हालिणि etc. cf. Nayak. 1, 13, 7–8; Jasa. 1, 21, 7.

I, 4, 10. धाडीवाहन literally means 'leader of an assault' धाटी + वाहन. The name is given as दहिवाहन in Prakrit and दन्तिवाहन in Sanskrit versions of the story. (see Appendices) At one place Subhacandra also gives धात्रीवाह (दन्तिवाहन इत्याख्यो धात्रीवाहापराभिध: II, 38).

I, 7. In this and similar other stanzas (III, 15; 17; IV, 16; VII, 9; 10; VIII, 1;3;4; IX, 3,) we find a predominance of the Maharastri Prakrit.

I, 13. The escape of the king as described here strikes one as very unchivalrous. The account in Devendra's story is superior (see Appendix B).

I, 14, 2. म य र हि य उ etc. मृगरहितमत एव नीरसं वनं यथा मदरहित: अत एव नीरसः मोक्ष: ।

I, 17, 4. I have interpreted the line as तुण्डखण्डेषु अधिष्ठिताः धाराः येषां ते तथा भूताः शूलेन भिन्नाः चोरजाराः (दृष्टा:) । Compare this stanza with a similar one in Jasaharacariu 1, 13.

II.

II, 1, II. Compare एकस्य दु:खस्य न यावदन्तं गच्छाम्यहं पारमिवार्णवस्य ।
तावद् द्वितीय: समुपस्थितं मे छिद्रेष्वनर्था बहुलीभवन्ति ॥

II, 2, 3. तार means (1) Vishnu (2) Siva (3) The mysterious symbol ॐ. But the tippana on the word is असुरदेवता. This suits our context quite alright.

II 2, 4. जणहिं = यानै: has been shortened for the sake of metre.

II, 2, 8. Both Subhacandra and Nemidatta in their version of the story take Baladeva to be the name of the Vidyadhara, and I have followed the same in my translation. But गुणनिकेत occurs again in II, 5, 6, which leads one to suspect that perhaps this was meant by our author to be the name of the Vidyadhara.

II, 3, 3 अयमाणु–अ + या + शानच् (शतृ) = अगच्छत् unmoving.

II, 3, 6. The line has to be construed as—

(यस्य) प्रवृद्धा कीर्तिः जनानां प्रशंसिनी (प्रशस्या) । (येन) निवेशिते लोचने नासाप्रदेशे ।

II, 6, 7-8. The corresponding description in Subhacandra's work is—

अथ पद्मावती खिन्ना गान्धारीं क्षान्तिकां क्षमाम् । क्षणात्सा खेदतो दक्षा शिश्राय सुखसिद्धये ॥ ५३ ॥
तथा पद्मा जगामाशु सुपद्माभा जिनालयम् । निस्सहीति पदं प्रोच्य ननाम च जिनाकृतीः ॥ ५४ ॥
समाधिगुप्तनामानं मुनिं गुप्तित्रयात्मकं । त्रिरत्नरञ्जितं रम्यं सा ववन्दे विदांवरा ॥ ५५ ॥ canto II

Subhacandra goes on to say that Padmavati requested the sage to give her *Diksha*, the latter refused saying that she had broken a vow three times in her past life as a result of which she had experienced separation from her father, husband and son in this life, and that she would be fit for *Diksha* when the sin is completely pacified when her son would be crowned king, (For her breaking a vow in her past life, see X, 12, 3).

II, 7, 7. ज ल्ल म ल्ले ण वि लि त ग त—Neglecting the body altogether and allowing dirt to settle on it was a form of penance, and those ascetics who practised it were given the title of मलधारिन् (see Jaina Silalekha Samgraha, Index.) जल्ल meant perspiration and the dirt settled on it, while मल meant the excretions of the nose, eyes, ears etc. See प्रतिष्ठापाठ of जयसेन p. 223—

स्वेदावलम्बितरजोनिचयो हि येषामुत्क्षिप्य वायुविसरेण यदंगमेति ।
तस्याशु नाशमुपयाति रुजां समूहो जल्लौषधीशमुनयस्त इमे पुनन्तु ॥ ६९० ॥
नासाक्षिकर्णरदनादिभवं मलं यन्नैरोग्यकारि वमनज्वरकासभाजाम् ।
तेषां मलौषधसुकीर्तिजुषां मुनीनां पादार्चनेन भवरोगहृति नितान्तम् ॥ ६९१ ॥

II, 7, 9. The corresponding portion in Subhacandra's work is—

तत्र कश्चिद्ददर्शाशु नृकपालमुखे पुनः ।
नेत्रयोश्च समुत्पन्नं वेणुत्रयं त्रिलोकवत् ॥ III, 68.

II, 9. Compare similar passages in Jasa. I, 24; Naya. III, 1; Bhavis. II, 2.

II, 15, 2. As the line stands it should be construed as अस्य राज्ञः बर्हिणीमांसेन निश्चयेन जीवामि (तत्) मह्यं दीयताम् ।

II, 18, 3. For the translation of this line substitute 'Two crimes more I shall still forgive'. Subhacandra's translation is एकोऽयमपराधस्तु क्षान्तौ द्वावपराधकौ । सोढव्यौ मयका (? मया) प्रीत्या मंत्रिणोऽस्य सुखेषिणः ॥ IV, 57.

II, 20, 7. चच्चरवंतु has been translated and explained in the glossary as an adjective of गजः It is, however, also possible to take it as an adjective of पट्टन being equivalent to चत्वरवत् full of squares. Subhacandra has-

भ्रान्त्वाथ पत्तने पद्मौ पद्मापणसुपद्धतौ ।
गेहे गेहे महाभ्यासश्चत्वरे चत्वरे पुनः IV, 101.

III.

III, 2. Compare this passage with Nayak. V, 8, 10-15.

III, 4, 1. For the history of the bamboos see II, 7-8.

III, 7, 7. See Hindi translation and correct English translation as follows :—I came to your town with the portrait accompanied by warriors capable of vanquishing irresistible foes.

III, 19, 2. व इ सा ह था णु-वैशाखस्थानं is a posture in shooting in which the archer stands with the feet a span apart. Apte: Sans. Eng. Dictionary.

IV.

IV, 1, 4. The three old Dravidian kingdoms of the South are conceived here as still very powerful and forming a confederacy with the Colas at the head.

IV, 12, 4. For the mechanical skill af a सूत्रधार see Mudrā-rākshasa II p. 130 Telang's edition.

IV, 13, 9. The tippana on सणराल is 'मोरा पाहाण घालावणु'. Now मोरा or मोरी in Hindi, Marathi and Gujrati means a little channel to carry off water. This suggested to me the Sanskrit equivalent सनालीक (see glossary). In sanskrit नरा means the earth. From this we might interpret सणरालहि पत्थरहि as 'with stones masoned with earth'. नार also means water in Sanskrit. It is also possible that the original reading may be अणरालहि meaning with shapely straight stones.

IV, 17, 1–4. Compare this boast of the Sura, with that of Bhairavānanda in Rājasekhara's Karpūra-manjiri I, 25—

दंसेमि तं पि ससिणं वसुहावतिण्णं
थम्भेमि तस्स वि रविस्स रहं णहद्धे ।
आणेमि जक्खसुरसिद्धगणंगणाओ
तं णत्थि भूमिवलए मह जं ण सज्झं ॥

Also see Jasaharacariu 1, 6.

V.

V, 8, 5. प र मु ट्ठ ए हि has been taken by me as equivalent to परमोत्सुकैः ।

V, 10, 3. प री ष ह is thus defined—

शारीरमानसोत्कृष्टबाधहेतून् क्षुदादिकान् ।
प्राहुरन्तर्बहिर्द्रव्यपरिणामान् परीषहान् ॥

For exposition of the twenty two Parisahas see, अनगार-धर्मामृत of Ashādhara VI, 84, onwards

V, 12, I–2. For the five अणुव्रत, three गुणव्रत and four शिक्षाव्रत, see सावयधम्म दोहा 59–72. The five उदुम्बर are वट, पिप्पल, पर्कर, उदुम्बर and काकोदुम्बर ।

V, 12, 4. The *Pratimas* or stages of a house-holder's religious advancement are eleven, namely, दर्शन, व्रत, सामायिक, प्रोषधोपवास, सचित्तत्याग, रात्रिभोजनत्याग, ब्रह्मचर्य, आरम्भत्याग, परिग्रहत्याग, अनुमतित्याग and उद्दिष्टत्याग. For exposition, see सागारधर्मामृत, अध्याय ३ onwards.

VI.

VI, 6, 8, स ल्ले ह ण-सल्लेखना is thus defined in the रत्नकरण्डश्रावकाचार of समन्तभद्र—

उपसर्गे दुर्भिक्षे जरसि रुजायां च निःप्रतिकारे । धर्माय तनुविमोचनमाहुः सल्लेखनामार्याः ॥ १२२ ॥
अन्तक्रियाधिकरणं तपःफलं सकलदर्शिनःस्तुवते । तस्माद्यावद्विभवं समाधिमरणे प्रयतितव्यम् ॥ १२३ ॥
स्नेहं वैरं सङ्गं परिग्रहं चापहाय शुद्धमनाः । स्वजनं परिजनमपि च क्षान्त्वा क्षमयेत्प्रियवचनैः ॥ १२४ ॥
आलोच्य सर्वमेनः कृतकारितमनुमतं च निर्व्याजम् । आरोपयेन्महाव्रतमामरणस्थायि निःशेषम् ॥ १२५ ॥
शोकं भयमवसादं क्लेदं कालुष्यमरतिमपि हित्वा । सत्वोत्साहमुदीर्य च मनः प्रसाद्यं श्रुतैरमृतैः ॥ १२६ ॥
आहारं परिहाप्य क्रमशः स्निग्धं विवर्द्धयेत्पानम् । स्निग्धं च हापयित्वा खरपानं पूरयेत्क्रमशः ॥ १२७ ॥
खरपानहापनामपि कृत्वा कृत्वोपवासमपि शक्त्या । पञ्चनमस्कारमनास्तनुं त्यजेत्सर्वयत्नेन ॥ १२८ ॥

नि दा न or looking forward to the reward of the penitential act is one of the transgressions (अतिचार) of सल्लेखना as—

जीवितमरणाशंसे भयमित्रस्मृतिनिदाननामानः । सल्लेखनातिचाराः पञ्च जिनेन्द्रैः समादिष्टाः ॥ १२९ ॥

VI, 7, 8. For प्रयाग as the place where people went to end their life prematurely, see Index of Geographical Names, under प्रयाग. Also see अग्नि पुराण, अध्याय १११;

न वेदवचनाद्विप्र न लोकवचनादपि ।
मतिरुत्क्रमणीयान्ते प्रयागे मरणं प्रति ॥ ८ ॥
वटमूले संगमादौ मृतो विष्णुपुरीं व्रजेत् ॥ १३ ॥

VII.

VII, 1, 2. For the sight of an ascetic regarded as an auspicious omen, see श्रीशाकुनसारोद्धार by माणिक्यसूरि, प्रकरण २—

दर्शनं श्वेतभिक्षूणां सर्वोत्तमफलप्रदम् । किं पुनः सूरिसंयुक्तं राजयोगोऽयमुत्तमम् ॥ १० ॥
न केवलं मयैवोक्तं श्रीव्यासेनापि भाषितम् । शकुनार्णवेऽपि निर्णीतं शुभं निर्ग्रंथदर्शनम् ॥ ११ ॥
श्रमणस्तुरगो राजा मयूरः कुंजरो वृषः । प्रस्थाने वा प्रवेशे वा सर्वसिद्धिकरःस्मृतः ॥ १२ ॥

VII, 5, 4. णि व स मा णु = निवसमा or: = नृपसमानः like हयसमाणु in VIII, 12, 2. Karakaṇḍa was accompanied by other princes as is clear from VII, 6, 4.

VII, 5, 13. Commenting on उत्तराध्ययनसूत्र V, 8, Devendra tells a short story of a certain shepherd who, during his midday-rest, pierced all the leaves of a *nyagrodha* tree with his arrows. (Charpentier's edition p.298). Also see Jacobi's Maharastri Tales, the story of Bamhadatta, and its translation by J. J. Meyer in his Hindu Tales p. 61, where we read "He wandered about in the wood and saw a goatherd who was making holes in the leaves of a fig tree with peastones (by throwing them at the leaves)." From this it appears that this was once a favourite pastime.

VII, 9, 4–5. The measurements of the sea-monster are thus given by शुभचन्द्र in his version—

षष्टियोजनसूत्तुंगं तदर्धायतिसंगतम् ॥
सप्तषष्टिमहास्फोतयोजनैर्दीर्घतां गतम् ।
निरुध्याब्धि स्थितं मध्ये मेरुवल्लंघनातिगम् ॥ ११, ९५–९६.

VII, 13. The description of the goddess in this *Kadavaka* is thus reproduced by Subhacandra:—

कोमलांगी सुलावण्या लीलया सहितामला । ललामलक्षिता कम्रकुण्डलाभ्यां विराजिता ॥ १४२ ॥
सपुस्तककरस्फारभृंगारपरिभूषिता । सुमृणालकरारम्यरक्ताभरणभासुरा ॥ १४३ ॥
किंकिणीकलरावाढ्यमेखलामंडितोत्कटा । सनूपुरपदा दिव्या प्रसन्ना गुणमालिका ॥ १४४ ॥
फणाभिः पंचभिः ………फणिनं परम् । दधती मूर्ध्नि सन्मान्या श्रवणामृतवाग्वरा ॥ १४५ ॥
व्यंजयन्ती दिशां चक्रं धाम्ना धामालिलिङ्गिता । वीक्ष्य वक्षःस्थलस्थूलमुक्ताफलसुदामिका ॥ १४६ ॥
तदा पद्मावती देवी धरायां दधती धृतिम् । तद्ध्यानाद्वदनाब्जेनाऽवातरद्भासिनी द्रुतम् ॥१४७॥ सर्ग ११.

VII, 15. With regard to the practice of capturing husbands which is exemplified in this *Kadavaka*, I quote the following from 'Tribes and Castes of the Central Provinces' by Russel and Hiralal, Part II, p. 521—

Kolams, a Dravidian tribe residing principally in the Wun *taluka* of the Yeotmal district of Berar "had the practice of capturing husbands for women who would otherwise have gone unwedded, this being, apparently, a survival of the matriarchate. It does not appear that the husbands so captured were ever unphilosophical enough to rebel under the old regime."

VIII.

VIII, 5, 5. The word अक्का has been discussed by Mr. A. N. Upadhye in his article 'Kanarese words in Desi lexicons' published in Bhandarkar ORIJ (1931). The word occurs in various languages, Aryan, Dravidian and Scythian, and, according to Dr. Caldwell, "the ultimate base of all these words is probably 'AK' old."

VIII, 5, 13. वले according to Vararuci VIII, 12, is a term of address 'अइवले संभाषणे'.

VIII, 7, 8. Subhacandra's version is as follows:—
शतपंचप्रमाः कीरा वयं तस्मिम चोन्नते । अनोकहे सदैकस्मिँल्लभमानाः फलावलिम् ॥ ३४ ॥
तद्बुध्ने वर्द्धिता वल्लीं क्षिता ख्याता मया शुकान् । कुंतितुं नैव केनापि छिन्ना सा पक्षिणा पुनः ॥३५॥
कालेन वर्द्धितां वल्लीं किराता वीक्ष्य चागताः । (सर्ग १२.)

We get the substance of these lines in the original.

VIII, 16, 1. टक्कु—an inhabitant of the टक्कदेश which embraced the whole of the plains of the Punjab from the Indus to the Bias, and from the foot of the mountains to the junction of the five rivers below Multan. (Cun. Geo. p. 171.)

VIII, 17, 6–8. रत्नावली, मुक्तावली, कुसुमाञ्जलि or पुष्पाञ्जलि, पल्योपम, चतुःशास्त्रविधि and वसुधाराविधि, are various kinds of fasts and rituals observed on special days during a particular period of time.

IX

IX, 6. The twelve *kadavakas*, beginning with the sixth, deal with the twelve *Bhavanas* or pious thoughts namely अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचित्व, आश्रव, संवर, निर्जरा, लोक, धर्म and बोध, For an exposition of these, also see बारस अणुवेक्खा of Kundakundācārya.

IX, 16, 3. The five *vratas* are अहिंसा, अचौर्य, सत्य, ब्रह्मचर्य and अपरिग्रह (see IX, 22, 3–8)

IX, 16, 6. The ten characteristics of Dharma are क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप:, त्याग, आकिञ्चन and ब्रह्मचर्य.

IX, 16, 7. The fourteen मार्गणा or soul-quests are गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या, भव्यत्व सम्यक्त्व, संज्ञित्व, and आहार. For exposition, see गोम्मटसार, जीवकाण्ड, गाथा १४० onwards.

IX, 16, 8. The fourteen गुणस्थान or spiritual stages are मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र, अविरत सम्यक्त्व, देशविरत, प्रमत्तविरत, अप्रमत्तविरत, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्म-साम्पराय, उपशान्तमोह, क्षीणमोह, सयोगकेवली and अयोगकेवली. For exposition see गोम्मटसार, जीवकाण्ड गाथा ८–६९.

IX, 20, 3. The two divisions of Dharma are that of the householder and that of the homeless ascetic (सागार and अनगार). see IX, 22.

IX, 20, 9. The four kinds of charity are औषध, शास्त्र, अभय and आहार, (see IX, 23, 4–7), and the three worthy recipients are the sage, the Jaina householder observing vows and one who is faithful but not observing the vows. See सावयधम्मदोहा—

उत्तमपत्तु मुणिंदु जगि मज्झिमु सावउ सिट्ठु । अविरयसमाइट्ठि जणु पभणिउ पत्तु कणिट्ठु ॥ ७९ ॥

IX, 20, 20. The six occupations of life are असि, मषि, कृषि, शिल्प, विद्या and वाणिज्य. असिर्मषिः कृषिर्विद्या वाणिज्यं शिल्पमेव च । कर्माणीमानि षोढा स्युः प्रजाजीवनहेतवः ॥ (आदिपुराण १६, १७९) The six compulsory daily duties (षड् आवश्यक) of a faithful Jaina householder are देवपूजा, गुरूपास्ति, स्वाध्याय, संयम, तप: and दान.

IX, 20, 21. लेश्या or thought-paint is thus defined:

लिंपइ अप्पीकीरइ एदीए णिय-अपुण्ण-पुण्णं च । जीवो त्ति होदि लेस्सा लेस्सागुणजाणयक्खादा ॥४८९॥

जीवकाण्ड.

They are six कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म and शुक्ल of which the first three are regarded अशुभ. For exposition see गोम्मटसार, जीवकाण्ड, गाथा ४८१-५५६ ।

IX, 21, 3. The *tattvas* are seven जीव, अजीव, आश्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा and मोक्ष

For exposition in English, see 'Practical Path' by Champat Rai. For the eight qualities of Right Faith, निःशंकित etc., see रत्नकरण्डश्रावकाचार of समन्तभद्र ११-१८.

IX, 21, 9. The seven व्यसन are enumerated in the following verse :—
द्यूतं मांसं सुरा वेश्याखेटं चौर्यं पराङ्गना । महापापानि सप्तानि व्यसनानि त्यजेद् बुधः ॥

IX, 23, 2. ध्यान is of four kinds आर्त, रौद्र, धर्म and शुक्ल Of these the first two produce evil and the last two good—

आर्तरौद्रविकल्पेन दुर्ध्यानं देहिनां द्विधा । द्विधा प्रशस्तमप्युक्तं धर्मशुक्लविकल्पतः ॥ २० ॥
स्यातां तत्रार्तरौद्रे द्वे दुर्ध्यानेऽत्यन्तदुःखदे । धर्मशुक्ले ततोऽन्ये द्वे कर्मनिर्मूलनक्षमे ॥ २१ ॥ etc.
ज्ञानार्णव, प्रकरण २५.

IX, 24, 2. The five vows of the ascetics are the same as those of the householders, differing from the latter in their rigour and thoroughness of observance.

IX, 24, 6. Celibacy observed by मनः, वचः, काय, and कृत, कारित, अनुमोदन constitutes the nine kinds of ब्रह्मचर्य.

IX, 24, 7. The two kinds of परिग्रह are अन्तरङ्ग and बहिरङ्ग. i. e. the inner passions and material belongings.

IX, 24, 8. The मूलगण of ascetics are twenty-eight, five Mahāvratas, five Samitis, five sense-controls, six obligatory duties and seven other observances. For an exposition of these, see मूलाचार, अध्याय १.

IX, 24, 9. The number of उत्तरगुण is given as eightyfour lakhs, for a classification of which, see मूलाचार, गाथा १०२३ and onwards.

X

X, 9, 4. There is double-meaning in the second part of the line बहुप्रहरैः ननु सूर्योऽपि सुप्तः and बहुप्रहारैः ननु शूरोऽपि सुप्तः ।

X, 9, 6. On पुण्णाय (पुन्नागा ?) the tippana in S is पुंश्चली स्त्री and in N दुश्चारिणी.

X, 19, 8. Subhachandra's version is—
यावदास्ते वने रात्रौ भवने देवनिर्मिते । तावत्तत्र स आयासीद्राक्षस्युत्क्षिप्तमत्करा (मत्सरा) ॥

X, 26. In this kadavaka is described the method of celebrating the five kalyāṇakas गर्भ, जन्म, तपः, ज्ञान and निर्वाण of a Tirthamkara. Subhachandra's version of it is as follows :—

मासे भाद्रपदे कृष्णे प्रोषधः प्रतिपत्तिथौ । गर्भकल्याणकाख्यः स कार्यः सत्कार्यकोविदैः ॥ १११ ॥
सिद्धचारित्रसच्छांतिभक्तिभिः क्रियसक्रिया (?) । तद्दिने मुनिभिर्मुक्त्यै महद्भिर्निर्मलाशयैः ॥११२॥
गृहस्थैर्दधिदुग्धाद्यैः स्नपनं श्रीजिनेशिनः । विधीयते तनुत्यागो रात्रौ जागरणं तथा ॥ ११३ ॥
पंचम्यां प्रोषधस्तस्मिञ्जन्मकल्याणसंज्ञितः । पूर्वोक्तास्ताः क्रियाः कार्या दिने तस्मिन्शुभाप्तये ॥११४॥
अष्टम्यां क्षपणस्तस्मिन्मासि ख्यातो महर्षिभिः । सन्निष्क्रमणसन्नामा सर्वसिद्धिप्रदायकः ॥ ११५ ॥

सिद्धचारित्रसद्योगशांतिभक्त्याऽभिवंद्यते । जिनो विजितकर्माऽथ मन्मथोन्मादमंथकः ॥ ११६ ॥
केवलज्ञानकल्याणो दशम्यां प्रोषधो मतः । सिद्धश्रुतसुचारित्रयोगशांतिक्रियां भजेत् ॥ ११७ ॥
निर्वाणाख्यं चतुर्दश्यां क्षपणाय पर्णः क्रिया (?) । कार्या सिद्धश्रुतोद्वृत्तयोगनिर्वाणशान्तिभिः ॥११८॥
व्रतानां तिलकं तेन पंचकल्याणसंज्ञकम् । पंचवत्सरपर्यन्तं तेने चतुरचेतसा ॥ ११९ ॥

X, 26, 18. विउसग्गहिं अट्ठहि-व्युत्सर्ग means कायोत्सर्ग, but it is not clear what eight refers to in that respect. "The tippana is "कायोत्सर्ग करवु आठ गणीए णुकार" which means renunciation of the body having repeated the Navakāra mantra eight times. The translation should be corrected accordingly.

शब्दकोशः

The figures indicate *Sandhi, Kadavaka* and *line* respectively. The glossary is not fully exhaustive, and as a rule, only one reference to a place of occurrence has been given. Words which seemed to me to be Desi (i. e. for which, strictly speaking, a Sanskrit equivalent does not exist) have been marked with an aste. risk. Sanskrit equivalents are given throught out, and, wherever necessary and possible, Apabhramsa grammars and lexicographies have been referred to, and, Hindi, Marathi and Gujrati equivalents are also given. The following abbreviations have been used :—

D–Desinamamala of Hemacandra; ex.–example; G–Gujrati; H–Hindi; Hem–Hemacandra's Prakrit Vyākarana; K–Kanarese; M–Marathi; Mal–Malayalam; Mar–Marwadi; Pai–Paiyalacchi–nāma–mālā of Dhanapāla; S–Sanskrit; T–Tamil, Var–Vararuci's Prakrit–Prakasa; दे—देश; न—नगर; प—पर्वत; पु—पुरुष; टि—टिप्पण.

[अ]

अइ–अति I, 3, 10.
अइ–अहो (सम्बोधनार्थे) II, 18, 5.
अइउच्चिय–अति + उच्चित VII, 7, 11.
अइउज्जु–अति + ऋजु X, 13, 4.
अइकुडिली–अतिकुटिला I, 16, 12.
अइजुज्झइ–अति + युध्यति III, 11, 10.
अइझीण–अति + क्षीण II, 7, 6.
अइडरिअ–अति + दृत VII, 11, 2.
(H. डरना to fear).
अइणिम्मल–अतिनिर्मल IV, 7, 5.
अइणियड–अतिनिकट IV, 4, 2.
अइणिरुत्त–अति + निश्चित V, 14, 5.
(D. IV, 30)
अइतुरिअ–अति + त्वरित V, 10, 2.
अइतोस–अति + तोष V, 13, 9.
अइदिहि–अति + धृति IV, 7, 2.
अइदुम्मण–अति + दुर्मनस् V, 2, 6.
अइपवर–अति + प्रवर II, 9, 1.
अइपिय–अति + प्रिय IV, 12, 6.
अइपयंड–अति + प्रचण्ड II, 8, 2.
अइबहल–अति + बहल IV, 8, 8.
अइभत्ती–अति + भक्ति V, 7, 4.
अइभिड–अति + युध् °इंति VIII, 18, 9.
(HMG भिड़ना to fight)
अइभिण्ण–अति + भिन्न IX, 10, 5.
अइमणहर–अति + मनोहर III, 3, 3.
अइमहुर–अति + मधुर V, 11, 8.
अइरमण–अति + रमण V, 5, 4.
अइरावअ–ऐरावत III, 16, 4.
★**अइवमाल**–अति + तुमुल I, 11, 4.
(D. VI, 90; Pai. 47)
अइविहाइ–अति + विभाति III, 12, 7.
अइसअ–अतिशय VI, 1, 5.
अइसणिद्ध–अति + स्निग्ध X, 13, 10.
अइसुहुम–अति + सूक्ष्म X, 10, 7.
अइसंसअ–अति + संशय V, 18, 5.
अउव्व–अपूर्व I, 14, 5.
अकलंकदेव–पु I, 2, 8.
★**अक्क**–भगिनी, अम्बा VIII, 5, 5. (D. I, 6. S

अक्का–Mother; M. अक्का–Sister; K. आके She)

अक्ख–आ + ख्या °मि V, 19, 8; °हि IV, 12, 5; °क्खु III, 5, 4; °क्खेवि III, 20, 6.

अक्खय–अक्षत IX, 2, 6.

अक्खर–अक्षर I, 7, 7.

अक्खिअ–आख्यात I, 8, 7.

अग्ग–अग्र I, 14, 4.

अच्चंत–अत्यन्त VIII, 2, 7.

अच्छ–आस् °इ I, 9, 1, °हि I, 15, 7. (Hem. IV, 215. probably from Sans. आ + क्षि निवासगत्योः)

अच्छर–अप्सरस् VI, 3, 10.

अच्छरिअ–आश्चर्य IV, 3, 11.

अच्छिअ–उषित IV, 17, 5. (see अच्छ).

अजवम्म–अजवर्मन्, पु. III, 5, 8.

अजियंगि–अजिताङ्गी, स्त्री III, 5, 8.

अज्जव–आर्जव IX, 13, 4.

अज्ज वि–अद्यापि II, 18, 3.

अज्जिअ–अर्जित II, 5, 10.

अज्जिय–आर्यिका (a Jaina nun) II, 6. 8.

अज्जिवि–अर्जयित्वा II, 10, 6.

अज्जु–अद्य I, 14, 5.

अज्जुण–अर्जुन, पु. X, 22, 7.

अट्टरउद्द–आर्त + रौद्र (ध्यान) IX, 23, 2.

अट्ठम–अष्टम X, 16, 4.

अट्ठुत्तर–अष्टोत्तर X, 26, 20.

अडवि–अटवी VII, 3, 3.

अणवरअ–अनवरत III, 10, 7.

अणसण–अनशन V, 10, 5.

अणाविअ–आनायित VIII, 14, 2.

अणंगलेह–अनङ्गलेखा स्त्री VII, 16, 2; X, 24,4.

अणिंद–अनिन्द्य V, 6, 2.

अणुग्गह–अनुग्रह VI, 12, 8.

अणुदिण–अनुदिन IV, 10, 9.

अणुमग्गचारि–अनुमार्गचारिन् VII, 3, 2.

अणुराअ–अनुराग IV, 11, 10.

अणुवम–अनुपम I, 1, 3.

अणुवय–अनुव्रत V, 12, 1.

अणुवेक्ख–अनुप्रेक्षा VI, 6, 9.

अणुहव–अनु + भू °वेइ IX, 9, 6; °हिं II, 5, 10.

अणुसर–अनु + सृ °उ IX, 7, 4; °रेइ III, 2, 5; °रेवि VI, 10, 6.

अणुसरिअ–अनुसृत III, 14, 10.

अणुहर–अनु + हृ, °इ V, 13, 7; °रंति I, 16, 9.

अणुहुंज–अनु + भुज °हु III, 10, 10. °जिवि II, 15, 9.

अणेय–अनेक II, 1, 1,.

अण्णण्ण–अन्योन्य I, 14, 7.

अण्णभवंतर–अन्य + भवान्तर II, 5, 10.

अण्णाण–अज्ञान II, 13, 5.

अण्णोण्ण–अन्योन्य V, 4, 1.

अत्थइरि–अस्तगिरि X, 9, 4.

अत्थाण–आस्थान IX, 1, 2.

अत्थि–अस्ति I, 10, 7.

अद्द–अब्द IV, 17, 7.

अद्दंसण–अदर्शन V, 14, 8.

अद्धवह–अर्धपथ II, 10, 6.

अद्धिंदु–अर्धेन्दु I, 16, 13.

अपमाण–अप्रमाण II, 3, 3.

अप्पमाण–अप्रमाण II, 2, 1.

अप्प–अर्पय् °हि III, 4, 7; °प्पिऊण I, 12, 3; °प्पिवि II, 6, 5.

अप्पिअ–अर्पित II, 6, 2.

अप्पुणु–आत्मन् IV 3, 4. (M. आपण)

अप्फालिय–आस्फलित IV, 11, 5.

अब्भंतर–अभ्यन्तर V, 3, 2.

अब्भत्थिय–अभ्यर्थित VII, 14, 6.

★**अब्भिडिय**–समागत III, 16, 2. (Hem, IV, 164.)

अमराउरि–अमरपुरी III, 22, 6.

अमराहिय–अमराधिप IV, 8, 9.

अमिअ, °य–अमृत II, 15, 6.

अमियवेअ–अमितवेग, पु V, 4, 2.

अमेअ–अमेय VII, 5, 9.

अयाण–अ + जानत् VIII, 4, 7.

अरिदमण–°न, पु. VIII, 1, 5.
अरिथाण–अरि + स्थान III, 15, 7.
अरिमहण–अरि + मथन V, 13, 10.
अरिविंद–पु II, 16, 3.
अरूव–अरूप V, 6, 5.
अरोचअ–अरोचक III, 4, 11.
अलग्ग–अलग्न II, 14, 5.
अलहंत–अलभमान II, 15, 6.
अलिय–अलीक IX, 24, 4.
अलीव–अलीक I, 11, 3; IX, 23, 5.
अलेव–अलेप V, 6, 5.
अलेहिअ–आलेखित VI, 14, 3.
अवयरिय–अवतरित VII, 11, 10.
अवर–अपर II, 2, 2.
अवराह–अपराध VIII, 20, 12.
*अवरुंडिय–आलिङ्गित X, 9, 8.
(D. I, 11.)
अवरुप्पर–अपरापर VI, 10, 5.
अवलोइअ–अवलोकित IV, 11, 10.
अवलोव–अव + लोकय् °इ V, 16, 7; °हु V, 15, 5; °इवि V, 18, 1.
अवसाण–अवसान I, 17, 15.
अवहर–अप + हृ °रंतु IX, 16,6; °रेइ IX, 14, 4.
अवहरिय–अपहृत V, 7, 10,
अवंती– दे. VIII, 1, 6.
अवाय–अपाक IX, 14, 1.
अवाह–अवाध II, 14, 5.
अविरइ–अविरति IX, 12, 4.
अविवाय–अविपाक IX, 14, 10.
अस–अश् °इ VI, 3, 9; °मि VI, 6, 2.
असईयण–असती + जन X, 9, 9.
असज्झ–असाध्य III, 19, 7.
असत्थ–अशक्त IV, 13, 3.
असरण–अशरण IX, 7, 11.
असहंत–असहमान II, 12, 4.
असिलय–असि + लता II, 3, 10.
असुइ–अशुचि IX, II, 1.
असुइत्त–अशुभत्व IX, 20, 21.
असुहाई–असुभाविता IV, 14, 1.
असुहावअ–असुभावित II, 10, 10
(H. सुहावना good-looking)
असेस–अशेष II, 8, 3.
अह–अथ VII, 14, 8.
अहम्म–अधर्म X, 22, 4.
अहर–अधर II, 14, 5,
अहरुल्ल–अधर + उल्ल (स्वार्थे) X, 9, 8.
अहंग–अभंग I, 4, 3.
अहिजलण–अभिज्वलन IV, 14, 2.
अहिणव–अभिनव VII; 2, 8.
अहिणंदिअ–अभिनन्दित VIII, 7, 3
अहिराम–अभिराम III, 5, 7.
अहिलस–अभिलष् °हिं V, 1, 12.
अहिलास–अभिलाष VI, 14, 1.
अहीर–आभीर–VIII, 6, 5.
(H. अहीर cowherd).
अहेडअ–आखेटक VII, 1, 9.
अहोमुह–अधोमुख II, 3, 5.
अंकुस–अंकुश II, 8, 2.
अंगदेस–°देश I, 3, 5.
अंच–अर्च् °मि X, 3, 10; °एवि X, 17; 3; °चिवि IV, 11, 9.
अंत–अंत्र III, 15, 8. (H आंत).
अंतेउर–अन्तःपुर X, 23, 10.
अंध–आन्ध्र, दे. II, 2, 11.
अंधारअ–अंधकार X, 9, 7.
अंसु–अश्रु V, 15, 7. (H आंसू),
अंसु–अंशु X, 19, 4.

[आ]

आअ–आगत I, 15, 2; °इवि IV, 1, 9.
आइ–आदि X, 15, 9.
आइच्च–आदित्य III, 12, 8,
आइय–आगता III, 19, 7.
आउल–आकुल I, 17, 10.
आउलि–आकुलिन् III, 13, 1,
आएस–आदेश III, 4, 2.
आण–आज्ञा I, 5, 6.

आण–आ + नी °णि III, 10, 2; °णिवि IV, 15, 10; °णावहि X, 20, 10; °णियइ IX, 12, 2,
आणाविअ–आनायित III, 4, 1.
आणिअ–आनीत III, 10, 3.
आय–आगत II, 7, 8.
आयंब–आताम्र III, 11, 4.
आयण्ण–आकर्णय् °हि II, 1, 13; °ण्णवि 1, 14, 10.
आयण्णण–आकर्णन III, 7, 4.
आयर–आ + दृ °रेइ IX, 14, 8; °रेहु X, 17, 8.
आयर–आदर V, 5, 8.
आरत्त–आरक्त VII, 12, 10.
आरिस–आर्ष VIII, 10, 6.
आलिह–आ + लिख °हेवि VII, 12, 9.
आव–आ + या °इ IV, 3, 2; °हु IV, 7, 2; °हिं II, 13, 6; °वंत II, 12, 6; °वेवि V, 3, 10; °वेविणु VIII, 9, 9; °वेसइ II, 5, 5; °वेसहि V, 19, 3.
आस–अश्व VIII, 8, 5.
आसय–आशय X, 29, 6.
आसर–आ + श्रि °इ IX, 12, 1.
आसाइय–न. X, 28, 4.
आसाऊरिय–आशापूरित VII, 8, 11.
आसीवाअ–आशीर्वाद VIII, 7, 3.
आसि–आसीत् VII, 11, 10.
आसीस–आशीः II, 15, 5.
आहण–आ + हन् °णेइ IX 24, 4.
आहय–आहत I, 5, 6.
आहास–आ + भाष् °इ V, 17, 7.
आहि–आधि I, 16, 3.
आहरण–आभरण II, 17, 2.
आहीर–आभीर VII, 3, 9.
आहुल–पु. X, 29, 13.
आहूय–आहूत VII, 12, 5.

[इ]

इअ–इदम् I, 10, 10.
इक्खु–इक्षु IV, 10, 5.
इट्ठ–इष्ट III, 6, 2.
इत्तिअ–इयत् III, 7, 9.
इत्थिम्म–एतस्मिन् V, 9, 6.
इह–एतत् II, 10, 10.
इंदिय–इन्द्रिय II, 3, 7.
ईस–ईश X, 11, 3.

[उ]

उइअ–उदित II, 1, 2.
उग्गय–उद्गत I, 3, 6.
उग्गम–उद्गम VIII, 12, 3.
उग्गिण्ण–उद्गीर्ण III, 14, 6.
उग्घाड–उद् + घाट् °डेवि X, 13, 8.
उग्घाडिअ–उद्घाटित III, 8, 7.
उच्चा–उद् + चि + णिच् °इवि V, 7, 5.
उच्चायिअ–उद् + चायित II, 1, 7.
उच्छव–उत्सव III, 3, 10.
उज्जअ–उद्याप VII, 12, 1.
उज्जअ–उद्यत VI, 13, 5.
उज्जम–उद् + यम् °मेइ X, 17, 1.
उज्जल–उज्वल II, 20, 4.
उज्जलिय–उज्वलित III, 2, 10.
उज्जाण–उद्यान IX, 1, 2.
उज्जुय–उद्युत X, 28, 7.
उज्जुव–उद्युत III, 1, 9.
उज्जुव–उद् + यापय् °वेइ X, 16, 8.
उज्जेणि–उज्जयिनी, न. VIII, 1, 7; X, 18, 4.
उज्झ–अयोध्या, न. III, 1, 12.
उज्झाय–उपाध्याय VII, 2, 5.
उट्ठ–उत् + स्था °ट्ठेइ IX, 7, 3; °ट्ठिवि V, 14,5.
उट्ठउड–ओष्ठ + पुट II, 14, 6.
उट्ठाविय–उत्थापित I, 15, 6.
उट्ठिअ–उत्थित II, 19, 6.
उड्डाविय–उड्डायित III, 12, 3.
उड्डि–उत् + डी °वि VIII, 8, 3.
उड्डिर–उत् + डी + इर (ताच्छील्ये) I, 17, 7.
उड्ढ–ऊर्ध्व III, 12, 9.
उण्णइ–उन्नति I, 16, 10.
उण्णय–उन्नत I, 16, 10.
उत्त–उक्त I, 11, 9; II, 15, 1.

उत्तत्त–उत्तप्त III, 2, 10.
उद्दालिअ–उद् + दारित II, 8, 8; V, 2, 4. (आलिद्ध Hem. IV, 124; H. उड़ाना to take away).

उद्दुम्मण–उद् + दुर्मनस् II, 21, 2.
उद्ध–ऊर्ध्व I, 8, 6.
उद्धर–उद् + धृ °रेइ IX, 13, 1.
उद्धरिय–उद्धृत VII, 12, 3.
उद्धाणण–ऊर्ध्व + आनन VI, 1, 12.
उद्धाविअ–उद् + धावित V, 14, 3.
उपभोय–उपभोग IX, 22, 10.
उप्पज्ज–उत् + पद् °इ II, 14, 2.
उप्पण्ण–उत्पन्न, I, 11, 3.
उप्परि–उपरि II, 9, 1.
उप्पलखेडि–उत्पलखेटी, न. VI, 11, 2.
उप्पाइय–उत्पादित VI, 16, 6.
उप्पाडिय–उत्पाटित X, 23, 9.
उप्पाय–उत् + पादय् °इ IX, 14, 2.
उब्भव–उद्भव X, 6, 4.
उब्भा–उद्भूत V, 15, 6 (M. उभा)
उब्भिय–उद्भूत VII, 9. 9.
उर–उरस् V, 19, 1.
उवएस–उपदेश VII, 12, 8.
उवगय–उपगत V, 7, 2.
उवयार–उपकार II, 10,1.
उवर–उदर IX, 5, 1.
उवरि–उपरि II, 19, 10.
उवलक्खिअ–उपलक्षित II, 17, 9.
उवलद्धिय–उपलब्ध V, 9, 2.
उववण–उपवन I, 14, 2.
उववास–उपवास IV, 8, 4.
उवविट्ठ–उपविष्ट IX, 19, 8.
उवसग्ग–उपसर्ग II, 4, 1.
उवसम–उपशम II, 4, 8.
उवसाहिअ–उप + साधित V, 2, 7.
उवहसिय–उप-हसित VI, 4, 1.
उवाअ–उपाय VIII, 7, 12.
उव्वम–उद् + वम् °मेइ IV, 14, 4.
उव्वस–उद्वास II, 11, 3; VIII, 11, 8.
उव्वह–उद् + वह् °हेइ IX, 14, 5.
उव्वाहुल–उत्सुक VII, 11, 8; X, 29, 13 (D. I, 136 prob. from उद्वाह anxiety.
उव्वेविर–उद् + वेप् + इर (ताच्छील्ये) V, 15, 2.
उसह–औषध IX, 10, 2.
उंबर–उदुम्बर IX, 21, 5.

[ऊ]

ऊवडीय–उत्पतित V, 4, 7.
ऊसस–उद् + श्वस् °सेइ II, 11, 3.
ऊसह–औषध IX, 23, 5.
ऊहण–ऊहन VIII, 16, 2

[ए]

एअ–एतत् I, 11, 5.
एक्क–एक I, 1, 6.
एक्कल–एकाकिन् VII, 1, 10 (H. अकेला alone).
एकंत–एकान्त VII, 4, 4.
एकंतर–एकान्तर V, 10, 2.
एत्तिअ–एतावत् IV, 17, 7.
एत्थरिथ–अत्र + अस्ति I, 3, 5.
एयमण–एकमनस् V, 2, 13.
एयारस–एकादश X, 16, 6.
एवहिं–एवम् I, 10, 10.
एवंविह–एवंविध II, 12, 7.
एह–एषा I, 15, 5.
एह–एतत् I, 11, 3.

[ओ]

ओहिणाण–अवधि + ज्ञान V, 11, 4.

[क]

कअ–कृत VII, 7, 10.
कइलास–कैलाश,प. IV, 4, 10.
कउत्तक–कुंत (ल) III, 13, 6 (भाला, टि.)
कउसंबि–कौशाम्बी, न. I, 7, 9; VI, 1, 3 . X, 11, 1; X, 12, 6.
कउसीस–कपिशीर्ष I, 4, 2.

कज्ज–कार्य I, 13, 4.
कड्ड–कृत् °ट्टिवि VIII 12, 6.
कट्ठ–काष्ठ VII, 12, 6.
°कडप्प–कटप्र (निकर) IV, 9, 2, (D. II, 13)
कडयड–onomatop. III, 18, 6.
कडि–कटि III, 2, 5.
कडियल–कटि + तल III, 2, 6.
कड्ढ–कृष् °ड्ढिऊण VII,10, 3; °ड्ढेवि X,13,7.
कड्ढिअ–कृष्ट II, 3, 3.
कढिण–कठिन I, 16, 4.
कण–कण् °णेइ IV, 15, 6.
कणउज्ज–कान्यकुब्ज, न. II, 10, 4.
कणय–कनक III, 2, 10.
कणयउर–कनकपुर, न. VI, 13, 8.
कणयप्पह–कनकप्रभा, स्त्री. VI, 14, 10.
कणयमई–कनकवती, स्त्री. VI, 14, 9.
कणयामर–कनकामर the author I, 17, 16 etc. X, 28, 2.
कण्ण–कन्या II, 12, 2.
कण्ण–कर्ण II, 10, 10.
कण्णजाअ–कर्ण + जाप VIII, 20, 8.
कण्णरअ–कर्ण + रव IV, 6, 5.
कण्णसअ–कन्या + शत VIII, 9, 10.
कत्ती–कर्तरी X, 19, 8.
कत्थइ–क्वचित् IV, 5, 2 (Hem II, 174.)
कद्दम–कर्दम X, 5, 11.
कप्पड–कर्पट X, 20, 6. (H कपड़ा)
कप्परुक्ख–कल्प + वृक्ष II, 1, 3.
कप्पवच्छ– कल्पवृक्ष VII, 5, 10.
कप्पंत–कल्पमान III, 14, 6.
कप्पूर–कर्पूर X, 24, 2.
कम–क्रम (पाद) II, 14, 9.
कमलायर–कमलाकर X, 2, 3.
कम्म–कर्म I, 1, 5.
कम्मट्ठगंठि–कर्म + अष्ट + ग्रन्थि III, 22, 9.
कम्मासव–कर्म + आश्रव IV, 10, 6.
कय–कृत I, 1, 7.
कयत्थ–कृतार्थ I, 8, 3.
कयलि–कदली I, 16, 2.
कयंत–कृतान्त I, 1, 5.
कयायर–कृत + आदर VII, 4, 9.
कयार–कतवार IX, 18, 7. दे, २, ११ कूड़ा-कचरा
कया वि–कदापि I, 10, 7.
कर–कृ °इ II, 9. 10; °मि II, 6, 3. °हि II, 10, 2. °हिं IV, 1, 5, °हुं II, 11, 6. °रंति III 3, 8. °रि II, 15, 1; °रेविणु I, 10, 8. °रिवि II, 3, 10. °रेजहि X, 3, 5. °रेवइ IX, 6, 7. °रेव्वउ II 13, 2. °रेसइ II, 19, 7. °रेसहि II, 8, 10. °रेहि II, 17, 6.
करकंड–the hero I, 2, 3, etc.
करतण–कर्तृत्व X, 12, 8.
करयल–कर + तल I, 15, 6.
करंत–कुर्वत् I, 2, 10.
कराव–कृ + णिच् °हुं V, 7, 3.
कराविअ–कारापित IV, 5, 7.
करि–करिन् V, 11, 6.
करिराअ–करिराज, I, 16, 3.
करिसणु–करिष्णु X, 29, 9.
करिंद–करीन्द्र IV; 6, 4.
करुण–करुणा VI, 3, 1.
करुणाभाअ–करुण + भाव X, 23, 4.
करुणावंत–करुणा + वत् VI, 6, 3.
करुणसर–करुण + स्वर VII, 10, 14.
कलउ–कलाः II, 18, 9.
कलत्त–कलत्र V, 15, 3.
कलयल–कलकल III, 16, 37.
कलयंठि–कलकंठी III, 1, 7.
कलस–कलश III, 3, 10.
कलसर–कल + स्वर II, 8, 12.
कलायर–कलाकर (चन्द्र) II, 16, 9.
कलिअ–कलित I, 2, 2.
कलिंग–दे. X, 10 2.
कलिंजर–न. I, 12. 9.
कल्लाण–कल्याण X, 25, 5.
कल्लाणय–कल्याणक I, 2, 2.
कवड–कपट VIII, 7, 6.

कवण–को नु. II, 12, 1. (H. कौन).

कवलिअ–कवलित X, 23, 3.

कवाल–कपाल II, 7, 9.

कविलकेस–कपिलकेश II, 12, 3.

कवोल–कपोल VII, 13, 5.

कव्व–काव्य II, 9, 3.

कसण–कृष्ण I, 16, 11.

कसय–कृश VI, 6, 6.

कसताडण–कशा + ताडन VIII, 9, 5.

कह–कथम् or कदा II, 4, 10. (M. केव्हां).

कह–कथा V, 2, 8.

कह–कथ् °इ I, 15, 2; °मि I, 2, 3; °हि II, 4, 10. °हंत IV, 7, 4; °हिवि V, 12, 6; °हेइ V, 1, 4.

कहव–कथमपि I, 2, 6.

कहव–कदापि II, 14, 1.

कहाणी–कथानक, II, 14, 3.

कहिअ–कथित II, 11, 1.

कहिं–क्व I, 11, 5 (H. कहाँ).

कहिं भि–क्वापि I, 17, 9.

कंचनमई–कांचनवती, स्त्री VI, 16, 3.

कंटइय–कण्टकित IV, 9, 9.

कंत–कान्त V, 5, 2.

कंपिर–कम्प् + इर (ताच्छील्ये) X, 19, 10.

काअ–काय IX, 12, 8.

काइं–किम् IV, 12, 6. (Mar. काइं G. कां)

काउल–कौल IX, 13, 8. (कुत्सित-कुल, टि.)

काउसग्ग–कायोत्सर्ग X, 26, 10.

कागली–काकली (soft sweet tone) (वीणा, टि.) III, 6, 3.

*काणि–लज्जा I, 2, 6; VI, 11, 8; VIII, 5, 6.

काणीण–कानीन (कन्याया अनूढाया अपत्यम्) I, 5, 1.

कामुक्कोयण–काम + उत्कोपन X, 27, 7.

कामुय–कामुक I, 4, 9.

कायर–कातर X, 29, 8.

कारवीअ–कारापित V, 3, 2.

कारुण्ण–कारुण्य VII, 14, 5.

कारोहण–वन X, 19, 7. (पर्वतरुहणाचल, टि. कारु a hillock, Apte Dic.)

कालिंजर–प. VI, 2, 4.

काहल–तत्सम् (वाद्यविशेष) II, 20, 2.

किअ–कृत II, 4, 1.

किज्ज–कृ passive or potential °इ II, 14, 1; VI, 3, 5.

किणिअ–क्रीत VIII, 16, 4.

किण्णरि–किन्नरी I, 15, 10.

कित्ति–कीर्ति II, 3, 6.

कित्तिय–कियत् VIII, 18, 3.

किय–कृत II, 14, 2.

कियत्थ–कृतार्थ IX, 17, 1.

किर–किल II, 8, 7; III, 12, 1.

*किर–सम्बन्धार्थे III, 6, 3.

किराय–किरात VIII, 16, 2.

किरिया–क्रिया X, 26, 8.

किलाविय–किल् (to cast out) p. p. causal. VI, 5, 3.

किलेस–क्लेश IX, 14, 9.

किवाण–कृपाण II, 3, 3.

किसोयरि–कृशोदरी VII, 13, 10.

किसोर–किशोर VIII, 2, 3.

किह–कथम् III, 1, 11.

कीय–कृत I, 2, 7.

कीर–कृ °इ I, 10, 1; V, 16, 3; X, 26, 22. (करोति).

कील–क्रीडा I, 10, 1.

कील–क्रीड् °एइ VII, 9, 3. °लेइ VI, 12, 8.

कीलणत्थ–क्रीडनार्थ V, 4, 6.

कीला–क्रीडा VI, 10, 6.

कीलाघर–क्रीडागृह IV, 4, 9.

कीलिर–क्रीड् + इर (ताच्छील्ये) I, 8, 4; VI, 10, 6.

*कीस–किम् (प्रश्नसूचक) X, 1, 3. (Pai. 826; H कैसा, prob. from कीदृश).

कुच्छि–कुक्षि VII, 2, 4.

कुडिल–कुटिल II, 14, 11.

कुडिलवंत–कौटिल्य + वत् III, 12. 6; X, 23,9.
कुणंत–कुर्वत् I, 9, 8; VIII, 14, 5.
कुद्द–कुद्ध III, 12, 4.
कुमर–कुमार II, 19, 7.
कुमरत्तण–कुमारत्व VI, 8, 6.
कुम्म–कूर्म III, 18, 6.
कुलिस–कुलिश IV, 15, 3.
कुविय–कुपित III, 17, 9.
कुव्वंत–कुर्वत् V, II, 13.
कुसुमउर–°पुर, न I, 6, 1; X, 13, 5.
कुसुमत्त–°दत्ता, स्त्री. I, 15, 9; X, 13, 5.
कुसुमदत्त–पु. I, 6, 7.
कुसुमाउह–°मायुध (काम) VI, 9, 3.
कुसुमावलि–स्त्री. VII, 16, 4; X, 24, 3.
कूअ–कूप VII, 3, 4.
कूर–तत्सम VIII, 13, 10; X, 14, 6. (भक्त D II, 43; K. Mal. T. कूल or कूर boiled rice).
केउमइ–केतुमती, स्त्री. VI, 12, 1.
*कंणअ–पूजाद्रव्य X, 17, 5 (केवडि पुजबु, टि; M केणें an article of merchandise).
केत्तहो–कुत्रचित् VI, 8, 10. (old H. कितहूं)
केत्तिअ–कियत् I, 11, 3.
केत्थु–कुतः II, 1, 10.
केयइ–केतकी I, 16, 11.
*केर–सेवा III, 10, 9; IV, 1, 5; VII, 15, 8; VIII, 10, 10.
केलि–कदली III, 6, 6 (H. केली)
केव–मिम् or कथम् IV, 13, 7.
केवल–ज्ञानविशेष IV, 10, 6.
केस–केश I, 17, 8.
केसरि–केसरिन् IV, 15, 4.
कोऊहल–कौतूहल IV, 13, 6.
*कोकाविअ–को इति शब्देन आहूत IV, 12, 4.
*कोक–आह्वे इत्यर्थे धातु °हुं VI, 11, 11.
कोड–क्रोड VI, 15, 1.
कोमलिय–कोमल VIII, 16. 9.
*कोर–अनुपभुक्त (वस्त्र) X, 17, 4 (H. कोरा).
कोसेय–कौशेय I, 4, 4 (H. कोसा silk),
कोह–क्रोध I, 1, 8.
कोहाइ–क्रोध + आदि IX, 10, 8.
कोहाणल–क्रोधानल II, 4, 7.
कोंकण–देश VIII, 12, 9.
कोंत–कुन्त III, 13, 7.

[ख]

खगणाह–खगनाथ III, 18, 9.
खगवइ–खगपति VI, 16, 9.
खग्गधेणु–खड्गधेनु VII, 10, 3.
खग्गुग्गामिय–खड्ग + उद्गामिन् III, 15, 11.
खज्ज–खाद् (कर्मणि) °इ IX, 21, 10.
*खड–तृण VIII, 12, 6 (D. II, 62. M खड. But here it probably means wood)
खण–खन् °हिं IV, 9, 1.
खणद्ध–क्षणार्ध I, 10, 6.
खणिय–खनित IV, 8, 7.
खद्ध–खादित II, 15, 5.
खप्पर–खर्पर I, 17, 14.
खम–क्षमा IX, 13, 9.
खम–क्षमा °हि III, 22, 2; °हु VIII, 19, 5; °मंतु X, 28, 8; °मोसु II, 18, 3.
खय–क्षय X, 23, 5.
खयर–खचर II, 21, 8.
खल–स्खल् °लंति VII, 5, 6; °लंत II, 3, 1.
खलखल–onomatop. IV, 14, 6.
खलभल–onomatop. III, 18, 7.
खलिय–स्खलित III, 12, 4.
खव–क्षप् °हि I, 11, 3; °वेइ IX, 14, 3.
खविय–क्षपित VI, 6, 8.
खंचिय–खचित or कृष्ट III, 8, 6; V, 10, 9; VII, 9, 8 (H खींचना to pull up)
खंजय–खंज I, 5, 6.
खंडाविय–खण्डापित II, 8, 6.
खंडिअ–खण्डित IX, 15, 1.
खंत–स्कंध (a flock) or खादन्तः (eating)

or खंत (ashamed as in Marathi) I, 3, 8.

खंध–स्कन्ध I, 12, 4.

खंभ–स्तम्भ IX, 13, 3.

खंभायण–न. VIII, 12, 10; VIII, 14, 9; VIII, 15, 1.

खा–खाद् °इवि VI, 5, 6; °हु VII, 3, 7.

खाण–खादन VIII, 2, 2; IX, 23, 6. (H. खाना food)

खाणाविय–खनायित IV, 8, 5.

खिणि–फलविशेष (H. खिन्नी or खिरनी) IX, 21, 5.

खीण–क्षीण VII, 1, 6.

खुडिय–खण्डित X, 2, 8 (H. खोंटना to pluck)

खुद्दुय–क्षुद्र + क V, 13, 6.

खुहिय–क्षुब्ध III, 2, 1.

खेअ–खेद VIII, 12, 5.

खेत्त–क्षेत्र I, 3, 8.

खेयर–खेचर II, 5, 2.

खेव–खेद II, 14, 2.

खोह–क्षोभ् °इ X, 29, 7.

खोह–क्षोभ III, 18, 4.

[ग]

गअ–गत I, 12, 10.

गअ–गज II, 5, 3.

गइ–गति IX, 6, 7.

गइय–गता IV, 12, 1.

गइंद–गजेन्द्र I, 10, 8.

गउरि–गौरी II, 2, 7.

गग्गिर–गद्गद VII, 11, 8.

गज्ज–गर्ज् °ज्जंति III, 15, 4.

गज्जमाण–गर्जत् V, 1, 7.

गणिअ–गणित I, 11, 3.

गत्त–गात्र II, 7, 7.

गब्भ–गर्भ II, 14, 12.

गब्भावयार–गर्भवितार X, 26, 5.

गब्भिणी–गर्भिणी VIII, 2, 1.

गभत्थि–गभस्ति VIII, 1, 7.

गयखंध–गज + स्कन्ध III, 3, 2.

गयगयण–गत + गगन V, 4, 8.

गयण–गगन IV, 9, 6.

गयणयल–गगनतल, न. V, 3, 9; X, 8, 5.

गयणंगण–गगनाङ्गन VIII, 9, 8.

गयपवर–गज + प्रवर III, 18, 10.

गयमोल्ल–गत + मूल्य II, 17, 3.

गयराय–गत + राग V, 6, 6.

गयास–गत + आश V, 6, 6.

गरु–गुरु II, 10, 1.

गरुयार–गुरुतर X, 5, 3.

गरुय, °व–गुरु + क II, 20, 10; VI, 16, 2.

*गलत्थिय–कदर्थित IV, 15, 8; (क्षिप्त acc. Hem IV, 14, 3; D. II, 87.

गलंत–गलत् VI, 4, 11.

गलिय–गलित VI, 4, 12.

गलियछम्म–गलित + छद्म VII, 16, 6.

गलियगव्व–गलित + गर्व V, 15, 3.

गलियदेस–गलित + द्वेष II, 12, 3.

गलियसर–गलित + शर III, 21, 8.

गव्व–गर्व II, 11, 8.

गह–ग्रह I, 1, 5.

गहण–ग्रहण VIII, 5, 14. (In tne sense of ornament H. गहना)

गहण–ग्रहण (In the sense of challenge) VIII, 15, 6.

गहिअ–ग्रहीत II, 5, 9.

गहिरिमा–गभीरिमा (गाम्भीर्य) I, 16, 6; II, 16, 10.

गहीर–गभीर V, 17, 7.

गंग–गंगा, नदी I, 3, 3.

गंठि–ग्रन्थि IV, 12, 1.

गाइज्जमाण–गीयमान III, 1, 6.

गाइय–गीत III, 8, 5.

गामंतर–ग्रामान्तर V, 10, 4.

गाय–गै °इ I, 14, 8.

गायंत–गायत् IV, 7, 7.

गाह–गाथा II, 14, 5.
गाह–ग्रह IV, 1, 5.
गिण्ह–ग्रह् °हि III, 22, 2.
गिद्धअ–गृद्ध + क I, 17, 5.
गिरा–गीः VII, 12, 2.
गिरिणयर- गिरिनगर III, 5, 7.
गिरिंद–गिरीन्द्र IV, 16, 4.
गिलंत–गिलत् III, 17, 10.
*गिल्ल–आर्द्र III, 1, 3 (H. गीला wet.)
गिंभयाल–ग्रीष्म + काल I, 11, 4.
गीय–गीत I, 3, 8.
गीवा–ग्रीवा III, 15, 9.
गुज्झ–गुह्य VIII, 20, 10.
गुड–(तत्सम molasses) II, 7, 1.
गुणठाण–गुणस्थान IX, 16, 8.
गुणणिकेअ–°निकेत II, 2, 8.
गुणणियर–°निकर V, 18, 4.
गुणणिलअ–गुणनिलय III, 19, 9.
गुणभरिय–गुणभृत I, 15, 11.
गुणवमाल–°वर्मल I, 15, 4.
गुणवय–°व्रत V, 12, 1.
गुणविणीय–°विनीत V, 19, 7.
गुणाल–गुण + आल (मत्वर्थे) V, 12, 2.
गुप्पविय–गोपित X, 13, 1.
गुप्प–गुप् °प्पंति III 15, 8.
गुलिया–गुलिका VII, 5, 11 (a stone-ball, कन्दुक D. II, 103; H. गुल्लिया)
गुलुगुलंत–onomatop. III, 13, 4; V, 14, 4.
गुणायर–गुणाकर III, 3, 11.
गुणाल–गुण + आल (मत्वर्थे) VII, 13, 4; X, 27, 1.
गेण्ह–ग्रह् °ण्हेवि IX, 20, 15.
गेण्हंत–गृण्हत् III, 14, 3.
गेहिणि–गृहिणी X, 11, 1.
गोउर–गोपुर I, 10, 9.
गोयर–गोचर I, 17, 8
गोवद्धण–गोवर्धन, प. IV, 11, 2.
गोहणणाह–गोधन + नाथ VIII, 3, 5.

[घ]

घग्घर–घर्घर IV, 15, 6 (घग्घर–जघनस्थवस्त्रभेद D II, 107, does not suit here).
घट्ट–घट् °इ I, 10, 10.
घड–घट X, 26, 2.
घड–घट् °डंति X, 25, 5; °डंतु IX, 16, 8,
घडिअ–घटित II, 7, 10.
घडीय–घटित (lengthened for metre) IV, 9, 4; VII, 12, 6.
घण–घन III, 3, 4.
घय–घृत III, 8, 8.
घर–गृह I, 1, 11.
घरट्ट–(तत्सम) a grinding stone III, 22, 7.
घरिणि–गृहिणी I, 2, 9.
घरवय–गृह + व्रत IX, 22, 2.
*घल्ल–क्षिप् °इ VI, 11, 11; IX, 4, 4. (Hem. IV, 334, 422, ex M. घालणें).
*घल्लिअ–क्षिप्त V, 2, 4; VII, 4, 5.
घाअ–घात VIII, 9, 4.
घाइऊण–घातयित्वा VII, 10, 7.
घार–पक्षिविशेष I, 17, 4. (M घार)
*खित्त°–क्षिप्त I, 4, 5, (See Notes on Nayakumara–cariu III, 6, 11.)
घिय–घृत X, 26, 2.
घुल–घूर्ण् °लंति I, 16, 14; IX, 3, 9, (M. घोलणें).
घुलंत–घूर्णत् I, 9, 4.
घुसिण–घुसृण IV, 11, 4.
घोडअ–घोटक VII, 2, 6 (H. घोडा.)
घोलिर–घूर्ण + इर (ताच्छील्ये) I, 17, 8.
घोसिअ–घोषित II, 20, 10.

[च]

चउक्क–चतुष्क IX, 10, 8.
चउगइ–चतुर्गति I, 1, 6.
चउथिय–चतुर्थ X, 12, 4.
चउद्दह–चतुर्दश IX, 15, 1.
चउदिस–चतुर्दिश III, 12, 13.

चउभेय–चतुर्भेद VI, 3, 7.
चउरंग–चतुरङ्ग IV, 1, 14.
चउरिय–चमरी VII, 7, 10.
चउविह–चतुर्विध II, 7, 6.
चउवीस–चतुर्विंशति V, 4, 8.
चउसत्थिय–चतुःशास्त्रीय VIII, 17, 8.
चक्क–चक्र II, 9, 5.
चक्कत्त–चक्रत्व V, 1, 9.
चक्कवाल–चक्रवाल V, 2, 1.
चक्कहर–चक्रधर IX, 7, 9.
चक्केसर–चक्रेश्वर X, 26, 1.
चकोरअच्छि–चकोराक्षी VII, 4, 8.
चक्खु–चक्षुष् VII, 1, 4.
चच्चरवंत–चर्चरी + वत् II, 20, 7. sportive, or चत्वरवत् square i. e. massive, Hem II, 12; चच्चर-जर्जर Hem IV, 325).
चच्चिअ– चर्चित, IV, 11, 4.
चट्ट–(तत्सम, शिष्य) VII, 2, 5.
*चड–आरुह् °इ IV, 5, 5; °डावहुं X, 5, 1; °डेवि I, 10, 9; °डेविणु VIII, 7, 10; °डेसहि II, 8, 3 (Hem. IV, 206, H चढ़ना).
*चडफडंत–परिस्फुरत् VIII, 20, 5, (H. तड़फड़ाना)
⋆चडाविय–आरोहित I, 12, 4; IV, 6, 6.
⋆चडिअ–आरूढ III, 1, 3; VIII, 9, 3.
⋆चडिण्णअ–आरूढ III, 3, 2; VII, 8, 8.
⋆चडीणा–आरूढ III, 6, 2.
⋆चडीय–आरूढ X, 13, 9.
चत्त–त्यक्त III, 20, 6.
चप्प–चाप III, 18, 3.
⋆चप्पिय–आक्रान्त VIII, 20, 8; (Hem. IV, 395; M. चापणें, चोपणें)
चमक्क–चमत् + कृ °इ VIII, 6, 3. (H चमकना, चौकना)
चमक्किय–चमत्कृत VII, 11, 4; VIII, 17, 11.
चम्मय–चर्म + क VII, 10, 8.
चयारि–चत्वारि IX, 23, 3.

चलण–चरण II, 4, 5.
चलाविय–चालित II, 20, 4.
चल्लिअ–चलित IV, 1, 13.
चवल–चपल IX, 18, 3.
चव–वच् (by वर्णविपर्यय) °इ X, 8, 3 (Hem IV, 2.)
चंग–(handsome M. चांगला) I, 16, 3.
चंदलेह–चन्द्रलेखा, III, 6, 5.
चंदलेह–चन्द्रलेखा, स्त्री. VII, 16, 3; X, 24, 4.
चंदाणण–चन्द्रानन VIII, 16, 10.
चंदायण–चान्द्रायण IX, 14, 8.
चंदारिसि–चन्द्र + ऋषि X, 28, 1. (The gotra of the poet).
चंदोवा–चन्द्रोपक X, 17, 9 (H चंदोवा; चंदेवा)
चंप–चम्पा, न. II, 5, 2.
चंपय–चम्पक I, 14, 6.
चंपा–चम्पा, न. I, 3, 12.
चंपाहिअ–चम्पाधिप III, 14, 9.
चाउरंग–चतुरङ्ग IV, 2, 5.
चामीयर–चामीकर III, 3, 6.
चारिय–चारित (fed) VIII, 2, 2. (H चराना)
चाव–चाप IV, 6, 6.
चिक्कार–चीत्कार onomatop. III, 14, 2.
चिंचिजाल–अर्चि + जाल I, 17, 7. (D. III, 10).
चिण–चि °णेवि IV, 13, 5.
चिणिअ–चित V, 13, 2.
चिण्हधअ–चिन्ह + ध्वज III, 16, 6.
चित्तधया–चित्र + ध्वजा VIII, 3, 8.
चित्तलिय–चित्रालय I, 4, 6.
चित्तलिय–चित्रलिप्त VI, 4, 8.
चिराणअ–चिरातन VII, 3, 4; VIII, 14, 2.
चिर–चिरम् IV, 13, 3.
*चिंधिय–वस्त्रखण्ड (पटच्चर) I, 17, 8.
चुअ–च्युत IV, 6, 5. (H. M. चिथी.)

*चुक्क–भ्रंश् °इ II, 8, 5 (Hem IV, 177; H चूकना, M चुकणे).
चुणंत–चिन्वत् VIII, 14, 1. (Hem. IV. 238)
चुंबअ–चुंबक IX, 12, 2.
चूय–चूत I, 14, 6.
चेट्ठ–चेष्ट् °इ VIII, 3, 6.
चेडिअ–चेटिका II, 15, 7.
चेर–दे. IV, 1, 5; VIII, 18, 5.
★चोज्ज–आश्चर्य II, 7, 8. (D III, 14; Pai 451; H चोज)
★चोज्ज–चिन्ता VI, 6, 2.
चोड–दे. II, 10, 5; VIII, 19, 3.
चोर–चौर I, 17, 4.
चोरिअ–चौर्य IX, 22, 6.

[छ]

छखंड–षट् + खण्ड I, 3, 4.
★छज्ज–राज्, शोभ् °इ I, 9, 3. (Hem. IV, loo, prob. from सज्ज्)
★छज्जमाण–सज्जमान, शोभमान VII, 9, 6.
छडय–छटा I, 4, 7.
छणवासर–क्षण° (पूर्णिमा) V, 19, 5.
छण्णव–क्षुद्र + नौ (?) VII, 8, 10.
छत्त–छत्र II, 8, 2.
छत्ताइमाण–छत्रायमान IV, 9, 2.
छम्म–छद्म VII, 16, 6.
छव्वासय–षड् + आवश्यक IX, 20, 20.
★छंड–मुच् °इ III, 5. 3, °उ II, 4, 6; °हि III, 21, 5; °डावइ II, 11, 2; °डिऊण VII, 10, 1; °डाविय V, 18, 2; °डिवि III 2, 6. (Hem IV, 91; H छोड़ना)
छाइय–छादित III, 16, 3.
छाय–छाया I, 7, 9.
छिण्ण–छिद् °हु VIII, 7, 8.
छिण्णिअ–छिन्न III, 16. 6.
°छिव–स्पृश् °इ I, 4, 2 (Hem IV, 182; H छीना to tcuch)
छिंदण–छेदन IV, 10, 3.

★छुट्ट–मुच् (कर्मणि) °इ IX, 5, 10, (H. छूटना to be released).
★छुट्टिय–मुक्त III, 20, 10; X, 14, 1. H. छूटी).
*छुडु–क्षिप्रम् III, 19, 1.
★छुद्ध–क्षिप्त I, 7, 3; X, 13, 1 (Hem IV, 143)
छुरिअ–क्षुरिका III, 13, 7.
★छुह–क्षिप् °उ IX, 7, 5; °हिवि X, 12, 9; (Hem. IV, 143).
छुह–सुधा V, 4, 8.
छुहतण्ह–क्षुधा + तृषा V, 10, 4.
छेत्त–क्षेत्र 1, 3, 3.
छेयण–छेदन IX, 8, 5.
छेयंतर–छेदान्तर II, 9, 7.
★छोड–मोचय् °इ X, 7, 5. (H. छोडना to untie).
छोहारदीव–द्वीपविशेष VIII, 10, 3.

[ज]

जइ–यदि I, 2, 4.
जइयहुं–यदा II, 8, 10 (H. ज्योंही).
जइवर–यतिवर VI, 2, 8.
जइवि–यद्यपि I, 2, 5.
जई–यति V, 9, 1.
जईसर–यतीश्वर IX, 22, 2.
जउ–यावत् II, 21, 3 (H. जब).
जउणा–यमुना (नदी) X, 12, 9.
जउलगि–यावत् + लग्नम् VIII, 2, 9 (H जबलग or जौलों).
जक्ख–यक्ष I, 3, 7.
जगतिलअ–जगत् + तिलक IV, 15, 10.
जगत्तअ–जगत् + त्रय V, 6, 3.
जडिअ–जटित IV, 9, 4.
जण–यान II, 2, 4.
जणवअ–जनपद I, 2, 4; X, 29, 14.
जणवइ–जनपति VI, 16, 8.
जणवर–जन्तुवर VIII, 7, 6 (H. जानवर).
जणाविअ–ज्ञापित II, 9, 9.

जणिअ–जनित V, 7, 1.
जम–यम II, 6, 8.
जमराय–यमराज IX, 5, 1.
जम्म–जन्मन् V, 12, 3.
जम्मावयार–जन्मावतार X, 26, 11.
जम्मि–यस्मिन् V, 11, 6.
जयएव–जयदेव, पु. I, 2, 9.
जयंती–न. VI, 10, 3.
जर–ज्वर III, 4, 11.
जलण–ज्वलन 11, 14, 7.
जलहर–जलधर I, 10, 8.
जलहि–जलधि I, 2, 5.
जलिअ–ज्वलित III, 8, 8.
जलोल्लिय–जल + आर्द्र VI, 1, 12.
जविय–जपित VII, 12, 8.
जसलुद्ध–यशोलुब्ध VIII, 18, 10.
जसहद्द–यशोभद्र, मुनि II, 7, 5.
जसहर–यशोधर मुनि, V, 8, 10; X, 5, 1.
जह–यथा III, 1, 12.
जंत–यान् (pre. part of या) I, 13, 10.
जंत–यन्त्र II, 9, 4.
जंप–जल्प् °इ II, 19, 7 (substitute for कथ् Hem IV, 2).
जंपिअ–जल्पित VI, 14, 3.
जंबुदीव–जम्बूद्वीप I, 3, 1.
जा–यावत् I, 12, 1.
जा–या °इ I, 12, 9; °हि I, 13, 6; °हुं III, 5, 2; °इवि, II, 11, 9; °उ IV, 3, 2; °वि V, 1, 12.
जाइ–जाति IX, 8, 4.
जागर–जागृ °रेवि X 17, 6.
जाण–यान VII, 11, 20.
जाण–ज्ञा °मि I, 2, 5; °हि III, 21, 3; °णंत III, 20, 8; °णिवि II, 4, 9.
जाणाविअ–ज्ञापित II, 9, 7.
जाणिअ–ज्ञात I, 11, 2.
जाम–यावत् I, 14, 3.
जामाय–जामातृ VII, 8, 5.
जामिणी–यामिनी I, 8, 5.
जाय–जात I, 17, 10.
जाला–ज्वाला II, 14, 7.
जाव–यावत् I, 13, 1.
जिण–जि °इ VIII, 13, 4; °णहं VIII, 14, 10; °णेवि V, 19, 3.
जिणिय–जित VIII, 13, 5.
जिणिंद–जिनेन्द्र V, 6, 2.
जिणेसर–जिनेश्वर V, 6, 1.
जित्त–जित II, 11, 2.
जिय°–जित V, 6, 7.
जिह–यथा III, 1, 12.
जीअ–जीव II, 15, 4.
जीय–जित VIII, 15, 4.
जीह–जिह्वा I, 17, 6.
°जुअ–युत III, 16, 4.
जुज्झ–युद्ध II, 9, 6.
जुण्ण–जीर्ण X, 18, 9, (M जूना Hem. I, 102).
जुत्त–युक्त I, 12, 5.
जुय–युत II, 9, 2.
जुवई–युवति VII, 7, 4.
जुवल–युगल VII, 15, 9.
जुवाण–युवन् VII, 7, 6.
जुंज–युज् °इ IX 20, 21.
जुंजिअ–योजित VI, 2, 9.
जूरिय–ज्वरित I, 17, 9. suds. for खिद् Hem IV, 132, 135)
जूय–द्यूत VIII, 13, 4.
जूवार–द्यूतकार VIII, 15, 2.
जेट्ठउत्त–ज्येष्ठ + पुत्र VIII, 4, 8.
जेम–यथा I, 10, 4.
जोइ–योगिन् IX, 24, 1.
*जोइअ–दृष्ट I, 7, 5.
*जोड–योजय् °डिवि II, 1, 12; X, 19, 10; X, 28, 8.
जोय–योग X, 26, 14.
जोयण–योजन I, 3, 2.

जोव्वण–यौवन X, 13, 9.
जोह–योध III, 17, 7.
जोहिय–योधित III, 17, 7.

[झ]

झडि–झटिति XIII, 4, 3.
झरंत–क्षरत् III, 1, 3.
झलझलिअ–onomatop. III, 18, 8.
झकाझक–onomatop. IV, 6, 5.
झा–ध्यै °एवि VII, 12, 10; °यइ VII, 13, 1, °यहि VI, 10, 1.
झाण–ध्यान II, 7, 7.
झाणजोइ–ध्यान + योगिन् IX, 13, 8.
झाणट्ठिय–ध्यान + स्थित III, 2, 1.
झाणाणल–ध्यान + अनल X, 27, 5.
झाय–ध्यात V, 5, 8.
झिज्ज–खिद् °इ IX, 8, 7.
झीण–क्षीण II, 6, 9; III, 6, 5.
झुणि–ध्वनि X, 6, 3.

[ट]

टक्क–जातिविशेष VIII, 16, 1.
टलटलिअ–onomatop. III, 18, 7.
*टिंट–द्यूतस्थान VIII, 15, 2. (टेंटा D. IV, 3)
*टेवंत–तीव्रीकुर्वत् (?) X, 19, 8 (H टेना to sharpen).

[ठ]

ठा–स्था Imperative IX 20, 15.
ठाअ–स्थान III, 11, 2; V, 3, 3 (H ठांव)
ठाण–स्थान II, 15, 3.
ठिअ–स्थित III, 4, 3.

[ड]

डक्कार–डुत्कार onomatop. (H. डकार)
डज्झमाण–दह्यमान I, 17, 10.
डर–दर (भय) VII, 5, 4.
डरिय–दीर्ण (दृ + क्त) I, 1, 6; VIII, 18, 11, oa पतित as in H. डरा fallen.
डसिअ–दष्ट VII, 4, 6.
डसियाहर–दष्ट + अधर III, 13, 10.
डंभ–दम्भ IX, 12, 5.
डिंडिम–वाद्यविशेष II, 11, 6.
डोल–दोलाय् °इ IV, 15, 5.
*डोहंत–गम्भीर + अन्त I, 13, 10 (H. M. deap water).

[ढ]

ढंख–शुष्कप्राय I, 14, 2 (M ढांक an old and decaying tree ढंक-ध्वांक्ष c. f. D IV, 13 and Pai. 67 does not suit well).
⋆ढाल–निर + वम्° लेसहि II 19, 10 (H ढालना to pour down).
ढुक्क–ढौकित IV, 5, 4; VII, 10, 6.

[ण]

णइ–नदी I, 3, 3.
णव–नव IV, 13, 9.
णअ–नत II, 2, 9; VIII, 4, 2.
णउ–न I, 14, 12
णउल–नकुल IX, 9, 7.
*णग्गुड–नग्न VIII, 15, 5 (H. नगोडा penniless).
णच्च–नृत् °इ III, 3, 5 (Hem IV, 225).
णच्चण–नर्तन VIII, 10, 1.
णच्चिर–नृत् + इर (ताच्छील्ये) I, 17, 6 (रमणशील D IV, 18).
णट्ठ–नष्ट II, 13, 7.
⋆णडिय–वंचित, VI, 10, 9 (D. IV, 18).
णण्ह–स्निग्ध VIII, 2, 6.
णत्थि–नास्ति I, 2, 11.
णद्द–नाद IX, 2, 2.
णहग्ग–नभः + ग VIII, 3, 2.
णमिय–नमित III, 20, 8.
णय–नत III, 19, 6.
णयणुल्ल–नयन + उल्ल (स्वार्थे) I, 3, 6.
णयर–नगर II, 6, 7.
णरयाल–नरकालय IX, 8, 2.
णरवइ–नरपति I, 10, 6.
णरवाहणदत्त–पु. V, 19, 9.
णरायण–नारायण X, 25, 3.

णराहिव–नराधिप II, 16, 3.
णरिंद–नरेन्द्र I, 2, 3.
णरेसर–नरेश्वर I, 10, 7.
णव–नम् °इ III, 11, 9, °हु IV, 1, 7; °हुं IV, 1, 9; °वेवि III, 9, 5.
णवकार–नमस्कार मंत्र V, 18, 8.
णवणिय–नवनीत (घृत) IX, 21, 4.
णवल्ल–नव + अल्ल (स्वार्थे) II, 17, 10.
णह–नभ: III, 12, 4.
णहयल–नभस्तल II, 21, 8.
णहरूव–नख + रूप I, 16, 1.
णहंगण–नभ: + अंगन IV, 8, 8.
णं–ननु I, 3, 5.
णाइणि–नागिनी X, 12, 11.
⋆णाइं–इव I, 9, 6; I, 16, 1; II, 20, 3; (H नाईं like).
णाडय–नाटक II, 9, 2.
णाण–ज्ञान I. 1, 4.
णायकुमार–नाग° X, 3, 1.
णायदत्त–नाग° पु X, 6, 7.
णायदत्त–नागदत्ता, स्त्री, X, 10, 6.
णायर–नागर III, 1, 8.
णारय–नारक IX, 8, 2.
णारि–नारी I, 15, 10.
णालंद–नालन्दा न. X, 10, 9.
णास–नश् °इ VIII, 14, 5.
णास–नाश II, 19, 5.
णास–नासा II, 3, 6.
णासिय–नाशित II, 21, 3.
णाह–नाथ III, 9, 4.
णाहि–नाभि I, 16, 6.
णिअ–नृप II, 12, 5.
⋆णिअ–दृश् °एइ I, 15, 1 (Hem IV, 181),
णिउणिया–निपुणिका II, 6, 2.
णिउण–निपुण X, 26, 22.
णिकाअ–निकाय VIII, 13, 7.
णिकिट्ठ–निकृष्ट IX, 6, 8.
णिकेअ–निकेत III, 3, 3.
णिक्खण–निष् + खन् °णेवि V, 8, 8.
णिक्खय–निक्षत IV, 17, 7.
णिक्खवण–निक्षपण X, 26, 14.
णिग्गअ–निर्गत III, 14, 9.
णिग्गम–निर्गम् °मेइ IV, 14, 4.
णिग्गह–निग्रह IX, 21, 3.
णिग्गंत–निर्गच्छत् IV, 14, 5.
णिग्गंथ–निर्ग्रन्थ III, 2, 5.
णिग्घिण–निर्घृण, IX, 4, 10.
णिचिट्ठ–निश्चेष्ट VIII, 8, 2.
णिच्च–नीच II, 14, 2.
णिच्च–नित्य IV, 10, 8.
णिच्चल–निश्चल V, 2, 10.
णिच्छअ–निश्चय, I, 10, 10.
णिच्छेदिय–निश्छिद्रा X, 13, 2.
णिज्जर–निर्जरा IX, 14, 1.
णिज्जिय–निर्जित IV, 10, 4.
णिज्जुंज–नि + युज् °जिवि X, 27, 8.
णिज्झर–निर्झर III, 1, 3.
णिज्झाइय–नि + ध्याता VII, 12, 10.
णिट्ठवण–निष्ठापन III, 22, 9.
णिट्ठुर–निष्ठुर VI, 6, 7.
णिद्दुरिय–निर + दुलित V, 14, 9; X, 20, 3.
णिण्णासयर–निर्नाशकर V, 6, 9.
णित्ति–नीति II, 18, 10.
णित्तुलिय–निस्तुलित IX, 11, 11.
णिद्ध–स्निग्ध IV, 10, 10.
णिद्धण–निर्धन VI, 5, 3.
⁂णिद्धाड–नि: + सृ (णिच्) °डिवि V, 2, 4 (Hem. IV, 79).
⁂णिद्धाडिअ–निस्सारित X, 1, 9.
णिब्भच्छिअ–निर्भर्त्सित IV, 1, 8.
णिब्भर–निर्भर V, 14, 5.
णिबज्झ–नि + बंध् (कर्मणि) °इ VI, 4, 2.
णिमिस–निमेष IX, 15, 5.
णिम्मल–निर्मल II, 11, 7.
णिम्मविअ–निर्मापित V, 3, 2.
णिम्मिअ–निर्मित VII, 2, 9.
णिय–निज II, 1, 4.

णिय–नीत, II, 11, 1.
*णिय–दृश् °इ VIII, 12, 3.
णियय–निज + क VI, 1, 9.
णियर–निकर I, 2, 3.
णियंब–नितम्ब I, 16, 4.
णियाण–निदान VI, 4, 4.
णिरत्थ–निरर्थ III, 19, 5.
णिरहरिअ–निर्हृत II, 18, 2.
*णिरारिउ–नितराम् X, 6, 2.
*णिरु–नितराम् I, 2, 4.
णिरुत्तउ–नितराम् (निरुक्तम्) VII, 1, 4
(M. निरुतें certainly).
णिरुव–निरूप II, 3, 8.
णिलअ–निलय II, 1, 9.
णिय–निज X, 19, 8.
णिव–नृप II, 21, 5.
णिवइ–नृपति III, 11, 9.
णिवज–नैवेद्य IX, 20, 17.
णिवडिय–निपतित III, 6, 4.
णिविट्ठ–निविष्ट VIII, 15, 3.
णिवित्त–निवृत्ति IV, 1, 11.
णिवेज–नैवेद्य VII, 12, 7.
णिवेसिअ–निवेशित IV, 11, 9.
णिव्विण्ण–निर्विण्ण X, 25, 1.
णिसायर–निशाचर IX, 21, 10.
णिसिभोयण–निशि + भोजन V, 12, 2.
णिसियर–निशिचर II, 13, 9.
णिसिवअ–निशि + व्रत X, 12, 2,
णिसुअ–निश्रुत IV, 12, 10.
णिसुण–नि + श्रु °हि V, 9, 1; °णि I, 14, 5;
°णिवि IV, 12, 7.
णिसुय–निश्रुत X, 29, 4.
णिहण–निधन (मरण) II, 14, 8.
णिहण–निर्धन IX, 5, 10.
णिहम्म–नि + हन् (कर्माणि) °इ IX, 8, 2.
णिहंत–निघ्नत् IX, 13, 4.
णिहाअ–निघात IV, 15, 3.
णिहाण–निधान I, 3, 4.
णिहाल–निभाल् °हि V, 6, 10 (H. निहारना
to see attentively).
णिहालण–निभालन (अवलोकन) IX, 8, 9.
णिहिय–निहित II, 16, 8.
णिहिल–निखिल X, 25, 6.
णिहीण–निहीन V, 16, 6.
णिहोडण–निपातन V, 5, 10. (Hem.
IV, 22; prob. from निर्घट्टनम्).
णीअ–नीत IV, 8, 6.
णीइ–नीति II, 14, 3.
णीयाण–निदान VI, 4, 5.
णील–नील, पु. V, 2, 2.
णीवि–नीवी X, 7, 5.
णीसर–निः + सृ °इ IV, 13, 2; °हुं IV, 13, 7;
°रिवि VI, 9, 8.
णीससंत–निः + श्वसत् III, 5, 3.
णीसारिअ–निः + सारित X, 22, 4.
णेउर–नूपुर III, 2, 6; Hem I, 123;
Var. I, 26).
णेत्त–नेत्र VII, 3, 1.
णेवावि–नी + णिच् + क्त्वा VIII, 13, 2,
णेवी–नी + भविष्यत् II, 5, 4.
णेह–स्नेह I, 3, 7.
णेहल–स्नेह + ल (मत्वर्थे) VI, 11, 6.
णेहवंत–स्नेह (तैल) + वत् VIII, 2, 2.
ण्हवण–स्नपन X, 26, 2.
ण्हंत–स्ना + अत् (pre. part.) III, 12, 8.
ण्हा–स्ना °इवि IV, 11, 7; °विऊण X, 17, 8.
ण्हाण–स्नान V, 3, 4.

[त]

तअ–तपस् V, 9, 10.
तइय–तृतीय V, 12, 10.
तइयहुं–तदा VII, 11, 18.
तउलग्गि–तावत् + लग्नम् VIII, 2. 10.
(H. तौलों or तबलों).
तक्क–तर्क II, 9, 2.
तक्खण–तत्क्षण I, 10, 2.
तग्गय–तद्गत III, 1, 8.

तच–तत्त्व IX, 21, 3.
तट्ठीय–तत् + स्थिता III, 18, 1.
तड–तट III, 20, 11.
तडयड–Onomatop. III, 18, 6.
तण–संबन्धवाचक, I, 2, 3.
तणउ–तनु II, 6, 4.
तणुवण–तृण + वन II, 4, 7.
तण्ह–तृष्णा II, 16, 5.
तण्हाउर–तृष्णातुर IV, 7, 3.
तम–तमस् I, 16, 14.
तरलिअ–तरलित I, 14, 11.
तवचरण–तपश्चरण II, 13, 7.
तवसि–तपस्विन् IX, 5, 9.
तवसिरि–तपः + श्री III, 22, 8.
तवोहण–तपोधन VI, 6, 6.
तस–त्रस IX, 24, 3.
तह–तथा I, 2, 1.
तंडउ–ताण्डव IV, 11, 6.
तंत–तंत्र II, 9, 4.
तंद–तंद्रा I, 9, 7.
ता–तदा I, 11, 4.
ताअ–तात III, 19, 8.
ताउ–तावत् I, 6, 1.
ताम–तावत् I, 14, 3.
तामलित्ति–ताम्रलिप्ति, न, X, 10, 5.
ताय–तात VII, 15, 2.
तार–असुरदेवता, टि II, 2, 3.
ताव–तावत् I, 13, 2.
तावस–तापस VIII, 8, 3.
ताविअ–तापित VI, 12, 5.
तिक्ख–तीक्ष्ण II, 3, 3.
तिणु–तृण VIII, 19, 8.
तिण्णि–त्रीणि II, 8, 6.
तित्ति–तृप्ति X, 10, 5.
तित्थयर–तीर्थंकर V, 9, 6.
तिय–स्त्री X, 9, 6 (H. तिया).
तियाल–त्रिकाल X, 27, 1.
तिरियलोय–तिर्यग् लोक IX, 15, 3.
तिरीड–किरीट IV, 10, 2; IV, 16, 3.
तिलअ–तिलक X, 25, 10.
तिलयदीव–तिलकद्वीप VII, 15, 1.
तिलरिय–तैलत्व (स्नेह) VI, 10, 5.
तिलोय–त्रिलोक V, 6, 4.
तिहुवण–त्रिभुवन VI, 1, 9.
तुट्ट–त्रुट् °ट्टंति III, 15, 4; °ट्टेवि VIII, 1, 6.
तुट्ठ–तुष्ट VII, 8, 5.
तुट्ठि–तुष्टि IV, 11, 3.
तुम्हारिस–त्वादृश VIII, 10, 6.
तुरअ–तुरग VII, 2, 7.
तुरंत–त्वरित II, 15, 3.
तुरिअ–त्वरित II, 10, 7.
तुल्ल–तुल्य VIII, 6, 10.
तुसार–तुषार IX, 14, 4.
तुहार–तव II, 18, 5; (H. तुम्हारा).
तुहुं–त्वम् I, 10, 3.
तूर–तूर्य X, 17, 6.
तूस–तुष् °सेवि II, 14, 9.
तेअ–तेजस् II, 8, 9.
तेत्तिय–तावती V, 6, 3.
तेत्थु–तत्र, I, 14, 10.
तेम–तथा III, 8, 10.
तेय–तेजस् I, 9, 3.
तेयणिहि–तेजोनिधि III, 1, 12.
तेरउ–तव III, 21, 5 (H तेरा)
तेरहम–त्रयोदशम X, 16, 7.
तेराणयर–तेरानगर V, 2, 6.
तो–ततः I, 2, 8; I, 10, 10.
तोअ–तोय II, 14, 8.
तोड–त्रोटय् °मि IV, 17, 2; °डंति III, 15, 9; °डेविणु X, 27, 2.
तोडिय–त्रोटित VIII, 12, 8.
तोयजाण–तोय + यान VII, 9, 8.
तोलादंड–तुला° II, 2, 2.
तोस–तोष II, 3, 4.

[थ]

था–स्थापय् °इ VI, 7, 5; °वंति VII, 13, 7; °इवि V, 2, 7; °एवि X, 17, 3; °विऊण VII, 10, 7.

थक्क–स्था °इ X, 25, 2 (Hem. IV, 16).
थक्क–स्थित II, 1, 8.
❊थट्ट–समूह III, 8, 6 (M. थट or थव; H. थट्ट or ठट्ठ).
थण–स्तन I, 9, 4.
थम्भ–स्तम्भ IV, 4, 3.
थरहरन्त–कम्पमान onomatop. III, 13, 5.
थल–स्थल 1, 3, 9,
थविअ–स्थापित VI, 16, 10.
थाण–स्थान V, 8, 7.
थाम–स्तम्भ 1, 17, 8.
थाल–स्थाली IX, 2, 6.
थावर–स्थावर IX, 24, 3.
थिअ–स्थित III, 4, 12.
❊थिप्प–विगल् °प्पंति III, 15, 8; (Hem. IV, 175.)
❊थिप्पिर–तृप् + इर (ताच्छील्ये I, 17, 5 (Hem. IV, 138).
थिय–स्थित IV, 17, 9.
थिर–स्थिर III, 2, 10.
थी–स्त्री X, 22, 9.
थीअ–स्थित X, 23, 2.
थीवेअ–स्त्री + वेद X, 15, 5.
थुइ–स्तुति III, 20, 9.
थुण–स्तु °इ VII, 14, 3; °णंति IX, 2, 4; °णेहि V, 6, 2.
थूल–स्थूल VII, 10, 6.
थोर–स्थूल II, 12, 10 (M. G. थोर much)
थोवअ–स्तोक, VIII, 2, 6.
थोवंतर–स्तोकान्तर IV, 8, 7.

[द]

दइव–दैव VII, 11, 11.
दक्ख–द्राक्षा I, 3, 9 (H. दाख)
दक्खाल–दर्शय् °लि IV, 13, 6.
दक्खालिअ–दर्शित VII, 7, 5.
दक्खिण–दक्षिण V, 4, 5,
दक्खिणवह–दक्षिणापथ IV, 2, 4.
दड्ढ–दग्ध IX, 4, 9.
दद्दुर–दर्दुर IV, 13, 8.
दप्पण–दर्पण VIII, 5, 11.
दब्भंकिय–दर्भाङ्कित III, 12, 9.
दय–दया V, 2, 10.
दरमलीय–दुर्मर्दित VIII, 19, 4.
दविण–द्रविण II, 17, 8.
दव्व–द्रव्य VII, 12, 9.
दसण–दशन III, 15, 5.
दसरह–दशरथ पु. III, 1, 12.
दह–दश III, 12, 3.
दहि–दधि VIII, 13, 6.
दंतीपुर–न. II, 5, 4.
दंसण–दर्शन IV, 10, 10.
दाइज्ज–दाय VII, 8, 2 (H दायजा or दहेज)
दाइय–दायाद VI, 4, 9.
दाढा–दंष्ट्रा IV, 5, 4.
दामोयर–दामोदर IX, 17, 10.
दार–द्वार X, 22, 6.
दारिय–दारित I, 17, 5.
दाव–दर्शय् °इ X, 7, 5 (Hem. IV, 22)
दाहिण–दक्षिण II, 2, 4.
दिअ–द्विज X, 21, 3.
दिएसर–द्विजेश्वर II, 20, 1.
दिक्ख–दृश् °क्खवि II, 12, 8.
दिक्ख–दीक्षा X, 24, 7.
दिज्ज–दा (कर्मणि) °इ II, 15, 2.
दिट्ठ–दृष्ट I, 14, 2.
दिढ–दृढ II, 9, 5.
दिणयर–दिनकर I, 1, 1.
दिण्ण–दत्त I, 10, 5.
दित्त–दीप्त I, 4, 5.
दिप्पंत–दीप्यमान III, 14, 6.
दिम्मुह–दिङ्मुख II, 3, 4.
दियवर–द्विजवर III, 4, 3.
दियह–दिवस II, 5, 10.
दियंबर–दिगम्बर X, 28, 2.
दिवह–दिवस III, 8, 3.
दिवायर–दिवाकर II, 3, 1.
दिविडदेस–द्रविडदेश IV, 1, 4.
दिव्व–दिव्य I, 2, 1.

दिसामुह–दिशामुख IV, 6, 7.
दिहि–धृति VI, 2, 6 (Hem. II, 131).
दिंत–ददत् VIII, 4, 4.
दीवअ–दीपक III, 3, 9.
दीव–द्वीप, दीप I, 3, 1.
दीस–दृश् (कर्मणि) °इ I, 14, 5.
दीह–दीर्घ III, 4, 11.
दीहर–दीर्घ III, 16, 4. (Hem. II, 171).
दुइज–द्वितीय X, 10, 8 (H. दूजो).
दुक्किय–दुष्कृत IX, 8, 3.
दुक्खाउर–दुःखातुर IX, 4. 1.
दुक्खिय–दुःखित II, 6, 2.
दुज्जण–दुर्जन I, 2, 4.
दुट्ठ–दुष्ट I, 12, 9.
दुण्णीइ–दुर्नीति II, 19, 4.
दुत्थिअ–दुःस्थित VI, 5, 1.
दुप्पवेस–दुष्प्रवेश X, 10, 2.
दुद्ध–दुग्ध X, 20, 10.
दुद्धर–दुर्धर I, 13, 9.
दुम–द्रुम I, 3, 1.
दुम्मण–दुर्मनस् I, 15, 7.
दुम्मिय–दून VI, 8, 9; VIII, 19, 3. (Hem. IV, 23; Var. VIII, 8).
दुम्मुह–दुर्मुख VII, 11, 11.
दुरिय–दुरित I, 5, 6.
दुरेह–द्विरेफ IV, 6, 7.
दुवार–द्वार VIII, 6, 6.
दुवारिअ–दौवारिक VIII, 6, 8.
दुविह–द्विविध IX, 14, 10.
दुसम–दुःषम IV, 17, 5.
दुह–दुःख I, 1, 6.
दुहमहिय–दुःख + मथिका I, 7, 10.
दुहयर–दुःखकर VI, 5, 5.
दुहिय–दुःखित VII, 8, 5.
दुहिय–दुहितृ X, 12, 2.
दुंदुहि–दुंदुभि IV, 9, 3.
दूअ–दूत III, 9, 10.
दूसय–दूष्यक (tent) IV, 2, 6.
दूसिय–दूषित IX, 11, 2.
दे–दा °इ II, 1, 8; °उ III, 11, 7; °मि II, 14, 5; °वि I, 17, 1; °विणु II, 21, 7.
देअ–देव I, 11, 8.
देक्ख–दृश् °इ V, 12, 8; °हुं III, 4, 7. °क्खिवि II, 6, 9.
देक्खंत–पश्यत् V, 5, 4.
देवअ–देवता VII, 12, 10.
देवाविअ–दापित II, 15, 6 (H. दिवाया).
देस–द्वेष II, 12, 3.
देस–देश I, 3, 5.
देहि–देहिन् I, 17, 9.
दोण्णि–द्वौ II, 18, 3.
दोल्लहर–दोलगृह III, 6, 2.
दोवालस–द्वादश X, 16, 6.
दोस–दोष I, 17, 1.
दोहल–दोहद I, 9, 11 (Hem. I, 221).

[ध]

धणु–धनुष् I, 16, 12.
धणुवेय–धनुर्वेद II, 9, 5.
धणुहडिय–धनुः + घटिका or घटिका (?) VII, 5, 13 (prob. a catapult)
धणुहर–धनुर्धर III, 12, 12.
धण्ण–धन्य I, 14, 12.
धम्म–धर्म I, 13, 4.
धय–ध्वज II, 8, 2.
धर–धृ °मि IV, 13, 5; °हि II, 11, 8.
धर–धरा III, 2, 8.
धरणिंद–धरणेन्द्र III, 18, 8.
धरणिवइ–धरणीपति III, 19, 10.
धरणिवाल–धरणीपाल VII, 8, 8.
धरिअ–धृत II, 11, 5.
धरित्ति–धरित्री II, 14, 5.
धाइअ–धावित V, 14, 7.
धाढीवाहण–पु. I, 4, 10.
धिट्ठ–अधिष्ठित (?) I, 17, 4.
धिट्ठ–धृष्ट III, 17, 2.
धीय–दुहितृ I, 16, 6.

धुण–धू °इ IV, 15, 6; °णिवि II, 20, 10.
धुत्त–दुहितृ VIII, 11, 2.
धुर–धुर्य VIII, 2, 5.
धूमकेउ–°तु, पु. VI, 10, 4.
धूय–दुहितृ VII, 7, 9.
धेणुआ–धेनुका (खड्ग) VII, 3, 7.
धो–धाव् °इवि IV, 7, 9; °वेइ IX, 20, 16; °वत X, 5, 6.

[प]

पअ–पद IX, 9, 3.
पइ–पति VII, 11, 18.
पइज–प्रतिज्ञा IV, 1, 12.
पइट्ठ–प्रविष्ट III, 4, 10.
पइट्ठाण–प्रतिष्ठान, न. VI, 9, 2.
पइडिअ–प्रकटित X, 29, 14.
पइण्ण–प्रदत्त II, 12, 8.
पइस–प्र + विश् °इ III, 3, 7; °हुं VI, 5, 5.
पइसर–प्रति + सृ °उ IX, 7,4; °रिवि X,23,12.
पइसंत–प्रविशत् III, 1, 11.
पइसार–प्रतिसार (प्रवेश) IV, 3, 4.
पइसारिअ–प्रतिसारित (प्रवेशित) III, 3, 10.
पइं–त्वम् III, 10, 6; त्वाम् III, 20, 4; त्वया I, 10, 9; तुभ्यम् III, 11, 9.
पउत्त–प्रोक्त III, 10, 1.
पउत्ति–प्रोषित V, 16, 10.
पउम–पद्म IV, 4, 6.
पउमएउ–पद्मदेव, पु. VI 11, 3.
पउमावइ–पद्मावती, स्त्री I, 7, 9; II, 1, 12.
पउर–प्रवर I, 1, 8.
पएस–प्रदेश II, 3, 6.
पओहर–पयोधर III, 2, 10.
पक्ख–पक्ष III, 6, 5.
पक्खल–प्र + स्खल् °लंति VIII, 18, 10; °लंतु VII, 9, 6; °लेइ IX, 13, 5.
पक्खालिअ–प्रक्षालित IV, 7, 9.
पक्खि–पक्षिन् I, 17, 7.
पघोसिअ–प्रघोषित V, 10, 6.
पच्चक्ख–प्रत्यक्ष X, 7, 1.
पच्छइं–पश्चात् VI, 6, 10.
पच्छण्ण–प्रच्छन्न IV, 7, 6.
पच्छल–पक्ष्मल VIII, 2, 4.
पच्छित्त–प्रायश्चित्त X, 23, 5.
पच्छिम–पश्चिम IV, 4, 2.
पज्जुण्ण–प्रद्युम्न, पु. III, 21, 10.
पज्जलियमाण–प्रज्वलत् III, 7, 2.
पट्टण–पट्टन I, 13, 8.
पड–पत् °डेइ IV, 6, 3.
पडघर–पट + घर III, 5, 1.
पडल–पटल IV, 8, 6.
पडह–पटह II, 9, 8.
पडंत–पतन् IX, 9, 1.
पडाय–पताका I, 4, 4.
पडिअ–पतित II, 16, 5.
पडिकूल–प्रतिकूल V, 15, 10.
पडिकेसव–प्रति + केशव IX, 17, 11.
पडिखल–प्रति + स्खल् °इ I, 10, 2.
पडिखलण–प्रति + स्खलन IX, 18, 6.
पडिगाह–प्रति + ग्रह् (णिच्) °हु VIII, 19, 5.
पडिछंद–प्रतिछन्द V, 7, 3.
पडिपेल्लिय–प्रति + प्रेरित V, 2, 3.
पडिम–प्रतिमा IV, 11, 10.
पडिलव–प्रति + लप् °इ VIII, 10, 9.
पडिव–प्रतिपद् X, 15, 9.
पडिवज्ज–प्रति + वच् °इ VIII, 7, 6.
पडिवण्ण–प्रतिपन्न III, 8, 1.
पडिवयण–प्रतिवचन I, 10, 4.
पडिसद्द–प्रतिशब्द VI, 9, 4.
पडिहार–प्रतिहार III, 9, 8.
पडिहास–प्रति + भास् °हिं VIII, 10, 8. (रोचन्ते इति टिप्पणम्).
पडीय–पतित IV, 9, 6 (lengthened for metre).
पडुत्तर–प्रत्युत्तर VIII, 5, 14.
पढम–प्रथम IV, 14, 4.
पढ–पठ् °हि II, 14, 5; °हंत II, 20, 1, °ढिवि III, 8, 8.
पढिय–पठित II, 14, 6.

पणकल्लाण–पञ्च + कल्याण X, 25, 9.
पणच्च–प्र + नृत् °हि VII, 1, 11.
पणट्ठ–प्रणष्ट II, 3, 4.
पणयिणि–प्रणयिनी III, 3, 5.
पणमिय–प्रणमित III, 9, 1.
पणव–प्र + णम् °इ X, 4, 10; °वेसइ V, 19, 4; °वेप्पिणु VI, 9, 3.
पणविअ–प्रणमित X, 3, 9.
पणास–प्र + णश् °इ IX, 19, 10.
पणासिय–प्रणाशित V, 17, 3.
पण्ण–पर्ण VII, 6, 1.
पण्णरस–पञ्च + दश X, 16, 8.
पत्त–पत्र II, 9, 7.
पत्त–प्राप्त I, 13, 8.
पत्त–पात्र IX, 23, 6.
पत्थर–प्रस्तर IV, 13, 9.
पत्थिव–पार्थिव I, 8, 7.
पदिण्ण–प्रदत्त III, 9, 3.
पधाइय–प्रधावित X, 24, 2.
पपुच्छिय–प्र + पृष्ट X, 18, 1.
पप्फुल्ल–प्रफुल्ल IV, 9, 9.
पभण–प्र + भण् °इ I, 11, 4; °हि II, 7, 10.
पभणिअ–प्रभणित II, 4, 9.
पमण्ण–प्र + मन् °ण्णिवि VII, 3, 6.
पमाण–प्रमाण V, 6, 4.
पमुक्क–प्रमुक्त III, 20, 11.
पमूढ–प्रमूढ IX, 3, 5.
पमेल्लिय–प्रमुक्त II, 1, 9 (Hem IV, 91)
पय–पद IV, 7, 9.
पय–पयस् X, 26, 2.
पयड–प्रकट I, 2, 3.
पयडाइअ–प्रकटित IV, 13, 4.
पयडिअ–प्रकटित IV, 14, 9.
पयवय–प्रतिव्रता V, 15, 8.
पयाण–प्रयाण III, 12. 4.
पयत्त–प्रयत्न III, 5, 4.
पयंड–प्रचण्ड II, 3,7.
पयंप–प्र + जल्प् °इ I, 10, 1.
पयाग–प्रयाग, न. VI, 6, 5.
पयासिअ–प्रकाशित II, 3, 7.
परज्जिय–पराजित II, 3, 1.
परमुट्ठअ–परम + उत्सुक V, 8, 5.
परम्मुह–पराङ्मुख VI, 4, 11.
परयार–परदारा X, 10, 1.
परलोय–परलोक III, 1, 9.
पराइअ–परागत II, 11, 6.
पराई–परकीया IX, 22, 7.
परायअ–परागत II, 8, 7.
परिअक्खिअ–परि + आख्यात II, 21, 4.
परिओस–परितोष V, 2, 9.
परिग्गह–परिग्रह IV, 1, 11.
परिघुलिअ–परि + घूर्णित VII, 8, 9. (Hem. IV, 117.)
परिचत्त–परित्यक्त IX, 12, 3.
*परिछंडिय–परित्यक्ता VII, 11, 16; (Hem. IV, 91.)
परिजंत–परि + या + शतृ V, 5, 4.
परिझा–परि + ध्या °इवि X, 9, 14.
परिझिज्ज–परि + क्षी °इ IX, 8, 6. (Hem. II, 3.)
परिझीण–°क्षीण V, 8, 9.
परिट्ठिअ–°स्थित II 3, 9.
परिण–परि + णी °हि VIII, 10, 5; °णेवो VIII, 10, 6.
*परिणडिअ–°वंचित III, 21, 4. (D. IV, 18.)
परिणिम्मिय–°निर्मित I, 11, 7.
परिणिय–परिणीत VI, 16, 2.
परित्ति–परितृप्ति III, 7, 1.
परिदक्खिण–प्रदक्षिणा IV, 6, 10.
परिदिंत–°ददत् III, 12, 8.
परिधरिय–°धृत V, 9, 3.
परिपालिय–°पालित II, 6, 6.
परिपाव–°प्राप् °उं VI, 3, 2.
परिपुच्छिअ–°पृष्ट II, 10, 9.
परिपुज्जिअ–°पूजित V, 5, 8.
परिपुण्ण–°पूर्ण II, 19, 9.
परिपेसिय–°प्रेषित II, 11, 10.

परिप्पमाण–°प्रमाण I, 3, 2.
परिफुरिअ–°स्फुरित II, 19, 8.
परिभअ–°भव VI, 4, 5.
परिभम–°भ्रम् °इ II, 12 1; °हिं IV, 5, 4; °मेइ I, 15, 1.
परिमलिअ–परिमृदित V, 10, 3; (Hem. IV, 126).
परिमुक्क–°मुक्त V, 15, 7.
परिमेल्ल–°मुञ्च् °इ IX, 4, 5; °ल्लिवि V, 7, 9. (Hem. IV, 91).
परियण–°जन VII, 11. 19.
परियरिअ–°चरित III, 3, 12.
परियाणिअ–°ज्ञात II, 2, 5.
परिलग्ग–°लग्न VIII, 11, 8.
परिवड–°पत् °डेइ IX, 9, 5.
परिवडीय–°पतित V, 4, 7.
परिवड्ढिअ–°र्धित V, 8, 7.
परिसमण–°शयन IX, 7, 1.
परिसरिअ–°सृत III, 18, 9.
परिसव–°स्रव् °इ IX, 11, 7.
परिसह–°शोभ् °इ IV, 14, 6. (राज् Hem. IV. 100.)
परिसोहिअ–°शोभित VIII, 11, 5.
परिहरिय–°हृत I, 2, 11.
परिहव–परिभव (पराभव) V, 18, 9.
परिहा–परिखा, I, 4, 1.
परिहणिय–परिधानिता VII, 12, 9.
परिहाण–परिधान III, 2, 3.
परिहाविय–परिधापित III, 9, 6.
पलय–प्रलय VII, 4, 2.
पलाव–प्रलाप VI, 3, 4.
पलंब–प्रलम्ब IX, 3, 3.
पलोअ–प्र + लोक् °इवि II, 3, 4.
पल्लाण–पल्याण VIII, 9, 2.
पल्लोवम–पल्योपम VIII, 17, 7.
पल्हत्थिअ–पर्यस्त IX, 15, 2. (पल्लत्थ Hem. 11. 47.)
पवजमाण–प्रव्रजत् I, 13, 1.
पवज्जिअ–प्रवादित II, 20, 2.
पवड्ढिअ–प्रवर्धित II, 9, 1.
पवणवेअ–पवनवेग, पु. VI, 11, 4.
पवण्ण–प्रपन्न IV, 2, 6.
पवयण–प्रवचन VI, 2, 7.
पवर–प्रवर VI, 8, 4.
पवरिसिअ–प्रवृष्ट I, 11, 8.
पवाह–प्रवाह X, 12, 9.
पविड्ढि–प्रवृद्धि VIII 6, 5.
पवुड्ढि–प्रवृद्धि VIII, 2, 6.
पव्व–पर्वन् V, 4, 4.
पव्वअ–पर्वत IV, 4, 2.
पसण्ण–प्रसन्न II, 18, 3.
पसत्थ–प्रशस्त I, 9, 1.
पसर–प्र + सृ °इ I, 2, 6; °उ II, 4, 7; °रंत IV, 2, 2; °रिय I, 7, 9.
पसंस–प्रशंसा I, 1, 7.
पसाअ–प्रसाद II, 15, 7.
पसारिय–प्रसारित VII, 13, 8.
पसाहण–प्रसाधन I, 11, 10.
पसिद्ध–प्रसिद्ध II, 2, 1.
पह–पथ (पथिन्) I, 1, 4.
पहर–प्रहर VIII, 12, 2.
पहर–प्रहर or प्रहार X, 9, 4.
पहसिय–प्रहसित II, 11. 5.
पहाण–प्रधान I, 3, 1.
पहाव–प्रभाव II 4, 8.
पहिट्ठ–प्रहृष्ट I, 12, 9.
पहिराविय–परिधापित VII, 8, 6. (By वर्णव्यत्यय, H. पहराना).
पहिल्लार–प्रथम + तर III, 8, 11 (H. पहिला).
पहु–प्रथु I, 10, 6.
पहु–प्रभु IV, 10, 9.
पहूय–प्रभूत II, 2, 7.
पंकअ–पंकज I, 3 6.
*पंगुर–प्रा + वृ °रेवि X, 17, 4 (Hem. 175. M. पांगुरणे, पांघरणे).
पंचवीस–पञ्च + विंशत् V, 1 9.
पंचुंबर–पञ्च + उदुम्बर V, 12, 2.

पंजलि–प्राञ्जलि VI, 5, 10.
पंजलियर–प्राञ्जलि + कर X, 4, 2.
पंडिय–पण्डित I, 2, 1.
पंडिय–पाण्ड्य नरेश, VIII, 18. 5.
पंति–पंक्ति I, 3, 10.
पंथ–पान्थ VI, 12, 2.
पंथि–पथिक II, 2, 4.
पंथिय–पथिक I, 3, 9.
पाअ–पाद V, 18, 1.
पाड–पातय् °मि IV, 17, 2.
पाडल–पाटल (हंस) VII, 5, 5. (D, VI, 76).
पाडिअ–पातित III, 16, 6.
पाढाविअ–पाठित II, 9, 1.
पाण–प्राण III, 7, 2.
पाणाहार–पान + आहार X, 16, 9.
पाणिअ–पानीय VIII, 9, 8.
पाणि–प्राणिन् I, 5, 5.
पाय–पाद I, 2, 1.
पायाग–प्रयाग, न. VI, 7, 7.
पायडिय–प्रकटित III, 7, 1.
पारद्धि–पापर्द्धि II, 16, 4.
पारंभिअ–प्रारब्ध III, 3, 7.
पारावइ–पारावत V, 17, 8.
पाराविय–पार + आपित I, 1, 4.
पाव–पाप I, 1, 1.
पाव–प्र + आप् °इ V, 10, 10; °उं I, 10, 2; °हि V, II, 16; °हिं V, 5, 10; °वंति III, 15, 7; °वेवी II, 5, 4; °वेसइ II, 8, 3; °वेसहि V, 19, 5.
पाविअ–प्राप्त I, 12, 10.
पाविट्ठ–पापिष्ठ II, 13, 7.
पास–पार्श्व (तीर्थंकर) V, 2, 5.
पास–पाश VIII, 7, 10.
पास–पार्श्व II, 1, 6.
पिअ–प्रिय I, 16, 15.
पिउ–पितृ VI, 1, 8.
पिंड–पिण्ड X, 8, 10.
पिय–पीत V, 10, 5.
पिययम–प्रियतम VI, 5, 2.
पियर–पितृ VI, 6, 2.
पियसोअ–पितृ + शोक VI, 2, 3.
पियारी–प्रिया I, 3, 12.
*पिल्ल–लघुपक्षिन् VII, 5, 5 (पिल्ह D. VI, 46).
पिल्लि–पीलु (फलविशेष) IX, 21, 5.
पिसाअ–पिशाच III, 21, 4.
पिसुण–पिशुन III, 7, 9.
पिहाण–पिधान X, 15, 6.
पिहिय–पिहित X, 8, 1.
पिहुल–पृथुल I, 5, 9.
पिहुलत्तण-पृथुलत्व I, 16, 5.
पिंडय–पिण्डक IX, 11, 6.
पीडिय–पीडित I, 10, 1.
पीणिअ–प्रीत I, 5, 2.
पीलण–पीडन IV, 10, 5.
पुक्कार–आह्वान शब्द II, 1, 9 (H. पुकार).
पुच्छिअ–पृष्ट I, 10, 3.
पुज्ज–पूजा VII, 12, 7.
पुज्ज–पूजय् °इ IV, 4, 6; °ज्जि X, 4, 5; °ज्जवि II, 19, 9.
पुज्जिअ–पूजित IV, 7, 10.
पुट्ठसर–पुष्ट + स्वर III, 9, 9.
पुणु–पुनः I, 2, 3.
पुण्ण–पूर्ण I, 3, 11.
पुण्ण–पुण्य I, 14, 12.
पुण्णिम–पूर्णिमा X, 16, 8.
पुत्त–पुत्र II, 16, 1.
पुत्तय–पुत्रक II, 18, 8.
पुत्ति–पुत्री I, 15, 7.
पुत्तिया–पुत्रिका VIII, 4, 9.
पुप्फयंत–पुष्पदन्त, कविनाम I, 2,9.
पुरउ–पुरः II, 8, 9.
पुरयण–पुरजन III, 13, 1.
पुरंधि–पुरंध्रि IX, 3, 6.
पुहइ–पृथ्वी III, 9, 4.
पुलअ–पुलक III, 4, 3.
पुव्व–पूर्व II, 2, 2.

पुव्वुत्त–पूर्वोक्त X, 4, 10.
पुंडरीअ–पुण्डरीक X, 2, 4.
पूजिअ–पूजित IV, 6, 10.
पूदी–पर्वतविशेष V, 5, 3.
पूअ–पूजय् °एइ IX, 13, 7.
पूय–पूय (pus) IX. 11, 5.
पूरिय–पूरित I, 17, 9.
पेड्डया–पेटिका I, 7, 2.
पेक्ख–प्र + ईक्ष् °हि I, 11, 9; °हुं IV, 3, 2;
°क्खि III, 18, 3; °क्खिऊण VII, 10, 1.
पेक्खिय–प्रेक्षित VIII, 2, 1.
पेच्छ–प्र + ईक्ष् °इ V, 15, 1.
पेच्छंत–प्रेक्षमाण IV, 17, 6.
पेयवण–प्रेतवन X, 14, 3.
पेल्ल–प्रेरय् °ल्लिवि VII, 4, 5,
पेसण–प्रेषण III, 16, 10.
पेसिय–प्रेषित III, 16, 8.
*पोट–उदर VII, 10, 7. (पोट्ट D. VI, 60)
पोट्टिवंत–पुष्टि + मत् I, 12, 1.
पोथअ–पुस्तक X, 17, 6.
पोम–पद्म III, 14, 4. (Hem. I, 61).
पोमराय–पद्मराग X, 2, 5.
पोमावइ–पद्मावती, स्त्री II, 5, 3.
पोमिणि–पद्मिनी VII, 13, 1.

[फ]

फण–फणा IV, 9, 2.
फणि–फणिन् IX, 5, 8.
फणिदत्ता–नाग°, स्त्री, X, 6, 9.
फणिंद–फणीन्द्र II, 4, 8.
फणिवइ–°पति II, 1, 8.
फरहरंत–onomatop. III, 13, 5.
(H फर्राना)
फलिह–स्फटिक IV, 12, 2. (Hem I, 186).
फंस–स्पर्श IX, 10, 5. (Hem IV, 182).
फाडण–स्फाटन IX, 8, 5 (पाटन acc. Hem.
I, 198; 232).
फार–स्फार IV, 11, 5 (M फार)
*फारक–स्फारक (ध्वज). III, 13, 5. The
tippana on the word is खेडा which
in M. means any coarse cloth).
*फिट्ट–स्फिट्ट् (हिंसायाम्) °इ IX, 21, 2.
(भ्रंश acc. Hem. IV, 177).
फुक्कर–फूत् कृ °रिवि V, 17, 10.
फुट्ट–स्फुट् °टंति III, 15, 6.
फुडु–स्फुटम् II, 13, 9. (स्पष्टम् Hem.
IV, 258).
फुर–स्फुर् °इ IX, 7, 3; °रंत IV, 10, 6.
फुरिअ–स्फुरित X, 2, 7.
फुलिंग–स्फुलिंग IV, 14, 2.
फेकरंत–फे (फिक्की हरिसम्मि D, VI, 83) इति
शब्दं कुर्वत् I, 17, 6.
फेड–स्फिट्ट् (°हिंसायाम्) °हिं V, 5, 9; °डिवि
X, 27, 9. °डिय V, 5, 7; °डेहुं IV, 13, 7.
फॅफरि–फलविशेष IX, 21, 5.
*फेर–चारण (taking on a round)
VIII, 9, 3. (H फेरा).

[ब]

बउल–बकुल I, 14, 6.
बम्ह–ब्रह्मन् X, 8, 9.
बम्हण–ब्राह्मण X, 21, 4.
बरहिणि–बर्हिणी II, 15, 2.
बलएअ–बलदेव IX, 7, 9.
बलहद्द–बलभद्र IX, 5, 5.
बला–अबला VIII, 4, 6.
बलिअ–बलिन् V, 11, 11.
बहिणि–भगिनी II, 1, 13.
बंभचेर–ब्रह्मचर्य IX, 24, 6; (Hem. I,
59; II, 74).
बंभण–ब्राह्मण X, 6, 9.
बारह–द्वादश V, 10, 1; (Hem. I, 219;
262).
बाल–बाला I, 3, 8.
बालएअ–°देव, पु II, 2, 8.
बाहिरि–बहिः IV, 14, 5.
बाहुडि–बहिः I, 12, 10.

बुज्झ–बुध् °इ VI, 7, 6. °ज्झु II, 14, 3.
बुज्झाविअ–बोधित VI, 7, 6.
*बुल्लाविय–उक्ता I, 15, 6; (बोल्ल-कथ् Hem. IV, 2).
बुहमंगलएव–बुध + मंगलदेव, पु, X, 28, 3.
बुहयण–बुधजन I, 1, 7.
बूढउ–वृद्धः IX, 5, 4 (H बूढा).
*बोल–तुमुल II, 3, 1; (D. VI, 90)
*बोल्ल–कथय् °इ II, 5, 1; °ल्लिवि IV, 12, 6; °ल्लंत X, 21, 8; (Hem. IV, 2.)
बोहि–बोधि IX, 16, 9.
बोहिथ–वहित्र (प्रवहण) VIII, 12, 3. (D. VI, 96).

[भ]

भअ–भूत III, 8, 10.
भअ–भय III, 12, 12.
भइय–भूता IV, 11, 3.
भउहावलि–भ्रू° I, 16, 12.
भग्ग–भग्न (Also used as a term of abuse) II, 1, 10.
भज्ज–भार्या VI, 12, 8.
भज्ज–भञ्ज् °ज्जंति III, 15, 4.
भट्ठ–भ्रष्ट II, 13, 7.
भड–भट III, 15, 11,
भडारअ–भट्टारक VI, 3, 3.
भडारा–भट्टारक III, 22, 2.
भडारिअ–भट्टारिका I, 11, 10.
भडावलेअ–भट + अवलेप (गर्व) III, 11, 7.
भणिय–भणित II, 1, 12.
भत्त–भक्त III, 14, 4.
भत्ति–भक्ति IV, 10, 1.
भद्द–भद्र IV, 17, 7.
भद्दवअ–भाद्रपद (मास) X, 26, 6.
भमण–भ्रमण X, 13, 3.
भमर–भ्रमर I, 16, 11.
भमाडइ–भ्रामयति X, 26, 22.
भमाडिअ–भ्रामित X, 10, 1.
भयवइ–भगवती VII, 14, 7.
भयवंत–भगवत् V, 6, 5.
भरह°–भरत I, 3, 8.
भरहेसर–भरतेश्वर IV, 4, 10.
भरिअ–भृत I, 2, 3.
भल्लुअ–भल्लुक I, 17, 7.
भवंतर–भवान्तर VIII, 20, 2
भवित्ति–भवित्री X, 26, 9.
भविय–भव्य I, 1, 4.
भवियण–भव्यजन IV, 10, 7.
भव्व–भव्य IV, 14, 7.
भाअ–भाव VI, 7, 6.
भाइय–भ्रातृ IV, 3, 10.
भामरि–भ्रमि X. 19, 2. (H. भांवर).
भाअ–भाव IX, 4, 6.
भाय–भ्रातृ III, 5, 2.
भायण–भाजन X, 2, 5.
भायर–भ्रातृ V, 2, 2.
भारह–भारत (क्षेत्र) V, 1, 5.
भारिय–बृहत् IV, 17. 5. (H. भारी).
भालयल–°तल I, 16, 13.
भाव–भा °इ I, 14, 9.
भावड्ढ–भावाढ्य III, 8, 6.
भाविअ–भावित VI, 15, 11.
भाविज्ज–भावय् (कर्मणि) °इ VI, 3, 4.
भासिअ–भाषित VII, 6, 2.
भिंग–भृङ्ग VII, 13, 4.
*भिडिअ–आक्रान्त III, 15, 3. (H.M. G. भिडना to enter into a close combat).
भिंतर–अभ्यन्तर IX, 11, 9.
भिंद–भिद् °िंदवि IV, 9, 5.
भीय–भीत III, 19, 1.
भीयंकर–भीतिकर III, 14, 1.
भीसाणण–भीषण + आनन X, 14, 7.
भीसावण–भीषण X, 14, 1.
भुअ–भुज III, 19, 4.
भुअंग–भुजंग II, 20, 3.
भुक्खअ–बुभुक्षित VII, 1, 6, (H, भूखा).
भुक्खा–बुभुक्षा II, 16, 5 (H. भूख).
भुत्त–भुक्त V, 10, 5.

भुय–भुज II, 12, 10
भुयलया–भुज + लता I, 16, 8.
भुयंगम–भुजङ्गम I, 1, 5.
भुंभुकइ–onomatop. IV, 14, 4.
भू–भ्रू IX, 6, 7.
भूयथाण–भूत + स्थान I, 17, 3.
भूवलअ–भू + वलय II, 18, 10.
भूवाल–भूपाल X, 29, 5.
भेय–भेद V, 11, 9.
भेसह–भेषज VI, 3, 7.
भोअ–भोग VI, 2, 2.
भोज्ज–भोज्य VI, 6, 2.
भोम–भूमि IX, 17, 7.
भोयण–भोजन V, 10, 2.
भोयधर–भोग + धरा (भूमि) III, 10, 10.

[म]

मअ–मद III, 18, 11.
मइ–मति V, 17, 7.
मउड–मुकुट VI, 8, 5 (Hem. I, 107).
मउडग्ग–मुकुटाग्र VIII, 18, 13.
मउलिय–मुकुलित III, 4, 13 (Hem. I, 107)
मक्कड–मर्कट IX, 13, 6.
मग्ग–मार्गय् °मि VII, 14, 6; °गि VII, 13, 10; °एवि X, 20, 6.
मग्ग–मार्ग I, 15, 3.
मग्गण–मार्गणा (tech. term of Jain philosophy) IX, 16, 7.
मच्चलोअ–मर्त्यलोक IX, 4, 7.
मच्छ–मत्स्य VII, 9, 2.
मच्छर–मत्सर III, 17, 1.
मज्ज–मद्य X, 8, 3.
मज्जार–मार्जार III, 2, 7.
मज्जिय–मार्जित III, 19, 3.
मज्झ–मध्य II, 20, 8.
मज्झण्ण–मध्याह्न IX, 20, 14.
मढ–मठ X, 18, 9.
मण–मनस् I, 1, 5.
मणमार–मन्मथ I, 1, 1.
मणवेय–मनोवेग, पु VI, 11, 4.
मणहर–मनोहर I, 16, 5.
मणिअ–मानित V, 13, 2.
मणुव–मनुज VI, 4, 2.
मणोज्ज–मनोज्ञ III, 6, 4.
मणोरह–मनोरथ II, 14, 12.
मणोहिराम–मनोभिराम II, 16, 3.
मण्णणिज्ज–माननीय VI, 6, 3.
मण्णणीअ–माननीय VIII, 4, 2.
मण्णिअ–मानित II, 8, 11.
मत्थअ–मस्तक II, 1, 8.
मद्दअ–मार्दव IX, 1, 6.
मद्दल–मर्दल (वाद्यविशेष) II, 20, 2.
मयगल–मदगल्ल (गज) II, 19, 9.
मयच्छि–मृगाक्षी VIII, 14, 6.
मयण–मदन I, 10, 1.
मयणयण–मृग + नयन III, 2, 10.
मयणावलि–मदना° स्त्री III, 5, 10.
मयरकेउ–मकरकेतु VII, 7, 1.
मयरहर–मकरगृह (समुद्र) I, 16, 6.
मयारि–मदारि V, 6, 6.
मयोवर–मृत + उदर I, 17, 6.
मर–मृ°इ VI, 7, 8; °उं I, 10, 10; °मि VI, 8, 10; °हुं V, 9, 5; °रिवि V, 10, 8; °रेहु I, 13, 3.
मलिय–मृदित VIII, 18, 12 (Hem. IV, 126).
मसाण–श्मशान I, 17, 10.
महग्घ–महार्घ I, 16, 13.
महण–मथन V, 13, 10.
महणील–महानील पु. V, 2, 2.
महण्णव–महार्णव IX, 17, 4.
महरिसि–महर्षि X, 25, 10.
महल्ल–महत् + ल्ल (स्वार्थे) III, 2, 9. (D. IV, 143).
महव्वय–महाव्रत IX, 15, 9.
महुसूयण–मधुसूदन पु. VI, 4, 9.
महंत–महत् II, 15, 8.

महायण–महाजन X, 9, 6.
महारश्र–मम III, 19, 9 (H. हमारा by वर्ण व्यत्यय)
महिअ–महित (पूजित) V, 10, 1.
महियल–महीतल I, 3, 12.
महिल–महिला I, 3, 5.
महिसि–महिषी X, 2, 1.
महिहर–महीधर II, 1, 4.
महु–मधु IX. 4, 8.
महुयर–मधुकर X, 29, 10.
महुर–मधुर I, 2, 2.
महुराउरि–मथुरापुरी VI, 4, 8.
महेस–महेश II, 2, 7.
महोवहि–महोदधि I, 1, 4.
मंगलण्व–°देव, पु. I, 2, 1.
मंजूस–मञ्जूषा V, 8, 8.
मंड–मण्ड् °एविणु III, 15, 11, (H मांडकर)
मंड–मर्द (हठ) II, 11, 1 (Pai. 487. बल टि.)
मंडअ–मण्डप VII, 7, 10.
मंडिअ–मण्डित III, 22, 8.
मंत–मन्त्र I, 1, 5.
मंति–मन्त्रिन् II, 12, 7.
मंदराअ–मन्दराग IV, 11, 7.
मंस–मांस I, 17, 6.
माअ–मातृ III, 19, 7.
माणिक–माणिक्य VIII, 8, 10.
माणिणि–मानिनी I, 10, 1.
माणिय–मानित VIII, 8, 4.
माणिवि–मानवी VI, 14, 1.
माणुण्णइ–मान + उन्नति VI, 5, 5.
माणुस–मानुष I, 17, 9.
माम–मातुल II, 10, 10 (H. मामा).
माय–मातृ III, 9, 1.
माय–माया IX, 24, 2.
मायंग–मातङ्ग II, 21, 5.
मार–मार (मदन) II, 20, 8.
माल–माला III, 2, 6.
मालिअ–मालिन् II, 5, 4.
माहप्प–माहात्म्य I, 4, 9.
माहव–माधव, पु. VI, 4, 9.
मि–अपि V, 7, 4.
मिउ–मृदु V, 18, 1.
मिच्छत्त–मिथ्यात्व IX, 21, 2.
मिच्छत्त–मिथ्यात्व IX, 12, 3.
मित्त–मित्र II, 8, 10.
मिलाविय–मेलापित II, 20, 1.
मिलिय–मिलित IV, 8, 8.
मीण–मीन IV, 7, 4.
मिस्सिय–मिश्रित I, 12, 6.
मुअ–मुक्त III, 12, 12.
मुअ–मू °इ IX, 3, 12.
मुअ–मुच °इ IX, 5, 8; °हि IV, 16, 7; °अंति I, 3, 9; °इवि VII, I, 6.
मुअ–मृत III, 21, 3.
मुइय–मृता X, 22, 10.
मुक्क–मुक्त III, 17, 1.
मुच्छ–मूर्च्छा III, 17, 7.
मुज्झ–मुह् ° हि III, 21, 5.
मुण–मुण् (प्रतिज्ञाने) °इ VII, 14, 3; °हि II, 13, 8 °णवि III, 5, 2.
मुणाल–मृणाल VII, 2, 8.
मुणिअ–मुनित (मत) III, 5, 1.
मुणिंद–मुनीन्द्र II, 4, 8.
मुणीसर–मुनीश्वर II, 5, 1.
मुत्ताहल–मुक्ताफल III, 3, 4.
मुद्ध–मुग्ध III, 2, 3.
मुय–मृत VI, 5, 6.
मुरय–मुरज (वाद्यविशेष) II, 9, 8.
*मुसुमूर–भञ्ज् °मि IV, 17, 3. (Hem IV, 106).
मुह–मुख I, 16, 14.
मुहल–मुखर X, 17, 9.
मुहवड–मुख + पट III, 8, 7.
मेइणि–मेदिनी I, 3, 10.
मेंठ–मेंठ (हस्तिपक) IV, 2, 7.
°मेत्त–मात्र III, 11, 1.
मेत्ति–मैत्री IX, 6, 8.

*मेर–मर्यादा IX, 24, 6 (D. VI 113).
मेरअ–मम VI, 11, 6 (H. मेरा)
*मेल °ल्ल–मुच् °इ II, 19, 1. (Hem. IV, 91). °ल्लंत III, 14, 3; ल्लिवि II, 19, 2.
मेह°–मेघ° I, 12, 7.
मेहल–मेखला VII, 13, 5.
मोक्क–मुच् °लेइ I, 12, 7; °ल्लि X, 23, 6; °लेवि X, 2, 1.
मोक्कलअ–मुक्त IV, 17, 10.
मोडण–मोटन (भंजन) III, 7, 7.
मोणवअ–मौन + व्रत VI, 3, 9.
मोत्तिय–मौक्तिक VII, 7, 10.
मोर–मयूर II, 15, 5.
मोरुल्ल–मयूर + उल्ल (स्वार्थे) II, 15, 10.
मोल्ल–मूल्य II, 17, 3.
मोहिय–मोहित III, 17, 7.

[य]

य–च I, 15, 3.

[र]

रअ–रव II, 19, 6.
रअ–रत V, 7, 3.
रइ–रति II, 19, 3.
रइवि–रचयित्वा VIII, 12, 7.
रइविब्भम–रतिविभ्रमा, स्त्री, VI, 12, 10.
रइवेय–रतिवेगा, स्त्री VII, 7, 5.
रउद्द–रौद्र III, 18, 5.
रक्ख–रक्ष् °हुं V, 18, 2.
रक्ख–रक्षस् II, 11, 2.
रक्खवाल–रक्षापाल I, 15, 3.
रक्खस–रक्षस् I, 17, 6.
रक्खसि–राक्षसी II, 11, 1.
रक्खिय–रक्षित I, 3, 8.
रज्ज–राज्य I, 13, 4.
रज्जुय–रज्जु + क IX, 15, 1.
रणझणंति–onomatop. IX, 2, 4.
रणरणअ–रणरणक (चिन्ता) III, 6, 11; (H. रटना).
रणंत–रणत् III, 3, 5.
रण्ण–अरण्य VII, 1, 11; (Hem I, 66.)
रत्त–रक्त I, 17, 6.
रत्तत्तण–रक्त + त्व I, 16, 10.
रत्तंदण–रक्त + चन्दन VII, 12, 6.
रत्तंबर–रक्त + अम्बर X, 9, 5.
रत्ति–रात्रि X, 11, 9.
रत्तिय–रक्ता II, 2, 9.
रत्तुप्पल–रक्त + उत्पल I, 4, 8.
रम्म–रम्य IV, 4, 2.
रम्ममाण–रममाण I, 2, 10.
रय–रजस् III, 12, 3.
रयअ–रचित VIII, 7, 6.
रयण–रत्न I, 2, 2.
रयणमअ–रत्न + मय IV, 17, 9.
रयणलेह–रत्नलेखा, स्त्री, VIII, 10, 5.
रयणायर–रत्नाकर I, 3, 4.
रयणावलि–रत्नावली, स्त्री, VII, 16, 4.
रयणि–रजनि IX, 7, 1.
रवहो–पु. X, 29, 13.
रवण्ण–रम्य I, 3, 5.
रसाल–रस + आल (मत्वर्थे) III, 8, 5.
रह–रथ I, 5, 1.
रहणेउर–रथनूपुर, न. V, 2, 1.
रहस–रभस III, 2, 2.
रहिय–रहित I, 1, 6.
रंगमाण–रंगत् (रगि–गतौ) VII, 9, 7. (H रेंगना to crawl or go slowly)
रंजिय–रक्त III, 3, 1.
राअ°य–राजन् I, 13, 8.
राअ°य–राग I, 17, 2.
राउल–राज + कुल III, 3, 2.
राण–राजन् I, 13, 6.
राणिय–राज्ञी I, 13, 2.
रायउत्त–राजपुत्र VII, 1, 9.
रायहंस–राजहंस I, 1, 7.
रासहि–रासभी IV, 2, 7.
राहव–राघव VII, 3, 1.
राहुल–पु. X, 29, 13.

रिण–ऋण II, 18, 2.
रिद्धि–ऋद्धि VI, 4, 11.
रिसि–ऋषि VI, 12, 5.
रिसिंद–ऋषीन्द्र VI, 1, 9.
रिंगिर–रंग् + इर (ताच्छील्ये) I, 17, 9 (रिगइ प्रविशति गच्छति वा Hem, IV, 259; रिगियं भ्रमणं D. VII, 203).
रुक्ख–वृक्ष I, 13, 7 (Hem II, 127).
रुच–रुच् °इ VI, 14, 10.
रुट्ठ–रुष्ट II, 15, 8.
रुव–रुद् °इ IX, 4, 4; °रंत V, 15, 7.
रुहिर–रुधिर III, 15, 8.
रुंजंति–रुवन्ति IV, 5, 2 (Hem. IV, 57).
रुंभिय–रुद्ध IV, 10, 6 (Hem. IV, 245).
रूअ°व–रूप I, 10, 8.
रूस–रुष् °मि IV, 17, 2; °हि III, 12, 10; °सेवि II, 4, 2.
रेह–रेखा VII, 16, 2.
*रेह–राज् °इ I, 3, 10 (Hem. IV, 100)
रोमंच–रोमाञ्च III, 14, 7.
रोय–रोग IV, 13, 3.
*रोल–कलरव II, 3, 1; VII, 13, 5; (D. VII, 15).
रोव–रुद् °इ V, 16, 1; °हि II, 1, 13; °वंत V, 19, 2.
रोस–रोष III, 18, 2.
रोसिय–रुष्ट, I, 17, 1.

[ल]

ल–ला (ग्रह्) °इ II, 6, 5; °एविणु II, 1, 9.
लइ–Interjection I, 11, 10; I, 15, 7; III, 10, 2 (H. ले).
लइय–लात (गृहीत) II, 6, 10.
लउड–लकुट X, 19, 9.
लक्ख–लक्ष I, 17, 7.
लक्खण–लक्षण I, 17, 11.
लक्खारस–लाक्षा° III, 2, 4.
लक्खिअय°–लक्षित VIII, 2, 1.
लग्ग–लग्न I, 16, 13.
लग्गि–लग्ने (अर्थे) I, 13, 3. (H लिये)
लच्छि–लक्ष्मी VI, 2, 1.
लज्ज–लज्जा V, 16, 8.
लट्ठि–यष्टि I, 16, 12. (Hem. I, 247)
*लडह–रम्य I, 1, 6; II, 14, 1, (also विदग्ध; D. VII, 17).
लड्डु–(तत्सम) II, 7, 1.
लद्ध–लब्ध V, 17, 2.
लय–लता I, 14, 6.
लयअ–लात (गृहीत) VI, 6, 7.
लयण–लयन (गुहामंदिर) IV, 4, 3.
ललंति–(लल विलासे) VIII, 18, 10.
ललिअ–ललित I, 2, 2.
*ललि–सस्पृहं न्यूनं च (D. VII, 26) VIII, 7, 8.
लव–लप्°इ III, 11, 10.
लवणण्णव–लवणार्णव I, 3, 2.
लविय–लपित VII, 11, 17.
लब्भ–लभ् (कर्मणि) °इ II, 13, 1.
लह–लभ°इ II, 17, 8.
लहरि–(तत्सम) VIII, 12, 8.
लहु–लघु II, 8, 1.
लंकसर–लंकेश्वर IV, 11, 1.
लंछिअ–लाञ्छित I, 3, 1.
लंपड–लम्पट VIII, 15, 5.
लंभ–लाभ III, 3, 1.
लायण्ण–लावण्य II, 12, 2.
लित्त–लिप्त I, 5, 8.
लिह–लिख्°हंति IX, 1, 6.
लिहाविय–लिखापित III, 7, 5.
लिहिय–लिखित I, 16, 7.
लिंत–लात् (गृण्हत्) IX, 5, 8.
लीण–लीन IV, 10, 8.
लील–लीला II, 12, 10.
लीलावइ–°ती, स्त्री VI, 13, 3.
लुद्ध–लुब्ध I, 14, 8.
लुलाविय–लोलायित II, 20, 4.

*लूरिय–लून VII, 10, 8 (छिन्न, Hem. IV, 124).
लेस–लेश IX, 20, 21.
लोअ–लोक II, 12, 6.
लोट्टण–लोटन II, 9, 6.
लोयवार–लोकवार III, 8, 11.
लोयण–लोचन II, 1, 6.
लोयाणुवेक्ख–लोक + अनुप्रेक्षा IX, 15, 9.
लोलिर–लुल + इर (ताच्छील्ये) I, 17, 8.
लोह–लोभ II, 9, 10.
लोहिअ–लोहित (रक्त) I, 17, 5.
*ल्हिक्क– नि + ली °क्किवि II, 15, 4; V, 15, 9; (Hem, IV, 55, H, लुकना to hide).

[व]

वअ–व्रत II, 6, 10.
वइयर–व्यतिकर (वृत्तान्त) II, 15, 7,
वइर–वैर VI, 4, 4.
वइराय–वैराग्य X, 28, 2.
वइरि–वैरिन् II, 19, 4.
वइवस–वैवस्वत (यम) VII, 9.
वइसर–वि + श्रि °इ IX, 7, 3.
वइसारिय–प्रवेशित II, 21, 10.
वइसाह–वैशाख III, 19, 2. (An attitude in shooting).
वग–बक V, 10, 9.
वग्ग–वल्ग् °ग्गंति III, 15, 5.
वग्ग–वर्ग X, 16; 1.
वग्घि–व्याघ्री X, 20, 10.
वच्च–व्रज °इ II, 21, 6; (Hem. IV, 225)
वच्छराअ–वत्सराज, पु. VI, 1, 4.
वच्छल–वत्सल III, 6, 8.
वच्छायण–वात्सायन (कामसूत्रकर्ता) II, 9, 3.
वच्छावयंस–वत्स + अवतंस VI, 1, 3.
वज्ज–वाद्य III, 15, 2.
वज्ज–वादय् (कर्मणि) °इ II, 10, 10.
वज्ज–वज्र IX, 19, 4.
वज्जण–वर्जन V, 12, 2.
*वज्जर–कथय् °इ IX, 12, 4. (Hem. IV, 2).
वट्ट–वृत् °इ I, 10, 10.
वड–वट IX, 21, 4.
°वडण–पतन IV, 14, 2.
वडुय–वटुक VII, 3, 9.
वड्ड–महत् (वृद्ध) X, 3, 5. (D. VII, 29. H बड़ा).
वड्ढ–वृध् °इ II, 7, 4.
वड्ढ–वृद्ध X, 3, 5.
वड्ढिअ–वर्धित III, 13, 10.
वणणिह–व्रण + निभ IX, 11, 5.
वणवाल–वनपाल I, 14, 5.
वणसिरि–वनश्री I, 14, 8.
वणि–वणिक् II, 10 5.
वण्ण–वर्ण I, 4, 5.
वण्ण–वर्णय् °मि I, 16, 8; °हुं VII, 16, 1.
वत्त–वृत्त I, 6, 6.
वत्थ–वस्त्र III, 9, 6.
वद्धावण–वर्धापन III, 22, 6. (congratulation).
*वमाल–तुमुल III, 3, 5. (D. VI, 90.)
वम्मय–वर्म + क VII, 10, 8.
वम्मह–मन्मथ I, 14, 9 (Hem. I, 242; II, 61).
वय–व्रत III, 20, 9.
वयण–वदन I, 3, 6.
वयण–वचन I, 15, 8.
वयणुच्छव–वचनोत्सव VII, 4, 1.
वयणुल्ल–वचन + उल्ल (स्वार्थे) VIII, 13, 9.
वयर–वैर VI, 4, 3.
वयवंत–व्रत + वत् IX, 22, 1.
वयहल–व्रत + फल X, 27, 10.
वराइय–वराकी VII, 11, 15.
वराय–वराक II, 11, 2.
वरायअ–वृत VII, 11, 10.
वरि–वरम् VI, 5, 6.
वरिसण–वर्षण X, 29, 9.

वरिसंत–वर्षत् I, 10, 8.
वरिसाउल–वर्षाकुल IX, 14, 3.
वलिअ–वलित (परावृत) V, 17, 9.
वलित्तअ–वलि + त्रय I, 9, 6.
वल्लह–वल्लभ V, 3, 10.
ववहर–व्यवहृ °इ II, 18, 10.
ववहार–व्यवहार X, 29, 7.
वस–वसा IX, 11, 8.
वसण–व्यसन IX, 21, 9.
वसिअ–उषित X, 18, 9.
वसियरण–वशीकरण II, 9, 4.
वहु–वधु X, 14, 11.
वंकुड–वक्र I, 2, 4. (Var. IV, 15; Hem. IV, 418 ex.)

वंकुडिय–वक्रित III, 13, 6.
वंचण–वञ्चना IX, 13, 4.
वंछिअ–वाञ्छित I, 2, 11.
वंदण–वन्दन V, 4, 4.
वंदणहत्ति–वन्दन + भक्ति V, 8, 1.
वंदणिज्ज–वन्दनीय IV, 8, 1.
वंदीयण–वन्दीजन III, 13, 3.
वंस–वंश III, 4, 1.
वाअ–वाक् II, 6, 1.
वाइअ–वादिक II, 11, 6.
वाइऊण–वादयित्वा I, 12, 2.
वाइय–वाचित I, 7, 7.
वाइय–वादित III, 8, 5.
वाउ–वायु I, 12, 6.
वाउल–व्याकुल IX, 3, 8. (H. बावला)
वाउवेअ–वायुवेग, पु. V, 1, 3.
वाएसरि–वागीश्वरी I, 2, 9.
वाडअ–वाटक VIII, 8, 3. (H. बाड़ा)
वाणि–वाणी V, 6, 3.
वामिअ–वल्मीक VI, 4, 5; (H. बामी)
वाय–वाक् V, 6, 2.
वाय–वात IV, 9, 7.
वायअ–वात + क I, 17, 8.
वायरण–व्याकरण I, 2, 5.
वायवल–वात + वलय IX, 15, 6.
वायाहय–वात + आहत III, 6, 6.
वार–द्वार III, 2, 2.
वारिय–वारित I, 1, 8.
वावर–व्यापृ °रंति III 17, 4. °रेइ IX, 13, 2.
वावल–व्यापृत VII, 1, 12. (Hem. I, 206; D. VII, 54 com. H. बावला).

वावीस–द्वाविंशत् V, 10, 3.
*वासी–कर्दम इति टिप्पणम् S. कुठार J. X, 27, 6.
वाह–वाष्प VI, 1, 12.
वाहि–ऊढ्वा, I, 13, 6.
वाहि–व्याधि IX, 5, 4.
वि–अपि I, 7, 5.
वि–द्वि III, 8, 7.
विइण्ण–वितीर्ण VIII, 13, 6.
विउल–विपुल VI, 16, 7.
विउसग्ग–व्युत्सर्ग X, 26, 18. (Hem. II,174).
विओअ–वियोग VI, 1, 11.
विगय–विगत V, 17, 3.
विग्गह–विग्रह VII, 7, 1.
विचित्त–विचित्र I, 14, 4.
*विच्छोय–विक्षोभ (विरह) X, 1, 4. (विच्छोह D. VII, 62).

विजयड्ढ °ड्ढ–विजयार्ध, प. II, 2, 1.
विजवाल–विजयपाल, पु. X, 29, 2.
विज्ज–विद्या II, 4, 2.
विज्जाणाह–विद्यानाथ II, 6, 1.
विज्जाणियर–विद्या + निकर II, 2, 6.
विज्जावंत–विद्यावत् II, 13, 1.
विज्जाहर–विद्याधर V, 18, 6.
विज्जाहिअ–विद्याधिप II, 11, 4,
विज्जिज्जमाण–वीज्यमान III, 1, 5.
विज्जु–विद्युत् VIII, 17, 11.
विज्जुप्पह–विद्युत्प्रभा, न. II, 2, 5; °भ, पु. II, 2, 6.
विज्जुलवंत–विद्युत् + मत् V, 7, 6.
विट्ठि–वृष्टि IV, 9, 6.
विट्ठु–विष्णु VII, 7, 3.

विडअ–विटप II, 7, 9.
विडवि–विटपिन् IX, 19, 5.
विडंविअ–विडंबित II, 9, 10.
विणअ–विनय I, 2, 10.
विणडिय–वि + वञ्चित I, 6, 3. (see णडिय).
विणामिय–वि + नामित VI, 6, 1.
विणास–विनाश I, 1, 1.
विणासयर–विनाशकर IX, 18, 9.
विणिग्गअ–विनिर्गत II, 20, 3.
विणिम्मिअ–विनिर्मित II, 2, 3.
विणीअ–विनीत VIII, 4, 2.
विणीसरीय–विनिःसृता IV, 15, 1.
विणु–विना III, 11, 1.
विण्णडिअ–(see विणडिय) II, 16, 5.
विण्णि–द्वि II, 12, 1 (Hem. III, 120).
विण्हु–विष्णु VII, 9, 3. (Hem. II, 75).
वित्त–वित्त II, 12, 8.
वित्त–वृत्त VII, 4, 10.
वित्ति–वृत्ति III, 2, 5.
वित्थड–विस्तर (विस्तीर्ण) VIII, 2, 4.
वित्थरिअ–विस्तृत VII, 5, 11.
वित्थारिय–विस्तारित VI, 1, 9.
वित्थिण्ण–विस्तीर्ण I, 3, 3.
विद्दमण–वि + दमन IX, 18, 5.
विद्दारिय–विदीर्ण I, 10, 3.
विद्दावण–विद्रावण II, 19, 4.
विपाअ–विपाक X, 12, 8.
विप्प–विप्र II, 10, 4.
विप्फार–वि + स्फार °रेवि X, 8, 2.
विप्फुरंत–वि + स्फुरत् I, 3, 3.
विप्फुरिअ–वि + स्फुरित III, 16, 9.
विबुह–विबुध X, 28, 6.
विब्भम–विभ्रम IX, 11, 2.
विभत्ति–विभक्ति X, 14, 4.
वियक्खण–विचक्षण VII, 11, 12.
वियप्पिअ–विकल्पित I, 14, 12.
वियरंत–विचरत् II, 19, 4.
वियसिय–विकसित IV, 7, 6.
वियंभिअ–विजृम्भित I, 14, 10.
वियाण–वि + ज्ञा °णेवि VIII, 15, 10.
वियार–विचार (वृत्तान्त) III, 5, 5.
वियार–विचार V, 6, 7.
वियार–वि + दार °रिवि IV, 5, 1.
वियाल–विकाल (अन्त) II, 8, 5.
विरइ–विरति IX, 6, 4.
विरइय–विरचित II, 9, 3.
विरत्त–विरक्त VI, 9, 5.
विरम–विराम IX, 22, 9.
विरहग्गि–विरह + अग्नि III, 7, 2.
विराअ–विराग IV, 12, 8.
विरेइअ–विरेचित II, 20, 9.
विलक्खी–विलक्षी VI, 12, 6.
विलय–(तत्सम) I, 1, 2.
विलित्त–विलिप्त II, 7, 7.
विवज्जिअ–विवर्जित IX, 10, 10.
विवणम्मण–विवर्ण + मनाः VI, 12, 1.
विवरीअ–विपरीत II, 13, 3.
विवरीसर–वि + परि + सृ °इ V, 7, 6.
विविह–विविध IV, 7, 6.
विसज्ज–वि + सृज् °इ IX, 23, 8.
विसज्जिअ–विसर्जित VII, 8, 7.
विसण्ण–विषण्ण II, 3, 4.
विसमिय–विषमित X, 14, 4.
विसय–विषय IX, 18, 1.
विसयासत्त–विषयासक्त IX, 4, 10.
विसहर- विषधर V, 18, 2.
विसाअ–विषाद V, 19, 2.
विसाल–विशाल II, 5, 7.
विसिट्ठ–विशिष्ट I, 15, 10.
विसुत्त–वि + सुप्त VIII, 4, 8.
विसुद्ध–विशुद्ध I, 14, 8.
विहड–वि + घट् °इ III, 8, 10.
*विहडफ्फड–विह्वल III, 2, 2, VIII 15, 9. (Hem. II, 174).
विहरंत–विहरत् X, 24, 10
*विहलंघल–विह्वल III, 2, 8; III, 6, 5; VI, I, 12; X, 8, 3.

विहंज–वि + भञ्ज् °जेवि, VIII, 17, 4.
विहा–वि + भा °इ I, 16, 12.
विहाण–विधान VIII, 17, 8.
विहि–विधि I, 2, 2.
विहिअ–विहित I, 16, 5.
विहुण–वि + धु °इ X, 7, 4.
विहुर–विधुर II, 13, 3.
विंझ–विन्ध्य, प. I, 12, 8; II, 2, 11.
विंभिअ–विस्मित III, 4, 12. (Hem II, 74).
वीयअ–द्वितीय IX, 22, 5.
वीयराअ–वीतराग IV, 5, 8.
वीरवंत–वीर्यवत् VII, 12. 8.
वीसम–वि + श्रम °इ I, 14, 3; °हिं II, 10, 9.
वीसमिअ–विश्रमित VI, 9, 3.
वीसर–वि + स्मृ °इ IX, 4, 5.
वीसरिअ–विस्मृत II, 1, 3
वीहिय–व्रीडित I, 13, 2.
वीहिय–विभीत X, 7, 8.
वुकरंति–वुक् इति शब्दं + कुर्वन्ति IV, 5, 3.
वुच्चइ–उच्यते VIII, 6, 3.
वुढमाण–वि + उह्यमान X; 13, 2.
वुत्त–उक्त I, 13, 2.
वु–द्वि II, 11, 9,
वेअ–वेग V, 11, 5.
वेइ–वेदि VII, 7, 11.
वेगवइ–वेगवती, स्त्री VI, 14, 4.
वेढिअ, °य–वेष्टित I, 3, 2.
वेय–वेद II, 9, 5.
वेयड्ढ–वेदार्ध or वैताढ्य, प VI, 11, 4; X, 1, 7.
वेयमइ–वेगवती स्त्री. VI 16, 3.
वेल–वेला IX, 23, 6.
*वेल्लहल–कोमल, विलासिन् VII, 2, 8 (D. VII, 96, वेल्ल–रम् Hem. IV. 168)
*वेल्लंत–व्याकुलीभवत् V, II, 14. (Hem. वेल्ल–रम् IV, 168, does not suit here. H. बेलना to roll in pain)
वोल्ल–वेला VIII, 7, 8. (Hem. I, 58)

वेवाहिय–विवाहित VI, 16, 3,
वेविर–वेप् + इर (शीले) V, 12, 3; X, 13,13.
वेस–वेश्या VIII, 13, 3.
वेस–वेष IX, 3, 8.
व्व–°वत् (इव) I, 3, 4. (Hem. II, 150).

[स]

स–स्व VIII, 19 5.
सअ–शत VIII, 3, 2.
सइ–सती I, 14, 1.
सइं–स्वयम् II, 5, 9.
सउण–शकुन I, 8, 9.
सउण्ण–सपुण्य VIII, 2, 4 (उन्नत, टि.)
सउण्ह–स + उष्ण III, 4, 11.
सकंठी–(तत्सम) X, 21, 3.
सकित्तण–स्वकीर्तन X, 28, 10
सक्क–शक्त IX, 6, 7.
सक्क–शक् °इ VII, 16, 1; °हि III, 7, 1; °हि VI, 4, 5.
सक्कर–शर्करा II, 7, 1.
सक्किय–शक्त IX, 8, 3.
सगोउर–स + गोपुर I, 10, 9.
सग्ग–स्वर्ग X, 22, 6.
सग्गमअ–सद् + गमक IX, 19, 11
सग्गिणी–सगिणी or स्वग्विणी III, 14, 8; VIII, 2, 8.
सचेयण–स + चेतन VI, 15, 3.
सच्च–सत्य VII, 14, 7.
सच्चलच्छीपुर–सत्यलक्ष्मी° VII, 5, 2.
सच्छ–स्वच्छ VII, 10, 9.
सजय–सज्जा VIII, 5, 5.
सज्जिय–सज्जित III, 14, 2.
सज्झाअ–स्वाध्याय IX, 20, 7.
सट्ठि–षष्टि IV, 17, 7.
सणराल–स + नालीक (?) IV, 13, 9.
सणाह–सनाथ II, 14, 6.
सणिद्ध–स्निग्ध VIII, 14, 7.
सणेउर–स + नूपुर VII, 13, 5. (Var I, 26).
सणेह–सस्नेह II, 17, 6.
सण्णज्झ–सम् + नह् °इ III, 12, 1.

सण्णय–सन्नत IV, 10, 1.
सण्णाण–सद्‌ज्ञान VI, 10, 1.
सण्णास–संन्यास V, 12, 9.
सण्णाह–सन्नाह III, 14, 7.
सण्णिह–सन्निभ IX, 10, 4.
सण्ह–सूक्ष्म X, 17, 2. (Hem. I, 118)
सत्त–सप्त III, 8, 8.
सत्तम–सप्तम X, 16, 4.
सत्ति–शक्ति II, 9, 5.
सत्थ–शास्त्र VIII, 8, 4.
सद्द–शब्द III, 18, 5.
सद्दह–श्रद्धा IX, 21, 3.
सद्दंत–शब्दं कुर्वन् II; 11, 5.
सद्दंसण–सम्यक् + दर्शन X, 25, 7.
सपोत्थय–स + पुस्तक VII, 13, 4.
सप्प–सर्प IV, 9, 2.
सब्भाव–सद्भाव X, 9, 1.
समक्ख–समक्ष II, 12, 5.
समग्ग–समग्र II, 20, 6.
समग्गल–समग्र + ल II, 7, 7; VII, 17, 10.
समञ्चिय–समर्चित VIII, 9, 11.
समणियर–सन्निकट II, 6, 7.
समणिरया–शम + निरता II, 6, 8.
समत्त–सम्यक्त्व IX, 13, 1.
समत्थ–समर्थ IV, 17, 1.
समप्पिअ–समर्पित II, 15, 8.
समरीण–श्रान्त VIII, 9, 7.
समलहीय–संवाहित (लेपित) VII, 12, 6.
समागय–°गत VII, 13, 1.
समाणिया–°निका VIII, 5, 12.
समायअ–°गत IV, 6, 4.
समायर–°चर् °इ V, 10, 9.
समाव–सम् + आप् °इ IX, 14, 11.
समासिय–°सित IX, 22, 2.
समाहिगुत्त–समाधिगुप्त, पु. II, 6, 9.
समिच्छिअ–समिष्ट I, 1, 12.
समिद्ध–समृद्ध II, 2, 5.
समीउ–समीपम् X, 4, 1.
समुज्जल–समुज्ज्वल IV, 17, 9.
समुट्ठिअ–समुत्थित II, 7, 9.
समुण्णइ–समुन्नति II, 20, 6.
समुद्द–समुद्र I, 2, 8.
*समुब्भिमडिय–सम् + आक्रान्त VIII, 15, 10 (see भिडिअ)
समुह–सम्मुख V. 17, 10.
समोडिअ–स + मोटित (मुट आक्षेपमर्दनबन्धनेषु) VIII, 7, 11.
सम्मइ–सन्मति, पु. II, 8, 4.
सम्मत्त–सम्यक्त्व V, 4, 3.
सम्माणिअ–सम्मानित II, 10, 8.
सम्मुह–सम्मुख II, 5, 1.
सय–शत I, 1, 9.
सय–स्व or शत VI. 8, 8.
सयण–स्वजन IX, 6, 8.
सयमेव–स्वयमेव II, 13, 2.
सयल–सकल I, 14, 6.
सयंभु–स्वयम्भू, पु. I, 2, 9.
सया–सदा X, 15, 9.
सयाण–सज्ञान II, 5, 9 (H. सयाना, M.शाहाणा).
सर–सरस् I, 14, 1.
सर–शर III, 12, 12.
सर–स्वर I, 14, 8.
सर–स्मृ °हि II, 10, 2.
सर–सृ °इ II, 21, 6; °उं VII, 11, 15.
सर–स्मर °मि I, 1, 2,
सरण–शरण IV, 5, 10.
सरमंजूस–स्मरमंजूषा, स्त्री VI, 14, 5.
सरय–शरद् II, 17, 4.
सररुह–सरोरुह X, 3, 1.
सरलिम–सरलिमन् I, 16, 7.
सरवर–सरोवर I, 1, 7.
सराय–सराग IV, 16, 2.
सरासइ–सरस्वती I, 2, 1.
सरिय–सृत I, 16, 1.
सरिस–सदृश III, 22, 1.
सरीर–शरीर I, 16, 2.
सरूव–स्वरूप I, 11, 7.

सरोय–सरोज I, 3, 10.
सरोस–स + रोष II, 3, 3.
सलक्खण–सलक्षण III, 4, 10.
*सलवल–onomatop °लंत IX, 23, 10; X, 23, 10; °लंति I, 4, 4; °लिअ III, 18, 8; V, 10, 3; °लेइ IV, 15, 5.
सलह–श्लाघा VI, 15, 1.
सलहिज्जमान–श्लाघ्यमान III, 1, 9. (Hem. IV. 88).
सलेहण–सल्लेखन (Jain form of terminating life by abstention from food) VI, 6, 8; IX, 23, 8.
सलोणअ–स + लावण्य X, 1, 3.
सल्ल–शल्य IX, 12, 2.
सल्लिय–शल्यित X, 7, 3.
सवण–श्रवण (कर्ण) I, 2, 2; V, 15, 8.
सवण–शकुनि VII, 5, 10.
सवण–शकुन VII, 2, 3.
सवहणाइं–शपथ + आदि III, 8, 9 (Var. II, 15, 27).
सविवाय–सविपाक IX, 14, 1.
सव्व–सर्व II, 6, 3.
सव्वत्थ–सर्वार्थ X, 27, 10.
सव्वंग–सर्वांग II, 6, 3.
सव्वायर–सर्वादर IX, 20, 9.
ससहर–शशधर II, 7, 4.
ससि–शशिन् I, 16, 1.
ससुर–श्वशुर II, 10, 7.
*सह–राज् °इ I, 16, 13 (Hem, IV, 100).
सहजाय–सह + जात VI, 2, 6.
सहयर–सहचर II, 13, 10.
सहल–सफल III, 9, 5.
सहस–सहस्र I, 3, 2.
सहसत्ति–सहसा III, 16, 5.
सहाअ°–स्वभाव I, 15, 2.
सहाअ–सहाय V, 18, 7.
सहास–सहस्र IV, 4, 3.
सहिअ–सहित VII, 7, 3.
सहिय–सखिन् III 6, 1.

सहुं–सह I, 10, 9.
सहोयर–सहोदर V, 7, 8.
संक–शंक् °इ X, 7, 6; °हु II, 21, 6.
संकर–शंकर IX, 17, 10.
संकाइय–शंकादिक IX, 21, 3.
संकिअ–शंकित V, 15, 3.
संखेव–संक्षेप III, 7, 3.
संगहिय–संगृहीत V, 10, 1.
संगाम–संग्राम III 14, 8.
संघड–संघट् °इ X, 16, 7.
संघाअ–संघात IX, 12, 1.
*संचडिअ–सम् + आरूढ VII, 14, 10 (Hem. IV, 206, H. चढ़ना)
संचलिअ–संचलित III, 1, 5.
संछायअ–सं + छादित I, 11, 8.
संजणिय–संजनित II, 14, 12.
संजम–संयम I, 1, 7.
संजलिय–संज्वलित II, 14, 7.
संजाय–संजात II, 1, 2.
संजुअ–संयुक्त I, 16, 8.
संजुत्त–संयुक्त III, 3, 11.
संजोइअ–संयोजित VII. 8, 7.
संझा–संध्या X, 9, 5.
संठिय–संस्थित III, 2, 2.
संताअ–संताप VII, 7, 4.
संताडिय–संताडित IV, 2, 6.
संति–शान्ति II, 12, 7.
संतुट्ठ–संतुष्ट II, 16, 7.
संतोस–संतोष II, 16, 4.
संथव–सं + स्थापय् °हि I, 11,10; °वंतु IX,18,3.
संथुणण–संस्तवन IV, 5, 8. (Hem. IV, 241).
संथुव्वमाण–संस्तूयमान III, 1, 7.
संधिय–संहित VI, 14, 6.
संपइ–सम्पत्ति II, 13, 1.
संपज्ज–सम् + पद् °इ II, 16, 1; °हिं IX, 17, 5; °हुं IX, 16, 3.
संपड–सम् + पत् °इ I, 10, 7; °उ IX, 16, 4. (M. सापडणें).

संपण्ण–सम्पन्न IX, 6, 9.
संपत्त–सम्प्राप्त II, 1, 11.
संपय–सम्पद् I, 1, 9.
संपाड–सम् + पातय् °इ II, 7, 1.
संपीडिय–सम्पीडित V, 8, 4.
संपीणिय–सम्प्रीत II, 14, 10.
संपुण्ण–सम्पूर्ण IV, 9, 8.
संपेसिअ–सम्प्रेषित IV 1, 6.
संबोह–सम् + बोधय् °हिवि VII, 11, 19.
संभर–सम् + भृ °हि VII, 16, 10.
संभरअ–संभृत VI, 15, 12. (सँभलना - to steady).
संभरीअ–संभृत I, 12, 8.
संभासिअ–सम्भाषित VIII, 7, 2.
संभूय–सम्भूत IV, 9, 6.
संमाणिअ–सम्मानित III, 10, 4.
संमुहिय–सम्मुखी III, 2, 9.
संरक्खिय–संरक्षित VIII, 2, 2.
संवर–सम् + वृ °हि III, 19, 8; °रेइ IX, 13, 1; °रेवि X, 24, 1.
संवलिय–संवलित V, 19, 10.
संसअ–संशय I, 13, 8.
संसग्ग–संसर्ग II, 14, 1.
संसाहिय–संसाधित VI, 16, 6.
संस–शस्य IX, 6, 6.
संसि–शंसित VI, 1, 3.
संसित्त–संसिक्त II, 14, 8.
साअ–शाप II, 4, 2.
साणुराय–सानुराग III, 22, 6.
साम–साम (वेद) II, 20, 1.
साम–शामय् °हि II, 4, 7.
सामण्ण–सामान्य I, 15, 5.
सामाइअ–सामायिक IX, 23, 2.
सामि–स्वामिन् III, 11, 5.
सामिणि–स्वामिनी V, 15, 5.
सामिसाक–स्वामिन् + सार (श्रेष्ठ) I. 7, 4.
सायर–सागर II, 2, 2.
सारअ–सर्व I, 16, 2 (H. सारा)
सारणि–(तत्सम) I, 3, 10.
सारहि–सारथि III, 16, 6.
सारिअ–सारित I, 16, 2.
सारिजूअ–सारि + द्यूत VIII, 15, 8.
सालि–शालि I, 3, 8.
सालूर–(तत्सम–frog) VII, 4, 6.
साव–शाप II, 21, 3.
सावत्थि–श्रावस्ती, न. X, 6, 2.
सावय–श्रावक IX, 16, 2.
सासय–शाश्वत I, 1, 9.
साह–साधय् °हिवि IV, 1, 1.
साहण–साधन I, 11, 10
साहामय–शाखामृग IV, 5, 3.
साहुक्कार–साधुकार X, 5, 8.
सिअ–शिव, पु. IV, 3, 1.
सिक्खावय–शिक्षाव्रत IV, 1, 8.
सिग्घ–शीघ्र IV, 6, 1.
सिट्ठी–श्रेष्ठिन् VIII, 4, 4.
सिबिर–शिविर VII, 6, 5.
सिय–सित I, 16, 11.
सिय–शीत III, 12, 6.
सिर–सृत IV, 12, 9.
सिर–शिरस् II, 20, 9.
सिररुह–शिरोरुह I, 16, 14.
सिरि–श्री I, 2, 9.
सिरिसेणा–श्रीषेणा, स्त्री, V, 5, 2.
सिल–शिला IV, 12, 2.
सिलवइ–शिल्पिन् IV, 13, 10.
सिव–शिव (मोक्ष) I, 1, 3.
सिविण–स्वप्न X, 27, 5. (Hem I, 46.)
सिसिर–शिशिर IX, 14, 4.
सिसु–शिशु X, 7, 2.
सिहर–शिखर VI, 3, 6.
सिहि–शिखिन् II, 15, 6.
सिंग–शृङ्ग III, 3, 3.
सिंचिअ–सिञ्चित (सिक्त) IV, 3, 7.
सिंभ–श्लेष्मन् IX, 11, 3.
सिंहवार–सिंह + द्वार III, 9, 10.

सीयलत्त–शीतलत्व III, 10, 8.
सीलगुत्त–शीलगुप्त, पु. IX, 1, 10.
सीस–शीर्ष I, 17, 8.
सीस–शिष्य X, 28, 3.
सीह–सिंह IV, 2, 5.
सीहु–सीधु (सुरा) IX, 21, 6.
सीहोवम–सिंहोपम III, 13, 8.
सुअ–श्रुत I, 2, 5.
सुअ–सुत II, 5, 9.
सुअण–सुजन VII, 15, 6.
सुअ°–शुक VIII, 5, 14.
सुअवेय–सुवेग (नाम), V, 11, 9.
सुअंध–सुगंध I, 12, 6.
सुइण–स्वप्न VIII, 5, 14.
सुईण–स्वप्न VIII, 4, 8.
सुउत्ति–सूक्ति V, 10, 7.
सुक्क–शुक्र IX, 11, 10.
सुक्क–शुष्क I, 10, 6.
सुखेयरि–सु + खेचरी VI, 14, 4.
सुछंद–सुछन्दस् VIII, 4, 10.
सुजंत–सु + यन्त्र IV, 10, 5.
सुझाण–सु + ध्यान V, 6, 8.
सुट्ठु–सुष्ठु VII, 5, 12.
सुण–श्रु °इ X, 28, 9, °णि II, 10, 4, °णिवि II, 5, 1. °णीऊण, VIII 4, 1.
सुणंदा–सुनन्दा, स्त्री, VI, 10, 4.
सुणाण–सुज्ञान VI, 3, 7.
सुणिम्मल–सुनिर्मल V, 7, 6.
सुतेअ–सु + तेजस् VII, 7, 1.
सुत्त–सुप्त IX, 7, 2.
सुत्तधारि–सूत्रधारिन् IV, 12, 4.
सुत्तिय–सुप्ता I, 8, 5.
सुत्थिय–सुस्थित IX, 7, 7.
सुथुव्व–सु + स्तु (कर्मणि) °इ V, 6, 3.
सुथूल–सु + स्थूल IX, 22, 3.
सुदंसण–सुदर्शन II, 14, 4.
सुदित्तिवंत–सुदीप्तिवत् I, 12, 1.
सुदुद्धर–सु + दुर्धर III, 22, 9.
अ–सुवेग V, 6, 2.
सुद्ध–शुद्ध II, 3, 8.
सुपसण्ण–सु + प्रसन्न X, 26, 5.
सुप्पयंड–सु + प्रचण्ड I, 8, 6.
सुमर–स्मृ °इ III, 10, 7; °हि IX, 1, 4; °रंत I, 1, 12.
सुमित्ता–सुमित्रा, स्त्री, X, 18, 4.
सुमोत्तिय–सु + मौक्तिक IV, 6, 8.
सुय–श्रुत V, 2, 8.
सुय–सुत III, 21, 1.
सुय–शुक VIII, 12, 7.
सुय–स्वप् °यंति I, 3, 9; °हि VIII, 11, 10.
सुयण–सुजन I, 1, 6.
सुयाण–सुज्ञान II, 3, 8.
सुरइ–सुरति II, 9, 9.
सुरणाह–सुरनाथ V, 13, 7.
सुरराअ–सुरराज III, 18, 9.
सुरलोअ–सुरलोक III, 5, 6.
सुरवइ–सुरपति III, 1, 4.
सुरसरि–सुर + सरित् III, 9, 4.
सुरहर–सुरगृह VI, 3, 10.
सुराअ–सुराग IV, 7, 1.
सुरिंद–सुरेन्द्र I, 12, 5.
सुरूव–सुरूप IV, 16, 7.
सुरेसर–सुरेश्वर IV, 1, 14.
सुरोहराअ–सुर + ओघ + राग VI, 9, 1.
सुलक्खण–सुलक्षण II, 14, 3.
सुललिय–सुललित VII, 7, 5.
सुलोयण–सुलोचन II, 20, 4.
सुव–स्वप् °इ X, 6, 5.
सुवण्ण–सुवर्ण VIII, 6, 2.
सुवाअ–सुवात VII, 11, 5.
सुविज्जलया–सुविद्युल्लता II, 2, 7.
सुवेअ–सुवेग, पु. IV, 8, 2.
सुव्वअ–सुव्रत, पु. II, 3, 5.
सुसहाअ–सुसहाय IX, 9, 1.
ससुर–श्वशुर II, 10, 9.
सुसोह–सु + शोभ II, 9. 4.
सुसोहण–सु + शोभन II, 20, 9.
सुसोहिअ–सु + शोभित VII, 3, 10.

सुह–सुख I, 1, 3.
सुह–शुभ V, 5, 1.
सुहड–सुभट III, 10, 2.
सुहय–सुभग IX, 9, 8.
सुहयर–सुखकर II, 9, 7.
सुहावह–सुखावह I, 2, 2.
सुहि–सुहृद् VIII, 11, 9.
सुंड–शुण्डा II, 20, 4.
सूय–शुक VI, 12, 6.
सूय–सूत (mercury) IX, 6, 6.
सूरप्पह–सूरप्रभ, पु. V, 5, 2.
सूल–शूल I, 17, 4.
सूय–श्रुत III, 6, 10.
सूहअ–सुभग VI, 7, 2.
सेज्जा–शय्या X, 15, IO. (Hem. I, 57; II, 24. H. सेज).
सेठि–श्रेष्ठिन् VIII, 5, 2.
सेढि–श्रेणि II, 2, 4.
सेणि–श्रेणि V, 1, 11.
सेण्ण–सैन्य IV, 1, 14.
सेय–श्रेयस् X, 26, 14.
सेय–स्वेद III, 19, 3.
सेय–श्वेत I, 4, 4.
सेव–सेवा II, 4, 6.
सेल–शैल II, 2, 11.
सेविअ–सेवित I; 16, 3.
सेविज्जमान–सेव्यमान III, 1, 8.
सेंवलि–शाल्मलि (तरु) VIII, 7, 7.
सोअ–शोक III, 6, 6.
सोक्ख–सौख्य V, 12, 1.
सोक्खवीहि–सौख्य + वीथि X, 17, 3.
सोणिय–शोणित IX, 11, 10.
सोणिय–श्रोणी I, 16, 5.
सोत्तिअ–श्रोत्रिय IX, 5, 9.
सोमराअ–सोमराज VIII, 4, 10.
सोय–शोक IV, 16, 1.
सोरट्ठ–सौराष्ट्र, दे. III, 5, 6.
सोरह–सौरभ VIII, 2, 3.
सोलह–षोडश X, 17, 9.
सोव–स्वप °इ VIII, 13, 5; °हि VI, 9, 5.
सोवण्ण–सौवर्ण III, 3, 10.
सोवाण–सोपान X, 16. 10.
सोवीर–सौवीर (buttermilk) IX, 14, 8.
सोह–शोभा II, 1, 8.
सोह–शोभ् °इ I, 15, 4; °हंति, I, 16, 11; °हेविणु X, 28, 6.
सोहण–शोभन VI, 4, 2.
सोहमाण–शोभमान IV. 4, 5.
सोहल–शोभा + ल (मत्वर्थे) I, 9, 10.
सोहा–शोभा I, 16, 8.
सोहायमाण–शोभमान I, 3, 4.

[ह]

हई–हता IV, 9, 6.
हउं–अहम् II, 5, 8.
हक–हक् इति शब्दः III, 14, 3. (H. हांक)
हट्ट–(तत्सम–market) III, 8, 4.
*हड्ड–अस्थि III, 15, 9. (D. VIII, 59.)
हण–हन् °इ V, 14, 8, °णंत V, 19, 1; °णेविणु X, 5, 4; °णिवि X, 8, 8.
हणण–हनन II, 3, 10.
हणिअ–हत II, 17, 10.
हत्थ–हस्त III, 11, 1.
हत्थि–हस्तिन् I, 13, 6.
हम्म–हर्म्य I, 15, 8.
हय–हत III 15, 1.
हय–(तत्सम–अश्व) IV, 2, 1.
हर–हृ °रंत III, 13, 6; °रिवि II, 5, 3; °रेमि X, 23, 6.
हरइं–हरन्ति (विहरन्ति) X, 29, 15.
हराविय–हारापित VIII, 6, 1. (H. हराना to defeat)
हरि–हरित् IV, 12, 2; X, 2, 5.
हरिय–हरित I, 14, 6.
हरिय–हृत III, 17, 10.
हरिवीढ–हरिपीठ (सिंहासन) IV, 12, 1.

हरिस–हर्ष I, 14, 11.
हरिसिय–हृष्ट III, 9, 3.
हरिसुक्कंठ–हर्षोत्कण्ठ II, 21, 4.
°हल–फल X, 27, 10.
हलहर–हलधर IX, 17, 11.
*हले–आमन्त्रणे अव्ययम् VIII, 16, 7. (Hem. II, 195.)
*हल्लिय–चलित IV, 2, 3 (D. VIII, 62; H. हलना to shake)
*हल्लोहलि–व्याकुल VII, 10, 13. (Hem. IV, 396 ex.)
हव–भू °इ III, 19, 9; °वेसइ IV, 17, 5; °वेइ IX, 14, 11.
हसंत–हसत् I, 3, 10.
हंसरह–हंसरथ, पु. VI, 13, 9.
हालिणि–हलिनी (कृषक–स्त्री) I, 5, 7.
हिअअ–हृदय I, 11, 1.
हिक्का–(तत्सम Hiccough) VIII, 2, 5.
हिट्ठ–हृष्ट II, 12, 8.
हिंड–(हिडि–गत्यनादरयोः) °मि IV, 17, 10; °इ V, 15, 2; °डंत III, 14, 5.
हिंडिय–हिंडित VIII, 12, 8.
हिमवंत–हिमवत् III, 12, 7.
हिय–हृदय I, 14, 12.
हियय–हृदय I, 1, 9.
हिययअ–हृदय I, 10, 10.
हिरण्ण–हिरण्य VIII, 6, 4.
हिलहिलंत–हेषमाण III, 13, 4.
हिंसालअ–हिंसालय IX, 12, 7.
हीर–धीर X, 29, 8.
हीलण–हेलन III, 1, 7.
हुआस–हुताश III, 13, 3.
हुआसण–हुताशन I, 1, 8.
हुअ–भूत II, 2, 6.
हुकरंति–हुं कुर्वन्ति III, 17, 2.
हुय–भूत II, 12, 7.
हुव–भूत V, 11, 11.
हुवास–हुताश IX, 18, 7.
हुंत–भवत् V, 17, 8.
हूअ–भूत V, 15, 4.
हूई–भूता III, 5, 10.
हूव–भूत VI, 10, 5.
*हेट्ठामुह–अधोमुख V,16,8 (Hem II, 141).
होइ–भवति I, 13, 4; °एज्जहि VI, 4, 6; °एवि II, 3, 5; °एविणु III, 10, 10; होंति I, 13, 4; °वि V, 11, 3; °सइ II, 5, 6; °सहि II, 5, 7; °समि V, 18, 7; °हइ I, 19, 15; °हहि II, 4, 10; °हि II,18,5.

INDEX OF PERSONAL NAMES

WITH NOTES.

अकलंकदेव I, 2, 8. A Jain logician (see Intro.)

अजवर्मा or **अजय°** (**अजवम्म**) III, 5, 8. King of Girinagara, who married his daughter **मदनावली** to **करकंड**.

अजितांगी (°**यंगि**) III, 5, 8. wife of **अजवर्मा** of Girinagara, mother-in-law of **करकंड**.

अनंगलेखा (°**लेह**) VII, 16, 2. X, 24, 4. A **विद्याधरी** of **तिलकद्वीप** married by **करकंड**.

अमितवेग (**अमिय°**) V, 4, 2; V, 9, 9; V, 11, 1. A **विद्याधर**, friend of **नील**; lived at **गगनतल**. He and his brother **सुवेग** picked up the image of **पार्श्वनाथ** from **पूदी** hill, and deposited it on the hill near Terapur where it was discovered by **करकंड**, buried in an ant-hill.

अरिदमन VIII, 1, 5. King of Ujjain (for story see Intro.).

अरिविंदु II, 16, 3. King of Benares.

अर्जुन (**अज्जुण**) X, 22, 7. **सुमित्रा** reborn as.

आहुल X, 29, 13. Son of the minister who urged **कनकामर** to compose the work.

काञ्चनमती (**कंचनमई**) VI, 16, 3. A **विद्याधरी** of **कनकपुर** married by **नरवाहनदत्त**.

कनकप्रभ (**कणयप्पह**) VII, 14, 10; VII, 15, 7. A **विद्याधर** of **तिलकद्वीप**, who married his daughter **कनकप्रभा** to **करकंड**.

कनकप्रभा (**कणयप्पह**) VII, 15, 1. A **विद्याधरी** of **तिलकद्वीप**, married by **करकंड**.

कनकमती (**कणयमई**) VI, 14, 9; VI, 15, 1. A **विद्याधरी** of **कनकपुर**.

कनकामर (**कणया°**) I, 17, 11; II, 21, 10; III, 22, 21; IV, 17, 9; V, 19, 9; VI, 16, 10; VII, 16, 10; VIII, 20, 14; IX, 24, 12; X, 28, 2; X, 29, 13. The author of **करकंडचरिउ** (see Intro).

करकंड 1, 2, 3; II, 7, 3; etc. The hero of the poem.

कुसुमदत्त I, 6, 7; X, 13, 5. The garland-maker of **कुसुमपुर** who had brought up **पद्मावती**.

कुसुमदत्ता I, 6, 9. Wife of **कुसुमदत्त** of **कुसुमपुर**.

कुसुमदत्ता I, 15, 9. Wife of the forest-guard of **दन्तीपुर** who had found **पद्मावती** in the forest.

कुसुमावलि VII, 16, 4; X, 24, 3. A **विद्याधरी** of **तिलकद्वीप** married by **करकंड**

केतुमती (**केउमइ**) VI, 12, 1. A **विद्याधरी** of **जयन्ती**.

गुणनिकेत (°**णिकेउ**) II, 2, 8; II, 5, 6. A **विद्याधर** who became a **मातंग** by the curse of a sage. He brought up **करकंड** till the latter was crowned king of **दन्तीपुर**.

गौरी (**गउरि**) II, 2, 7. Consort of Siva

चंद्रलेखा (चंदलेह) VII, 16, 3; X, 24, 4. A विद्याधरी of तिलकद्वीप married by करकंड.

चंद्रर्षि (चंदारिसि) X, 28, 1. The gotra of कनकामर the author.

जयदेव (°एव) I, 2, 9. A Jain author. (see Intro)

तार II, 2, 3. He is said to have raised the Vijayardha mountain. (असुरदेवता इति टिप्पणम्)

दशरथ (दसरह) III, 1, 12. King of Ayodhya, father of Rama.

दामोदर (°यर) III, 21, 10; IX, 17, 10. epithet of Vishnu.

धनदत्त (धणयत्त) X, 10, 9. A merchant of नालंद.

धनदत्त (धणयत्त) X, 1, 14. Cowherd of धनमित्र of तेरापट्टन who was born as करकंड in the next birth.

धनपाल (°धण) X, 10, 10. The son of धनदत्त merchant of नालंद.

धनमती (धणमई) X, 10, 8. Daughter of वसुमित्र and नागदत्ता of ताम्रलिप्ति, and married to धनपाल of नालंद.

धनमित्र (धनमित्त) X, 1, 11. A merchant of तेरापट्टन.

धनमित्रा (धणमित्ता) X, 10, 9. Wife of धनदत्त merchant of नालंद.

धनवती (जणवइ) X, 1, 12. Wife of धनमित्र merchant of तेरापट्टन.

धनश्री (धनसिरी) X, 10, 8. Second daughter of वसुमित्र and नागदत्ता of ताम्रलिप्ति, married to वसुमित्र of कौशाम्बी.

धाडीवाहन (णु°) I, 4, 10; II, 5, 2; III, 11, 8. King of चम्पा, father of करकंड. (See Notes I, 4, 10).

धूमकेतु (°उ) VI, 10, 4. A विद्याधर ruling at जयंती in विद्याधर-पर्वत.

नरवाहनदत्त (°ण) V, 19, 9. etc. Prince of कौशाम्बी (for story see Intro).

नागदत्त (णाय°) X, 6, 3. A merchant of श्रावस्ति.

नागदत्ता (णाय°) X, 6, 7. Wife of नागदत्त of श्रावस्ति.

नागदत्ता (णाय°) X, 10, 6; Wife of वसुमित्र of ताम्रलिप्ति, the faithless wife of नागदत्त in her former birth.

नारायण (ण°) X, 25, 3. An epithet of Vishnu.

नील (णी°) V, 2, 2; V, 3, 8; X, 1, 8. A विद्याधर who ruled at रथनूपुर but later on migrated to तेरापुर and built the first cave there.

पद्मदेव (पउमएउ) VI, 11, 3. A विद्याधर of उप्पलखेडि

पद्मावती (पउमावइ, पोमा°) I, 7, 9; 11, 1, 12; II, 5, 3; II, 6, 7; III, 9, 1. The daughter of वसुपाल king of कौशाम्बी. wife of धाडीवाहन king of चम्पा and mother of करकंड the hero.

पवनवेग (पवणवेउ) II, 12, 4. A राक्षस.

पवनवेग (पवणवेउ) VI, 11, 4. A विद्याधर son of मनोवेग

पार्श्वजिनेन्द्र (पास जिणिंद) V, 2, 5. The 23rd Tirthankara.

पुष्पदन्त (पुप्फयंत) 1, 2, 9. A Jain Apabhramsa poet (see Intro).

प्रद्युम्न (पज्जुण्णु) III, 21, 10 Son of दामोदर (कृष्ण).

बलदेव (°एउ) IX, 7, 9; X 25, 3. The eldar brother of नारायण.

बलभद्र (°हद्द) IX, 5, 5. same as बलदेव.

बालदेव II, 2, 8. The Vidyadhara who took Karakanda away from his mother.

भरतेश्वर (°हेसर) IV, 4, 10; V, 5, 5. The first Chakravarti, son of ऋषभदेव, the first Tirthankara.

भूपाल (भूवाल) X, 29, 5. A king contemporary of our author (see Intro).

मंगलदेव (°एव) I, 2, 1; X, 28, 3. The teacher of कनकामर.

मतिवर (मइ°) IV, I, 1; IV, 1, 3 The minister of करकंड.

मदनदेव (मयणएउ) VI, 11, 3. The son of पद्मदेव विद्याधर He was transformed into a parrot by the daughter of a sage.

मदनामर (मयणामर) VI, 10, 8; VI, 12, 2; VI, 12, 6. Same as मदनदेव.

मदनावलि (मयणा°) III, 5, 10; V, 15, 1. Daughter of अजवर्म of गिरिनगर and wife of करकंड.

मधुसूदन (महसूयण) VI, 4, 9. A A Brahaman of मथुरा (for story see Intro),

मनोवेग (मणवेय) VI, 11, 4. A विद्याधर of उत्तरश्रेणी; father of पवनवेग.

महानील (महणील) V, 2, 2. Brother of नील.

महेश (°स). II, 2, 7. God Siva.

माधव (माहव) VI, 4, 9. A Brahman of मथुरा (for story see Intro.)

यशोधर (जसहर) V, 8, 10. A मुनि met by अमितवेग and सुवेग in the सहस्रकूट चैत्यालय at Terapur.

यशोधर (जसहर) X, 5, 1. A मुनि whom करकंड in his former life wanted to worship.

यशोभद्र (जसहद्द) II, 7, 5; II, 8, 1. A मुनि who came to the cemetery of दंतीपुर.

रतिविभ्रमा (रइविब्भम) VI, 12, 10; VI, 15, 9; VI, 16, 2. A विद्याधरी of कनकपुर married by नरवाहनदत्त.

रतिवेगा (रइवेय) VII, 7, 5; X, 24, 2. The princess of सिंहल married by करकंड.

रत्नलेखा (रयणलेह) VIII, 10, 5. A damsel of छोहारद्वीप married by नरवाहनदत्त.

रत्नावली (रयणावलि) VII, 16, 4; X, 24, 3. A विद्याधरी of तिलकद्वीप marred by करकंड.

रल्हो X, 29, 13. Son of the minister who patronised कनकामर.

राघव (राहव) VII, 3, 1. The descendant ot रघु i. e. राम,

रावण V, 5, 1. Ancestor of सूरप्रभ who built the Jain temple on पूदी hill.

राहुल X, 29, 13. Son of the minister who patronised the author.

लंका IV, 11, 1; V, 5, 1. The capital of रावण and his doscendants.

लंबस्तनी VIII, 13, 1. The bawd (कुट्टिनी) of खंभायच्च who gave shelter to रत्नलेखा.

लीलावती (°वइ) VI, 16, 3. A विद्याधरी of कनकद्वीप married by नरवाहनदत्त.

वत्सराज (वच्छराउ) VI, 1, 4. King of कौशाम्बी, father of नरवाहनदत्त.

वरदत्त VII, 1, 10. The minister of अरिदमन.

वसुदत्त X, 11, 2. Son of वसुपाल, merchant of कौशाम्बी.

वसुपाल I, 7, 9; X, 12, 6. King of कौशाम्बी, father of पद्मावती the mother of करकंड.

वसुपाल X, 9, 12. King of चंपापुरी, father of वाहीवाहन.

वसुपाल X, 23, 7. Son and successor of करकंड.

वसुमती (°मइ) X, 9, 12. Wife of king वसुपाल of चंपा, and mother of धाडीवाहन.

वसुमती (°मइ) X, 11, 1. Wife of वसुपाल merchant of कौशाम्बी.

वसुमती (°मइ) X, 12, 6. Wife of वसुपाल king of कौशाम्बी.

वसुमित्र (°त्त) X, 10, 6. A merchant of ताम्रलिप्ति.

वात्सायन (वच्छायण) II,, 9, 3. The author of कामसूत्र a work on erotics. It is used here in the sense of the science of erotics.

वायुवेग (वाउवेउ) V, 1, 3. A विद्याधर who narrated to करकंड the account of the building of the cave at Terapur.

विजयपाल (विजवाल) X, 29, 1. A king of आसाइय, contemporary of कनकामर.

विद्युत्प्रभा (विज्जुप्पह) II, 2, 6. King of विद्युत्प्रभा, father of गुणनिकेत.

विमलादेवी (°एवि) VI, 13, 10. Wife of हंसरथ विद्याधर of कनकपुर.

विमला VIII, 1, 9. Wife of अरिदमन of Ujjain.

वीरभद्र (°इ) II, 7, 5. A sage who arrived at the cemetery of दंतीपुर.

वेगमती (वेयमइ) VI, 16, 3. A विद्याधरी of कनकपुर married by नरवाहनदत्त.

वेगवती (°वइ) VI, 14, 4. A विद्याधरी of कनकपुर.

शिव (सिउ) IV, 3, 1; IV, 4, 8. King of Terapur who visited करकंड and who probably gave the name of धाराशिव to the place.

शीलगुप्त (सीलगुत्त) IX, 1, 10. The sage from whom करकंड took दीक्षा.

श्रीषेणा (सिरिसेणा) V, 5, 3 Wife of सूरप्रभ king of लंका.

समंतभद्र (°इ) I, 2, 8. A Jain logician (see Intro.)

समाधिगुप्त (°हिगुत्त) II, 6, 9. A sage from whom पद्मावती, the mother of करकंड took vows.

सम्मति (°इ) II, 8, 4. A Brahman form whom करकंड wrested the three lucky bamboos.

सिद्धसेन (°ण) I, 2, 8. A Jain logician (see Intro).

सुदर्शन (°दंसण) II, 14, 4. A merchant (see Intro., the story of low company).

सुनन्दा (°णंदा) VI, 10, 4. Wife of धूमकेतु विद्याधर.

सुमित्रा (°त्ता) X, 18, 4. Daughter of the king of उज्जैन.

सुवीणा VI, 1, 5. Wife of वत्सराज, mother of नरवाहनदत्त.

सुवेग IV, 8, 2; V, 4, 2; V, 10, 8; V, 11, 9. Brother of अमितवेग विद्याधर, reborn as an elephant.

सुव्रत (सुव्वउ) II, 3, 5. A sage on the Vindhya, by whose curse गुणनिकेत lost his Vidya and became a मातंग.

सूरप्रभ (°प्पह) V, 5, 2. King of लंका, descendant of रावण. He built the Jain temple on the पूदी mountain.

स्वयंभू (सयंभु) I, 2, 9. A Jain Apabhransa poet (see Intro).

हरि IV, 11, 2; IX, 5, 5. An epithet of विष्णु.

हंसरथ (°रह) VI, 13, 9. A विद्याधर, king of कनकपुर. He carried away the wife of नरवाहनदत्त.

हेममाला (°ल) II, 2, 9; II, 6, 5. Wife of गुणनिकेत; the adopted mother of करकंड.

INDEX OF GEOGRAPHICAL NAMES

WITH NOTES.

In writing the geographical notes the following abbreviations have been used :

Arch. Re.—Archaeological Survey of India Report.

Bh, Nat.—Bharata's Nātya-sạstra.

Cun. Geo.—Cunningham's Ancient Geography of India.

Cun. S B.—Cunningham's Stupa of Barhut.

Dey. Geo.—Geographical Dictionary of Ancient and Mediaeval India by Nandlal Dey.

Ep. Ind.—Epigraphia Indica.

J. Stups.—Jain stupa and other Antiquities of Mathura by V. Smith,

Kss.—Kathā-sarit-sāgara of Somadeva.

Mbh.—Mahābhārata.

Padma P—Padma Purāṇa of Ravishenācarya.

Ram.—Rāmāyana.

S I J.—South Indian Jainsm by Ramasvami Iyangar.

T S P.—Trisasthi-salākā-purusa-carita of Hemacandra.

Vayu P.—Vayu Purāṇa.

Vikram.—Vikramanka-deva-carita. Buhler's edition.

V P.—Vishnu Purāṇa.

अयोध्या III, 1, 12. The birthplace of Rama in Oudh. Also the birthplace of the first Tirthamkara Adinatha.

अंगदेश I, 3, 5. With capital at चम्पा. The country about Bhagalpur including Monghyr. The kingdom of Romapada of the Ramayana and Karna of the Mahabharata. For the significance of the name, see Ramayana Balakanda XXIII, 14.

अमरपुरी (अमराउरो) III, 22, 5. The city of gods.

अवंति देश VIII, 1, 6. With capital at उज्जैनी, ruled by king अरिदमन. It was the ancient name of Malwa in central India.

आंध्र (अंध्र) II, 2, 11. Between it and कलिंग stood the mountain विंध्य. The country between the Godavari and the Krishna. Its capital was Dhankataka or Amaravati at the mouth of the Krishna. The ancient kingdom of the Andhras also called Satavahanas or Satakarnis.

आसाइय X, 28, 4. The town where Kanakamara wrote the Karakanda

cariu (see Introduction).

उज्जैनी or उज्जयिनी (उज्जेणि) VIII, 1, 7; X, 18, 4. The capital of Avanti desa of ancient fame, situated on the river Sipra.

उत्तरवेयर्ध (°वेयड्ढ) VI, 11, 4. The northern वेयर्ध which see.

उप्पलखेडि VI, 11, 2. A town in विजयार्ध or वेयर्ध, ruled by पद्मदेव (पउमदेउ) विद्याधर

कनकपुर (कणयउर) VI, 13, 8. A town on the bank of Sindhu in Vijayardha, ruled by Hamsaratha Vidyadhara.

कलिंग II, 2, 11; X, 10. 2. According to *Uttaradhyayana Sutra XVIII,* 460, Karadanda ruled here. It is identified with the Northern Circars, a country lying on the south of Orissa. Its capital was Dantapur or Dantipur.

कलिंजर I, 12, 9; °गिरि VI, 2, 4. Probably identical with Kalangala mentioned as the eastern boundary of the middle country in Vinaya II, 38. (Cunningham's Geography P. 723). Our Kalinjar might be identified with Keunjar of the maps in Orissa on the Baitarni river and close to a mountain range, an offshoot of Mahendera. It is near Puri with which Dantipur is identified. The name is at present borne by a celebrated fortress in Bundelkhanda, in the Badausa subdivision of the Banda district of U. P.

कान्यकुब्ज (कण्णउज्ज णयर) II, 10, 4. Modern Kanouj. It was the capital of the southern Pancala during the Buddhist period. (Rhys David's Buddhist India p. 27). Harshavardhana ruled there when he was visited dy Hiuen Tsang in 636 A. D. It was the birth-place of Visvamitra (Ramayana, Balakanda)

कालिंदी III, 9, 4, etc. Another name of the river Jamna (Yamuna)

कुसुमपुर (°उर) I, 6, 1; X, 13, 5. Another name for Patalipurtra which was the capital of Magadha under the Nandas and the Mauryas. In the Samskrit drama Mudra-rakshasa, it is mentioned as the capital of Chandragupta Maurya, and as situated on the river Sona. It is also described by Megasthenes. It was built by Ajatasatru in 480 B. C. (Mahavagga VI. 28)

कोंकण VIII, 12, 9. The country between the Western Ghats and the sea from about Bombay southward to Goa. Hiuen Tsang makes mention of one Kong-pien-na-pulo or Konkanpur, probably identical with Annagundi on the northern bank of the Tungabhadra river (Cun. Geo. p. 632, 745).

कैलाश (कइलास) visited by Bharata (son of the first Tirthamkara Adinath) who also built temples there. IV, 4, 10; V, 5, 5. It was once lifted up by the king of Lanka (Ravana) IV, 11, 1. A celebrated mountain of Pauranic

fame. It is identfied with the Kangrin-poche of the Tibetans, about 25 miles to the north of Manasa lake, and to the east of the Niti pass (Dey. Geo.) It is also called Ashtapada. The first Tirthamkara Rshabha is said to have practised penance there and his son Bharata visited it during his journey of conquest (Jinasena's Adipurana).

कौशाम्बी (कउसंबि) I, 7, 9; X, 11, 1; X, 12, 6. The capital of the Vatsas ruled over by Naravahanadatta VI, 1, 3. Founded by Kusamba the son of Kusa (Ram. Balakanda XXXII, 6). Fa Hian locates it 13 yojanas N W of the Deer Park (modern Sarnath near Benares). It is identified with Kosam a village on the Jumna 30 miles S W of Allahabad, which is still called Kausambi by the Jains. Ancient coins are frequently discovered here and an ancient Jain inscription of the Kushan period has been found (Arch. Re. 1913-14; Ep. Ind. II, 240).

खंभायच पट्टण VIII, 12, 10. Modern Cambay, being at the head of a gulf of the same name, was an important trade port in ancient times, but has now last its importance owing to the silting up of the gulf.

गंगानदी (°णइ) I, 3, 3; III, 12, 5; III, 20, 7; IV, 14, 6; X, 13, 2. The river Ganges.

गगनतल (गयणयल) V, 3, 9. A town in उत्तरवेढ्ढ, where lived the two Vidyadharas Amitavega and Suvega.

गिरिनगर (°णयर) III, 5, 7. In Saurastra (सोरट्ठदेस) ruled by king Ajavarma. It is represented by modern Junagadha in Gujrat, the old name being transferred to the hill about ten miles east. The 22nd Tirthamkara Neminatha practised austerities here and the hill is even now held sacred to him and is a place of pilgrimage for Jains. The inscriptions of Asoka, Rudradamana and Skandagupta are found engraved here on a single rock.

गोवर्द्धन (गोवद्धण) IV, 11, 2. A hill 18 miles form Brindavana in the district of Muttra. Krishna is said to have taken it upon his little finger and held it as an umbrella over the heads of his cattle and townsmen to protect them from the deluge of rain poured upon them by Indra. (Mbh. Udyoga, chap. 129).

चम्पा I, 3, 12; II, 5, 2; X, 9, 12. Capital of Anga country, ruled by Dhadivahana son of Vasupala and father of Karakanda. It was the birth-place of the twefth Tirthamkara Vasupujya. It is metioned in the Ramayana, Mahabharata and other Puranas, Hiuen Tsang mentions it as Chenop and locates if at a distance of 300 li or 50 miles east of Monghyr, on the strength of which Cunningham identifies it with Patharghata, 24 miles east of Bhagalpur. But N. L. Dey identifies it with Camp-

anagar four miles to the west of Bhagalpur. (Cun. Geo; Dey Geo.)

चेर IV, 1, 5; VIII, 18, 5. In Dravida country whose kings did not at first submit to Karakanda but were subsequently overpowered. Mentioned in Asoka inscriptions as Keralaputra, and by Periplus as *Cerobothra*. The country, at one time, comprised the present kingdom of Mysore, Coimbatore, Salem South Malabar, Travancore and Cochin. According to Ptolemy (2nd Cent. A.D.) its Capital was Karour or Karour, also called Vangi. The Pandya country lay to its south.

चोड II, 10, 5; IV, 1, 5; VIII, 18, 5. In Dravida country. Its king did not at first submit to Karakanda but was subsequently overpowered. It is mentioned in the Varttika of Katyayana, inscriptions of Asoka and the epics. Identical, probably, with Hiuen Tsang's Choliya (Chu-li-ye or Jho-li-ye) which he describes as a small district 2400 li or 400 miles in circuit and 1000 li or 167 miles south-west from Dhanakataka. It is the modern Coromandal Coast. Its capital was Uraiyur on fhe Kaveri and later Kanchipur, Combakonum and Tanjore. During the time of our author the Caudas seem to have been the leading power of the South.

जोहारद्वीप VIII, 10, 3. King Aridamana of Ujjain, after crossing the sea, reached there and married Ratnalekha. Seems to have been some island off the western coast.

जम्बूद्वीप I, 3, 1; V, 1, 3. etc. The continent surrounded by the briny ocean (लवणार्णव) and one hundred thousand yojanas in extent; in which the Bharata kshetra is situated; so called because it is characterised by a Jambu tree.

जयन्ती VI, 10, 3. A town in the southern part of the Vidyadhara mountain (Vediardha), where Dhumaketu Vidyadhara ruled. (see वेयर्ध)

ताम्रलिप्ति (तामलित्ति) X, 10. 5. A town mentioned in the Mbh, the Puranas and the Buddhist works. It was celebrated as a maritime port (Kss XII, 14.) It was from here that Vijaya is said to have sailed for Ceylon. Fa Hian describes it as being at the sea mouth, 50 yojanas east of Campa. It was the capital of the Sumha countary. Formerly, at the mouth of the Ganges, but is now situated on the western bank of the Rupanarain in the district of Midnapur in Bengal and is called Tamluk.

तिलकद्वीप (°दीव) VII, 15, 1. While returning from Simhala by sea, Karakanda was carried away to this island by a Vidyadhari. It may be one of the few flat island off the Jaffna paninsula which forms the extreme north of Ceylon, and was the gate way by which the hard-

working Tamils of South India entered Ceylon. It is also mentioned in the Bhavis-yatta-kaha of Dhanapala

दक्षिणापथ (दक्खिणवह) IV, 2, 4; Ancient name of Deccan i. e. the part of India to the south of the Narmada. The name occurs in the Pali books of the Buddhists. It is the Dakkinabades of the Greeks. It is defined in Bh. Nat. XIII, 26, as follows :

महेन्द्रो मलयः सह्यो मेलकः पलविन्जरः
एतेषु संश्रिता देशाः स ज्ञेयो दक्षिणापथः॥

दन्तीपुर 1, 14, 4; II, 5, 4; II, 19, 3; III, 1, 2; III, 11, 9. Here Padmavati was taken by the elephant running away from Campa. Karakanda was born in its vicinity and later was crowned king of the city. It is identical with Dantapur, the ancient capital of Kalinga, mentioned in Pali books in connection with the tooth-relic of Buddha (see Dattha vansa). It is probably the Dandagula, °guda or °pula of Pliny. Cunningham identifies it with Rajamahandri while N. L. Dey identifies it with Puri. Danti being a synonym for Hasti (elephant) later writers have mistaken it for Hastinapur.

द्रविडदेश IV, 1, 4; VIII, 18, 4. The land of the three kingdoms, *Coda,Cera* and *Pandya*. *Damirica*, of Periplus and *Damirike* of Ptolemy Acc. to Mbh. *Vanaparva*, 118, its northern boundary was the Godavari. Later, the southern part of the Peninsula bounded on the north by the *Krishna* and the *Tungabhadra* was called as such. It is otherwise known as the Tamil country. It was also called Coda (Vikram. Intro. P. 27 Note)

नालन्द (°णालंद) X, 10, 9, The most famous seat of Buddhist learning. Fa Hian places the hamlet of Nalo at one yojana or seven miles from the hill of the isolated Rock (Giryeka) and also the same distance from new Rajagriha. It is now identified with Bargaon or Badgaon (Vatagrama or Viharagrama) which lies seven miles to the north west of Rajagriha in the district of Patna. Excavations carried on at the place have revealed traces of the vast Buddhist monastery.

पाण्ड्य (पण्डि or पण्डिय) IV, 1, 5; VIII, 18, 5. Mentioned in the epics, the Varttikas of Katyayana and the inscriptions of Asoka. Megasthenes refers to Pandoe as the only Indian race ruled by women. The country corresponded roughly to the Madura and Tinnevelly districts, Travancore and part of Coimbatore and Cochin. Its capital was Madura (Mathura or Dakshina Mathura). In the seventh Century A. D. the Pandyas conquered the Cola and Cera territories, but were subdued by the Colas in the middle of the ninth century.

पूदी (सिरि पूदी) V, 4, 6; V, 5, 3. A mountain in the Malaya (Malabar) country on which stood the temple

of the **24** Tirthamkaras reputed to have been built by the lord of Lanka, a descendant of Ravana, from where the Vidyadharas picked up the image of Parsvanatha on their way to Simhala. It is probably identical with the Podyil hill in the Western Ghats south of the Palaghat gap and west of Tinnevelly (see S I J.)

प्रतिष्ठान (पइट्ठाण) VI, 9, 2. Going to the Ganges from Kausambi, Naravahanadatta came to this place. So it can not be the Pratisthana on the Godavari. It is probably identical with Jhusi opposite to Allahabad across the Ganges which is still called Pratisthanapur. It is mentioned in the Mahabharata and the Kurma and Agni Puranas. It was the capital of king Pururavas of the Vikramorvasiyam. Acc. to Ram. Uttarakanda 90, 22, it was founded by king Ila.

प्रयाग (पयाग) VI, 6, 5; VI. 7, 7. Two Brahmins Madhava and Madhusudana of Muttra go there one after another to terminate their life through sheer disgust. Compare this with the description of the place given by Hiuen Tsang "In the city there is a Deva temple beautifully ornamented and celebrated for its numerous miracles. Before the hall of the temple, there is a great tree with spreading boughs and branches and casting a deep shadow. There was a body-eating demon here who, depending on the custom (of committing suicide) made his abode here. Accordingly, on the left and right one sees heaps of bones. Hence, when a person comes to this temple, there is everything to persuade him to despise his life and give it up; he is encouraged there to, both by promptings of the heretics and also by the seduction of the evil spirit. From very early days till now this very false custom has been practised." Ravishena in his Padma P. III, **281**, mentions it as follows :

प्रयाग इति देशोऽसौ प्रजाभ्योऽस्मिन्गतो यतः ।
प्रकृष्टो वा कृतस्त्यागः प्रयागस्तेन कीर्तितः ॥

It is identical with Allahabad

भरतक्षेत्र (भरहक्खेत्त) I. 3, 3; II, 2, 1; IV, 1, 3; V, 1, 5; X, 1, 7; X, 6, 2. same as Bharata-varsa, by which name India is mentioned in all ancient books.

मलय (°विषय) V, 4, 5; V, 5, 4. The Malayalam or Malabar country including Cochin and Travancore, the Malayagiri and the southern part of the Western Ghats. Famous for its sandal. It included the *Pudi* mountain.

मथुरापुरी (महुराउरी) VI; 4, 8; Modern Muttra in U. P. The capital of the ancient Surasena, the habitat of the Sauraseni Prakrit. Hence also called Sauripura, It was the birth-place of Krishna. Many Jain ruins have been excavated at Kankalitila (J. Stupa.) It had

trade connections with the south in very ancient times (see stories of Mahilaropya in Panchatantra.)

मेरु I, 16, 3; II, 3, 8; V, 3, 6. A mountain of Pauranic fame, also calld Sumeru. Identified with the Rudra-Himalaya in Garhwal where the river Ganges has its source near Badarikashrama (Dey. Geo; Mbh. Santi 335, 336). It is also called Pancha-Parvat, for boundaries of which see Matsya P. 113; Padma P. 128. In sound at least, it agrees with Meros mountain which was ascended by Alexander (Mac Crindle : In vasions of India, P. 338) and which is identified with Marhoh near Jalalabad in the Punjab.

यमुना (जउणा) X, 12, 9. The river Jumna.

रथनूपुर (रहणेउर) V, 2, 1; X, 1, 8. A town in south Vediardha from where came Nila and Mahanila who established themselves at Terapur and excavated the first cvae there.

लंका V, 4, 5; V. 5, 1. Amitavega and Suvega had to cross the Malaya (Malbar) to reach it. The king of Lanka, a descendant of Ravana had built a Jina temple at Pudi in Malaya. It is described as Trikuta or three peaked in the Ram. Sundara kanda chap. 1. It is believed by some to be identcal with the present Mantotte in Ceylon. Others think it to be a town now submerged into the sea (Mutu Coomarswami's Datha vamsa p. 97). Sardar Kibe has tried to locate it near Amara-kantaka in the Central Provinces. Dr. Jacobi located it in Assam, while Mr. V. H. Vader places it some where at the equator (IHQ. II, 345; IV, 339, 694.)

वत्स (वच्छ) VI, 1, 3. The country round about Kausambi which was the capital. King Udayana of classical fame and his son Naravahanadatta of the Kathasaritsagara and of the present work, belonged to it.

वाणारसि II, 16, 3. Modern Benares in U. P. It is sacred to the Jains being the birthplace of their 7th and 23rd Tirthamkaras. Close to it is Saranath which is so called because it was the birth-place of the 11th Tirthamkara Sreyamsanatha. Benares is one of the most sacred places of the Hindus. It was the capital of Kasi (Ram. Uttarakanda 48) which, at the time of Buddha, formed a part of the Kosala kingdom. According to one account, it was founded by Kasa or Kasiraja, a descendant of Pururavasa king of Pratisthana. It was visited by Hiuen Tsang who has recorded a description of it.

विजयार्ध (विजयद्ध्रइढ) II, 2, 1; V, 1, 6; V, 7, 2; VI, 11, 2; VI, 13, 7. A mountain in the north of the Bharata Kshetra, so called because it marks half the conquest of a *cakravartin*. Same as Vediardha.

विद्याधर पर्वत VI, 10, 3. Same as Vediardha.

विद्युत्प्रभ (विज्जुप्पह) II, 2, 5. A town in Southern Vediardha.

विन्ध्य (विञ्झ) I, 12, 8; II, 2, 11. The Vindhya mountain. It included Kalinjar, and is said to lie between *Andhra* and *Kalinga*.

वेयर्ध (वेयड्ढ) गिरि V, 3, 9; X, 1, 7. The mountain of the Vidyadharas. According to the Kss, XIV, 3, 65-66, 'On the Himacala mountain there are two Vediardhas of Vidyadharas, the northern and the southern. On the other side of the Kailasa is the northern Vediardha and on the lower side is the southern Vadiardha.' (See Intro.) According to Hemacandra's TSP. Vaitadhya mountain was 400 miles long touching the rivers Ganges and Sindha on either side. It was given as dominion to Nami and Vinami by Dharanendra the protecting deity of the first Tirthamkara Adinath. Nami occupied the southern Vaitadhya and founded fifty cities in it including Jayanti and Rathanupura Cakravala, and Vinami occupied the northern Vaitadhya and similarly founded another fifty towns.

श्रावस्तीपुरी (सावत्थिपुरि) X, 6, 2. Modern Sahet Mahet on the Rapti river in the Gonda district of Oudh. It was the birth-place of the 3rd and 8th Tirthamkaras *Sumatinatha* and *Candraprabha* on account of which it is also known amongst the Jains as *Canarapuri*. It was the capital of Uttara Kosala (Ram. Uttarakanda 121). It was founded by Sravasta the king of the solar race (V P. IV, 2, 13). Rama, when dividing his kingdom, gave it to Lava (Vayu P. Uttara, 26). At the time of Buddha Prasenjit was the king of Uttara Kosala with his capital at Sravasti. His son Jet built the Jeta vanavihara close to the town where Buddha resided for 25 years, and out of the 498 Jatakas (birth stories) 416 were told at this place. (Cun. SB. p. 90; Arch. Re I, 330.) Excavations carried on at the place have revealed numerous Jain images mostly of the 11th century. (Arch. Re. 1907—08).

सत्यलक्ष्मीपुर (सच्चलच्छी°) VII, 5, 2. Home of the Khecara who met Karakanda at Terapur.

सहस्रकूटभवन V, 8, 9. Name of a temple at Terapur. May refer to the first cave built by Nila and Mahanila which is said to have had a thousand pillars (Sahasa-khambha). On inquiry Mr. Nemchand Balchand Gandhi of Osmanabad wrote to me to say that in Dhara Siva there was a Sahasrakuta Jinalaya which is now ruined. Some pillars are traceable in the mosques and other buildings of the place. Some images of that temple were lying

in the compound of Kazi Mahal, but they have now been removed from there to another house." (Letter dated 11-9-31).

सिन्धु I, 3, 3. The river Indus.

सिंहलद्वीप VII, 5, 4. Modern Ceylon. Karakanda Visited it, married the daughter of the king of the island and returned by sea.

सुरसरित् III, 9, 4; VI, 9, 1; VIII, 7, 4. The river Ganges.

सौराष्ट्रदेश (सोरट्ठ देस) III, 5, 6. The peninsula of Gujrat and Kathiawad; the Syrastrene of Ptolemy and Sula-cha of Hiuen Tsang who locates its capital at the foot of Mount Yeuchen-ta (Ujjanta SK. Urjayat.) which is also mentioned in the inscription or Rudradaman and Skanda-gupta. It is, thus, the old city of Junagadh which is the same as Girinagara mentioned by our author as the capital (see गिरिनगर).

हिमवत् गिरि III, 12, 7. The mountain Himalaya where the Ganges has its source.